कविता-कौमुदी

दूसरा भाग—हिन्दी

सम्पादक

रामनरेश त्रिपाठी

किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

तीसरा संस्करण (परिवर्तित) | फाल्गुन, १९८३ | मूल्य ३)

हिन्दी-प्रचार के प्रमुख उद्योगी

सेठ जमनालाल बजाज

को

समर्पित

सूची

विषय पृष्ठ

खड़ी बोली की कविता का संक्षिप्त इतिहास

कवि-नामावली

१—हरिश्चन्द्र १
२—बदरीनारायण चौधरी ३३
३—विनायकराव ४८
४—प्रतापनारायण मिश्र ५३
५—विजयानन्द त्रिपाठी ६५
६—अम्बिकादत्त व्यास ७२
७—लाला सीताराम ८०
८—नाथूराम शङ्कर शर्मा ८८
९—जगन्नाथप्रसाद 'भानु' १०८
१०—श्रीधर पाठक ११४
११—सुधाकर द्विवेदी १२७
१२—शिवसम्पति १३४
१३—महावीरप्रसाद द्विवेदी १३९
१४—अयोध्यासिंह उपाध्याय १५७
१५—राधाकृष्णदास १८८
१६—बालमुकुन्द गुप्त १९४
१७—किशोरीलाल गोस्वामी २१४
१८—लाला भगवानदीन २२५
१९—जगन्नाथदास (रत्नाकर) २३५
२०—राय देवीप्रसाद पूर्ण २४२
२१—कन्हैयालाल पोद्दार २५६
२२—रामचरित उपाध्याय २६४
२३—सैयद अमीरअली 'मीर' २७९

२४—जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी २९३
२५—कामताप्रसाद गुरु ३०३
२६—मिश्रबन्धु ३२४
२७—गिरिधर शर्मा ३४६
२८—रामदास गौड़ ३५२
२९—माधव शुक्ल ३६७
३०—गयाप्रसाद शुक्ल ३७०
३१—रूपनारायण पाण्डेय ३७९
३२—रामचन्द्र शुक्ल, ... ३८९
३३—सत्यनारायण ४०७
३४—मन्नन द्विवेदी ४२२
३५—मैथिलीशरण गुप्त ४२६
३६—लोचनप्रसाद पाण्डेय ४५०
३७—लक्ष्मीधर बाजपेयी ४७५
३८—शिवाधार पाण्डेय ४८५
३९—माखनलाल चतुर्वेदी ४९५
४०—जयशङ्करप्रसाद ५०६
४१—गोपालशरण सिंह ५१५
४२—बदरीनाथ भट्ट ५४०
४३—सियारामशरण गुप्त ५४६
४४—मुकुटधर ५५४
४५—वियोगी हरि ५६७
४६—गोविन्ददास ५८१
४७—सूर्यकान्त त्रिपाठी ५९३
४८—सुमित्रानन्दन पन्त ६१०
४९—सुभद्राकुमारी चौहान ६२०
कौमुदी-कुञ्ज ६३३

खड़ीबोली की कविता का संक्षिप्त इतिहास

खड़ीबोली का स्वरूप

खड़ीबोली उस भाषा का एक नाम है जिसे आजकल हिन्दी कहते हैं। प्रायः यह नाम हिन्दी-कविता की भाषा के लिये अधिक प्रयुक्त होता है।

कुछ लोगों का यह ग़लत ख़याल है कि खड़ीबोली ब्रजभाषा से निकली है। उर्दू के सुप्रसिद्ध लेखक मौलाना मुहम्मदहुसेन आज़ाद ने भी ऐसी भूल की है। उन्होंने अपने 'आबेहयात' में उर्दू को ब्रजभाषा की बेटी लिखा है। यद्यपि उर्दू हिन्दी से कोई भिन्न भाषा नहीं। बल्कि उसी का एक मुसलमानी नाम है। खड़ीबोली, जिसका असली नाम हिन्दी है, बहुत प्राचीन भाषा है। ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों का किसी समय प्राकृत से साथ ही साथ निकास हुआ था। भाषा के विद्वानों का अनुमान है कि विक्रम की सातवीं-आठवीं शताब्दी में हिन्दी अपनी जननी प्राकृत की गोद से अलग हुई थी। अतएव ब्रजभाषा के उद्‌गम का भी यही समय समझिये। हिन्दी दिल्ली और मेरठ के आसपास बोली जाती रही है और ब्रजभाषा का विकास ब्रज में हुआ है।

हिन्दी का खड़ीबोली नाम कब और क्यों पड़ा? इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। सं० १८६१ में लल्लूलालजी ने अपने प्रेमसागर की भूमिका में उस बोली का नाम, जिसमें प्रेमसागर लिखा गया है, खड़ी-बोली लिखा है। यह नाम उनका रक्खा हुआ नहीं जान पड़ता। बल्कि आगरे और उसके आसपास उस समय हिन्दी का यह प्रचलित नाम रहा होगा। उन्होंने उसी का उल्लेख किया है। खड़ीबोली नाम क्यों पड़ा? यह भी स्पष्ट नहीं है। खड़ी, पड़ी, लेटी, बैठी यह नाम किसी भाषा का नहीं

रक्खा जा सकता। खड़ी के अंदर कोई न कोई गूढ़ अर्थ अवश्य सन्निविष्ट है। कोई कोई खड़ी को खरी करके उसका अर्थ स्पष्ट और साफ़ साफ़ करते हैं। अर्थात् जो खरी खरी सुना दे वह खरी बोली। खरी को लोगों ने पीछे से खड़ी कर लिया। खड़ी होने पर वह चल निकली। जो हो, हिन्दी शब्द कहने से कविता में ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों का बोध होता है। इसलिये हिन्दी-कविता की भाषा का एक अलग नाम रखने की आवश्यकता समझी गई। नहीं तो हिन्दी का खड़ीबोली या उर्दू नाम अलग रखने की कोई ज़रूरत नहीं थी।

अमीर ख़ुसरो के समय में उस समय की प्रचलित भाषा का नाम हिन्दी ही था, न उर्दू था न खड़ीबोली। एक उदाहरण लीजिये—

फ़ारसी बोले आईना। तुर्की बोले पाईना।
हिन्दी बोलते आरसी आये। मुँह देखे जो इसे बताये॥

इससे जान पड़ता है कि तेरहवीं शताब्दी में ही हमारी भाषा का हिन्दी नाम पड़ चुका था। अतएव उसी नाम को महत्व देना चाहिये। हिन्दी शब्द में हमारे देश का नाम व्याप्त है। इससे हमें अपनी भाषा के इस प्राचीन और सारगर्भित नाम को ही प्रचार में लाना चाहिये। हिन्दी में हिन्दुस्तान की भाषा होने का गौरव है और ब्रजभाषा में ब्रज की। पर खड़ीबोली के खड़े होने के लिये कहीं ठिकाना नहीं है। अतएव इस नाम को अब धीरे धीरे छोड़ ही देना चाहिये।

खड़ीबोली की कविता की परम्परा

खड़ीबोली के सब से पहले कवि अमीर ख़ुसरो हैं जो तेरहवीं सदी में हुये थे। उनकी बहुत सी कविताएँ खड़ीबोली में हैं। कुछ उदाहरण आगे दिये जाते हैं—

(१)

खीर पकाई जतन से, चरखा दिया जला।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा॥

(२)

बीसों का सिर काट लिया। ना मारा नाखून किया।

खुसरो के बाद सादी, वली, मीर आदि मुसलमान कवियों ने इस भाषा में रचनायें कीं। इनके भी उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

हम तुमन को दिल दिया,
तुम दिल लिया औ दुख दिया।
हम यह किया तुम वह किया
ऐसी भली वह पीत है॥ सादी

ऐ वली! रहने को दुनिया में मुक़ामे आशिक़।
कूचए यार है या गोशए तनहाई है॥ वली

शाम से कुछ बुझा सा रहता है।
दिल हुआ है चिराग़ मुफलिस का॥ मीर

हिन्दू कवियों में सब से पहले कबीर का नाम आता है, जिन्होंने खड़ी-बोली में भी अपने पद, साखी और रेखते कहे हैं। जैसे—

फ़हम कर फ़हम कर फ़हम कर मान यह फ़हम बिन फ़िकिर नहिं मिटै तेरी।
सकल उजियार दीदार दिल बीच है ज़ौक़ औ शौक़ सब मौज तेरी॥

कबीर का समय सं० १४५५ से प्रारंभ होता है। कबीर के बाद गुरु नानक ने भी खड़ीबोली में कुछ पद कहे। गुरु नानक का समय सं० १५२६ से १५९५ तक है। एक पद सुनिये—

सोच विचार करे मत मन में
जिसने ढूँढ़ा उसने पाया।
नानक भक्तन के पद परसे
निसदिन रामचरन चित लाया॥

सं० १६१० में रहीम हुये। रहीम ने खड़ी बोली में मदनाष्टक लिखा था। उसका एक पद्य यह है—

कलित ललित माला, वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला, चाँदनी में खड़ा था॥

कटि तट बिच मेला, पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला, यार मेरा अकेला॥

भूषण का जन्म सं० १६७० में हुआ। भूषण ने भी कहीं कहीं खड़ी-बोली का प्रयोग किया है। एक उदाहरण लीजियेः—

बचैगा न समुहाने बहलोल खाँ अजाने............
तुझ ते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास
कैद किया साथ का न कोई वीर गरजा॥

भूषण के समय में तो खड़ीबोली का प्रचार दक्षिण में बहुत काफ़ी रहा होगा। क्योंकि यही उस समय की राष्ट्रभाषा थी। देश के चारों ओर के लोग दिल्ली आया करते थे। उनको तो दिल्ली की उस समय की भाषा बोलनी ही पड़ती होगी। कम से कम शिवाजी महाराज तो हिन्दी के अच्छे जानकार रहे ही होंगे। तभी तो वे भूषण की कविता समझते और उस पर अपना हर्ष प्रकट करते थे।

अठारहवीं सदी में सूदन हुये। सूदन ने अपने सुजान-चरित में कई स्थानों पर खड़ीबोली में कविता लिखी है। एक कवित्त उदाहरणार्थ यहाँ दिया जाता है—

महल सराय से रवाने बुआ बूबू करो,
मुझे अफ़सोस बड़ा बड़ी बीबी जानी का।
आलम में मालुम चकत्ता का घराना यारो,
जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का॥
खने खाने बीच से अमाने लोग जाने लगे,
आफ़त ही जानो हुआ औज दहकानी का।
रब की रजा है हमें सहना बजा है,
वक्त हिन्दू का गज़ा है आया छोर तुरकानी का॥

सं० १७८० के लगभग सीतल का समय है। सीतल ने भी अपने गुलज़ार चमन में खड़ीबोली में रचना की है। जैसे—

हम खूब तरह से जान गये जैसा आनँद का कंद किया।

सब रूप सील गुन तेज पुञ्ज तेरे ही तन में बंद किया ॥
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर बिधि ने यह फरफंद किया ।
चम्पकदल सोनजुही नरगिस चामीकर चपला चंद किया ॥

ग्वालकवि का समय सं० १८४८ से १९२८ तक है। ग्वाल ने भी खड़ीबोली में रचना की है। उनका एक कवित्त यहाँ दिया जाता है—

दिया है ख़ुदा ने ख़ूब ख़ुशी करो ग्वाल कवि,
खाओ पिओ देओ लेओ यही रह जाना है।
राजा राव उमराव केते बादशाह भये,
कहाँ से कहाँ को गये लयो ना ठिकाना है ॥
ऐसी जिन्दगानी के भरोसे पै गुमान ऐसे,
देश देश घूमि घूमि मन बहलाना है।
आये परवाना पर चले न बहाना,
यहाँ नेकी कर जाना फिर आना है न जाना है ॥

ग्वाल के बाद और भी कुछ कवियों ने खड़ीबोली में रचनायें की हैं। पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से तो खड़ीबोली की पतली धारा ने नदी का रूप धारण कर लिया है। हरिश्चन्द्र ने खड़ीबोली की कविता का युग ही बदल दिया। उनके बाद के कवियों ने खड़ीबोली को ऐसा अपनाया कि ब्रजभाषा के हिमायतियों को भय होने लगा कि कहीं ब्रजभाषा का प्रभाव मंद न पड़ जाय। आजकल सचमुच ब्रजभाषा का प्रचार एक प्रकार से बंद सा हो गया है।

ऊपर के उदाहरणों के देने का हमारा अभिप्राय यह है कि खड़ी-बोली की प्राचीनता के सम्बन्ध में लोगों का भ्रम दूर हो जाय।

ब्रजभाषा और खड़ीबोली

एक समय था जब ब्रजभाषा ही हिन्दी-कविता की भाषा थी। ब्रज से सैकड़ों-हज़ारों मील दूर रहने वाले कवि भी ब्रजभाषा में कविता रचते थे। अब भी सैकड़ों कवि ऐसे होंगे, जिन्होंने न कभी ब्रज की सैर की

होगी और न कभी घर में ही ब्रजभाषा का अध्ययन किया होगा, पर वे ब्रजभाषा में कविता रचते हैं। ऐसी योग्यता उनमें कहाँ से आ जाती है ? यह है ब्रजभाषा के बहुल प्रचार का परिणाम ! ब्रजभाषा की श्रृङ्गार और भक्ति विषयक कविताओं का हिन्दुओं के घर-घर में ऐसा प्रचार है कि उनके द्वारा लोगों को ब्रजभाषा का कुछ न कुछ ज्ञान आप से आप होता रहता है।

कुछ लोग खड़ीबोली को ब्रजभाषा के प्रचार में बाधक बतलाते हैं। हमारी समझ में ब्रजभाषा का समय अब गया। उसमें कवि लोग अच्छी से अच्छी और बुरी से बुरी दोनों प्रकार की कविताएँ रच चुके। अब उसमें गुञ्जाइश नहीं कि वह और कुछ माल हज़म कर सके। थोड़े ही दिनों में संस्कृत की तरह उसका भी हाल होने वाला है। भाषा में परिवर्तन होता ही रहता है, इसके लिये दुःखी होना और अन्य उन्नतिशील भाषाओं को कोसना विचार-हीनता है। समय आप से आप भाषा को अपने अनुकूल बना लेता है। जब देश में वैभव था, लोग सुखी थे, तब श्रृङ्गार रस और भक्ति की कविता के लिये सुमधुर ब्रजभाषा की ज़रूरत थी। अब देश पराधीन है, भूख से व्याकुल हैं, अब श्रृंगार रस अच्छा नहीं लगता। अतएव कोमल भाषा की भी ज़रूरत नहीं है। अब तो जाग्रत करने वाली, हृदय में उत्साह भरनेवाली वीर भाषा की ज़रूरत है। और वह खड़ीबोली ही है। ब्रजभाषा देश को जगाना नहीं जानती, बल्कि सुख की नींद सुलाना जानती है। खड़ीबोली तो स्वयं खड़ी है, वह सोये को उठाकर खड़ा कर देगी। अतएव ब्रजभाषा के लिये दुःख करके भी कोई खड़ीबोली के प्रचार को रोक नहीं सकता।

हिन्दी-कविता में क्रान्ति-युग

हिन्दी में उन्नीसवीं शताब्दी तक कविता का विषय मुख्यतः भक्ति और श्रृङ्गार था। भक्त कवि दो प्रकार के हुये। एक ने विशुद्ध भक्ति का प्रचार किया। जैसे कबीर आदि संत तथा तुलसी आदि रामोपासकों ने।

दूसरे ने शृङ्गार-मिश्रित भक्ति का प्रचार किया। जैसे सूरदास आदि व्रज के कवियों ने। शृङ्गारी कवियों की संख्या भक्त कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक रही। इनके मुख्य विषय थे—नखशिख, नायिका-भेद और ऋतु-वर्णन। जो कवि इन तीनों विषयों में कुछ कर लेता था, वह आचार्य गिना जाता था। नखशिख में शरीर के प्रत्येक अंग की उपमा खोजी जाती थी। जो कवि उपमानों की अधिक संख्या गिना सकता था, वह कवि-श्रेष्ठ समझा जाता था। नायिकाभेद ने तो व्रजभाषा के कवियों की बुद्धि में सब से अधिक स्थान पर अधिकार कर लिया था। उस समय के कवियों में केवल स्त्रियों की ही चर्चा रहती थी। कोई कन्या युवती हो रही थी, उसकी भी चिंता कवि को थी। कोई पनघट पर पानी भरने जा रही थी, उसके साथ भी कवि को जाना पड़ता था। कोई अपने पति से बातें कर रही थी, कवि वहाँ भी लुके-छिपे मौजूद रहते थे। पता नहीं, किस परम उद्देश्य की सिद्धि के लिये स्त्रियों के अनेक भेद किये जाते थे। शृङ्गारी कवि लोग कामकला की वृद्धि के लिये तरह तरह की कल्पनाएँ किया करते थे। कुटनियों की अन्यतम आवश्यकता अपने श्रोताओं को हृदयङ्गम कराते रहते और ऋतुओं के नुसखे भी लिखा करते थे। नुसखों में प्रत्येक ऋतु में नवबाला तो रहती ही थी। बिना इसके कोई नुसखा काम का ही नहीं समझा जाता था। अब भी जो पुराने ढर्रे के कवि हैं, वे इसी धुन में हैं। ज़माना चाहे मीलों आगे बढ़ जाय, पर वे एक इंच आगे खसकने को तैयार नहीं। उन्हें भक्ति विषयक कविता लिखनी होगी तो ध्रुव, प्रह्लाद, गणिका, गीध, अजामिल, सेवरी और मीरा से आगे न बढ़ेंगे। वे इस बात को ध्यान में नहीं लाते कि कविता और इतिहास दो भिन्न पदार्थ हैं।

पहले शीघ्र समाचार पाने और जल्द आने जाने के साधन नहीं थे। तब परदेश जाकर लौट आना पुनर्जन्म समझा जाता था। उस समय विरह का वर्णन सार्थक हो सकता था। पर आजकल रेल और तार के ज़माने में न वैसा विरह ही है, न वैसे विरही-विरहिणी ही। और न वैसे वर्णन की पुनरुक्ति ही आवश्यक है। पर अब कवियों को समझावे कौन? आजकल

जो कविता के मासिकपत्र निकलते हैं उनमें सैकड़ों कवि ऐसी ही चिंता में पड़े दिखाई पड़ते हैं कि अमुक स्त्री का पति परदेश गया है। स्त्री उसके विरह में सूखकर काँटा हो गई है। कोयल पपीहों की आवाज़ से उसके कलेजे कतरे जा रहे हैं। वह चीख रही है। चिल्ला रही है। जान जाने की देर है, इत्यादि। यह झूठी झूठी बातें सुनकर लोग क्या करें ? किधर दौड़ें ? कहाँ जायँ ? दूसरों का कल्पित विरह लेकर कवि महाशय स्वयं तड़पते हैं और खा पीकर सुख से बैठे हुये काव्य-रसिकों को नाहक तड़पाते हैं। पता नहीं, यह व्यर्थ का काम वे क्यों करते हैं ! अच्छा होता कि कवि महाशय स्वयं उस स्त्री पर दया करते और उसके पति को ढूँढ़कर घर पर लिवा लाते। जिससे यह परेशानी मिट जाती और बेचारे कोयल पपीहे भी अच्छे लगने लगते।

सबसे विचित्र बात तो यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण और राधा के सम्बन्ध में कविगण कल्पना पर कल्पना भिड़ाते चले जा रहे हैं। उसका अंत ही नहीं होने पाता। जो बातें श्रीकृष्ण और राधा ने कभी सोची भी न होंगी, वे भी इन कवियों की कल्पना में आकर उनके मत्थे मढ़ी जा रही हैं।

श्रीकृष्ण महाभारत युद्ध में उपस्थित थे। महाभारत ग्रंथ में उनका बहुत संक्षिप्त वर्णन है। उनकी लीलाओं का विस्तृत वर्णन श्रीमद्भागवत में है। जिसमें उनकी लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार की शक्तियों का उल्लेख है। उनकी लीलाओं के लिये श्रीमद्भागवत ही सबसे अधिक ज़िम्मेदार ग्रंथ है। श्रीमद्भागवत का निरन्तर पाठ करने वाले कई मित्रों से हमें यह जानकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि श्रीमद्भागवत में राधा का नाम नहीं। आश्चर्य क्यों न होता, जब कि इधर हम देखते हैं कि हिन्दी-कविता का आधे से अधिक अंश राधा-माधव के विलास-वर्णन से ही पूर्ण है। यदि श्रीमद्भागवतकार की जानकारी में राधा नाम की कोई स्त्री श्रीकृष्ण की प्रेमिकाओं में नहीं थी, तो राधा की उपज किस दिमाग़ मे हुई ? और उन्हें इतनी महत्ता क्यों दी गई कि उनका नाम रुक्मिणी के स्थान पर श्रीकृष्ण के साथ जोड़ दिया गया ? राधा का नाम तो सीता और पार्वती से भी अधिक प्रसिद्ध होरहा है।

हमें राधा गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव के मस्तिष्क की उपज जान पड़ती हैं। गीतगोविन्द में राधा-माधव का विलास वर्णित है। उसी के आधार पर राधाकृष्ण की शृङ्गारी लीलाओं की सृष्टि जान पड़ती है। हिन्दी में सबसे पहले मैथिल-कोकिल विद्यापति ठाकुर ने राधा-माधव के संयोग और वियोग के वर्णनों के हज़ारों पद लिख डाले। उनके बाद के कवियों के मुख से तो राधा-कृष्ण का शृङ्गाररस सहस्र-धारा होकर प्रवाहित हुआ है। व्रजभाषा के साहित्य में राधाकृष्ण के रहस्यों के सिवा और क्या है? कितने ही कवियों ने तो मानों राधा-माधव के शृङ्गार वर्णन के लिये ही जन्म लिया था।

भक्त कवियों की बात अलग है। वे भगवान् के दरबारी ही ठहरे। उनके लिये भगवान् ने कहा है कि :—

हम भक्तन के भक्त हमारे।

अतएव भक्त कवियों को भगवान् के सम्बन्ध में सीधी-टेढ़ी सब प्रकार की बातें कहने का हक़ है। पर जो भक्त नहीं, केवल कवि हैं, और कवि भी शृङ्गारी ; उनके विषय में हम यह अवश्य कह सकते हैं कि उन्होंने राधा-कृष्ण के संयोग शृङ्गार-वर्णन की आड़ लेकर अपने या अपने आश्रयदाताओं के कुत्सित मनोविकारों को अधिक जाग्रत करने का ही प्रयत्न किया है। हम कवियों के इस प्रयत्न को धार्मिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से अहितकर समझते हैं। जो लोग राधाकृष्ण को देवता मानकर पूजते हैं, पता नहीं, राधा का अभिसारिका बनना, श्रीकृष्ण का उनके साथ विहार करना और दोनों के अश्लील से अश्लील कृत्यों का वर्णन वे कैसे पसंद करते हैं! कोई भक्त अपने उपास्यदेव के विषय में ऐसी लज्जाजनक बातें नहीं सुन सकता। सामाजिक हानि इनसे यह है कि राधाकृष्ण के संयोग-शृङ्गार की कविताएँ सुनकर साधारण लोगों में भगवद्भक्ति न उत्पन्न होकर शृङ्गारी भाव ही विशेष रूप से जाग्रत होते हैं। इससे चरित्र-बल क्षीण होता है।

राधाकृष्ण का श्रृङ्गार-वर्णन इतना अधिक हो चुका है कि अब हमारे वर्तमान कवियों को उतने से ही संतोष करना चाहिये। इस सम्बंध में पुराने कवियों ने जो कुछ लिखा है, उसकी समता का तो क्या, उसका पासङ्ग भी अब नहीं लिखा जाता। उसके लिये जो दिन थे, वे गये। जिनको लिखना था, वे लिख गये। अब उस विषय का गौरव उन कवियों के लिये ही छोड़ देना चाहिये।

पर अब भी प्राचीन शैली के कवि ऐसी कविताएँ लिखा करते हैं, जिनमें किसी में तो राधाकृष्ण के अभिसार का वर्णन होता है; किसी में कृष्ण अपनी गेंद की चोरी लगाकर राधा की चोली टटोलते हैं; किसी में कृष्ण राधा के कान में कुछ कहने के बहाने उनका कपोल चूम लेते हैं; किसी में सुरति का वर्णन है, किसी में विपरीत रति का; किसी में दूती और कुटनियों का प्रपंच रहता है, और किसी में कुछ, किसी में कुछ। पता नहीं कविगण राधाकृष्ण के नाम से ही ये सब बातें क्यों लिखते हैं? और इससे जनता को क्या लाभ? बातें अच्छी हैं तो अपने और अपनी स्त्री के नाम से क्यों नहीं लिखते? इस समय यदि राधाकृष्ण मनुष्य-रूप में पृथ्वी पर, ख़ासकर भारत की छाती पर, युक्त-प्रदेश में, होते तो क्या हमारे कविगण उनके भोग-विलास का ऐसा ही वर्णन कर सकते थे? तब क्या मानहानि के एक ही मुक़द्दमे से उनकी बुद्धि का प्रवाह सहज में ही न बदल जाता?

अब समय बदल गया। ऊपर हम लिख आये हैं कि समय अपने अनुकूल साहित्य स्वयं तैयार करा लेता है। खड़ीबोली के कवियों ने नख-शिख और नायिकाभेद को तो तिलाञ्जुलि दे ही दी; साथ ही श्रृङ्गार के अन्य विषय भी छोड़ दिये। आजकल तो मुख्य विषय है भारत और गौण विषय हैं हृदय के भावों की साकार-लीला। इसी से इसे हिन्दी का क्रांति-युग कहना चाहिये। अभी हिन्दी-कविता की भाषा और भाव दोनों व्रज-भाषा के प्रभाव से विमुक्त नहीं हो पाये हैं। पर संघर्ष जारी है। हिन्दी-कविता क्रांतियुग में गमन कर रही है।

खड़ीबोली की वर्तमान कविता के छन्द, भाषा, विषय और भाव का दिग्दर्शन

खड़ीबोली के कवियों ने ब्रजभाषा को तो छोड़ ही दिया, भाव और विषय भी नये कर लिये, पर साथ ही छन्दों को भी बदल डाला। ब्रजभाषा के कवियों ने दोहा, चौपाई, सवैया, और घनाक्षरी छन्दों में ही अधिक कविता की है। इनमें भी सवैया और घनाक्षरी की संख्या बहुत अधिक है। पर खड़ीबोली के कवियों ने करीब करीब इन सबका वहिष्कार सा कर दिया है। वर्तमान कवियों में सब से अधिक खड़ीबोली के घनाक्षरी शङ्करजी ने लिखे हैं। उनके वाद ठाकुर गोपालशरणसिंह का नम्बर है। वावू मैथिलीशरणजी ने भी कुछ घनाक्षरी लिखे थे। वाकी कवियों ने भिन्न भिन्न छन्दों में रचनायें की हैं। हरिऔधजी ने संस्कृत छन्दों में "प्रिय-प्रवास" नाम का एक महाकाव्य खड़ीबोली में लिखा। उनके वाद पंडित रामचरित उपाध्याय ने "रामचरित-चिन्तामणि" नामक महाकाव्य लिखा, जिसमें संस्कृत छन्दों का अधिकांश उपयोग किया गया है। इन महाकाव्यों की देखा-देखी कुछ दिनों तक संस्कृत-छन्दों का ख़ूब ही प्रचार रहा। संस्कृत छन्दों में कितने ही काव्य-ग्रन्थ लिखे गये, कुछ छपे और कुछ अभी विना छपे ही पड़े हैं। वावू मैथिलीशरण गुप्त ने हरिगीतिका छन्द में भारत-भारती और जयद्रथ-वध नामक दो काव्य लिखे। उनकी देखा-देखी कुछ दिनों तक हरिगीतिका का ही चलन रहा। शङ्करजी ने रोला छन्द को महत्व प्रदान किया। अब वीर छन्द का आधिपत्य है। वीर छन्द का दूसरा नाम है आल्हा छन्द। आल्हा छन्द प्रायः बेतुका होता है। पर आजकल वीर छन्द में तुक मिलने लगा है।

ऊपर जिन छन्दों का ज़िक्र आया है, वे सब शास्त्रीय छन्द है। छन्द-शास्त्र में उनके बनाने के नियमादि लिखे हैं। इन दिनों कुछ ऐसे छन्द चल निकले हैं, जिनका छन्द-शास्त्र में कहीं पता भी नहीं। कुछ छन्द तो शास्त्रीय

छन्दों में से किसी का हाथ, किसी का पैर और किसी का धड़ लेकर बिल्कुल नये गढ़ लिये गये हैं। इस समय कुछ नये कवि ऐसे भी हैं, जिन्होंने छन्द-शास्त्र के बन्धनों को चारोंओर से तोड़कर फेंक दिया है। इन्होंने ऐसे छन्दों में अपना नीरव गान उद्घोषित किया है, जिनका कोई निश्चित स्वरूप नहीं। कोई पंक्ति दो ही चार अक्षरों की, कोई बीसों अक्षरों की। अभी तो ऐसे छन्दों को "कँगारू"* छन्द कहना ही ठीक होगा।

छन्दों के साथ तुक की भी प्रधानता जाती रही। "कँगारू" छन्द तो प्रायः बेतुके ही होते हैं। संस्कृत-छन्दों में जो हिन्दी-कविता हुई है, वह भी अन्त्यानुप्रास-रहित ही है। धीरे-धीरे तुकहीन कविता का प्रचार बढ़ रहा है।

अब भाषा पर विचार कीजिये। हिन्दी के पुराने कवि ब्रजभाषा में ही कविता करते थे। पर आजकल ब्रजभाषा का प्रवाह एक प्रकार से बंद सा हो गया है। न तो उसकी शिक्षा का कोई प्रबन्ध है, न समय ही उसके अनुकूल है। नवशिक्षितों को ब्रजभाषा की कविता समझने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इसलिये उधर से लोगों की रुचि कम होती जा रही है। अब बोलचाल और कविता की भाषा एक करने की ओर लोगों की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

ब्रजभाषा का साहित्य सूर, बिहारी और देव आदि अमृतवर्षी कवियों की रचनाओं से प्रतिष्ठित है। खड़ीबोली में अभी उस श्रेणी के कवि नहीं हुये। खड़ीबोली की कविता का अभी प्रारंभिक युग है। उसमें अभी कई प्रकार की त्रुटियाँ हैं। धीरे-धीरे संशोधन होते होते मँजमँजाकर वह साफ़ सुथरी हो जायगी। अभी तो ब्रजभाषा के कितने ही शब्द और महावरे खड़ीबोली में व्यवहृत होते हैं।

बोलचाल और कविता की भाषा के एक होने का अभिप्राय यह है कि

---

* कँगारू आस्ट्रेलिया में एक जानवर होता है, जिसके आगे के दोनों पैर बहुत छोटे और पीछे के दोनों पैर आगे वालों से कई गुने बड़े होते हैं।

किसी पद्य का अन्वय करने पर वह व्याकरण-सम्मत शुद्ध गद्य बन जाय। यही एक कसौटी है, जिस पर कसकर भाषा के सम्बन्ध में पद्यों की परीक्षा करनी चाहिये। वर्तमान काल के हिन्दी-कवियों में कुछ ही कवि ऐसे हैं जिनकी कविता भाषा की दृष्टि से शुद्ध कही जा सकती है। खड़ीबोली के एक सुप्रसिद्ध कवि का एक पद्य सुनिये—

ग्राम ग्राम प्रत्येक नगर में।
घूमें घोर ताप घर घर में॥

इसमें "घूमें" शब्द विचारणीय है। पद्य का अन्वय यह है कि "ग्राम ग्राम प्रत्येक नगर में घर घर घोर ताप घूमें।" "घूमे" से कवि का अभिप्राय "घूमता है" से है। यह प्रयोग हिन्दी-व्याकरण-सम्मत नहीं।

एक दूसरा प्रयोग देखिये—

उन्नति देख अन्य देशों की अब न तुम्हें होता उत्साह।

इसका अन्वय हुआ—"अन्य देशों की उन्नति देख तुम्हें अब उत्साह न होता।" समझने को चाहे मनमानी अर्थ समझ लिया जाय, पर कवि की भाषा कवि का मनोभाव प्रकट करने में असमर्थ है। 'न' के स्थान पर 'नहीं' या 'होता' के स्थान पर "होता है" होने से वाक्य शुद्ध होगा। क्रिया की अपूर्णता भाषा का एक बड़ा दोष है।

एक और प्रयोग देखिये—

सिय का उपताप घटाय, दूर कर शङ्का।
कपि हुआ प्रसिद्ध बजाय, विजय का डंका॥

इसमें 'घटाकर', 'बजाकर' के लिये 'घटाय' और 'बजाय' का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार गाय, जाय, खाय, पाय, दिखाय, बनाय आदि शब्दों का प्रयोग भी कवि लोग करते हैं। पर यह हिन्दी-व्याकरण से अशुद्ध है। खड़ीबोली में इसे स्थान नहीं मिल सकता।

एक और प्रयोग देखिये—

हिमालय सर है उठाये ऊपर, बगल में झरना झलक रहा है।

इस छन्द में "हिमालय" का 'य' अधिक है। 'उठाये' और 'बगल

में' में 'ये' और 'में' देखने में तो पूरे हैं पर ध्वनि के अधूरे हैं। जैसा लिखा जाय, वैसा ही पढ़ा जाय, हिन्दी की यह विशेषता इसमें संकुचित हो गई है। उर्दू और ब्रजभाषा में तो इस प्रकार के अर्धप्राण शब्दों का खूब प्रयोग चलता है, पर खड़ी बोली में ऐसे-ऐसे लूले-लँगड़े शब्दों के लिये गुञ्जाइश नहीं। उर्दू का एक पद्य सुनिये—

बड़े शौक़ से सुन रहा था ज़माना।
तुम्हीं सो गये दास्ताँ कहते कहते॥

इसमें पहले "कहते" के "ते" का ढांचा तो पूरा है, पर जान अधूरी है।

अनावश्यक शब्दों का प्रयोग भी भाषा का एक बड़ा दोष है। जैसे—

कर पुण्यदर्शन भक्तयुत भगवान का निज गेह में।
कृतकृत्यता मानी गिरिश ने मग्न हो सुस्नेह में॥
फिर नम्रता से आगमन का हेतु जब पूछा अहा!
हरि ने कथा कह पार्थ-प्रण की पाशुपत के हित कहा॥

इसमें स्नेह के पहले 'सु' व्यर्थ ही लगाया है। और तीसरे चरण में "अहा" तो नितान्त अनावश्यक है। यहाँ तो साधारण लोकाचार का वर्णन है, हर्ष या विस्मय का प्रसङ्ग ही नहीं, तब यहाँ अहो! की क्या आवश्यकता है? चौथे चरण में "हित" शब्द "लिये" के अर्थ में आया है, जो ब्रजभाषा का है, खड़ीबोली का नहीं।

एक और उदाहरण लीजिये—

गति में गौरव गर्व दृष्टि में दर्प धृष्टतायुत धारी।
देखूँ हूँ मैं इन्हें मनुज-कुल-नायकता का अधिकारी॥

"देखूँ हूँ" प्रयोग पर ध्यान दीजिये। "देखूँ हूँ" "कहूँ हूँ" "जलै है", ये स्थान-विशेष के प्रयोग हैं। हिन्दी जैसी सार्वदेशिक भाषा की कविता में ऐसे प्रयोग समर्थनीय नहीं।

ऊपर के उदाहरण जिन सुकवियों के ग्रन्थों से चुने गये हैं उनसे हमारा सविनय निवेदन है कि उनका दोष दिखलाने के लिए या उनकी

प्रतिष्ठा पर आक्रमण करने की नीयत से हमने ये उदाहरण नहीं छाँटे हैं। बल्कि प्रयोग दिखलाकर इस बात को स्पष्ट करने के लिए ही हमने ऐसा किया है कि अभी तक हिन्दी पर से ब्रजभाषा का प्रभाव नहीं गया है।

छंदों के विषय में खड़ीबोली के कवि चाहे स्वतंत्र हो लें, पर भाषा के विषय में वे स्वतंत्र नहीं हो सकते। क्योंकि भाषा सर्वसाधारण की सम्पत्ति है। भाषा के सम्बन्ध में यदि कविगण हिन्दी-व्याकरण की उपेक्षा करेंगे तो उनकी कविता हिन्दी-भाषा में न कही जाकर एक कल्पित भाषा में समझी जायगी। शब्दों को तोड़ने मरोड़ने की जो स्वतंत्रता पुराने कवियों को थी, वह खड़ी बोली के कवियों को नहीं है। तुलसीदास ने एक स्थान पर "बादल" को "बादले" कर लिया। जैसे—

ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह विविधि बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पविपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥

जब शब्दों का कोई हिमायती न रहा, तब पराधीन जाति के पुरुषों की तरह उनका मनमाना उपयोग होने लगा।

तोष कवि की एक असन्तोषकारिणी स्वच्छन्दता का मुलाहज़ा कीजिये—

सुन्दरी सुशीली सुयशीली सुरसीली अति,
लंक लचकीली काम-धनुष हलाका सी।
कहै कवि तोष होती सारी ते निनारी जब,
कारी बदरी ते कढ़ै चन्द की कलाका सी।
लोने लोने लोयन पै खंजन चमक वारों,
दन्तन चमक चारु चंचला चलाका सी।
साँवरे सुजान कान्ह तुम्ह से छिपाऊँ कहा,
सेज पै सोवाऊँ आनि सोने की सलाका सी॥

एक शलाका के लिये तोष ने इतना उपद्रव मचाया। हलाक को हलाका, कला को कलाका और चालाक को चलाका बना डाला। ब्रजभाषा का नायक भले ही ऐसी सोने की शलाका के लिये कुटनी के धोखे में आ जाय, पर खड़ीबोली के नायक को तो हलाका, कलाका और चलाका

ऐसी बदसूरत मिसालों के साथ सोने की शलाका को अपनी सेज का कोना भी न छूने देना चाहिये, साथ सोना तो दूर रहा।

भाषा के सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से ध्यान देने की है। वह यह है कि आजकल खड़ीबोली के नाम से जो कवितायें हो रही हैं, उनमें से अधिकांश बोलचाल की भाषा में नहीं, बल्कि एक कृत्रिम भाषा में हैं, जिन्हें समझने के लिए संस्कृत का ज्ञान परम आवश्यक है। अतएव ख़ास श्रेणी के लोग ही उसे पढ़कर समझ सकते हैं। कविता भाव के लिए लिखनी चाहिये, न कि भाषा के लिए। कविता की भाषा ऐसी होनी चाहिये कि उससे कवि का भाव समझने में सहायता मिले, न कि उलटे वह स्वयं बाधक हो जाय। प्रसाद-गुण-हीन कविता को कविता कहना ही न चाहिये।

इस प्रकार खड़ीबोली की कविता का क्षेत्र संकुचित होता जा रहा है। यदि ऐसी ही दशा रही तो, क्या भाषा क्या भाव, दोनों प्रकार से यह थोड़े से शिक्षित लोगों की सम्पत्ति रह जायगी। सर्वसाधारण इनसे तभी लाभ उठा सकेंगे जब वे कवितागत भाव और उसकी भाषा समझने के लिए एक विशेष समतल पर आ जायँगे। अथवा बोलचाल की हिन्दी में बङ्गला की तरह सैकड़े पीछे पचहत्तर शब्द संस्कृत के व्यवहृत होने लगेंगे। पर एक ओर तो हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानकर उसमें साधारण बोलचाल में प्रचलित अर्बी फ़ारसी के शब्दों को भी भरने का प्रयत्न कर रहे हैं, दूसरी ओर उसकी कविता में बङ्गला की तरह संस्कृत शब्दों का आधिपत्य बढ़ा रहे हैं। दो विरोधी बातों से एक उद्देश्य की पूर्ति कैसे होगी? इससे तो गद्य और पद्य की भाषा में ज़मीन आसमान का अन्तर आ जायगा। फिर हम बोलचाल और कविता की भाषा के एक होने का दावा कैसे कर सकेंगे?

अब कविता के विषय की ओर आइये।

हिन्दी के पुराने कवि प्रायः कुछ निश्चित विषयों पर ही कविता लिखा करते थे। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, विरह, प्रेम, शृङ्गार, नखशिख और नायिका-भेद ही उनके मुख्य विषय थे। समय के प्रभाव से अब लोगों की रुचि

बदल गई है। उपर्युक्त विषयों पर जो कुछ कहना था, उसे, जान पड़ता है, पुराने कवि कहकर समाप्त कर गये हैं। अब उसे केवल खड़ीबोली में बदल देने के सिवा उसमें कुछ नवीन कल्पना कर दिखाने की गुंजाइश नहीं रह गई। इसलिये खड़ीबोली के कवियों ने उन विषयों को एक प्रकार से छोड़ ही दिया। कुछ दिनों तक तो कविता का मुख्य विषय हो गया था भारत। भारत के लिये रोना, भारत को उत्साहित करना, भारत की जय बोलना, और भारत के प्राचीन गौरव की याद दिलाना ही कविगण अपना कर्तव्य समझते थे। अब भी सामयिक पत्रों में कालम के कालम प्रायः भारत-सम्बंधी कविताओं से ही भरे रहते है। उनमें से सैकड़े पीछे शायद दो ही एक कविताएँ ऐसी होती होंगी, जिन्हें लोग याद रखते होंगे। शेष सब पत्र में सुन्दर बार्डर के भीतर, अच्छे टाइप में प्रकाशित होकर, रचयिता को आनन्दित करने का ही काम देती हैं। भारत का विषय समय के अनुकूल है। देश पराधीन है, दरिद्र है, अत्याचार-पीड़ित है, अपने प्राचीन गौरव को भूला हुआ है, आलस्य और मोह की निद्रा में मस्त है, उसे जगाने के लिये कवियों को अग्रसर होना ही चाहिये। पर इस सम्बंध में जो कुछ कहना था, उसे बाबू मैथिलीशरणजी ने भारत-भारती में कहकर समाप्त कर दिया है। उनसे अधिक कोई क्या कहेगा! उन्हीं भावों को भिन्न भिन्न छंदों में दुहराने तिहराने की आवश्यकता हो तो कोई हर्ज नहीं; पर ऐसा देखा जाता है कि कविता के प्रेमीजन अब भारत का दुखड़ा किसी नवीन कवि के नूतन स्वर में भी सुनने को तैयार नहीं। अतएव थोड़े समय से विषय बदलने की फिर आवश्यकता आ पड़ी।

"प्रिय प्रवास" में पंडित अयोध्यासिंहजी ने श्रीकृष्ण की लीलाओं को नये रंग में रंगा है। उनका रंग चोखा और ढंग अनोखा है, इसमें संदेह नहीं। श्रीकृष्ण के अलौकिक चरित्रों को उन्होंने लौकिक बनाकर मनुष्यों के लिये अनुकरण-योग्य कर दिया है। राधा का चित्र उन्होंने ऐसा खींचा है कि बार बार उनकी प्रतिभाशक्ति की प्रशंसा करनी पड़ती है। हिन्दी में ऐसा करुणरस-प्रधान काव्य इधर कई सौ वर्षों में नहीं लिखा

गया। पर श्रीकृष्ण के चरित्र का इतना बड़ा खज़ाना जनता के पास पहले ही से मौजूद है कि वह "प्रिय प्रवास" का मूल्य आँकने के लिये बहुत कम समय देगी। इसी प्रकार रामचरितमानस के आगे पंडित रामचरित उपाध्याय के रामचरित-चिन्तामणि की प्रभा क्षीण हो रही है। अतएव हमारी राय में हिन्दी कवियों को बीसवीं शताब्दी की मानसिक अवस्था के अनुकूल बिलकुल नवीन विषय-विलास में लिप्त होना चाहिये।

नये विषय बहुत से हैं। प्रतिभाशाली कवि राजस्थान की छोटी-छोटी कहानियों पर एक एक बड़ा ग्रंथ लिख सकते हैं। राणा प्रताप और शिवाजी पर एक बड़ा सुन्दर महाकाव्य लिखा जा सकता है। गुरु गोविन्दसिंह पर भी एक काव्य लिखा जा सकता है। बौद्ध ग्रंथों में आत्मत्याग की कितनी ही रोचक कहानियाँ हैं, उनपर काव्य लिखा जा सकता है। अशोक के पुत्र कुणाल की कथा तो काव्य के लिये एक बहुत ही सुन्दर विषय है। यद्यपि बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पंडित लोचनप्रसाद पाण्डेय और पंडित कामताप्रसाद गुरु ने इस ओर ध्यान दिया है। पर इन विषयों पर कोई महाकाव्य अभी तक जनता के सामने नहीं आया।

नवीन कवियों ने हिन्दी-कविता में अंग्रेज़ी और बँगला का अनुकरण करके एक नवीन तान छेड़ी है। इस तान का नाम छायावाद रक्खा गया है। इसमें मनोभावों को साकार और कभी कभी जड़ पदार्थों को चेतन मानकर उनसे काम लिया जाता है। जैसे—

विचर रहे थे स्वप्न अवनि में—

प्राचीन कवि स्वप्न देखनेवाले का ही वर्णन करते थे। पर नवीन कवि स्वप्न को एक साकार पदार्थ मानकर उसकी रहन-सहन का भी ज़िक्र करते हैं।

इसी प्रकार—

मूक-आह्वान-भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।

मूक-आह्वान हिन्दी में विल्कुल नया विषय है। इसी प्रकार विकास का विशेषण व्याकुल भी पुरानी परिपाटी को व्याकुल करने वाला है। क्योंकि विकास और व्याकुलता दोनों अदृश्य पदार्थ हैं। गगन का चुम्बन भी कम कौतूहलोत्पादक नहीं है।

ब्रजभाषा के कवियों ने प्रेम को भोग-विलास का रूप देकर जो अजीर्ण कर दिया था, उसका परिणाम यह हुआ था कि खड़ीबोली के कवियों को शृङ्गार से अरुचि हो गई थी। पर जान पड़ता है कि प्रकृति के नियमों से परास्त होकर अब नवीन कविगण प्रेम को एक नवीन रूप में लेकर कविता-क्षेत्र में अवतीर्ण होना चाहते हैं। इस प्रसंग पर, एक बार हिन्दी की एक सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका के सम्पादक ने वर्तमान कवियों पर एक लेख लिखा था, उसका कुछ अंश यहाँ देना आवश्यक जान पड़ता है।

"कुछ समय से हिन्दी के नवयुग के कवियों ने प्रेमोन्माद का वर्णन करना प्रारंभ किया है। जान पड़ता है, अब 'प्रियतम' की खोज की जा रही है। अधिकांश नवयुवकों की कविताओं में हमें उसी प्रेमलीला की छवि दिखलाई पड़ती है जो रंगभूमि के परदे के भीतर है। इनके अलङ्कार मिथ्या हैं, इनकी भाषा मिथ्या है, इनके भाव मिथ्या हैं, इनके रूप मिथ्या हैं, तो भी इनमें उन्माद है। रंगभूमि की नायिका की तरह इनकी नायिकायें भी रहस्यमयी हैं। न कोई उनका यथार्थ रूप देख सकता है, न उसका अनुभव कर सकता है। परन्तु इतना कोई भी कह सकता है कि उस रूप ने कवियों की हृत्तन्त्री के तार हिला दिये हैं। उससे नीरव गान उत्थित हुआ है और प्रबल उच्छ्वास फूट पड़ा है। सभी कवि अनंत की ओर दौड़ रहे हैं। कहा नहीं जा सकता कि इन कविताओं का भी कहीं अन्त है या नहीं।"

यह एक प्रसिद्ध सम्पादक और साहित्य के अच्छे मर्मज्ञ का कथन है। इस कथन से यह साबित हो रहा है कि इस समय के प्रमुख साहित्यिकगण हिन्दी-कविता में नवीन भावों का जागरण देखकर चकित हो रहे हैं। पर जाग्रति को कोई रोक नहीं सकता। जबतक आँसू, हृदय, मूक वेदना, मूक

आह्वान, स्वप्न, नीरव गान, अतीत, अनंत आदि अद्भुत विषयों पर कल्पनाओं का अजीर्ण नहीं हो लेता, तबतक विषय नहीं बदले जा सकते।

अब आइये, विषय के बाद भावों पर कुछ विचार करें।

कविता क्यों की जानी चाहिये? इस प्रश्न पर हमें पहले विचार करना है।

सन् १९२० में, छठें गुजराती साहित्य-परिषद् के सभापति के आसन से विश्ववन्ध कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने हिन्दी में एक भाषण किया था। उसका एक अंश, उन्हीं की हिन्दी में, हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

"कवि की साधना है क्या चीज़? वह और कुछ नहीं बस आनन्द के तीर्थ में, रस-लोक में विश्वदेवता के मन्दिर के अङ्गन में सर्व-मानव का मिलन गान से विश्वदेवता की अर्च्चा करना। सब राहों की चौमुहानी पर कवी की बाँसुरी टेर से यह सुनाने के लिये है कि जिस प्रेम की राह में मुझको ईश्वर बुला रहे हैं, वहाँ जाने का सम्बल है दुःख को स्वीकार करना, आप्ने को भरपूर दान करना, और उस राह का परम लाभ है वह जो है मेरी परमा गति मेरी परमा सम्पत् मेरा परम लोक और मेरा परम आनन्द। भगवान् के वह चरण पद्म में सारा भारत का चित्त एक हो जावे यही एक भाव सारा दुनिया के ऐक्य की राह दिखलावेगा।"

कवि रवीन्द्र इस समय पृथ्वीमंडल पर सर्व-श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। कवि और कविता के सम्बन्ध में वे जो लक्ष्य निर्धारित करेंगे, उसे मानने से कोई विचारशील व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता। अब आइये, इसी समय एक और सर्वश्रेष्ठ पुरुष की राय कविता के सम्बन्ध में क्या है, यह भी सुन लीजिये :—

२३ नवम्बर, १९२४ के "हिन्दी-नवजीवन" में श्रीयुत दिलीपकुमार राय और महात्मा गाँधी का एक वार्तालाप प्रकाशित हुआ है। महात्मा जी ने कला के विषय में श्रीयुत राय से यह कहा था—

"कलाकार जब कला को कल्याणकारी बनावेंगे और जनसाधारण के लिये उसे सुलभ कर देंगे, तभी उस कला को जीवन में स्थान रहेगा।

जब कला सब लोगों की न रहकर थोड़े लोगों की रह जाती है, तब मैं मानता हूँ कि उसका महत्व कम हो जाता है।"

"हरएक ऐसे बुद्धि के व्यापार का मूल्य, जिसमें कुछ विशेषता हो, अर्थात् जिससे ग़रीब लोगों को वञ्चित रहना पड़ता हो, उस वस्तु से अवश्य कम है जो सर्वसाधारण के लिये होगी। वही काव्य और वही साहित्य चिरञ्जीवी रहेगा जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे। जिसे वे आसानी से पचा सकेंगे।"

एक ही समय के दो सर्वमान्य व्यक्तियों की सम्मतियों में हमें कवि का एक ही कर्तव्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है, और वह है लोक-कल्याण। रवीन्द्र ने कवि को सब राहों की चौमुहानी पर खड़े होकर चारों ओर के मानव-समाज को प्रेम-गान सुनाने का आदेश किया है। महात्मा गाँधी कला को—कविता को—कल्याणकारी बनाना और सर्वसाधारण के लिये सुलभ करना आवश्यक बताते हैं। इन कसौटियों पर अपनी खड़ीबोली की कविता को कसकर देखिये।

कवितागत जो भाव मनुष्यों में अनीति और दुराचार फैलाते हैं, पहले तो उन्हें रोकना होगा। हमने माना कि खड़ीबोली के कवियों ने शृङ्गाररस की अश्लील कविताओं का बहिष्कार लोक-कल्याण की कामना से ही किया है, पर उसके बदले में वे समाज को देते क्या हैं? केवल ऐसे कल्पित चित्र, जिनमें कोई रूप नहीं,। और यदि है भी, तो ऐसा जिसे देखने के लिये सर्वसाधारण के पास वैसे अनुभव की आँखें नहीं। ऐसे चित्र केवल थोड़े से ऐसे लोगों को लाभदायक या मनोरञ्जक हो सकते हैं, जिनके अनुभव की आँखें हैं। महात्मा गाँधीजी की दृष्टि में ऐसी कला का महत्व कम है जिससे सर्वसाधारण वंचित रह जायँ।

यह विषय हिन्दी के उन नवीन कवियों के लिये अधिक विचारणीय है, जो कठिन शब्दों से लदी हुई भाषा में रचना करते हैं और उसमें भी अस्पष्ट भावों की सृष्टि।

कवि लोग परिस्थिति और स्वभाव के अनुसार भिन्न भिन्न अभिप्रायों से काव्य-रचना में प्रवृत्त होते हैं। तुलसी ने "स्वान्तः सुखाय" रामचरित-मानस लिखा। सूर और मीरा नें, भक्ति और प्रेम का रहस्य खोला। विहारी, देव, भूषण, मतिराम और पद्माकर ने अपने अपने आश्रयदाताओं की रुचि के अनुकूल काव्य-रचा। कुष्ट रोग से पीड़ित होने पर पद्माकर ने अपना स्वभाव बदला और 'गंगालहरी' की रचना की। रसखान, घनानन्द और बोधा ने अपने अपने स्वभाव का ही अनुसरण किया। कुछ कवियों ने कीर्ति के लिये काव्य रचा।

इनमें सबसे अधिक सुन्दर अभिप्राय तुलसी का था। वे भक्त थे। भक्त का निज सुख क्या है? भक्त में अपनापन तो रहता ही नहीं। उसका तो सर्वस्व केवल स्वामी है। स्वामी का सुख दुःख ही उसका सुख दुःख है। तुलसी के सर्वस्व राम थे। ऐसी दशा में उनके "स्वान्तः सुखाय" का अर्थ हुआ "राम के सुख के लिए"। राम का सुख किस में है? भक्तों के सुख में, सचराचर के सुख में। अतएव तुलसी के "स्वान्तः सुखाय" का अर्थ हुआ, सचराचर का सुख। भगवान की कृपा से भक्त का सदुद्देश्य सफल हुआ। उसकी सेवा, उसकी भक्ति स्वीकृत हुई। तुलसी अजर अमर हुये। ऐसे उत्तम उद्देश्य से जो कविता लिखता है, वही सत्कीर्ति का अधिकारी होता है।

आजकल कवियों के आश्रयदाता तो रहे नहीं। कवि लोग स्वतंत्र हैं। वे अपनी रुचि के अनुसार कविता लिख सकते हैं और लिखते भी हैं। राजतंत्र से निकलकर इस समय वे प्रजातंत्र में अनुगमन कर रहे हैं। सर्व-साधारण प्रजा की रुचि ही उनकी रुचि है। इसी कारण से भारत की स्वतंत्रता, भारत के अतीत गौरव का पुनर्जन्म, आजकल के कवियों का मुख्य विषय हो रहा है। समाज में श्रृङ्गाररस का अजीर्ण देखकर ये कवि गण श्रृङ्गार का नाम भी नहीं लेते। समय का ऐसा प्रभाव पड़ा है कि उर्दू के कवि जो इश्क़, वस्ल, हिज्र और बेवफ़ाई की सीमा से बाहर आना हराम समझते थे, वे भी अपने बुलबुल, घोंसले और सय्याद को साथ लेकर

हिन्दुस्तान की तरक्की के लिये शोर मचाने वाले जत्थे में शरीक हो गये हैं और दिल, कलेजे तथा खञ्जर की करामात दिखाने लगे हैं।

इसी प्रकार हिन्दी के लोक-प्रसिद्ध कवियों ने विषय तो समय के अनुकूल अपना लिया है; पर भाषा उन्होंने ऐसी बना ली है, जो सर्व-साधारण समझ नहीं सकते। वर्तमान हिन्दी-कविता में प्रसाद-गुण नहीं के बराबर है। उनके भाव भाषा के छोटे घेरे में क़ैद हो गये हैं। सर्व-साधारण से उनसे मुलाकात नहीं हो सकती। तुलसी, सूर, कबीर को लोग जितनी आसानी से समझ लेते हैं, उतनी आसानी से वे आजकल के कवियों को नहीं समझ पाते। तुलसी, सूर, कबीर की कविता का गुण-दोष-विवेचन पठित लोग जैसा करते हैं, अपठित लोग भी उसका मर्म वैसा ही समझते हैं। अंतर केवल इतना ही है कि पठित लोग विस्तृत समालोचना करके अपना मनोभाव प्रकट कर सकते हैं और अपठित लोग केवल इतना ही बोल सकते हैं—

"जो कुछ रहा सो अँधरा कहिगा कठवउ कहेसि अनूठी।
बचा खुचा सो जोलहा कहिगा और कहै सो जूठी॥"

(अँधरा = सूरदास। कठवउ = तुलसी । जोलहा = कबीर)

वे बेचारे यह नहीं जानते कि जोलहा तो अँधरा और कठवा से आगे हुआ था। उसके हिस्से में बचा-खुचा क्यों पड़ा! बात यह है कि उनकी समालोचना में इतिहास नहीं घुसने पाया है। उन्होंने हृदय की तुला पर तौल कर कविताकारों का पद नियत किया है।

आजकल के कवियों की एक श्रेणी ऐसी भी है जो साँस तो लेती है बीसवीं सदी में और गीत गाती है पंद्रहवीं सदी के। सड़कें बन गईं, रेल खुल गई, विमान उड़ने लगे, पर अभी तक वे पुरानी पगडंडी ही पकड़े चले जा रहे हैं। वही राधा का नखशिख, वही केलिलीला, वही उलहना, वही तक़ाज़ा; वही पपीहों की पुकार, वही कोकिल की कूक; वही "चूनरी चुई सी परै," वही "भौंहन कमान तान नैनन सिपाही चारु दुनली

बँदूक दोऊ भुजन कलाई है ।" जोवन की फौज लै के मारिबे को धाई है ।" कितनों को मनोज ने छोड़ दिया है, पर अभी तक उन्होंने मनोज को नहीं छोड़ा है । मनोज विना इन कवियों का रङ्ग नहीं जम सकता । इनकी कृतियाँ देखने से यह मानने को विवश होना पड़ता है कि ये कविगण किसी की ग़लती से इस ज़माने में आ पड़े हैं । इन्हें तो चार पाँच सौ वर्ष पहले अवतार लेना था ।

जो कविगण चूनरी और घाँघरे के रहस्य-वर्णन में ही पटु हैं; जो गीध, गज, ग्राह और गणिका तक ही गोवर्द्धनधारी का गुण गाना जानते हैं; उनसे तो अब लोकहित के लिये कुछ पाने की आशा नहीं की जा सकती। पर जिनके हृदय में मानव-सेवा का भाव है, देश के प्रति अनुराग है, जीवन को कल्याणमय बनाने की कुछ कामना है, उनको तो महाकवि रवीन्द्र और महात्मागाँधी की सम्मति पर ध्यान देना ही चाहिये ।

खड़ीबोली के वर्तमान कवि

भाषा की दृष्टि से वर्त्तमान हिन्दी-कवियों को हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं । पहली श्रेणी में वे कविगण हैं, जो ब्रजभाषा में या ब्रजभाषा या पूर्वी हिन्दी-मिश्रित खड़ीबोली में रचनायें करते हैं । दूसरी श्रेणी में वे कविगण हैं जो विशुद्ध खड़ीबोली में लिखते हैं और तीसरी श्रेणी में वे कविगण हैं जो परम स्वतन्त्र हैं । जो न तो छन्दशास्त्र के नियमों की पाबन्दी करते हैं और न भाषा के बन्धनों की ही विशेष परवा करते हैं ।

सब से पहले हम पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी को स्मरण करते हैं, जिन्होंने खड़ीबोली के पौधे को सींचकर अपने जीते-जी पुष्पित और फलित देख लिया है ।

पहली श्रेणी के कवियों में रत्नाकरजी की कविता ब्रजभाषा के पुराने कवियों के टक्कर की होती है । वैसी ही मँजी हुई भाषा, वैसे ही रसीले भाव, काव्य-रसिकों को पद्माकर और द्विजदेव की याद दिलाते हैं । ब्रज-

भाषा के दूसरे उदीयमान कवि वियोगी हरि जी हैं, जो व्रजभाषा की कविता में नये और ओजस्वी भाव भरकर उसे समयोपयोगी बनाने में तत्पर हैं। इनकी कविता में प्रेम और भक्ति का सुन्दर वर्णन रहता है।

शङ्करजी ने सामाजिक जगत में अपनी निर्भय और तेजस्विनी कविता से उथल पथल मचा दी है। छन्दशास्त्र के नियमों का जैसा पालन शङ्करजी करते हैं, वैसा करने वाला छन्दशास्त्र के इतिहास में दूसरा नहीं पैदा हुआ।

पंडित श्रीधर पाठक खड़ीबोली के आचार्यों में गिने जाते हैं। पाठकजी ने भारत और उसके नवयुवकों के सम्बन्ध में बहुत लिखा है। इसी श्रेणी में पंडित रामचन्द्र शुक्ल को हम बड़े हर्ष से स्मरण करते हैं। शुक्लजी करुण और शांत रस की कविता लिखने में अपना जोड़ नहीं रखते।

दूसरी श्रेणी में पंडित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय काव्य के नवो रसों में उत्कृष्ट रचना करते हैं। प्रियप्रवास में इनकी लेखनी से करुणरस का समुद्र उमड़ पड़ा है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है। ये कठिन से कठिन और सरल से सरल हिन्दी लिखने में सिद्धहस्त हैं। पंडित रामचरित उपाध्याय की कविता में भावों के साथ ही शब्दों का लालित्य भी बहुत है। कालिदास ने रघुवंश के नवम सर्ग में जैसे द्रुतविलम्बित के चतुर्थ चरण में यमक-पूर्ण पद्य लिखे हैं, हिन्दी में उस प्रकार के पद्य सब से पहले और सब से अधिक संख्या में रचने वाले पंडित रामचरित जी ही हैं। बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त का नाम स्मरण आते ही हम गर्व से सिर ऊँचा कर लेते हैं। गुप्तजी ने अपनी कविता से नवयुवकों में नवजीवन फूँक दिया है। युक्तप्रांत में ही नहीं, भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों के साहित्यिकों में भी गुप्तजी हिन्दी के प्रमुख कवि करके प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषा व्याकरण-सम्मत शुद्ध हिन्दी होती है।

पंडित कामताप्रसाद गुरु, पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही,' पंडित रूपनारायण पांडेय, पंडित लोचनप्रसाद पांडेय, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, बाबू जयशङ्करप्रसाद और ठाकुर गोपालशरण सिंह आदि वर्तमान कविगण

अपने अपने ढङ्ग और रुचि के निराले हैं। सब ओजस्वी और प्रभाव-शालिनी भाषा में कविता लिखने के लिये प्रसिद्ध हैं। एक भाव हम खड़ी-बोली के वर्तमान कवियों में समान रूप से पाते हैं। वह है अपने देश के प्रति सच्चा अनुराग; अपनी जातीयता के प्रति उच्चकोटि का अभिमान। हमारे वर्तमान कविगणों के अंतस्तल में देश और हिन्दू-जाति की दुरवस्था देखकर एक वेदना समान रूप से व्याप्त दिखाई पड़ती है। इसलिये जब कोई हृदय खोलता है तो उसमें उस वेदना का ही चित्र दिखाई पड़ता है। यह उचित ही है। कवि अपने समय का प्रतिनिधि होता है। भारत का भविष्य, जिसकी रचना हमारे खड़ीबोली के कविगण कर रहे हैं, उन्हें श्रद्धा और सम्मान से स्मरण करेगा।

तीसरी श्रेणी के कवि हिन्दी-जगत् में ऐसे आ रहे हैं, जैसे वैष्णवों की बस्ती में कोई अङ्गरेज आकर बस जाय। यद्यपि वैष्णवों की दृष्टि में वह परम उच्छृङ्खल और आचार-विचार-हीन प्रतीत होगा, पर वास्तव में वह वैसा नहीं होता। उसके भी आचार-विचार और रहन-सहन नियमबद्ध होते हैं।

हम इन नवागन्तुकों का स्वागत करते हैं। इनमें से निराला और पन्त की कविताएँ कविता-कौमुदी में दी गई हैं। यद्यपि इस प्रकार की कविताएँ हिन्दी में पहले-पहल बाबू जयशङ्करप्रसाद ने प्रारंभ की थीं। पर वे केवल मार्गप्रदर्शक ही बने रहे। इस समय निराला और पंत ही इस पथ के प्रधान पथिक हैं। कुछ अन्य नवयुवक कवि भी इस मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। आशा है, हिन्दी के कविता-कानन में यह विदेशी फूलों से सजी हुई क्यारी भी अपनी शोभा से उसका गौरव बढ़ायेगी।

रामनरेश त्रिपाठी
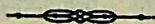
कविता-कौमुदी

दूसरा भाग

हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र बङ्गाल के इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के वंश में थे। सेठ अमीचन्द के दोनों पुत्र राय रतनचन्द बहादुर और शाह फतहचन्द काशी में आ बसे थे। शाह फतहचन्द के पौत्र बाबू हरखचन्द ने बहुत धन कमाकर उसका सद्व्यय किया और बड़ी प्रसिद्धि लाभ की। बाबू हरखचन्द के पुत्र बाबू गोपालचन्द्र हुये, जिन्होंने हिन्दी में चालीस ग्रन्थ रचे। कविता-कौमुदी के प्रथम भाग में उनकी जीवनी प्रकाशित हुई है। उन्हीं बाबू गोपालचन्द्र के सुपुत्र बाबू हरिश्चन्द्र हुये।

बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म भाद्रपद शुक्ल सप्तमी, सं० १९०७ (ता० ९ सितम्बर, १८५०) में हुआ। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। जब ये ५, ६ वर्ष के थे, उस समय इनके पिता बाबू गोपालचन्द्रजी "बलराम कथामृत" की रचना कर रहे थे। इन्होंने उनके पास जाकर खेलते खेलते कहा—हम भी कविता बनावेंगे। पिता ने हँसकर कहा—तुम्हें उचित तो यही है। उस समय बाणासुर का प्रसंग लिखा जा रहा था। इन्होंने तुरन्त यह दोहा बना कर पिता को दिखाया—

लै ब्योंड़ा ठाढ़े भये, श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान॥

पिता ने प्रेम-गद्गद होकर प्यारे पुत्र को गले से लगा लिया और कहा—तू हमारे नाम को बढ़ावेगा।

एक दिन बाबू गोपालचन्द्र की सभा में कुछ कवि बैठे थे। कवि लोग उनके "कच्छप कथामृत" के मङ्गलाचरण के एक पद की व्याख्या कर रहे थे। पद यह था—"करन चहत जस चारु, कछु कछुवा भगवान को।" बालक हरिश्चन्द्र भी वहाँ आ बैठे थे। किसी ने "कछु वा (उस) भगवान को," किसी ने "कछु कछुवा (कच्छप) भगवान को" ऐसा अर्थ किया। हरिश्चन्द्र चट बोल उठे—नहीं नहीं, बाबू जी, आपने कुछ कुछ जिस भगवान को छू लिया है, (कछुक छुवा भगवान को) उसका यश आप वर्णन करना चाहते हैं। बालक की इस नई उक्ति पर सभा के सब लोग मुग्ध हो गये और पिता ने आँखों में आँसू भरकर, अपने प्यारे पुत्र का मुँह चूमकर, अपने भाग्य की सराहना की।

एक दिन पिता को तर्पण करते देख ये पूछ बैठे—बाबू जी, पानी में पानी डालने से क्या लाभ? यह सुनकर पिता ने माथा ठोंका और कहा—जान पड़ता है तू कुल बोरैगा। समय पाकर पिता का आशीर्वाद और अभिशाप दोनों ही फलीभूत हुए।

नौ वर्ष की अवस्था में ही हरिश्चन्द्रजी पितृहीन हो गये। इससे इनकी स्वतन्त्र प्रकृति को और भी स्वच्छन्दता मिल गई। उसी समय इनकी पढ़ाई का सिलसिला शुरू हुआ। ये कालिज में भरती किये गये। परीक्षा में ये सदा उत्तीर्ण होते रहे। उस समय काशी के रईसों में राजा शिवप्रसाद ही अंग्रेज़ी के अच्छे ज्ञाता थे। ये भी कुछ दिनों तक उनके पास अंग्रेज़ी पढ़ने जाया करते थे। तीन चार वर्ष तक तो पढ़ने का क्रम ज्यों त्यों करके चला; परन्तु सन् १८६४ में जब ये अपनी माता के साथ श्रीजगदीशजी की यात्रा को गये, उस समय से इनका पढ़ना लिखना बिल्कुल छूट गया।

यात्रा से लौटने पर इनकी रुचि कविता और देशहित की ओर

विशेष फिरी। इनको निश्चय हो गया कि पाश्चात्य शिक्षा के बिना कुछ नहीं हो सकता। इसलिये इन्होंने स्वयं पठित विषयों का अभ्यास प्रारम्भ किया और अपने घर पर एक स्कूल भी खोल दिया, जिसमें महल्ले के लड़के आकर पढ़ने लगे। यही स्कूल उन्नति करते करते आज "हरिश्चन्द्र हाई स्कूल" के नाम से शिक्षा का विस्तार कर रहा है। सन् १८६८ में इन्होंने "कवि-वचन-सुधा" नामक मासिक-पत्र निकाला, जिसमें नये पुराने सब हिन्दी-कवियों के अप्रकाशित ग्रन्थ प्रकाशित होने लगे। कुछ समय के उपरान्त "कवि-वचन-सुधा" को इन्होंने पाक्षिक और साप्ताहिक कर दिया। उस समय उसमें केवल पद्य ही नहीं, बल्कि राजनीति तथा समाज-सुधार-विषयक गद्य-लेख भी निकलते थे।

सन् १८७० में ये आनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाये गये। किन्तु कुछ दिनों के बाद इन्होंने स्वयं उस पद को छोड़ दिया। सन् १८७३ में इन्होंने "हरिश्चन्द्र मैगज़ीन" भी निकालना प्रारम्भ किया। किन्तु वह केवल आठ ही अंक निकलकर बन्द हो गया। १८७३ में ये ख़ूब परिमार्जित भाषा में गद्य-पद्य-लेख लिखने लग गये थे। इसी वर्ष इन्होंने "पेनी रीडिंग" नामक समाज स्थापित किया था। जिसमें भद्र लोग स्वयं विविध विषयों के अच्छे अच्छे लेख लिखकर लाते और पढ़ते थे। इसी समय "कर्पूरमंजरी," "सत्य हरिश्चन्द्र," और "चन्द्रावली" की रचना हुई। १८७३ में इन्होंने "तदीय समाज" नाम की सभा स्थापित की। जिसमें प्रेम और धर्म सम्बन्धी विषयों पर विचार हुआ करता था। दिल्ली दरबार के समय इस समाज ने गोरक्षा के लिये एक लाख प्रजा के हस्ताक्षर करवाये थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बड़े उदार पुरुष थे। कितने ही लोगों को पुरस्कार दे देकर इन्होंने कवि और सुलेखक बना दिया। ये सौन्दर्य के बड़े प्रेमी थे। गाने बजाने, चित्रकारी, पुस्तक-संग्रह, अद्भुत पदार्थों का संग्रह, सुगन्ध-संग्रह, उत्तम कपड़े, खिलौने, पुरातत्व की वस्तु, लम्प,

अलबम, फोटोग्राफ आदि सभी प्रकार की वस्तुओं से इनको बड़ा शौक था। इनके पास कोई गुणी आ जाता तो वह विमुख कभी नहीं फिरता था। बीस बाईस वर्ष में इन्होंने अपने तीन चार लाख रुपये खर्च कर डाले। कवि परमानन्द को "बिहारी सतसई" का संस्कृत अनुवाद करने पर ५००) पारितोषिक दिया था। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदीजी को निम्नलिखित एक दोहे पर १००) और अंग्रेज़ी रीति पर अपनी जन्मपत्री बनवाकर ५००) दिये थे :—

राजघाट पर बंधत पुल, जहँ कुलीन की ढेरि।
आज गये कल देख के, आजहिं लौटे फेरि॥

उदारता से ही अंत में ये ऋणग्रस्त हो गये।

हिन्दी को राजभाषा बनाने का पहले पहल उद्योग हरिश्चन्द्र ने ही किया था। अपनी कौतुक-प्रियता के कारण "लेवी प्राण लेवी" और मर्सिया लिखकर ये गवर्नमेंट की कोप-दृष्टि में भी पड़े थे। किन्तु इन्होंने किसी की कुछ परवा नहीं की। अपने अटल प्रेम और आनन्द में ये मस्त रहे।

हिन्दी के प्रचार में बाबू साहब ने बड़ा उद्योग किया। हिन्दी इनकी चिरऋणी रहेगी। हिन्दी के समस्त समाचार-पत्रों ने १८८० में इन्हें भारतेन्दु की पदवी से विभूषित किया था। इस उपाधि का आदर राजा और प्रजा दोनों ने किया।

सब से पहली सवैया इन्होंने यह बनाई थी :—

यह सावन सोक नसावन है मनभावन यामैं न लाजै भरो।
जमुना पै चलौ सु सबै मिलिकै अरु गाइ बजाइ कै सोक हरो॥
इमि भाषत हैं हरिचन्द प्रिया अहो लाड़िली देर न यामें करो।
बलि झूलो झुलाओ झुको उझको यहि पाखैं पतिव्रत ताखैं धरो॥

भारतेन्दु आशु कवि थे। बातें करते जाते थे, कविता रचते जाते थे। अन्धेर-नगरी एक ही दिन में लिखी गई। विजयिनीविजय-वैजयन्ती

भी एक ही दिन की रचना है। स्वरचित ग्रन्थों में इन्हें ये ग्रन्थ बहुत पसन्द थे—प्रेम फुलवारी, सत्य हरिश्चन्द्र, चन्द्रावली, तदीय सर्वस्व, काश्मीर कुसुम, भारत दुर्दशा।

इनके लिखे सम्पूर्ण ग्रन्थों के नाम निम्नलिखित हैं :—

नाटक

प्रवास (अपूर्ण, अप्रकाशित), सत्य हरिश्चन्द्र, मुद्राराक्षस, विद्या-सुन्दर, धनञ्जय-विजय, चन्द्रावली, कर्पूरमंजरी, नीलदेवी, भारत-दुर्दशा, भारत-जननी, पाषण्ड विडम्बन, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, अन्धेर नगरी, विषस्य विषमौषधम्, प्रेम योगिनी (अपूर्ण), दुर्लभबन्धु (अपूर्ण), सती प्रताप (अपूर्ण), नव मल्लिका (अपूर्ण, अप्रकाशित), रत्नावली (अपूर्ण), मृच्छकटिक (अपूर्ण, अप्रकाशित, अप्राप्य)।

आख्यायिका, उपन्यास

रामलीला, हमीरहठ (अपूर्ण, अप्रकाशित), राजसिंह (अपूर्ण), कुछ आप बीती कुछ जग बीती (अपूर्ण), सुलोचना, मदालसोपाख्यान, शीलवती, सावित्री चरित्र।

काव्य

गीत गोविन्दानन्द (गाने के पद्य), प्रेम माधुरी (शृङ्गार रस के कवित्त सवैया), प्रेम फुलवारी (गाने के पद्य), प्रेम मालिका (गाने), प्रेम प्रलाप (गाने), प्रेम तरङ्ग (गाने), मधुमुकुल (गाने), होली, मानलीला, दानलीला, देवी छद्मलीला, कार्तिक स्नान, विनय पचासा, प्रेमाश्रुवर्षण, प्रेम सरोवर (दोहे), फूलों का गुच्छा (लावनी), जैन कुतूहल, सतसई शृङ्गार (बिहारी सतसई पर कुण्डलियाँ), नये ज़माने की मुकरी, विनोदिनी (बङ्गला), वर्षा विनोद (गाने), प्रात समीरन, कृष्ण चरित्र, उरहना, तन्मय लीला, रानी छद्मलीला, चित्र काव्य, होली लीला।

स्तोत्र

श्रीसीतावल्लभ स्तोत्र (संस्कृत), भीष्मस्तवराज, सर्वोत्तम स्तोत्र, प्रातस्मरण मङ्गल-पाठ, स्वरूप चिन्तन, प्रबोधिनी, श्रीनाथाष्टक ।

अनुवाद

नारदसूत्र, भक्ति-सूत्र-वैजयन्ती, तदीय सर्वस्व, अष्टपदी का भाषार्थ, श्रुति-रहस्य, कुरान शरीफ़ का अनुवाद (अपूर्ण), श्री वल्लभाचार्य कृत चतुश्श्लोकी, प्रेम-सूत्र (अपूर्ण)

परिहास

पाँचवें पैगम्बर, स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन, सबै जाति गोपाल की, बसन्त पूजा, वेश्या-स्तोत्र, (पद्य), अंगरेज़-स्तोत्र (गद्य), मदिरास्तवराज, कङ्कड़-स्तोत्र, बकरी-विलाप (पद्य), स्त्री-दंड-संग्रह, परिहासिनी, फूल बुझौवल, मुशाइरा, स्त्री-सेवा-पद्धति, रुद्री का भावार्थ, उर्दू का स्यापा, मेलाझमेला, बन्दर-सभा ।

धर्म, इतिहास आदि

भक्त-सर्वस्व, वैष्णव-सर्वस्व, वल्लभीय सर्वस्व, युगल सर्वस्व, पुराणोपक्रमणिका, उत्तरार्द्ध भक्तमाल, भारतवर्ष और वैष्णवता ।

माहात्म्य

गो-महिमा, कार्तिक-कर्मविधि, वैशाख-स्नान-विधि, माघ-स्नान विधि, पुरुषोत्तम-मास-विधि, मार्गशीर्ष-महिमा, उत्सवावली, श्रावण-कृत्य ।

ऐतिहासिक

काश्मीर-कुसुम, बादशाह-दर्पण, महाराष्ट्र देश का इतिहास, उदयपुरोदय, बूँदी का राजवंश, अग्रवालों की उत्पत्ति, खत्रियों की उत्पत्ति, पुरावृत्त-संग्रह, पञ्च पवित्रात्मा, रामायण का समय, श्रीरामानुज स्वामी का जीवनचरित्र, जयदेवजी का जीवनचरित्र, सूरदासजी का जीवन

चरित, कालिदास का जीवन-चरित्र, विक्रम और विल्हण, काष्ठजिह्वा स्वामी, पण्डित राजाराम शास्त्री, श्रीशङ्कराचार्य, श्रीवल्लभाचार्य, नेपोलियन, जज द्वारकानाथ मित्र, लार्ड म्यो, लार्ड लारेंस, ज़ार, कालचक्र, सीतावट-निर्णय, दिल्ली-दर्बार-दर्पण ।

राजभक्ति

भारत-वीरत्व, भारत-भिक्षा, मुँह दिखावनी, मानसोपायन, मनोमुकुल माला, लुइसा-विवाह, राजकुमार-विवाह-वर्णन, विजयिनी-विजय-वैजयन्ती, सुमनोञ्जलि, रिपनाष्टक, विजय-वल्लरी, जातीय संगीत, राजकुमार-सुस्वागत पत्र ।

स्फुट ग्रन्थ, लेख, व्याख्यान, यात्रा आदि

नाटक, हिन्दी-भाषा, संगीतसार, कृष्णपाक, हिन्दी-व्याकरण-शिक्षा, कमीशन में साक्षी, तहक़ीक़ाते पुरी की तहक़ीक़ात, प्रशस्ति-संग्रह, प्रतिमा-पूजन-विचार, रस-रत्नाकर, ख़ुशी, हिन्दी, भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है, मेवाड़-यात्रा, जनकपुर-यात्रा, सरयूपार की यात्रा, वैद्यनाथ-यात्रा, भूगोल सम्बन्धी बातें, भंडरी, वर्षमालिका, मध्यान्ह-सारिणी, मूक-प्रशस्ति, वृत्त-संग्रह, राजा जन्मेजय का दानपत्र, मङ्गलीश्वर का दानपत्र, मणिकर्णिका, काशी, पम्पासर का दानपत्र, कनौज, नागमङ्गला का दानपत्र, चित्रकूटस्थ रमाकुण्ड-प्रशस्ति, गोविन्ददेवजी के मन्दिर की प्रशस्ति, प्राचीन-काल का सम्वत-निर्णय, शिवपुर का द्रौपदी-कुण्ड, भ्रूणहत्या, हाँ हम मूर्तिपूजक हैं, दुर्जन-चपेटिका, ईशूखृष्ट और ईशकृष्ण, शब्द में प्रेरक शक्ति, भक्ति ज्ञानादिक से क्यों बड़ी है ? पर्बलिक ओपिनियन, बङ्गभाषा की कविता, विनय-पत्र, कुरान-दर्शन, इन्द्रजाल, चतुरङ्ग, लाजवन्ती, पतिव्रत, कुलवधूजनों को चितावनी, स्त्री, वर्षा, सती चरित्र ? रामसीता सम्बाद ? वसन्त और कोकिला ? सरस्वती और सुमति का सम्बाद ? लवली और मालती सम्बाद ? प्रेम-पथिक ? (चिन्ह वाले लेख सन्दिग्ध)

हैं, वे हरिश्चन्द्र ही के लिखे हैं वा दूसरों के ?), मित्रता, अपव्यय, किसका शत्रु कौन है ?, भूकम्प, नौकरों को शिक्षा, बुरी रीतें, सूर्योदय, आशा, लाख लाख बात की एक बात, बुद्धिमानों के अनुभूत सिद्धान्त, भगवत् स्तुति, अङ्कमय जगत् वर्णन, ईश्वर के वर्तमान होने के विषय में, इङ्गलैंड और भारतवर्ष, वज्राघात से मृत्यु, त्यौहार, होली, बसन्त, लेवी प्राण लेवी, मर्सिया।

सम्पादित, संगृहीत

सुन्दरी तिलक, राधासुधा शतक, सुजानशतक, कवि-हृदय-सुधाकर, चमनिस्ताने हमेशा वहार चार भाग, गुलज़ारे पुर बहार, जरासन्ध-बध महाकाव्य, भागवत-शङ्का-निराशवाद, मलारावली, श्रृङ्गार-सप्तशती, भाषा-व्याकरण (पद्य), इत्यादि ऐसे सम्पादित और संगृहीत पुस्तकों की संख्या ७५ है।

भारतेन्दुजी बड़े रसिक और प्रेमी जीव थे। जिस समय ये प्रेमावेश में होते थे, इन्हें अपने शरीर की सुध न रहती थी। भगवान् श्रीकृष्ण के ये अनन्य भक्त थे। ये प्रायः कहा करते थे :—

श्रीराधा माधव युगल प्रेमरस का अपने को मस्त बना।
पी प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा॥
इतबार न हो तो देख न ले क्या हरिश्चन्द्र का हाल हुआ।
पी प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा॥

सांसारिक भोग-विलास में फँसे रहने पर भी ये अपने को भूले न थे। एक स्थान पर ये कहते हैं :—

जगत जाल में नित बँध्यो, पर्‌यो नारि के फंद।
मिथ्या अभिमानी पतित, झूठो कवि हरिचंद॥

"प्रेम-जोगिनी" में सूत्रधार के मुँह से कहलाते हैं—

"कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि भरि पाछे प्यारे हरिचंद की कहानी रहि जायगी।"

इसमें सन्देह नहीं कि भारतेन्दुजी का यह कथन अक्षरशः सत्य हुआ।

अपने विषय में ये अभिमानपूर्वक कहा करते थे :—

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत के नेम।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न अविचल प्रेम॥

मेवाड़-नरेश महाराणा सज्जनसिंह का इन पर बड़ा स्नेह था। उनसे मिलने के लिये ये सन् १८८२ में उदयपुर गये। वहाँ से लौटने पर बीमार हो गये। बीमारी की हालत में भी इनका लिखना पढ़ना न छूटा। शरीर क्षीण होने लगा। क्षय का रोग हो गया। मरने से महीना डेढ़ महीना पहले इनका हृदय शांतिरस की ओर विशेष रूप से आकर्पित हुआ था। १८८५ की दूसरी जनवरी को इन्हें यकायक भयानक ज्वर आया। तीसरे दिन खांसी का प्रकोप हुआ। ६ जनवरी को सवेरे तबीयत बहुत ठीक रही। अन्तःपुर से दासी स्वास्थ्य का समाचार पूछने आई। इन्होंने हँस कर कहा :—

"हमारे जीवन-नाटक का प्रोग्राम नित्य नया नया छप रहा है। पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खांसी की सीन हो चुकी, देखें लास्ट नाइट कब होती है।"

उसी दिन दोपहर को स्वास्थ्य फिर खराब हो चला। धीरे धीरे रात के नौ बजे का समय आ पहुँचा। ये यकायक पुकार उठे—"श्रीकृष्ण! राधाकृष्ण! हे राम! आते हैं, मुख दिखलाओ।" कंठ कुछ रुकने लगा। एक दोहा सा कहा, जो साफ़ साफ़ सुना नहीं गया। बस, पौने दस बजे भारतेन्दु अस्त हो गया। इनकी मृत्यु से भारतवर्ष भर के विद्वान् बहुत दुःखी हुये थे। सारे देश में शोक सभायें हुईं। अङ्गरेजी, उर्दू, बंगला, गुजराती, मराठी आदि प्रायः सब भाषाओं के पत्रों ने महीनों शोक-चिन्ह धारण किया।

भारतेन्दु अपने समय के एक सर्वप्रिय विद्वान् और सुकवि थे।

इनकी सबसे अंतिम रचना यह पद है :—

डङ्का कूच का बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई।
देखो लाद चले पंथी सब तुम क्यों रहे भुलाई॥
जब चलना ही निहचै है तो लै किन माल लदाई।
हरीचंद हरिपद बिनु नहिं तौ रहि जैहौ मुँह बाई॥

नीचे हम भारतेन्दु के काव्य-ग्रन्थों से इनकी कुछ ललित रचनाओं का नमूना उद्धृत करते हैं :—

(१)

नव उज्जल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्रीहरि-पद-नख-चन्द्रकान्त-मन-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमण्डल मण्डन भवखण्डन सुर-सरबस॥
शिव-सिर-मालति-माल भगीरथ नृपति-पुण्य-फल।
ऐरावत-गज-गिरि-पति-हिम-नग-कण्ठहार कल॥
सगर-सुवन सठ सहस परस जलमात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हूँ नहिं तजी रही अंकम लपटाई॥
कहूँ बंधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत ध्वजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥

मधुरी नौवत बजत कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
कहुँ सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उछारत।
जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोवत सुन्दरि बदन करन अतिही छवि पावत।
वारिधि नाते ससि-कलङ्क मनु कमल मिटावत॥
सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
दीठि जहीं जहँ जात रहत तितहीं ठहराई।
गङ्गा-छवि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई॥

(२)

प्रगटहु रवि-कुल-रवि निसि बीती प्रजा-कमल-गन फूले।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन-भय-तम उनमूले॥
वसे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध बन्दी सूत चिरैयन मिलि कल रोर मचायो॥
तुव ज़स सीतल पौन परसि चटकीं गुलाब की कलियाँ।
अति सुख पाइ असीस देत कोइ करि अंगुरिन चट अलियाँ॥
भये धरम में थित सब द्विजजन प्रजा काज निज लागे।
रिपु-जुवती-मुख-कुमुद मन्द, जन-चक्रवाक अनुरागे॥
अरघ सरिस उपहार लिये नृप ठाढ़े तिनकहँ तोखौ।
न्याय कृपा सों ऊंच नीच सम समुझि परसि कर पोखौ॥

(३)

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यो। सोई अंग जेहि प्रिय करि जान्यो॥
सोई भुज जो प्रिय गर डारें। सोइ भुज जिन नर विक्रम पारें॥
सोई पद जिहि सेवक बन्दत। सोई छवि जेहि देखि अनन्दत॥
सोइ रसना जहँ अमृत बानी। जेहि सुनि के हिय नारि जुड़ानी॥

सोई हृदय जहँ भाव अनेका। सोई सिर जहँ निज बच टेका॥
सोई छबि-मय अंग सुहाये। आजु जीव बिनु धरनि सुहाये॥
कहाँ गई वह सुन्दर सोभा। जीवत जेहि लखि सब मन लोभा॥
प्रानहुँ ते बढ़ि जा कहँ चाहत। ताकहँ आजु सबै मिलि दाहत॥
फूल बोझ हू जिन न सहारे। तिन पै बोझ काठ बहु डारे॥
सिर पीड़ा जिनकी नहिं हेरी। करत कपाल-क्रिया तिन केरी॥
छिनहूँ जे न भये कहुँ न्यारे। तेऊ बन्धु तन छोड़ि सिधारे॥
जो दृगकोर महीप निहारत। आजु काक तेहि भोज बिचारत॥
भुज बल जे नहिं भुवन समाये। ते लखियत मुख कफन छिपाये॥
नरपति प्रजा भेद बिनु देखे। गने काल सब एकहिं लेखे॥
सुभग कुरूप अमृत बिख साने। आजु सबै इक भाव बिकाने॥
पुरु दधीच कोऊ अब नाहीं। रहे नाँवहीं ग्रन्थन माँहीं॥

(४)

रुरुआ चहुँ दिसि ररत डरत सुनि के नर नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी॥
अन्धकार बस गिरत काक अरु चील करत रव।
गिद्ध-गरुड़-हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव॥
रोअत सियार, गरजत नदी, स्वान भूँकि डरपावई।
सँग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावई॥

(५)

सहत विविध दुख मरि मिटत, भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छाँड़हीं, जे जग साँचे लोग॥
बरु सूरज पच्छिम उगै, बिन्ध्य तरै जल माहिं।
सत्य वीरजन पै कबहुँ, निज बच टारत नाहिं॥

(६)

जय जय जगदीश राम, श्याम धाम पूर्ण काम, आनन्द घन ब्रह्म

विष्णु, सतचित सुखकारी। कंस रावनादि काल, सतत प्रनत भक्तपाल, सोभित गल मुक्तमाल, दीनताप-हारी॥ प्रेम भरण पापहरण, असरन जन सरन चरन, सुखहि करन दुखहि दरन, वृन्दावनचारी। रमावास जग निवास, रमा रमन, समन त्रास, बिनवत हरिचंद दास, जय जय गिरिधारी॥

(७)

जिनके हितकारक पंडित हैं तिनकों कहा सत्रुन को डर है।
समुझैं जग मैं सब नीतिन्ह जो तिन्हैं दुर्ग बिदेस मनो घर है॥
जिन मित्रता राखी है लायक सों तिनकों तिनकाहू महासर है।
जिनकी परतिज्ञा टरै न कबौं तिनकी जय ही सब ही थर है॥

(८)

जगत मैं घर की फूट बुरी। घर के फूटहि सों बिनसाई सुबरन लंकपुरी॥ फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो। जाको घाटो या भारत मैं अबलौं नहिं पुजयो॥ फूटहि सों जयचन्द बुलायो जवनन भारत धाम। जाको फल अब लौं भोगत सब आरज होइ गुलाम॥ फूटहि सों नवनन्द बिनासे गयो मगध को राज। चन्द्रगुप्त को नासन चाह्यौ आपु नसे सह साज। जो जग मैं धन मान और बल अपुनो राखन होय। तो अपुने घर मैं भूले हू फूट करौ मति कोय॥

(९)

करि मूरख मित्र मिताई, फिरि पछितैहौ रे भाई। अन्त दगा खैहौ सिर धुनिहौ रहिहौ सबै गँवाई॥ मूरख जो कछु हितहु करै तौ तामैं अंत बुराई। उलटो उलटो काज करत सब देहै अन्त नसाई॥ लाख करौ हित मूरख सों पै ताहि न कछु समझाई। अन्त बुराई सिर पै ऐहै रहि जैहौ मुँह बाई॥ फिरि पछितैहौ रे भाई॥

(१०)

जग सूरज चंद टरैं तो टरैं पै न सज्जन नेहु कबौं बिचलै।
धन संपति सर्वस गेहु नसौ नहिं प्रेम की मेंड़ सों एँड़ टलै॥

सतवादिंन को तिनका सम प्रान रहै तो रहै वा ढलै तो ढलै ।
निज मीत की प्रीति प्रतीति रहौ इक और सबै जग जाउ भलै ॥

(११)

विचक्षणा।—गोरे तन कुमकुम सुरँग , प्रथम न्हवाई बाल ।
राजा ।—सो तो जनु कंचन तप्यो , होत पीत सों लाल ॥
विच० ।—इन्द्रनीलमणि पैंजनी , ताहि दई पहिराय ।
राजा ।—कमल कली जुग घेरि कै , अलि मनु बैठे आय ॥
विच० ।—सजी हरित सारी सरिस , जुगुल जंघ कहँ घेरि ।
राजा ।—सो मनु कदली पात निज , खंभन लपट्यो फेरि ॥
विच० ।—पहिराई मनि किंकिनी , छीन सुकटि तट लाय ।
राजा ।—सो सिंगार मंडप बँधी , बन्दनमाल सुहाय ॥
विच० ।—गोरे कर कारी चुरी , चुनि पहिराई हाथ ।
राजा ।—सो साँपिन लपटी मनहुँ , चंदन साखा साथ ॥
विच० ।—निज कर सों बाँधन लगी , चोली तब वह बाल ।
राजा ।—सो मनु खींचत तीर भट , तरकस ते तेहि काल ॥
विच० ।—लाल कंचुकी में उगे , जोबन जुगुल लखात ।
राजा ।—सो मानिक संपुट बने , मन चोरी हित गात ॥
विच० ।—बड़े बड़े मुक्तान सों , गल अति सोभा देत ।
राजा ।—तारागन आये मनौं , निज पति ससि के हेत ॥
विच० ।—करनफूल जुग करन में , अति ही करत प्रकास ।
राजा ।—मनु ससि लै द्वै कुमुदिनी , बैठ्यो उतरि अकास ॥
विच० ।—बाला के जुग कान में , बाला सोभा देत ।
राजा ।—स्रवत अमृत ससि दुहुँ तरफ , पियत मकर करि हेत ॥
विच० ।—जिअ रञ्जन खंजन दृगनि , अञ्जन दियो बनाय ।
राजा ।—मनहुँ सान फेर्‌यो मदन , जुगुल बान निज लाय ॥

विच० ।—चोटी गुथि पाटी सरस, करि कै बाँधे केस ।
राजा ।—मनहुँ सिंगार एकत्र है, बँध्यो बार के बेस ॥
विच० ।—बहुरि उढ़ाई ओढ़नी, अतर सुबास बसाय ।
राजा ।—फूललता लपटी किरिन, रवि ससि की मनु आय ॥
विच० ।—एहि विधि सों भूषित करी, भूषन बसन बनाय ।
राजा ।—काम बाग झालरि लई, मनु बसंत ऋतु पाय ॥

(कर्पूरमंजरी से)

(१२)

परम प्रेम-निधि रसिकबर, अति उदार गुन-खान ।
जग-जन-रञ्जन आशु कवि, को हरिचन्द्र समान ॥
जिन श्रीगिरधरदास कवि, रचे ग्रन्थ चालीस ।
ता सुत श्रीहरिचन्द्र को, को न नवावै सीस ॥
जग जिन तृन-सम करि तज्यो, अपने प्रेम प्रभाव ।
करि गुलाब सों आचमन, लीजत वाको नाँव ॥

(१३)

लगौहीं चितवनि औरहि होति ।
दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति ॥
घूँघट में नहिं थिरत तनिक हूँ अति ललचौहीं बानि ।
छिपत न कैसहु प्रीति निगोड़ी अन्त जात सब जानि ॥

(१४)

हौं तो याही सोच मैं विचारत रही री काहे
दरपन हाथ ते न छिन बिसरत है ।
त्यौंहीं हरिचन्द जू वियोग औ संयोग दोऊ
एक से तिहारे कछु लखि न परत है ॥
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात
तू तौ परम पुनीत प्रेमपथ विचरत है ।

तेरे नैन मूरति पियारे की वसति ताहि
आरसी मैं रैन दिन देखिवो करत है ॥

(१५)

इन दुखियान कों न सुख सपने हूँ मिल्यो
योंहीं सदा व्याकुल विकल अकुलायँगी।
प्यारे हरिचन्द जू की बीती जानि औध जो पै
जैहैं प्रान तऊ ये तो साथ न समायँगी ॥
देख्यो एक बारहू न नैन भरि तोहिं याते
जौन जौन लोक जैहैं तहीं पछितायँगी।
बिना प्रानप्यारे भये दरस तिहारे हाय
देखि लीजौ आँखैं ये खुली ही रहि जायँगी ॥

(१६)

तरनि-तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन हित मनहुँ सुहाये ॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ॥
मनु आतप, बारन तीर को सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि-सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ॥१॥
कहूँ तीर पर अमल कमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहिं पाँतिन ॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत निज सोभा।
कै उमगे प्रिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ॥
कै करिके कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई ॥
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥२॥
कै पिय पद उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृङ्गन मिस अस्तुति उच्चारत ॥

कै ब्रज तियगन वदन कमल की झलकत झाईं।
कै ब्रज हरिपद-परस-हेत कमला बहु आईं॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमण्डल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत॥३॥
तिन पै जेहि छिन चन्द जोति राका निसि आवति।
जल मैं मिलि कै नभ अवनी लौं तान तनावति॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा॥
सो को कवि जो छवि कहि सकै ताछन जमुना नीर की।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छबि इक सी नभ तीर की॥४॥
परत चन्द्र-प्रतिबिम्ब कहूँ जलमधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो।
कै तरङ्ग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायो॥
कै रास रमन मैं हरि मुकुट आभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि मूरति बसति वा प्रतिबिम्ब लखात है॥५॥
कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै।
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै॥
कै बाल गुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती॥६॥
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल॥
कै कालिन्दी नीर तरङ्ग जितो उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत॥

कै वहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत ।
कै निसिपति मल्ल अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत ॥७॥
कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत ॥
चक्रवाक कहुँ वसत कहूँ बक ध्यान लगावत ।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत ॥
कहुँ तट पर नांचत मोर बहु रोर बिबिध पच्छी करत ।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥८॥
कहूँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई ॥
पिय के आगम हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाये ।
रत्नरासि करि चूर कूल मैं मनु बगराये ॥
मनु मुक्त माँग सोभित भरी श्याम नीर चिकुरन परसि ।
सतगुन छायो कै तीर मैं ब्रजनिवास लखि हिय हरसि ॥९॥

(१७)

तू केहि चितवति चकित मृगी सी ।
केहि ढूँढ़त तेरो कहा खोयो क्यों अकुलाति लखाति ठगीसी ॥
तन सुधि करु उघरत री आँचर कौन ख्याल तू रहति खगी सी ।
उतर न देत जकी सी बैठी मद पीया कै रैन जगी सी ॥
चौंकि चौंकि चितवति चारहु दिस सपने पिय देखति उमगी सी ।
भूल बैखरी मृगछौनी ज्यौं निज दल तजि कहुँ दूर भगी सी ॥
करति न लाज हाट घर वर की कुल मरजादा जाति डगी सी ।
हरीचन्द ऐसिहि उरझी तौ क्यों नहिं डोलत संग लगी सी ॥

(१८)

जहाँ बिसेसर सोमनाथ माधव के मन्दर ।
तहँ महजिद बन गईं होत अब अल्ला अकबर ॥

जहँ झूसी उज्जैन अवध कनौज रहे वर।
तहँ अब रोअत सिवा चहुँ दिशि लखियत खँडहर॥
जहँ धन विद्या वरसत रही सदा अबै वाही ठहर।
वरसत सब ही विधि बेबसी अब तो चेतौ बीर वर॥

(१९)

कहँ गये विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर।
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करि कै थिर॥
कहँ छत्री सब मरे बिनसि सब गये कितै गिर।
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत हे चिर॥
कहँ दुर्ग सैन धन बल गयो, धूरहि धूर दिखात जग।
उठि अजौं न मेरे वत्सगन, रच्छहिं अपुनो आर्य मग॥

(२०)

रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ ध्रुव॥
सब के पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सब के पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो॥
सब के पहिले जो रूप रङ्ग रस भीनो।
सब के पहिले विद्याफल निज गहि लीनो॥
अब सब के पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ १॥
जहँ भये शाक्य हरिचन्दरु नहुष ययाती।
जहँ राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती॥
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ २॥

लरि बैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई जवन सैन पुनि भारी॥
तिन नासी बुधि बल बिद्या धन बहु बारी।
छाई अब आलस कुमति कलह अँधियारी॥
भये अन्ध पंगु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ ३॥

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी॥
ताहू पै महँगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री॥
सब के ऊपर टिक्कस की आफ़त आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ ४॥

(२१)

रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माँहिं घुसाये।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाये॥
जाति अनेकन करी नीच अरु ऊँच बनायो।
खान पान सम्बन्ध सबन सों बरजि छुड़ायो॥
जन्मपत्र बिधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब।
बालकपन में ब्याहि प्रीति बल नास कियो सब॥
करि कुलीन के बहुत ब्याह बल बीरज मार्‍यो।
बिधवा ब्याह निषेध कियो बिभिचार प्रचार्‍यो॥
रोकि बिलायत गमन कूपमण्डूक बनायो।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो॥
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सों सब बिमुख किये हिन्दू घबराई॥

(२२)

जागो जागो रे भाई ।

सोअत निसि बैस गँवाई । जागो जागो रे भाई ॥
निसि की कौन कहै दिन बीत्यौ काल राति चलि आई ॥
देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस आई ।
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई ॥
अबहूँ चेति पकरि राखौ किन जो कछु बची बड़ाई ।
फिर पछिताये कछु नहिं ह्वै है रहि जैहौ मुँह बाई ॥

(२३)

सोओ सुखनिंदिया, प्यारे ललन ।
नैनन के तारे दुलारे मेरे वारे,
सोओ सुखनिंदिया, प्यारे ललन ।
भई आधीरात बन सनसनात,
पथ पंछी कोउ आवत न जात,
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात,
पातहु नहिं पावत तरुन हलन ॥ सोओ० ॥

झलमलत दीप सिर धुनत आय,
मनु प्रिय पतंग हित करत हाय,
सतरात अंग आलस जनाय,
सनसन लगी सीरी पवन चलन ॥ सोओ० ॥

सोये जग के सब नींद घोर,
जागत कामी चिंतित चकोर,
बिरहिन बिरही पाहरू चोर,
इन कहँ छन रैनहुँ हाय कल न ॥ सोओ० ॥

(२४)

प्यारी बिन कटत न कारी रैन ।
पल छिन न परत जिय हाय चैन ॥

तन पीर बड़ी सब छुट्यो धीर ।
कहि आवत नहिं कछु मुखहु बैन ॥

जिय तड़फड़ात सब जरत गात ।
टप टप टपकत दुख भरे नैन ॥

परदेस परे तजि देस हाय ।
दुख मेटनहारो कोउ है न ॥

सजि बिरह सैन यह जगत जैन ।
मारत मरोरि मोहि पापी मैन ॥

(२५)

सब भाँति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा ।
अब तजहु बीरवर भारत की सब आसा ॥ ध्रुव ॥
अब सुख सूरज को उदय नहीं इत ह्वै है ।
सो दिन फिर इत अब सपनेहुँ नहिं ऐहै ॥
स्वाधीनपनो बल धीरज सबहि नसैहै ।
मंगलमय भारत भुव मसान ह्वै जैहै ॥
दुख ही दुख करिहै चारहुँ ओर प्रकासा ।
अब तजहु बीरवर भारत की सब आसा ॥१॥

इत कलह विरोध सबन के हिय घर करिहै ।
मूरखता को तम चारहुँ ओर पसरिहै ।
वीरता एकता ममता दूर सिधरिहै ।
तजि उद्यम सबही दासवृत्ति अनुसरिहै ॥

ह्वै जैहैं चारहु वरन शूद्र बनि दासा ।
अब तजहु बीरबर भारत की सब आसा ॥२॥

ह्वै हैं इतके सब भूत पिशाच उपासी ।
कोऊ बनि जैहैं आपुहि स्वयं प्रकासी ॥
नसि जैहैं सगरे सत्य धर्म अविनासी ।
निज हरि सो ह्वैहैं विमुख भरत भुववासी ॥
तजि सुपथ सबहि जन करिहैं कुपथ विलासा ।
अब तजहु बीरवर भारत की सब आसा ॥३॥

अपनी वस्तुन कहँ लखिहैं सबहिं पराई ।
निज चाल छोड़ि गहिहैं औरन की धाई ॥
तुरकन हित करिहैं हिन्दू संग लराई ।
यवनन के चरनहिं रहिहैं सीस चढ़ाई ॥
तजि निज कुल करिहैं नीचन संग निवासा ।
अब तजहु बीरवर भारत की सब आसा ॥४॥

रहे हमहुँ कबहुँ स्वाधीन आर्य बलधारी ।
यह दैहैं जियसों सबही बात बिसारी ॥
हरि विमुख धरम बिनु धन बलहीन दुखारी ।
आलसी मन्द तन छीन छुधित संसारी ॥
सुख सों सहिहैं सिर यवनपादुका त्रासा ।
अब तजहु बीरवर भारत की सब आसा ॥५॥

(२६)

चलहु बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहि उड़ाओ ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रनरंग जमाओ ॥
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ ।
केसरिया बानो सजि सजि रनकंकन बाँधौ ॥

जौं आरजगन एक होइ निज रूप सम्हारैं ।
तजि गृह कलहहिं अपनी कुल मरजाद विचारैं ॥
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी ।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मँझारी ॥
पदतल इन कहँ दलहु कीट तृन सरिस जवन चय ।
तनिकहुँ संक न करहु धर्म्म जित जय तित निश्चय ॥
आर्य्यवंश को बधन पुन्य जा अधम धर्म्म मैं ।
गोभक्षन द्विज श्रुति हिंसन नित जासु कर्म्म मैं ॥
तिनको तुरितहिं हतौ मिलैं रन कै घर माहीं ।
इन दुष्टन सों पाप किएहूँ पुन्य सदाहीं ॥
चिउँटिहु पदतल दबे डसत ह्वै तुच्छ जंतु इक ।
ये प्रतक्ष अरि इनहिं उपेछै जौन ताहि धिक ॥
धिक तिन कहँ जे आर्य्य होइ जवनन को चाहैं ।
धिक तिन कहँ जे इनसों कछु सम्बन्ध निबाहैं ॥
उठहु बीर तलवार खींचि मारहु घन संगर ।
लोह लेखनी लिखहु आर्य बल जवन हृदय पर ॥
मारू बाजे बजैं कहौं धौंसा बहराहीं ।
उड़हिं पताका सत्रु हृदय लखि लखि थहराहीं ॥
चारन बोलहिं आर्य सुजस बन्दी गुन गावैं ।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बन्दूक चलावैं ॥
चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर ।
हींसहिं हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर ॥
छन महँ नासहिं आर्य नीच जवनन कहँ करि छय ।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय ॥

(२७)

चूरन अमल बेद का भारी। जिसको खाते कृष्ण मुरारी॥
मेरा पाचक है पचलोना। जिसको खाता श्याम सलोना॥
चूरन बना मसालेदार। जिसमें खट्टे की बहार॥
मेरा चूरन जो कोइ खाय। मुझको छोड़ कहीं नहिं जाय॥
हिन्दू चूरन इसका नाम। विलायत पूरन इसका काम॥
चूरन जब से हिन्द में आया। इसका धन बल सभी घटाया॥
चूरन ऐसा हट्टा कट्टा। कीना दाँत सभी का खट्टा॥
चूरन चला डाल की मंडी। इसको खायेंगी सब रण्डी॥
चूरन अमले सब जो खावैं। दूनी रूशवत तुरत पचावैं॥
चूरन नाटकवाले खाते। इसकी नकल पचाकर लाते॥
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते॥
चूरन खाते लाला लोग। जिनको अकिल अजीरन रोग॥
चूरन खावैं एडिटर जात। जिनके पेट पचै नहिं बात॥
चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिन्द हजम कर जाता॥
चूरन पूलिसवाले खाते। सब कानून हजम कर जाते॥
ले चूरन का ढेर। बेचा टके सेर।

(२८)

जग में पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग में यासु समान।
अनुसूया सीता साविती इनके चरित प्रमान।
पतिदेवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान॥
धन्य देस कुल जहँ निवसत हैं नारी सती सुजान।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य व्याह असथान॥
सब समर्थ पतिबरता नारी इन सम और न आन।
याही ते स्वर्गहु में इनको करत सबै गुन गान॥

(२९)

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होइ॥
स्याम हरित दुति होइ, परे जा तन की झाईं।
पाँय पलोट्त लाल, लखत साँवरे कन्हाईं॥
श्रीहरिचन्द वियोग, पीतपट मिलि दुति हेरी।
नित हरि जा रङ्ग रङ्गे, हरौ बाधा सोइ मेरी॥१॥
सोहत ओढ़े पीतपट, स्याम सलोने गात।
मनौं नीलमणि सैल पर, आतप पर्‍यो प्रभात॥
आतप पर्‍यो प्रभात, किधौं बिजुरी घन लपटी।
जरद चमेली तरु तमाल, मैं सोभित सपटी॥
प्रिया रूप अनुरूप, जानि हरिचन्द विमोहत।
स्याम सलोने गात, पीतपट ओढ़े सोहत॥२॥
इन दुखिया अँखियान कौं, सुख सिरजौई नाहिं।
देखे बनैं न देखते, बिनु देखे अकुलाहिं॥
बिनु देखे अकुलाहिं, बावरी ह्वै ह्वै रोवैं।
उघरी उघरी फिरैं, लाज तजि सब सुख खोवैं॥
देखे श्रीहरिचन्द, नयन भरि लखैं न सखियाँ।
कठिन प्रेम गति रहत, सदा दुखिया ये अँखियाँ॥३॥

(सतसई-शृङ्गार से)

(३०)

भईं सखि ये अँखियाँ बिगरैल।
बिगरि परी मानत नहिं देखे बिना साँवरो छैल॥
भईं पतवार धरत पग डगमग नहिं सूझत कुल गैल।
तजि कै लाज साज गुरुजन को हरि की भईं रखैल॥

निज चवाव सुनि औरहु हरखत करत न कछु मन मैल।
हरीचन्द सब संक छाड़ि कै करहिं रूप की सैल॥

(३१)

राधे तुव सोहाग की छाया जग में भयो सोहाग।
तेरी ही अनुराग छटा हरि सृष्टि करन अनुराग॥
सत चित तुव कृति सों बिलगाने लीला प्रिय जन भाग।
पुनि हरिचन्द अनन्द होत लहि तुव पद पदुम पराग॥

(३२)

पियारे याको नाँव नियाव।
जो तोहि भजै ताहि नहिं भजनों कीनो भलो बनाव॥
बिनु कछु किये जानि अपनो जन दूनो दुख तेहि देनो।
भली नई यह रीति चलाई उलटो अवगुन लेनो॥
हरीचन्द यह भलौ निवेर्‍यो ह्वैके अंतरजामी।
चोरन छाँड़ि छाँड़ि कै डाँड़ौ उलटो धन कै स्वामी॥

(३३)

भरोसो रीझन ही लखि भारी।
हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित उधारी॥
जो ऐसो सुभाव नहिं हो तो क्यों अहीर कुल भायो।
तजि कै कौस्तुभ सो मनि गल क्यों गुञ्जा हार धरायो॥
कीट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ मोरन को क्यों धार्‍यो।
फेंट कसी टेंटिन पै मेवन की क्यों स्वाद बिसार्‍यो॥
ऐसी उलटी रीझ देखि कै उपजत है जिय आस।
जग निन्दत हरिचन्दहु को अपनावहिंगे करि दास॥

(३४)

सम्हारहु अपने को गिरधारी।
मोर मुकुट सिर पाग पेंच कसि राखहु अलक सँवारी॥

हिय हलकत बनमाल उठावहु मुरली धरहु उतारी ।
चक्रादिकन सान दै राखो कङ्कन फँसन निवारी ॥
नूपुर लेहु चढ़ाय किङ्कनी खींचहु करहु नयारी ।
पियरो पट परिकर कटि कसि कै बाँधौ हो बनवारी ॥
हम नाहीं उनमें जिनको तुम सहजहि दीनों तारी ।
बानो जुगओ नीके अब की हरीचन्द की वारी ॥

(३५)

रहै क्यों एक म्यान असि दोय ।
जिन नैनन में हरि रस छायो तेहि क्यों भावै कोय ॥
जा तन मन मैं रमि रहे मोहन तहाँ ज्ञान क्यों आवै ।
चाहो जितनी बात प्रबोधो ह्याँ को जो पतियावै ॥
अमृत खाइ अब देखि इनारुन को मूरख जो भूलै ।
हरीचन्द ब्रज तो कदलीवन काटौ तो फिरि फूलै ॥

(३६)

चमक से बर्क़ की उस बर्क़वश की याद आई है ।
घुटा है दम, वटी है जाँ, घटा जबसे ये छाई है ॥
कौन सुनै कासों कहों, सुरति बिसारी नाह ।
बदा बदी जिय लेत हैं, ए बदरा बदराह ॥
बहुत इन ज़ालिमों ने आह अब आफ़त उठाई है ॥
अहो पथिक कहियो इती, गिरधारी सों टेर ।
दग झरलाई राधिका, अब बूड़त ब्रज फेर ॥
बचाओ जल्द इस सैलाब से प्यारे दुहाई है ।
बिहरत बीतत श्याम संग, जो पावस की रात ।
सो अब बीतत दुख करत, रोअत पछरा खात ॥
कहाँ तो वह करम था अब कहाँ इतनी रुखाई है ॥

बिरह जरी लखि जींगनिन , कहै न उहि कइ बार ।
अरी आव भजि भीतरैं , बरसत आज अँगार ॥
नहीं जुगनू हैं यह बस आग पानी ने लगाई है ॥
लाल तिहारे बिरह की , लागी अगिन अपार ।
सरसै बरसै नीरहू , मिटै न झर झंझार ॥
बुझाने से है बढ़ती आग यह कैसी लगाई है ॥
बन बागनि पिक बटपरा , तकि बिरहिन मन मैन ।
कुहौ कुहौ कहि कहि उठै , करि करि राते नैन ॥
ग़ज़ब आवाज़ ने इन ज़ालिमों के जान खाई है ॥
पावस घन अँधियार में , रह्यो भेद नहिं आन ।
रात द्यौस जान्यो परै , लखि चकई चकवान ॥
नहीं बरसात है यह इक क़यामत सिर प आई है ॥
वेई चिरजीवी अमर , निधरक फिरौ कहाइ ।
छिन बिछुरे जिनको न कहि , पावस आयु सिराइ ॥
यहाँ तो जाँ बलब है जब से सावन की चढ़ाई है ॥
बामा भामा कामिनी , कहि बोलौ प्रानेस ।
प्यारी कहत लजात नहिं , पावस चलत बिदेस ॥
भला शरमाओ कुछ तो जी में यह कैसी ढिठाई है ॥
रटत रटत रसना लटी , तृषा सूखि गै अङ्ग ।
तुलसी चातक प्रेम की , नित नूतन सुचि रङ्ग ॥
दिलों में ख़ाक उड़ती है मगर मुँह पर सफ़ाई है ॥
जौ घन बरसै समय सिर , जौ भरि जनम उदास ।
तुलसी जाचक चातकहि , तऊ तिहारी आस ॥
सिवा खंजर यहाँ कब प्यास पानी से बुझाई है ॥
चातक तुलसी के मते , स्वातिहुँ पियै न पानि ।
प्रेम तृषा बाढ़त भली , घटे घटेगी कानि ॥

शहीदों ने तेरे बस जान प्यासे ही गँवाई है ॥
ऐसो पावस पाइहू, दूर बसे ब्रजराइ ।
धाइ धाइ हरिचन्द क्यों, लेहु न कंठ लगाइ ॥
रसा*मंजूर मुझ को तेरे क़दमों तक रसाई है ॥

(३७)

प्रीति तुव प्रीतम कौं प्रगटैयै ।
कैसे के नाम प्रगट तुव लीजे कैसे कै विथा सुनैयै ॥
को जानै समुझै जग जिन सों खुलि कै भरम गँवै यै ।
प्रगट हाय करि नैननि जल भरि कैसे जगहिं दिखैयै ॥
कबहुँ न जानै प्रेम रीति कोउ मुख सों बुरै कहैयै ।
हरीचन्द पै भेद न कहिये भले ही मौन मरि जैयै ॥

(३८)

काहे तू चौका लगाये जयचँदवा ।
अपने स्वारथ भूलि लुभाये काहे चोटीकटवा बुलाए, जयचँदवा ।
अपने हाथ से अपने कुल कै काहे तैं जड़वा कटाये, जयचँदवा ।
फूट कै फल सब भारत बोये बैरी कै राह खुलाये, जयचँदवा ।
औरो नासि तैं आपौ बिलाने निज मुँह कजरी पुताये, जयचँदवा ।

(३९)

दिल मेरा ले गया दग़ा कर के ।
बेवफ़ा हो गया वफ़ा कर के ॥
हिज्र की शब घटा ही दी हमने ।
दास्ताँ जुल्फ़ की बढ़ा कर के ॥
शुअलारू कह तो क्या मिला तुझ को ।
दिलजलों को जला जला कर के ॥

*"रसा" हरिश्चन्द्र का उपनाम था ।

वक़्ते रेहलत जो आए बालीं पर ।
खूब रोए गले लगा कर के ॥

सर्वक़ामत ग़ज़ब की चाल से तुम ।
क्यों क़यामत चले बपा कर के ॥

ख़ुद बख़ुद आज जो वो बुत आया ।
मैं भी दौड़ा ख़ुदा ख़ुदा कर के ॥

क्यों न दावा करे मसीहा का ।
मुर्दे ठोकर से वह जिला कर के ॥

क्या हुआ यार छिप गया किस तर्फ़ ।
इक झलक सी मुझे दिखा कर के ॥

दोस्तो कौन मेरी तुरबत पर ।
रो रहा है रसा रसा कर के ॥

(४०)

पहिले ही जाय मिले गुन में श्रवन फेर रूप सुधा मधि कीनो नैनहूँ पयान है । हंसनि नटनि चितवनि मुसुकानि सुघराई रसिकाई मिलि मति पय पान है ॥ मोहि मोहि मोहन मई री मन मेरो भयो 'हरीचन्द' भेद ना परत कछु जान है । कान्ह भये प्रानमय प्रान भयो कान्हमय हिय मैं न जान्यो परै कान्ह है कि प्रान है ॥

(४१)

बोल्यो करै नूपुर श्रवन के निकट सदा पद तल लाल मन मेरे बिहर्‌यो करे । बाजी करे बंशी धुनि पूरि रोम रोम मुख मन मुसुकानि मन्द मनहिं हर्‌यो करै ॥ 'हरीचन्द' चलनि मुरनि बतरानि चित्त छाई रहै छवि जुग दृगन भर्‌यो करे ॥ प्रान हूँ ते प्यारो रहै प्यारो तू सदाई तेरो पीरो पट सदा जिय बीच फहर्‌यो करे ॥

(४२)

जिय पै जु होइ अधिकार तो बिचार कीजै लोकलाज भलो बुरो भले निरधारिये। नैन श्रौन कर पग सबै परबस भये उतै चलि जात इन्हैं कैसे कै सम्हारिये। 'हरीचन्द' भई सब भाँति सों पराई हम इन्हें ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिये। मन मैं रहै जो ताहि दीजिये बिसारि मन आपै बसे जामें ताहि कैसे कै बिसारिये॥

(४३)

प्यारो पैये केवल प्रेम में।
नहीं ज्ञान में नहीं ध्यान में नहीं करम कुल नेम में॥
नहिं मन्दिर में नहिं पूजा में नहिं घंटा की घोर में।
हरीचंद वह बाँध्यो डोलै एक प्रेम की डोर में॥

(४४)

भूली सी भ्रमी सी चौंकी जकी सी थकी सी गोपी दुखी सी रहति कछू नाहिं सुधि देह की। मोही सी लुभाई कछु मोदक से खाये सदा बिसरी सी रहै नेक खबर न गेह की॥ रिस भरी रहे कबौं फूली न समाति अङ्ग हँसि हँसि कहै बात अधिक उमेह की। पूछे ते खिसानी होय उत्तर न आवै तोहि जानी हम जानी है निसानी या सनेह की॥

(४५)

थाकी गति अङ्गन की मति परि गई मन्द सूख झाँझरी सी ह्वै कै देह लागी पियरान। बावरी सी बुद्धि भई हँसी काहू छीन लई सुख के समाज जित तित लागे दूर जान॥ 'हरीचन्द' रावरे विरह जग दुख मयो भयो कछु और होनहार लागे दिखरान। नैन कुम्हिलान लागे बैनहुँ अथान लागे आओ प्राननाथ अब प्रान लागे मुरझान॥

(४६)

सीखत कोउ न कला उदर भरि जीवत केवल।
पसु समान सब अन्न खात पीवत गङ्गाजल॥

धन विदेश चलि जात तऊ जिय होत न चंचल।
जड़ समान ह्वै रहत अकल हत रचि न सकत कल॥
जीवत विदेस की वस्तु लै ता बिन कछु नहिं करि सकत।
जागो जागो अब साँवरे सब कोउ रुख तुमरो तकत॥
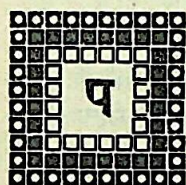
बदरीनारायण चौधरी

पण्डित बदरीनारायण चौधरी भारद्वाज गोत्र के सरयूपारीण ब्राह्मण खोरिया उपाध्याय थे। इनके दादा पण्डित शीतलप्रसाद चौधरी मिरज़ापुर के एक प्रतिष्ठित रईस, महाजन, व्यापारी और ज़मींदार थे। इन्होंने अपने बाहुबल से प्रचुर सम्पत्ति, मान और प्रतिष्ठा प्राप्त की। इनके एक मात्र पुत्र पण्डित गुरुचरणलाल उपाध्याय हुए, जो अपने पैतृक और सांसारिक कार्यों को करते हुए ब्राह्मण गुणों के अद्वितीय आदर्श थे। विद्याधन की श्रेष्ठता और परमावश्यकता में ध्रुव विश्वास होने के कारण, स्ववंशधन्य उपाध्याय जी ने कई संस्कृत की पाठशालाएँ खोलीं, जिनमें प्रधान श्री अयोध्याजी का ब्राह्मण वैदिक विद्यालय (सरजूबाग) ने उस पुरी में पहले पहल विद्या-प्रचार का कार्य्य आरम्भ किया। इसमें से अनेक पण्डित होकर उनके यश की पताका-से वर्तमान हैं। पश्चिम वयस् में उन्होंने त्रिवेणी के तटस्थ अकेला पेड़, (जिसे व्यासतीर्थ भी कहते हैं,) झूसी में १५ वर्ष से अधिक एक स्थान पर निवास कर पञ्चयज्ञों को अविरत सम्पादन करते, मानों आजकल की दैवी सम्पत्ति-सम्पादन से विमुख द्विजाति-समाज को शिक्षा देते हुए, अपने जीर्ण शरीर का त्याग किया।

उनके ज्येष्ठपुत्र हमारे चरितनायक पण्डित बदरीनारायण चौधरी का जन्म संवत् १९१२ भाद्रपद कृष्ण षष्ठी को हुआ। प्रायः पाँच वर्ष की अवस्था के पूर्व इनकी सुशीला और सुशिक्षिता माता ने इन्हें हिन्दी के

अक्षरों का अभ्यास कराना आरम्भ कर दिया था। फ़ारसी की भी शिक्षा इन्हें समयानुसार दी जाने लगी। कुछ कालानन्तर ये गोंडे में अङ्गरेज़ी की शिक्षा के सिलसिले में भेजे गए। जहाँ अवधेश महाराज सर प्रतापनारायण सिंह, लाल त्रिलोकीनाथ सिंह और राजा उदयनारायण सिंह का साथ हो जाने से इन्हें अश्वारोहण, गजसञ्चालन, लक्ष्यवेध और मृगया से अधिक अनुराग हो गया और यही मानों इनके बाल्यावस्था में क्रीड़ा की सामग्री थी। यहाँ तक कि ये निज सहचरों के संग प्रायः घोड़दौड़ करते और शिकार खेलते थे।

संवत् १९२४ में ये गोंड़ा से फ़ैज़ाबाद चले आये और वहाँ के ज़िला स्कूल में पढ़ने लगे। उसी वर्ष इनका विवाह बड़ी धूमधाम से ज़िला जौनपुर के ससंसा ग्राम में हुआ था। सं० १९२५ में इनके पितामह का स्वर्गवास होने से इन्हें मिरज़ापुर के ज़िला स्कूल में आना पड़ा। यहाँ गृह के कार्य्यों में भी सहायक होने से घर पर मास्टर द्वारा पढ़ना आरम्भ करना पड़ा। इस सुअवसर को पाकर इनके पिता ने, जो हिन्दी, फ़ारसी के अतिरिक्त संस्कृत में अच्छे पण्डित और उसके विशेष अनुरागी थे, इन्हें संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ करा दिया। उन्हें प्रायः अन्य नगरों और विदेशों में भ्रमण करना पड़ता था। इससे उन्होंने अपने पारिषदवर्गों में से पं० रामानन्द पाठक को, जो विद्वान् और काव्य-रसज्ञ थे, हमारे चरित्तनायक को पढ़ाने के लिए नियुक्त कर दिया। जिनकी सुशिक्षा ने इन्हें कविता में अनुराग उत्पन्न कर, साहित्यरसोन्मुख किया और यही मानों इनके कविता-गुरु भी हुए। इन्हीं के कवित्वशक्ति-अभिज्ञान से हमारे चरित्तनायक के हृदय में उसी समय से कविता करने की अपनी शक्ति में विश्वास हो गया। किन्तु सम्पत्तिवान् होने के कारण इसी शिक्षा के साथ आनन्दविनोद की ओर भी प्रकृति उन्मुख हुई और सामग्रियाँ प्रस्तुत हो चलीं। साहित्य के साथ संगीत से भी अनुराग हो गया। ताल सुर की परख बेहद बढ़ चली और चित्त दूसरी ही ओर लग चला। इसी के

साथ घर के भाँति-भाँति के कार्य्यों से भिन्न-भिन्न नगरों के परिभ्रमण से अनेक भाषाओं का ज्ञान भी प्राप्त हुआ, जिसका उदाहरण "भारत-सौभाग्य" में मिलता है। संवत् १९२८ में ये प्रथम बार कलकत्ते गए और वहाँ से लौटने पर बरसों बीमार पड़े रहे। इसी समय इनको साहित्य-सम्बन्धी व्रजभाषा के बहुत से प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ने और सुनने का अवसर मिला। इसी समय इनसे पं० इन्द्रनारायण शंगलू से मित्रता हुई, जो बहुत कुशाग्रबुद्धि, कार्य्यपटु और नवीन विचार तथा देशहित करनेवाले मनुष्य थे। इन्हीं के द्वारा सभा, समाज, समाचारपत्रों और उर्दू शायरी में उत्साह बढ़ा। यहाँ तक कि इन्होंने अपना उपनाम उस भाषा के लिए 'अब्र' रखा और हिन्दी के लिए "प्रेमघन"। शंगलूजी के द्वारा ही भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी से जान-पहचान हुई और 'सतां सप्तपदी मैत्री' क्रमशः बड़ी घनिष्ट होती गई। जिसका अन्त तक पूर्ण निर्वाह भी हुआ। संवत् १९३० में इन्होंने "सद्धर्म सभा" और १९३१ में "रसिक-समाज" मिरज़ापुर में स्थापित किया। तथा योंही क्रमशः और कई सभाएँ स्थापित कीं। इस समय चौधरीजी ने कई कविताएँ लिखीं। सं० १९३३ में "कवि-वचन-सुधा" प्रकाशित होती थी। इससे उसमें भी इनके कई एक लेख छपे। उत्साह मित्रों की रसिकता और गुणग्राहकता से बढ़ चला और १९३८ में 'आनन्द-कादम्बिनी' मासिक पत्रिका की प्रथम माला प्रकाशित हुई। मासिक पत्रिका से न सन्तुष्ट हो इन्होंने १९४५ में 'नागरी-नीरद' साप्ताहिक पत्र का सम्पादन आरम्भ किया। इनमें इनके अनेक गद्य और पद्य लेख और ग्रन्थ छपे। जो अद्यावधि स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित न हो सके। इनकी अनेक कविताएँ और सद्ग्रन्थ, वरन् यों कहना चाहिए कि इनकी कविता का उत्तमांश उन पत्रपत्रिकाओं में भी नहीं मिल सकता। इससे इन पत्रों का संग्रह विशेष कष्टसाध्य समझ चौधरी जी ने छोड़ दिया। इनकी केवल वही कविताएँ प्रकाशित हो सकीं, जो समय के अनुरोध से अत्यावश्यक जान पड़ीं और

शीघ्र निकल गईं; जैसे "भारत-सौभाग्य नाटक", 'हार्दिक हर्षादर्श' 'भारत बधाई', आर्य्याभिनन्दन, इत्यादि। अथवा जो बहुत आग्रह की म ाँग के कारण लिखी गईं; यथा 'वर्षा-बिन्दु', 'कजली-कादम्बिनी' और 'प्रयाग रामागमन'। चौधरीजी के ग्रन्थों के प्रकाशित न होने का एकमेव कारण यह है कि इनकी कविता का उद्देश्य निज मन का प्रसादमात्र था। इसीसे ये उनके प्रचार वा प्रकाशित करने के विशेष इच्छुक न हुए, और न उसके द्वारा धन, मान या ख्याति के अभिलाषी हुए, जैसे कि कवि हुआ करते हैं। मन की मौज जिस समय जिस विषय पर आई, उसे लिखा, और जहाँ से मन उचटा, छोड़ दिया। तब भी जो कुछ अब तक प्रकाशित हुआ है, इनकी विशद कवित्वशक्ति, रसज्ञता और बहुज्ञता का पूर्ण परिचय देता है। चौधरीजी को ब्रजभाषा से बड़ा प्रेम था। उसे ही ये कवियों की भाषा मानते थे। इसीसे इनकी कविताएँ खड़ी बोली में "आनन्द अरुणोदय" के अतिरिक्त और नहीं हैं और यह इन्होंने केवल यह देखने को लिखा था कि कविता खड़ी बोली में कैसी होती है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने, जिसका तीसरा अधिवेशन कलकत्ते में, १९१२ में, हुआ था, इनको सभापति का आसन देकर अपनी गुणग्राहकता प्रकट की थी। उस अवसर पर जो वक्तृता इन्होंने दी थी, वह बड़ी गवेषणापूर्ण है।

चौधरीजी ने एक दिन संध्या समय स्वयं पधार कर प्रयाग में मुझे दर्शन दिया था। उस समय गृहस्थी-सम्बन्धी कुछ मानसिक चिन्ता से पीड़ित दिखाई पड़ते थे। खेद है कि सं० १९८० में प्रेमघनजी संसार से चले गये।

यहाँ चौधरीजी की कविता के कुछ नमूने उनके प्रकाशित ग्रन्थों से लेकर प्रकाशित किये जाते हैं—

(१)

भागो भागो अब काल पड़ा है भारी।
भारत पै घेरी घटा बिपत की कारी॥

सब गयें बनज ब्यापार इतै सों भागी ।
उद्यम पौरुष नसि दियो वनाय अभागी ॥
अब बचो खुची खेती हूँ खिसकन लागी ।
चारहुँ दिसि लागी है महँगी की आगी ॥
सुनिये चिलायँ सब परजा भई भिखारी ।
भागो भागो अब काल पड़ा है भारी ॥१॥

हम वनज करैं पर उलटी हानि उठावैं ।
हम उद्यम करके लागत भी नहिं पावैं ॥
हम खेती करके बेङ्क बिसार गँवावैं ।
औ करजा कै सरकारी जमाँ चुकावैं ॥
फिर खायँ कहाँ से यह नहिं जाय बिचारी ।
भागो भागो अब काल पड़ा है भारी ॥२॥

हम करैं नौकरी बहुत, तलब कम पाते ।
थे किसी तरह से अब तक पेट जिलाते ॥
इस महँगी से नित एकादशी मनाते ।
लड़के बाले सब घर में हैं चिल्लाते ॥
है देखो हाहाकार मचो दिसि चारी ।
भागो भागो अब काल पड़ा है भारी ॥३॥

अब नहीं यहाँ खाने भर को भी जुरता ।
नहिं सिरपर टोपी नहीं बदन पर कुरता ॥
है कभी न इसमें आधा चावल चुरता ।
नहिं साग मिलै नहिं कन्दमूल का भुरता ॥
नहिं जात भूख की भई पीर संभारी ।
भागो भागो अब काल पड़ा है भारी ॥४॥

(२)

(दादाभाई नौरोजी के पार्लामेंट के मेम्बर होने के अवसर पर, १८९२ ई० में, विरचित ।)

कारन सों गोरन की घिन को नाहिन कारन ।
कारन तुम हीं या कलङ्क के करन निवारन ॥
कारन ही के कारन गोरन लहत बड़ाई ।
कारन ही के कारन गोरन की प्रभुताई ॥
कार नहीं है कारन को गोरन गोरन मैं ।
कारन पै जिय देन चहत गोरन हित मन मैं ॥
कारन का है गोरन मैं भगती साँचे चित ।
कारन की गोरन हीं सों आशा हित की नित ॥
कारन की गोरन की राजसभा मैं आवन ।
को कारन केवल कहि कै निज दुख प्रगटावन ॥
कारन करन नहीं शासन गोरन पै मन मैं ।
कारन के तौ का कारन घिन जो कारन मैं ॥
गोरन की जो कहत नकारन कारन रोकौ ।
नहिं बैठे ए गोरन मध्य कहूँ अवलोकौ ॥
महा मन्त्रि को बचन मेटि तुमहीं बिन कारन ।
गोरन राजसभा में कारन के बैठारन ॥
के कारन तुम अहौ, अहो प्रिय साँचे लिबरल ।
कारन के अबतौ तुमहीं कारन कारन बल ॥
कारो निपट नकारो नाम लगत भारतियन ।
यदपि न कारे तऊ भागि कारी बिचारि मन ॥
अचरज होत तुमहुँ सन गोरे बाजत कारे ।
तासों कारे कारे शब्दहु पर हैं वारे ॥

अरु बहुधा कारन के हैं आधारहिं कारे ।
विष्णु कृष्ण कारे कारे सेसहु जगधारे ॥
कारे काम, राम, जलधर जल बरसन वारे ।
कारे लागत ताही सन कारन को प्यारे ॥
तासों कारे ह्वै तुम लागत औरहु प्यारे ।
यातैं नीको है तुम कारे जाहु पुकारे ॥
यहै असीस देत तुम कहँ मिल हम सब कारे ।
सफल होहिं मन के सब ही संकल्प तुमारे ॥
वे कारे घन से कारे जसुदा के वारे ।
कारे मुनिजन के मन मैं नित विहरनहारे ॥
मङ्गल करैं सदा भारत को सहित तुमारे ।
सकल अमङ्गल मेटि रहैं आनँद बिस्तारे ॥

(३)

हार्दिक हर्षादर्श

(हीरक जुबली के अवसर पर लिखा गया, १८९९ ई०)

तिन सब मैं है मुख्य राज भारत को उत्तम ।
जाहि विधाता रच्यो जगत के सीस भाग सम ॥
जहाँ अन्न, धन, जन, सुख, सम्पति रही निरन्तर ।
सबै धात, पसु, रतन, फूल, फल, बेलि, बृच्छ वर ॥
झील, नदी, नद, सिन्धु, सैल, सब ऋतु मनभावन ।
रूप, सील, गुन, विद्या, कला कुसल असंख्य जन ॥
जिनकी आशा करत सकल जग हाथ पसारत ।
आस्रत औरन के न रहे कबहूँ नर भारत ॥
बीर, धर्मरत, भक्त, त्यागि, ज्ञानी, विज्ञानी ।
रही प्रजा सब पै निज राजा हाथ बिकानी ॥

निज राजा अनुसासन मन, बच, करम धरत सिर।
जगपति सी नरपति मैं राखत भक्ति सदा थिर॥
सदा सत्रु सों हीन, अभय, सुरपति छवि छाजत।
पालि प्रजा भारत के राजा रहे विराजत॥
पै कछु कही न जाय, दिनन के फेर फिरे अत्र।
दुरभागनि सों इत फैले फल फूट बैर जव॥
भयो भूमि भारत मैं महा भयंकर भारत।
भये बीर बर सकल सुभट एकहि सँग गारत॥
मरे विबुध नरनाह सकल चातुर गुन मण्डित।
बिगरो जन समुदाय बिना पथ-दर्शक पण्डित॥
सत्य धर्म के नसत गयो बल, विक्रम, साहस।
विद्या, बुद्धि, विवेक, विचाराचार रह्यो जस॥
नये नये मत चले, नये झगरे नित बाढ़े।
नये नये दुख परे सीस भारत पै गाढ़े॥
छिन्न-भिन्न है साम्राज्य लघु राजन के कर।
गयो परस्पर कलह रह्यो बस भारत मैं भर॥
रही सकल जग ब्यापी भारत राज बड़ाई।
कौन बिदेसी राज न जो या हित ललचाई॥
रह्यो न तब तिन मैं इहि ओर लखन को साहस।
आर्य राज राजेसुर दिगविजयिन के भय बस॥
पै लखि बीरबिहीन भूमि भारत की आरत।
सबै सुलभ समझ्यो या कहँ आतुर असि धारत॥
तेरो प्रबल प्रताप सकल सम्राट दबायो।
खींस बाय कै फरासीस जातें सिर नायो॥
जरमन जर मन माँहि बनो जाको है अनुचर।
रूम रूम सम, रूस रूस बनि फूस बराबर॥

पाय परसि तुव पारस पारस के सम पावत ।
पकरि कान अफ़गान राज पर तुम बैठावत ॥
दीन बनो सो चीन, पीन जापान रहत नत ।
अन्य छुद्र देशाधिप गन की कौन कहावत ॥
जग जल पर तुव राज थलहु पर इतो अधिकतर ।
सदा प्रकासत जामैं अस्त होत नहिं दिनकर ॥

(४)

आनन्द-बधाई

[यह हिन्दी के कचहरियों में प्रवेश पाने के उपलक्ष्य में, सन् १९०३ में लिखी गई]

पै भागनि सों जब भारत के सुख दिन आये ।
अङ्गरेज़ी अधिकार अमित अन्याय नसाये ॥
लह्यो न्याय सब ही छीने निज स्वत्वहिं पाई ।
दुरभागनि वचि रही यही अन्याय सताई ॥
लह्यो देशभाषा अधिकार सबै निज देशन ।
राजकाज आलय विद्यालय बीच ततच्छन ॥
पै इत बिरचि नाम उर्दू को "हिन्दुस्तानी ।"
अरबी बरनहुँ लिखित सके नहिं बुध पहिचानी ॥
"हिन्दुस्तानी" भाषा कौन ? कहाँ तैं आई ?
को भाषत, किहि ठौर कोऊ किन देहु बताई ?
कोउ साहिब खपुष्प सम नाम धर्‌यो मनमानो ।
होत बड़न सों भूलहु बड़ी सहज यह जानो ॥
हरि हिन्दी की बोली अरु अच्छर अधिकारहिं ।
रु पठारे बीच कचहरी बिना बिचारहिं ॥

जाको फल अतिसय अनिष्ट लखि सब अकुलाने ।
राज कर्म्मचारी अरु प्रजा-वृन्द बिलखाने ॥
संसोधन हित बारहिं बार कियो बहु उद्यम ।
होय असम्भव किमि सम्भव कैसे खल उत्तम ॥
हिन्दी भाषा सरल चह्यो लिखि अरबी बरनन ।
सो कैसे ह्वै सकै बिचारहु नेक बिचच्छन ॥
मुगलानी, ईरानी, अरबी, इङ्गलिस्तानी ।
तिय नहिं हिन्दुस्तानी बानी सकत बखानी ॥
ज्यों लोहार गढ़ि सकत न सोने के आभूषन ।
अरु कुम्हार नहिं बनै सकत चाँदी के बरतन ॥
कलम कुल्हाड़ी सों न बनाय सकत कोउ जैसे ।
सूजा सों मलमल पर बखिया होत न तैसे ॥
कैसे हिन्दी के कोउ सुद्ध शब्द लिखि लैहै ।
अरबी अच्छर बीच लिखेहुँ पुनि किमि पढ़ि पैहै ॥
निज भाषा को सबद लिखो पढ़ि जात न जामैं ।
पर भाषा को कहौ पढ़ै कैसे कोउ तामैं ॥
लिख्यो हकीम औषधी में 'आलू बोख़ारा' ।
उल्लू बनो मोलवी पढ़ि 'उल्लू बेचारा' ॥
साहिब 'किस्ती चही' पठाई मुनसी 'कसबी' ।
'नमक पठायो भई 'तमस्सुक' की जब तलबी ॥
पढ़त 'सुनार' सितार 'किताब' 'कबाब' बनावत ।
'दुआ' देतहूँ 'दगा' देन को दोष लगावत ॥
मेम साहिबा 'बड़े बड़े मोती' चाह्यो जब ।
बड़ी बड़ी मूली पठवायो तसिल्दार तब ॥
उदाहरन कोउ कहँ लगि याके सकै गनाई ।
एकहु सबद न एक भाँति जब जात पढ़ाई ॥

दस औ बीस भाँति सो तौ पढ़ि जात घनेरे।
पढ़े* हज़ार प्रकारहु सों जाते बहुतेरे॥
ज़ेर ज़बर अरु पेस स्वरन को काम चलावत।
बिन्दी की भूलनि सौ सौ विधि भेद बनावत॥
चारि प्रकार जकार, सकार, अकार तीन विधि।
होत हकार, तकार, यकार उभय विधि छल-निधि॥
कौन सबद केहि बरन लिखे सों सुद्ध कहावत।
याको नियम न कोऊ लिखित लेखहिं लखि आवत॥
यह विचित्रताई जग और ठौर कहुँ नाहीं।
पँचमेली भाषा लिखि जात बरन उन माहीं॥
जिनसे अधम बरन को अनुमानहुँ अति दुस्तर।
अवसि जालियन सुखद एक उर्दू को दफ़तर॥
जिहि तैं सौ सौ साँसति सहत सदा बिलखानी।
भोली भाली प्रजा इहाँ की अतिहि अयानी॥
भारत सिंहासन स्वामिनि जो रही सदा की।
जग में अब लौं लहि न सक्यो कोऊ छबि जाकी॥
जासु बरनमाला गुन खानि सकल जग जानत।
बिन गुन गाहक सुलभ निरादर मन अनुमानत॥
राजसभा सों अलग कई सौ बरस बितावत।
दीन प्रबीन कुटीन बीच सोभा सरसावत॥
बरसावत रस रही ज्ञान, हरि-भक्ति, धरम नित।
सिच्छा अरु साहित्य-सुधा-सम्बाद आदि इत॥
कियो न बदन मलीन पीन बरु होत निरन्तर।
रही धीरता धारि ईस-इच्छा पर निरभर॥

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने उर्दू में एक शब्द को १००० प्रकार से पढ़ा जाना सिद्ध किया था।

(५)

आनन्द-अरुणोदय

[श्रीप्रयागराज के सनातन-धर्म-महासम्मेलन के अवसर पर, १९०६ ई० में लिखा गया]

हुआ प्रबुद्ध वृद्ध भारत निज आरत दशा निशा का।
समझ अन्त अतिशय प्रमुदित हो तनिक तब् उसने ताका ॥
अरुणोदय एकता दिवाकर प्राची दिशा दिखाती।
देखा नव उत्साह परम पावन प्रकाश फैलाती ॥
उद्यम रूप सुखद मलयानिल दक्षिण दिश से आता।
शिल्प कमल कलिका कलाप को विना विलम्ब खिलाता ॥
देशी बनी वस्तुओं का अनुराग पराग उड़ाता।
शुभ आशा सुगन्ध फैलाता मन मधुकर ललचाता ॥
वस्तु विदेशी तारकावली करती लुप्त प्रतीची।
विद्वैषी उलूक छिपने की कोटर बनी उदीची ॥
उन्नति पथ अति स्वच्छ दूर तक पड़ने लगा लखाई।
खग 'बन्देमातरम' मधुर ध्वनि पड़ने लगी सुनाई ॥
तजि उपेक्षालस निद्रा उठि बैठा भारत ज्ञानी।
ध्यान परम करुणा वरुणालय बोला शुभप्रद बानी ॥
"उठो आर्य्य सन्तान सकल मिलि बस न बिलम्ब लगाओ।
ब्रिटिश राज स्वातन्त्र्यमय समय व्यर्थ न बैठ बिताओ ॥
देखो तो जग मनुज कहाँ से कहाँ पहुँच कर भाई।
धर्म, नीति, विज्ञान, कला, विद्या, बल, सुमति सुहाई ॥
की उन्नति निज देश, जाति, भाषा, सभ्यता सुखों की।
तुम सब ने सीखी वह बान रही जो खानि दुखों की ॥
बीती जो उसको भूलो सँभलो अब तो आगे से।
मिलो परस्पर सब भाई बँध एक प्रेम धागे से ॥

आर्य्यवंश को करो एक, अब द्वैत भेद विनसाओ।
मन वच कर्म एक हो वेद विदित आदर्श दिखाओ॥
बैठो सब थल एक ध्याय सर्वेश एक अविनाशी।
एक विचार करो थिर मिलकर जग आतङ्क प्रकाशी॥
मिथ्याडम्बर छोड़ धर्म का सच्चा तत्व विचारो।
चारो वेद कथित चारो युग प्रचलित प्रथा प्रचारो॥
चारो वर्णाश्रम के चारो भिन्न धर्म के भागी।
निज निज धर्माचरण यथाविधि करो कपट छल त्यागी॥
सत्य सनातन धर्म ध्वजा हो निश्चल गगन उड़ाओ।
श्रौत स्मार्त कर्म्म अनुशासन के दुन्दुभी बजाओ॥
फूँको शङ्ख अनन्य भक्ति हरि, ज्ञान प्रदीप जलाते।
जगत प्रशंसित आर्य्यवंश जय जय की धूम मचाते॥

(६)

अब तो लखि ये अलि ये अलियन
कलियन मुख चुम्बन करन लगो।
पीवत मकरन्द मनो माते, ज्यों अधर सुधारस में राते,
कहि केलि कथा गुंजरन लगो॥
रस मनहुँ प्रेमघन बरसत घन, निज प्यारी के करि आलिङ्गन
लिपटे लुभाय मन हरन लगो॥

(७)

सम्पति सुजस का न अन्त है विचारि देखा,
तिसके लिये क्यों सोक-सिन्धु अवगाहिये।
लोभ की ललक में न अभिमानियों के तुच्छ,
तेवरों को देख उन्हैं संकित सराहिये॥
दीन गुनी सज्जनों से निपट बिनीत बने,
प्रेमघन नित्य नाते नेह के निबाहिये॥

राग रोष औरों से न हानि लाभ कुछ,
उसी नन्द के किसोर की कृपा की कोर चाहिये ॥

(८)

बगियान बसंत बसेरो कियो, बसिये तिहि त्यागी तपाइयै ना।
दिन काम कुतूहल के जे बने, तिन बीच बियोग बुलाइयै ना॥
घनप्रेम बढ़ाय कै प्रेम अहो, विथा बारि वृथा बरसाइयै ना।
चितै चैत की चाँदनी चाह भरी, चरचा चलिबे की चलाइयै ना॥

(९)

मन की मौज

मन की मौज मौज सागरसी सो कैसे ठहराऊँ ?
जिसका वारापार नहीं उस दर्या को दिखलाऊँ ?
तुमसे नाजुक दिल को भारी भँवरों में भरवाऊँ ?
कहो प्रेमघन मन की बातें कैसे किसे सुनाऊँ ? ॥ १ ॥
तिरछी तिउरी देख तुमारी क्योंकर सीस नवाऊँ ?
हौ तुम बड़े खबीस जानकर अनजाना बन जाऊँ ?
हर्फ़ शिकायत जबाँ प आए कहीं न यह डर लाऊँ ?
कहो प्रेमघन मन की बातैं कैसे किसे सुनाऊँ ? ॥ २ ॥
लूट रहे हो भली तरह मैं जानूँ वले छुपाऊँ ।
करते हो अपने मन की मैं लाख चहे चिल्लाऊँ ॥
डाह रहे हो खूब परा परबस मैं गो घबराऊँ ।
कहो प्रेमघन मन की बातैं कैसे किसे सुनाऊँ ? ॥ ३ ॥

(१०)

कजली-कादम्बिनी

सोहै न तोके पतलून साँवर गोरवा ।
कोट बूट जाकेट कमीच क्यों पहिनि बने बैबून, साँ० गो० ।
काली सूरत पर काला कपड़ा देत किए रङ्ग दून, साँ० गो० ।

अंगरेज़ी कपड़ा छोड़ह कितौ ल्याय लगावः मुहें चून, साँ० गो० ।
दाढ़ी रखिकै बार कटावत और बढ़ाए नाखून, साँ० गो० ।
चलत चाल बिगरैल घोड़ सम बोलत जैसे मजनून, साँ० गो० ।
चन्दन तजि मुँह ऊपर साबुन काहें मलह दुऔ जून, साँ० गो० ।
चूसह चुरुट लाख पर लागत पान बिना मुँह सून, साँ० गो० ।
अच्छर चारि पढ़ेह अंगरेज़ी बनि गये अफलातून, साँ० गो० ।
मिलहि मेम तोहें कैसे जेकर फेयर फेस लाइक दी मून, साँ० गो० ।
बिसकुट, केक, कहाँ तू पैब्या चाभः चना भले भून, साँ० गो० ।
डियर प्रेमघन हियर दयाकर गीत न गावो लेम्बबून, साँ० गो० ।

(११)

भारत-वन्दना

जय जय भारत भूमि भवानी ।

जाकी सुयश पताका जग के दसहूँ दिसि फहरानी ।
सब सुख सामग्री पूरित ऋतु सकल समान सोहानी ॥
जा श्री सोभा लखि अलका अरु अमरावती खिसानी ।
धर्म सूर जित उयो नीति जहँ गई प्रथम पहिचानी ॥
सकल कला गुन सहित सभ्यता जहँ सो सबहिं सुझानी ।
भए असंख्य जहाँ जोगी तापस ऋषिवर मुनि ज्ञानी ॥
विबुध बिप्र विज्ञान सकल विद्या जिनते जग जानी ।
जग विजयी नृप रहे कबहुँ जहँ न्याय निरत गुन खानी ॥
जिन प्रताप सुर असुरनहू की हिम्मत बिनसि बिलानी ।
कालहु सम अरि तृन समझत जहँ के क्षत्री अभिमानी ॥
बीर वधू बुध जननि रहीं लाखन जित सती सयानी ।
कोटि कोटि जित कोटि पती रत बनित बनिक धन दानी ॥

सेवत शिल्प यथोचित सेवा सूद समृद्धि बढ़ानी।
जाको अन्न खाय ऐंड़ति जग जाति अनेक अघानी॥
जाकी सम्पति लुटत हजारन बरसनहूँ न खोटानी।
सहस सहस बरिसन दुख नित नव जो न ग्लानि उर आनी॥
धन्य धन्य पूरब सम जग नृपगन मन अजहुँ लोभानी।
प्रनमत तीस कोटि जन अजहूँ जाहि जोरि जुग पानी॥
जिनमें झलक एकता की लखि जग मति सहमि सकानी।
ईस कृपा लहि बहुरि प्रेमघन बनहु सोई छवि छानी॥
सोइ प्रताप गुणजन गर्वित ह्वै भरी पुरी धन धानी।
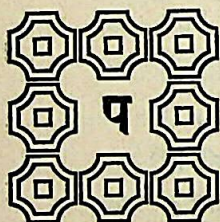
विनायकराव

पण्डित विनायकराव का जन्म सं० १९१२ की पौष शुक्ला १० को ज़िला सागर में हुआ। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके बचपन में ही इनके पिता का देहान्त हो गया था। सागर में ही इनका विद्यारम्भ हुआ। वहीं के हाई स्कूल से इन्होंने एंट्रेंस पास किया। फिर वहाँ से ये जबलपुर चले आये और सन् १८७५ में वहीं से इन्होंने एफ० ए० की परीक्षा पास की। बी० ए० पढ़ने के लिए इन्हें सरकार से १५) मासिक की छात्र-वृत्ति मिली। किन्तु उन दिनों बी० ए० पढ़ने के लिए लखनऊ जाना पड़ता था। क्योंकि मध्यप्रदेश में कहीं इसके लिए प्रबन्ध नहीं था। कई कारणों से ये लखनऊ न जा सके और यहीं इनकी शिक्षा समाप्त हो गई।

सन् १८७६ में मुड़वारा के मिडिल स्कूल में २५) मासिक पर ये अध्यापक नियुक्त हुये। कुछ दिनों के बाद सागर के हाई स्कूल में सहकारी शिक्षक होकर चले गये, और तीन ही मास पीछे ५०) मासिक पर

हेडमास्टर होकर फिर मुड़वारा चले आये। वहाँ से डेढ़ वर्ष पीछे ६०) मासिक पर जबलपुर के नार्मल स्कूल में चले गये। वहाँ से ७०) मासिक वेतन पर फिर मुड़वारा गये। डेढ़ वर्ष मुड़वारा में रहकर फिर कुछ दिनों के लिये १५०) मासिक वेतन पर मध्यप्रदेश शिक्षा-विभाग के इन्सपेक्टर जनरल के दफ्तर में चले गये। कुछ समय पीछे १००) मासिक पर होशंगाबाद हाई स्कूल के हेडमास्टर नियुक्त हो गये। इनकी पढ़ाई का फल बहुत अच्छा हुआ करता था। जिस समय ये होशंगाबाद हाई स्कूल के हेड मास्टर थे, उस समय इनके स्कूल से मेट्रिकुलेशन में भेजे गये सब छात्र पास होगये थे। उस प्रान्त में इनकी बहुत प्रसिद्धि होगई थी। एक बार वहाँ के चीफ़ कमिश्नर ने तार-द्वारा इन पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की थी।

कुछ समय के पश्चात् ये १७५) मासिक पर जबलपुर के नार्मल स्कूल के सुपरिण्टेण्डेण्ट नियत हुये, और वहाँ ५ वर्ष तक रहे। फिर २२५) पर नागपुर के ट्रेनिङ्ग इंस्टीट्यूशन में बदल दिये गये। वहाँ इन्होंने कई बी० ए० पास लोगों को पढ़ाकर पास कराया।

इसके पीछे जब ट्रेनिङ्ग इन्स्टीट्यूशन जबलपुर उठकर चला आया, तब ये भी उसी के साथ वहीं आगये। इस तरह ३४ वर्ष तक इन्होंने शिक्षाविभाग में बड़ी योग्यता से काम करके ख़ूब प्रसिद्धि पाई। चीफ़ कमिश्नर की वार्षिक रिपोर्ट और कितने ही अंगरेज़ अफ़सरों के दिये हुये सार्टिफिकेटों से इनकी योग्यता का अच्छा पता चलता है। ये कुछ वर्षों से सरकारी पेंशन पाते थे और सकुटुम्ब जबलपुर में रहते थे। इनके तीन पुत्र तथा तीन कन्याएँ हैं। ज्येष्ठ पुत्र पं० परशुराम बी० ए० पहले हरदा में स्कूलों के डिप्टी इन्स्पेक्टर थे। आजकल नौकरी से इस्तीफ़ा देकर ये विरक्त हो रहे हैं। गीता, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ पर उनमें विशेष श्रद्धा जाग्रत हुई है और वे उसीमें तन्मय हो रहे हैं। देखें, ईश्वर उनके द्वारा देशहित का क्या कार्य कराना चाहता है।

मुड़वारा ज़िला स्कूल में जब पण्डित विनायकरावजी हेडमास्टर थे, तब वहाँ इन्होंने एक संस्कृत पाठशाला खोली थी, जो अभी तक अच्छी तरह से चल रही है।

पण्डित विनायकरावजी हिन्दी-भाषा के बड़े प्रेमी थे। इन्होंने १९ पुस्तकें लिखी थीं। जिनमें से कई मध्यप्रदेश के स्कूलों में पढ़ाई भी जाती हैं। हिन्दी की पहली, दूसरी, तीसरी और चौथी पुस्तकों के लिए इन्हें १०००) पारितोषिक भी मिला था। वैज्ञानिक-कोश के सम्पादन के समय काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा की प्रार्थना पर मध्य-प्रदेश के शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर ने इन्हें प्रतिनिधि बनाकर भेजा था। उसी समय से ये नागरी-प्रचारिणी-सभा के सभासद होगये।

जबलपुर के श्रीभानु-कवि-समाज से इन्हें "कवि नायक" और भारत धर्म महामण्डल से "साहित्य-भूषण" की उपाधि मिली थी। खेद है कि गतवर्ष इनका देहान्त हो गया।

पण्डितजी ने नौ वर्ष के परिश्रम से तुलसी-कृत रामायण की बड़ी ललित "श्रीविनायकी टीका" लिखी थी। इनकी रची हुई कुल पुस्तकों के नाम ये हैं:—

क्षेत्र व्यवहारिक तत्व का हल, स्वच्छता की पहली पुस्तक, संसार की बाल्य अवस्था, व्याख्या-विधि, हिन्दी की चौथी पुस्तक का सुगम पंथ, संक्षिप्त पदार्थ-विज्ञान-विटप, आरोग्य-विद्या-प्रश्नोत्तरी, व्यवहारिक रेखागणित, जटल काफ़िया, हिन्दी की पहिली, दूसरी, तीसरी, चौथी पुस्तक, परीक्षा पास, शिक्षा-प्रबंध, रामचरित मानस की श्री विनायकी टीका, अयोध्या-रत्न-भण्डार, काव्य-कुसुमाकर प्र० भा०, काव्य-कुसुमाकर द्वि० भा०।

आगे हम इनकी कविताओं के उदाहरण लिखते हैं:—

(१)

धारिये धीरज धर्म सनातन सत्य सदा समता न बिसारिये।
सारिये भक्ति करोर कलान कै मत्त मलीन महामन मारिये॥
मारिये मोह मदादिक मत्सर गाय गोविन्द गुमानहिं गारिये।
गारिये द्वैत विचार 'विनायक' नायक रामसिया 'चित धारिये'॥

(२)

आतम ही रथवान प्रमान शरीरहिं जो रथ रूप बनावै।
बुद्धि बने वर सारथी आय सु मानस केरि लगाम लगावै॥
इन्द्रिय बाजि जुते जब जाय कुचाल सयत्न सुचाल चलावै।
सत्य "विनायक" विष्णु समीप अपारहि मारग पार सु पावै॥

(३)

कलिकाल विहाल किये नरनारि कहूँ दुशकाल विरोध अहै।
पुनि फूट परस्पर है न विवेक अजानपने को सँचार रहै॥
धरि के मन धीर विचार समेत हमेश रमेश पदाब्ज गहै।
"कवि नायक" पार पयोनिधि को रघुनायक नाम अधार लहै॥

(४)

पुन्यहि पूरण पाप विनाशन निर्मल कीरति भक्ति बढ़ावन।
दायक ज्ञान रु घायक मोह विशुद्ध सुप्रेममयी मुद पावन॥
श्रीमदरामचरित्र सुमानस नीर सुभक्ति समेत नहावन।
"नायक" ते जन सूरज रूप जहान के ताप को ताप नशावन॥

(५)

भासत एक गुरू मदिरा गुरु दो मिलि मत्तगयन्द गह्यौ।
गोल समेत चकोर भयो सुमुखी सत जालग चन्द लह्यो।
आठहु भागन होत किरीट सु दुर्मिल सागण आठ चह्यो।
भासत रा अरसात सुपिङ्गल जासत यागण वाम कह्यो॥

(६)

जनक दुलारी सुकुमारी सुधि पाई पिय,
चहत चलन बन इच्छा नरनाह की।
उठि अकुलाय घबराय संग जान हेतु,
सकुचति विनय सुनाई चित चाह की॥
सासु समझाई राम विविध बुझाई कहि,
बन दुखदाई कठिनाई बहु राह की।
पति पद प्रेम लखि "नायक" कहत सत्य,
तिया हुती पतिव्रता मानी नाहीं नाह की॥

(७)

प्रसन्नता जो न लही सुराज से।
गही न ग्लानी बनवास दुःख से॥
मुखच्छवी श्रीरघुनाथ की अहो!
हमैं सदा सुन्दर मंगलीय हो॥

(८)

अहो सोच कन्या विवाह का वृथा हृदय नर धरते हैं।
सर्वशक्तियुत ईश कृपानिधि जोड़ी निर्मित करते हैं॥
भावी वर को जन्म प्रथम दे कन्या पीछे रचते हैं।
"नायक" सोच करो मत कोई विधि के अङ्क न बचते हैं॥

(९)

गाथा राम चरित्र की, सांसारिक व्यवहार।
ईशभक्ति नृप गुरु भगति, मात पिता को प्यार॥
मात पिता को प्यार, सत्यता की दृढ़ताई।
अटल तिया पति प्रेम, मन्त्रि वर की चतुराई॥
कहत विनायकराव, भाइ भाई को साथा।
सेवक सेव्य सुप्रेम, पूर्ण रघुनायक गाथा॥

(१०)

कन्या सुन्दर वर चहै, मातु चहै धनवान।
पिता कीर्त्ति युत स्वजन कुल, अपर लोग मिष्टान ॥

(११)

नाहिं सराहिये स्वर्ण गिरि, जहँ तरु तरुहि रहाहिं।
धन्य मलयगिरि जहँ सकल, तरु चन्दन हुइ जाहिं ॥

(१२)

कविगण कविता करहिं जो, ज्ञानवान रस लेइ।
जन्म देइ पितु पुत्रि को, पुत्रि पतिहि सुख देइ ॥

प्रतापनारायण मिश्र

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का जन्म आश्विनकृष्ण ९, सं० १९१३ में हुआ था। इनके पिता का नाम पण्डित संकटाप्रसाद था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण बैजे गाँव (ज़ि० उन्नाव) के मिश्र थे। पण्डित संकटाप्रसाद अच्छे ज्योतिषी थे। वे प्रतापनारायण को भी ज्योतिर्विद् बनाना चाहते थे। पर इनका चित्त ज्योतिष में लगता ही न था। तब इनके पिता ने लाचार होकर इन्हें स्कूल में भर्ती करा दिया। वहाँ भी इनका जी न लगा। तब सं० १९३२ के लगभग इन्होंने स्कूल से अपना पिंड छुड़ाया। इसके कुछ दिन बाद पंडित संकटाप्रसाद की मृत्यु हो गई। इससे इनकी शिक्षा एक दम से बन्द ही हो गई। स्कूल में इनकी दूसरी भाषा हिन्दी थी। अंग्रेज़ी का इनको बहुत साधारण ज्ञान था। परन्तु अपने परिश्रम से बड़े होने पर इन्होंने उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी।

प्रतापनारायण का रङ्ग गोरा, नाक बहुत बड़ी, शरीर दुबला और कमर जवानी ही में झुक गई थी। ये सिर पर बड़े बड़े बाल और आगे दोनों ओर काकुलें रखते थे। इनको लम्बी दाढ़ी रखने का भी शौक़ था। इनकी नाक दिन भर नास फाँका करती थी। इससे इनकी दाढ़ी और मूछों पर भी थोड़ा बहुत नास छाया रहता था।

प्रतापनारायण बड़ी मौजी तबीयत के थे। हमेशा अपने ही रङ्ग में मस्त रहते थे। ये ऐसे स्वच्छन्द स्वभाव के मनुष्य थे कि जब कभी कोई ज़रा भी इनकी तबीयत के खिलाफ़ कुछ कह देता या कोई काम कर बैठता, तब ये उसका ज़रा भी मुलाहज़ा न करते थे। कभी कभी ये साधारण बातों पर भी बिगड़ उठते थे। जिन लोगों से इनका मैत्री-भाव था, कभी कभी उनके यहाँ ये दिन दिन भर पड़े रहते थे और कभी हज़ार बार आरज़ू मिन्नत करने पर भी न जाते थे।

प्रतापनारायण मिश्र जब स्कूल में थे, तब बाबू हरिश्चन्द्र का "कवि-वचन-सुधा" नामक पत्र बहुत उन्नति पर था। उसमें बड़े ही मनोरंजक गद्य-पद्य-मय लेख रहते थे। मिश्रजी उसे तथा बाबू हरिश्चन्द्र की अन्यान्य रचनाओं को बड़े ही चाव से पढ़ा करते थे। उन्हीं को पढ़ने से प्रतापनारायण की प्रवृत्ति कविता की तरफ़ हुई। उन दिनों कानपुर में लावनी गाने वालों का बड़ा ज़ोर-शोर था। प्रसिद्ध लावनीबाज़ बनारसी उस समय प्रायः कानपुर में ही रहा करता था। पंडित प्रताप-नारायण मिश्र को लावनी सुनने का बड़ा चस्का लग गया। ये स्वयं भी मौके मौके पर लावनी की रचना करने लगे। कानपुर के प्रसिद्ध कवि पंडित ललिताप्रसाद त्रिवेदी धनुष-यज्ञ कराने में बड़े निपुण थे। उन्हीं से प्रतापनारायण ने छंदःशास्त्र के नियम सीखे। "ललित" जी को ही ये अपना गुरु मानते थे।

हिन्दी-पत्र पढ़ने का इन्हें लड़कपन से ही शौक़ था। इसी शौक़ से उत्साहित होकर १५ मार्च, १८८३ से इन्होंने "ब्राह्मण" नामक १२

पृष्ठ का एक मासिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया। ब्राह्मण के लेख हास्यरसमय, व्यंगपूर्ण और शिक्षाप्रद होते थे। यह पत्र कोई दस वर्ष तक चलता रहा। बीच में, १८८७ में, एक बार कुछ दिनों के लिये यह बन्द भी हो गया था। मिश्रजी की मृत्यु के बाद खड्गविलास प्रेस के मालिक बाबू रामदीन सिंह ने उसे फिर चलाया। किन्तु वह चला नहीं, बन्द ही हो गया।

सन् १८८९ में पंडित प्रतापनारायण कालाकाँकर गये और वहाँ हिन्दी "हिन्दोस्थान" के सहकारी सम्पादक नियत हुये। किन्तु स्वच्छन्द स्वभाव होने के कारण वहाँ अधिक दिन रह न सके।

जब मिस्टर ब्रैडला विलायत से यहाँ आये थे, तब इन्होंने 'ब्रैडला स्वागत' शीर्षक एक कविता रची थी। उसकी बड़ी प्रशंसा हुई। विलायत तक में उसकी चर्चा हुई थी।

पंडित प्रतापनारायण बड़े काहिल थे। उनके बैठने के स्थान पर कूड़े करकट, अखबार, चिट्ठियाँ कागज़ बिखरे पड़े रहते थे। चिट्ठियों के उत्तर देने में बड़े ही लापरवाह थे। पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र को इन्होंने एक चिट्ठी लिखी थी। उसमें एक जगह चिट्ठियों का उत्तर न देने के विषय में आप लिखते हैं—को सारेन की खैंहसि माँ परै।

मिश्रजी नाटक खेलने में बड़े निपुण थे। एक बार स्त्री का पार्ट लेने के लिये इन्होंने दाढ़ी मोंछ सब मुड़ा डाली थी। ये पूरे मसखरे, दिल्लगीबाज़ और एक प्रकार से फक्कड़ थे। नाटक में अपना पार्ट ये बड़ी खूबी से करते थे।

सामाजिक और धार्मिक बन्धनों की ये अधिक परवा न करते थे। धर्मान्धता इनमें न थी। इनका सिद्धान्त था—"प्रेम एव परोधर्मः।" ये काँग्रेस के पक्षपाती थे और उसे अच्छा समझते थे। मद्रास और प्रयाग की काँग्रेस में ये कानपुर से प्रतिनिधि होकर गये भी थे। इनका शरीर रोग का घर था।

प्रतापनारायण हिन्दी, हिन्दुस्थान के परम भक्त, सुकवि और लेखक थे। इनकी कविता में इनका देशप्रेम अच्छी तरह झलकता है ।

इन्होंने १२ पुस्तकों का भाषानुवाद किया और २० पुस्तकें लिखीं।

अनुवादित पुस्तकों के नाम ये हैं:—

राजसिंह, इन्दिरा, राधारानी, युगलांगुलीय, चरिताष्टक, पञ्चामृत, नीति-रत्नावली, कथामाल, संगीत शाकुन्तला, वर्णपरिचय, सेनवंश और सूबे बंगाल का भूगोल।

लिखित पुस्तकों के नाम ये हैं:—

कलिकौतुक-रूपक, कलि-प्रभाव नाटक, हठी हमीर नाटक, गोसङ्कट-नाटक, जुआरी-खुआरी-प्रहसन, प्रेम-पुष्पावली, मन की लहर, श्रृङ्गार-विलास, दंगल खंड, लोकोक्ति-शतक, तृप्यन्ताम्, ब्रैडला-स्वागत, भारत-दुर्दशा, शैव-सर्वस्व, प्रताप-संग्रह, रसखान-शतक, मानस-विनोद, वर्णमाला, शिशु-विज्ञान और स्वास्थ्यरक्षा।

इनकी कविता सरस और प्रभावोत्पादक होती थी। मन की लहर में इनकी संस्कृत और फ़ारसी कविता के भी नमूने मिलते हैं। इनका देहान्त आषाढ़ शुक्ल ४, सं० १९५१ को हुआ।

यहाँ हम इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं:—

कभी कभी मिश्रजी "ब्राह्मण" की क़ीमत तक, दानग्राही ब्राह्मण की तरह, कविता में माँगते थे। एक नमूना देखिये:—

(१)

विज्ञापन

चार महीने हो चुके, ब्राह्मण की सुधि लेव।
गङ्गा माई जै करैं, हमैं दक्षिणा देव॥ १॥
जो बिनु माँगे दीजिए, दुहुँ दिसि होय अनन्द।
तुम निचिंत हो हम करैं, माँगन की सौगंद॥ २॥

तुर्त दान जौ करिय तो, होय महा कल्यान।
बहुत बकाये लाभ का, समुझ जाव जजमान ॥ ३ ॥
रूपराज की कगार पर, जितने होयँ निसान।
तिते वर्ष सुख सुजसयुत, जियत रहो जजमान ॥ ४ ॥

(२)

हरिगंगा

आठ मास बीते जजमान, अब तो करो दच्छिना दान।
आजु काल्हि जौ रुपया देव, मानौ कोटि यज्ञ करि लेव ॥
माँगत हमका लागै लाज, पर रुपया बिन चलै न काज ॥
जो कहुँ देहौ बहुत खिझाय, यह कौनिउ भलमंसी आय ॥
हँसी खुशी से रुपया देव, दूध पूत सब हमसे लेव ॥
काशी पुन्नि गया माँ पुन्नि, बाबा बैजनाथ माँ पुन्नि ॥

(३)

हिन्दी की हिमायत

चहहु जु साँचौ निज कल्यान। तो सब मिलि भारत संतान ॥
जपो निरन्तर एक ज़बान। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥
तबहिं सुधरिहै जन्म निदान। तबहिं भलो करिहै भगवान ॥
जब रहिहै निसिदिन यह ध्यान। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥

(४)

तृप्यन्ताम्

केहि बिधि वैदिक कर्म होत कब कहा बखानत ऋक, यजु, साम।
हम सपनेहूँ में नहिं जानैं रहैं पेट के बने गुलाम ॥
तुमहिं लजावत जगत जनम ले दुहु लोकन में निपट निकाम ॥
कहैं कौन मुख लाइ हाइ फिर ब्रह्मा बाबा तृप्यन्ताम् ॥ १ ॥
देख तुम्हारे फ़रज़न्दों का तौरो-तरीक़ तुमाओ कलाम ॥

खिदमत कैसे करूँ तुम्हारी अक़्ल नहीं कुछ करती काम ॥
आबे गङ्ग नज़र गुज़रानूँ या कि मये-गुलगूँ का जाम ॥
मुंशी चितरगुपत साहब तसलीम कहूँ या तिरपिन्ताम ॥ २ ॥

(५)

बुढ़ापा

हाय बुढ़ापा तोरे मारे अब तो हम नकन्याय गयन ।
करत धरत कछु बनतै नाहीं कहाँ जान औ कैस करन ॥
छिन भरि चटक छिनै माँ मद्धिम जस बुझात खन होय दिया ।
तैसे निखवख देख परत हैं हमरी अक्किल के लच्छन ॥ १ ॥
अस कुछ उतरि जाति है जीते बाजी बेरियाँ बाजी बात ।
कैस्यो सुधि ही नाहीं आवति मूँडइ काहे न दै मारन ॥
कहा चहौं कुछ निकरत कुछु है जीभ रांड़ का है यहु हालु ।
कोऊ इहि का बात न समझै चाहे बीसन दाँय कहन ॥ २ ॥
दाढ़ी नाक याक माँ मिलिगै बिन दाँतन मुहुँ अस पोपलान ।
दढ़िही पर बहि बहि आवति है कबौं तमाखू जो फाँकन ॥
बार पाकि गै रीरौ झुकिगै मूँड़ौ सासुर हालन लाग ।
हाथ पाँव कछु रहे न आपन केहि के आगे दुख ग्वावन ॥ ३ ॥
यही लकुटिया के बूते अब जस तस डोलित डालित है ।
जेहि का लै कै सब कामेन मा सदा खखारत फिरत रहन ॥
जियत रहैं महराज सदा जो हम ऐस्यन का पालत हैं ।
नाहीं तो अब कोधौं पूँछै केहि के कौने काम के हन ॥४॥

(६)

गोरक्षा

गैया माता तुमका सुमरों कीरत सब ते बड़ी तुम्हारि ।
करौ पालना तुम लरिकन कै पुरिखन बैतरनी देउ तारि ॥

तुम्हरे दूध दही की महिमा जानैं देव पितर सब कोय।
को अस तुम बिन दूसर जिहि का गोबर लगे पवित्तर होय ॥१॥
जिनके लरिका खेती करिकै पालैं मनइन के परिवार।
ऐसी गाइन की रच्छा माँ जो कुछ जतन करौं सो थ्वार।
घास के बदले दूध पियावैं मरि के देंय हाड़ औ चाम।
धनि वह तन मन धन जो आवै ऐसी जगदम्मा के काम ॥२॥
आल्ह खण्ड की पोथी लै कै द्याखौ तनुक लिखा कस आय।
"जहाँ रोसैंयाँ है ऊदन कै भुवरा मुगुल पछारै गाय।"
को अस हिन्दू ते पैदा है जो अस हालु देखि एक साथ।
रकत के आँसुन रोय न उठिहै माथे पटकि दुहत्था हाथ ॥३॥
सब दुख सुख तो जैसे तैसे गाइन की नहिं सुनै गुहार।
जब सुधि आवै मोहिं गैयन की नैनन बहे रकत की धार।
हियाँ की बातें तौ हियनें रहिं अब कम्पू कै सुनो हवाल।
जहाँ के हिन्दू तन मन धन से निसदिन करैं धरम प्रतिपाल ॥४॥

(७)

ग़ज़ल

वो बदख़ू राह क्या जानै वफ़ा की।
'अगर ग़फ़लत से बाज़ आया जफ़ा की' ॥१॥
न मारी गाय गोचारन किया बन्द।
'तलाफ़ी की जो ज़ालिम ने तो क्या की' ॥२॥
मियाँ आये हैं बेगारी पकड़ने।
'कहे देती है शोख़ी नक़्शे पा की' ॥३॥
पुलिस ने और बदकारों को शह दी।
'मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की' ॥४॥
जो काफ़िर कर गया मन्दिर में विदूअत।
'वो जाता है, दुहाई है ख़ुदा की' ॥५॥

शबे क़त्ल आगरे के हिन्दुओं पर ।
'हक़ीक़त खुल गई रोज़े जज़ा की' ॥६॥
ख़बर हाकिम को दें इस फ़िक्र में हाय !
'घटा की रात और हसरत बढ़ा की' ॥७॥
कहा, अब हम मरे साहब कलक्टर ।
'कहा, मैं क्या करूँ मरज़ी ख़ुदा की' ॥८॥
ज़मीं पर किसके हो हिन्दू रहें अब ।
'ख़बर ला दे कोई तहतुस्सरा की' ॥९॥
कोई पूछे तो हिन्दुस्तानियों से ।
'कि तुमने किस तवक्क़ा पर वफ़ा की' ॥१०॥
उसे मोमिन न समझो ऐ "बरहमन" ।
'सताये जो कोई ख़िलक़त ख़ुदा की' ॥११॥

(८)

ग़ज़ल

विवादी बढ़े हैं यहाँ कैसे कैसे ।
'कलाम आते हैं दरमियाँ कैसे कैसे ॥ १ ॥
जहाँ देखिये म्लेच्छ सेना के हाथों ।
मिटे नामियों के निशाँ कैसे कैसे ॥ २ ॥
बने पढ़ के गौरण्ड-भाषा द्विजाती ।
'मुरीदाने पीरे-मुगाँ कैसे कैसे' ॥ ३ ॥
बसो मूर्खते देवि, आर्यों के जी में ।
'तुम्हारे लिये हैं मकाँ कैसे कैसे' ॥ ४ ॥
अनुद्योग आलस्य सन्तोष सेवा ।
'हमारे भी हैं मिहरबाँ कैसे कैसे ॥ ५ ॥
न आई दया हाय गो-भक्षियों को ।
'तड़पते रहे नीमजाँ कैसे कैसे' ॥ ६ ॥

विधाता ने याँ मक्खियाँ मारने को।
'बनाये हैं खुशरू जवाँ कैसे कैसे' ॥ ७ ॥
अभी देखिये क्या दशा देश की हो।
'बदलता है रङ्ग आसमाँ कैसे कैसे' ॥ ८ ॥
हैं निर्गन्ध इस भारती-वाटिका के।
'गुलो लाल ओ अरगवाँ कैसे कैसे' ॥ ९ ॥
हमें वह दुखद हाय भूला है जिसने।
'तवाना किये नातवाँ कैसे कैसे' ॥ १० ॥
प्रताप अब तो होटल में निर्लज्जता के।
'मज़े लूटती है जवाँ कैसे कैसे' ॥ ११ ॥

(९)

प्रार्थना

शरणागतपाल कृपाल प्रभो ! हम को इक आस तुम्हारी है।
तुम्हरे सम दूसर और कोऊ नहिं दीनन को हितकारी है॥
सुधि लेत सदा सब जीवन की अति ही करुना बिस्तारी है।
प्रतिपाल करैं बिन ही बदले अस कौन पिता महतारी है॥
जब नाथ दया करि देखत हौ छुटि जात बिथा संसारी है।
बिसराय तुम्हें सुख चाहत जो अस कौन नदान अनारी है॥
परवाहि तिन्हें नहिं स्वर्गहु की जिनको तव कीरति प्यारी है।
धनि है धनि है सुखदायक जो तव प्रेम सुधा अधिकारी है॥
सब भाँति समर्थ सहायक हौ तव आश्रित बुद्धि हमारी है।
"परताप नरायण" तौ तुम्हरे पद पंकज पै बलिहारी है॥ १ ॥
पितु मात सहायक स्वामि सखा तुमही इक नाथ हमारे हौ।
जिनके कछु और अधार नहीं तिनके तुमही रखवारे हौ॥
सब भाँति सदा सुखदायक हौ दुख दुर्गुन नासनहारे हौ।
प्रतिपाल करौ सगरे जग को अतिसै करुना उर धारे हौ॥

भुलिहैं हम ही तुमको तुमतौ हमरी सुधि नाहिं बिसारे हौ।
उपकारन को कछु अंत नहीं छिन ही छिन जो विस्तारे हौ॥
महराज महा महिमा तुम्हरी समुझैं बिरले बुधिवारे हौ।
शुभ शान्तिनिकेतन प्रेमनिधे! मन मन्दिर के उजियारे हौ॥
यहि जीवन के तुम जीवन हौ इन प्रानन के तुम प्यारे हौ।
तुम सों प्रभु पाय "प्रताप हरी" किहि के अब और सहारे हौ॥

(१०)

भजन

साधो मनुवाँ अजब दिवाना।
माया मोह जनम के ठगिया तिनके रूप भुलाना॥
छल परपंच करत जग धूनत दुख को सुख करि माना।
फिकिर तहाँ की तनिक नहीं है अंत समय जहँ जाना॥
मुखते धरम धरम गोहरावत करम करत मनमाना।
जो साहब घट घट की जानै तेहि तैं करत बहाना॥
तेहि ते पूछत मारग घर को आपहि जौन भुलाना।
'हिय्राँ कहाँ सज्जन कर वासा' हाय न इतनौ जाना॥
यहि मनुवाँ के पीछे चलि के सुख का कहाँ ठिकाना।
जो "परताप" सुखद को चीन्हे सोई परम सयाना॥

(११)

जागो भाई जागो रात अब थोरी।
काल चोर नहिं करन चहत है जीवन धन की चोरी॥
औसर चूके फिर पछितैहो हाथ मींजि सिर फोरी।
काम करो नहिं काम न ऐहैं बातें कोरी कोरी॥
जो कुछ बीती बीत चुकी सो चिंता ते मुख मोरी।
आगे जामे बनै सो कीजै करि तन मन इक ठौरी॥
कोऊ काहू को नहिं साथी मात पिता सुत गोरी॥
अपने करम आपने संगी और भावना भोरी॥

सत्य सहायक स्वामि सुखद से लेहु प्रीति जिय जोरी ॥
नाहि तु फिर "परताप हरी" कोऊ बात न पूछहि तोरी ॥

(१२)

क्रन्दन

तब लखिहो जहँ रह्यो एक दिन कंचन बरसत ।
तहँ चौथाई जन रूखी रोटिहुँ कहँ तरसत ॥
जहँ आमन की गुठली अरु बिरछन की छालैं ।
ज्वार चून महँ मेलि लोग परिवारहिं पालैं ॥
नौन तेल लकरी घासहु पर टिकस लगो जहँ ।
चना चिरौंजी मोल मिलैं जहँ दीन प्रजा कहँ ॥
जहाँ कृषी वाणिज्य शिल्प सेवा सब माहीं ।
देशिन के हित कछू तत्व कहुँ कैसेहु नाहीं ॥
कहिय कहाँ लगि नृपति दबे हैं जहँ रिन भारन ।
तहँ तिनकी धन कथा कौन जे गृही सधारन ॥
जहँ महीप लगि रजीडण्ट सों यहि डर डरहीं ।
अस न होय कहुँ तनक रूठि धन धामहिं हरहीं ॥
तहँ साधारन लोगन की तौ कहा चलाई ।
नित घेरे ही रहत दुसह दारिद दुचिताई ॥
यहि कर केवल हेतु यहै जो नए नए नित ।
कर अरु चन्दा देन परैं प्रति प्रजहि अपरिमित ॥
कछू काम कोउ करैं कहूँ ते कोऊ आवै ।
कहुँ कछु घटना होय हिन्द ही द्रव्य लगावै ॥
लेनहार सुख दुःख आय व्यय कबहुँ न पूछैं ।
देत देत सब भाँति होहिं हम छिन छिन छूछैं ॥
जे अनुशासन करन हेत इत पठये जाहीं ।
ते बहुधा बिन काज प्रजा सों मिलत लजाहीं ॥

जिते दिवस ह्याँ रहहिं तितेकहु लघु अवसर महँ।
जनरञ्जन हित करहि न स्वीकृत कछुक कष्ट कहँ॥
तनिकहु भोग विलास माँहि त्रुटि करन न चहहीं।
नेकहि ग्रीषम लखे पर्वतन कर पथ गहहीं॥
निज इच्छा अनुसार करहिं सब सेत कृष्ण कृति।
कछु दिन महँ चल देहिं विलायत यह कुजोग अति।
चलत जिते कानून इहाँ उनकी गति न्यारी।
जस चाहहिं तस फेरि सकहिं तिन कहँ अधिकारी॥
बड़े बड़े बारिस्टर बहुधा बकि बकि हारैं।
पै हाकिम जन जस जिय चाहैं तस करि डारैं॥
निर्धन निहछल निस्सहाय कर कहुँ न निबाहू।
धनिक चलाक सपच्छ पुरुष पावहिं जय लाहू॥
प्रजा न जानहिं कौन इकट केहि अर्थ बन्यो कब।
पै यह अचरज! तेहिं बन्धन महँ कसे रहैं सब॥
समय परे पर खोय मान धन दण्ड सहै हैं।
घर बाहर के काज छोड़ि दौरतहि रहै हैं॥
उदर हेत जे सिर बेंचन पल्टन महँ जाहीं।
गोरे रङ्ग बिनु ठीक आदरित वेऊ नाहीं॥
गौर स्याम रङ्ग भेद भाव अस दस दिसि छायो।
जिहि नेटिव नामहिं कहँ तुच्छ प्रतिच्छ दिखायो॥
वे बधहू करि कबहुँ कबहुँ कोरे बचि जाहीं।
पै ये कहुँ कहुँ लकुट लेतहू धमकी खाहीं॥
उनके सुख हित जतन करत हाकिम सब रहहीं।
इनके जिय सत संक उठहि जब निज दुख कहहीं॥

विजयानन्द त्रिपाठी
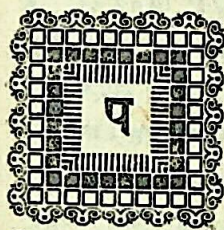
पण्डित विजयानन्द त्रिपाठी, विद्यारत्न, का जन्म गाँव बेलौटी (जि० आरा) में संवत् १९१३, पौष शुक्ल प्रतिपदा, रविवार को हुआ था। इनके पिता पंडित महादेवदत्त बड़े विद्वान्, शान्त और सदाशय थे।

इनका विद्यारम्भ घर ही पर हुआ। इन्होंने अपने पिताजी से ही सारस्वत-चन्द्रिका, सिद्धान्त-कौमुदी, रघुवंश और माघ के कुछ सर्ग पढ़े। १२ वर्ष की अवस्था में ये काशी के क्वीन्स कालेज में भर्त्ती हुए और १३ वर्ष तक इन्होंने पढ़ने का सिलसिला जारी रक्खा। इतने समय में इन्होंने संस्कृत-साहित्य के प्रायः सभी अङ्गों से पूरा परिचय कर लिया। विशेषतः व्याकरण, साहित्य और दर्शनशास्त्रों में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। ये पठनावसर में अपनी योग्यता का परिचय देते हुए सदा कालेज से पुरस्कार और वृत्ति पाते रहे। उस समय की प्रथा के अनुसार इनको कालेज से जो प्रशंसापत्र प्राप्त हुआ है, उससे इनकी योग्यता, सच्चरित्रता और सद्व्यवहार आदि का पूरा पूरा पता मिलता है। कालेज छोड़ने के बाद, संवत् १९३५ में, बड़हर की महारानी के दरबार में, जो उस समय काशी में रहती थीं, त्रिपाठीजी दानाध्यक्ष हुए।

ये जब कालेज में थे, तभी से इनका प्रेम हिन्दी पर हो गया था। उस समय भारतेन्दुजी के अनवरत उद्योग से काशी में साहित्य की खूब चर्चा थी। सभा-सोसाइटियों की भी बड़ी धूम थी। ये उन सब में जाने लगे। इससे इनका परिचय बड़े बड़े लोगों से हो गया। जब कालेज छोड़कर ये बड़हर दरबार में नौकर हुए, तब इन्होंने बाबू रामकृष्ण वर्मा को एक पत्र निकालने और साहित्य की पुस्तकें छापने के लिये उत्साहित किया। लिखने-पढ़ने में सहायता देने का बचन भी दिया। इसका परि-

णाम यह हुआ कि बहुत से प्राचीन हिन्दी-काव्य प्रकाशित हुए और भारत जीवन नामक साप्ताहिक पत्र का अवतार भी हुआ।

जब से भारतजीवन का जन्म हुआ, तब से पण्डित विजयानन्द ने अन्यान्य लेखों के सिवा ५२ अङ्कों तक उसके लिये प्रारम्भिक छप्पय नियमित रूप से लिखे। इन की अनुपस्थिति में कभी कभी भारतेन्दुजी छप्पय लिख दिया करते थे। वह भारतजीवन अबतक किसी तरह जीता है।

उन्हीं दिनों इन्होंने "महामोहविद्रावण" नामक एक पुस्तक संस्कृत से और "सच्चा सपना" बंगला से हिन्दी में लिखी। उक्त दोनों पुस्तकें भारतजीवन प्रेस में छपीं। भारतेन्दुजी की अन्धेर-नगरी नामक पुस्तक के अधिकार के सम्बन्ध में "भारत-जीवन" और "खड्गविलास" प्रेस में परस्पर मुक़द्दमेबाज़ी हो गई। जीत "खड्गविलास" प्रेस की हुई। उस समय त्रिपाठीजी ने "महा अन्धेरनगरी" नामक एक प्रहसन लिखा, जो बहुत अच्छा निकला। उस समय ये उचितवक्ता, सारसुधानिधि, कवि-वचन-सुधा, धर्मदिवाकर, वैष्णव-तोषिणी, हिन्दी-प्रदीप और पीयूषप्रवाह आदि सभी सामयिक पत्रों में गद्य-पद्य लेख दिया करते थे।

इस बीच में काशी के राम-मन्दिर का झगड़ा खड़ा हुआ। वहाँ के सुजन-समाज ने मन्दिर-रक्षिणी समिति (Temple Protection Committee) की स्थापना करके इस विषय में सरकार से प्रार्थनायें की। पूजापाठ में सहायता करने के कारण बड़हर-दरबार से इस मन्दिर का गाढ़ा सम्बन्ध था। इसीसे इनको लोगों ने समिति का सञ्चालक नियत कर दिया। त्रिपाठीजी के यह पद छोड़ने के बाद, १८९१ में, बलवा हुआ। बलवा करने का आरोप इन्हीं पर लगाया गया। ये वहाँ पर उपस्थित न थे। इससे उसका प्रतिवाद न कर सके। उसके १५ वर्ष बाद इन पर मुक़द्दमा चलाया गया। पर वह इन पर साबित न हो सका और ये बेदाग़ बच गये।

इनके भाई पंडित शिवनन्दन त्रिपाठी उस समय विहार-बन्धु के सम्पादक थे। अतएव ये विहारबन्धु में लेख लिखने लगे। उस में इन्होंने हिन्दी के एक दो उपन्यास भी धारावाहिक रूप से निकाले। उसी समय विहारबन्धु में इनकी कविताओं का संग्रह अन्योक्ति-मुक्तावली के नाम से निकला। जिस सुप्रसिद्ध संस्कृत मासिक-पत्रिका संस्कृत-चन्द्रिका में सरस्वती-सम्पादक भी कभी कभी लिखते थे, उसी में ये लाला श्री निवासदास के रणधीर-प्रेम-मोहिनी नाटक का संस्कृतानुवाद निकालते थे। पात्र-भेद से उसमें जैसे अनेक प्रकार की भाषायें हैं, वैसे ही संस्कृतानुवाद में भी इन्होंने प्राकृत, शौरसेनी, मागधी आदि भाषाओं का आश्रय लिया है। इनका यह नाटक सम्पूर्ण और सटीक तैयार है। उसे देखकर इनकी बहुभाषाभिज्ञता पर आश्चर्य्य होता है। सुप्रसिद्ध साहित्य-प्रेमी राजा कमलानन्दसिंह उसे पुस्तकाकार प्रकाशित कराना चाहते थे, पर वे अकस्मात् परलोकवासी हो गये। अतएव वह नाटक (प्रेम-सात्रा-ज्यादर्श) योंही रह गया।

पूर्वोक्त मुक़द्दमें का अन्त हो चुकने पर ये बाँकीपुर के बी० एन० कालेज में वर्षों तक प्रोफ़ेसरी करते रहे। जब वह पद उठा दिया गया, तब बी० एन० कालेजियट स्कूल में हेड पंडित हुए। खेद है कि गतवर्ष बाँकीपुर में इनका स्वर्गवास हो गया।

बाँकीपुर में रहते हुए इन्होंने हिन्दी की कई पुस्तकें लिखीं। जिस रत्नावली नाटिका की प्रस्तावनामात्र का गद्यमय अनुवाद भारतेन्दुजी ने किया था, उसका पूरा अनुवाद इन्होंने गद्य-पद्य में कर दिया है। वह प्रकाशित भी हो गया है। इन्होंने विक्रमोर्व्वशी, मालविकाग्निमित्र और प्रियदर्शिका के भी गद्य-पद्यात्मक अनुवाद कर डाले थे। इनकी "भारतीय इतिहास-पंजिका" नाम की एक पुस्तक भी निकली थी। मेघदूत के समवृत्त और समश्लोकी हिन्दी-अनुवाद की भी रचना इन्होंने की थी। संस्कृत में इनकी बनाई नीति-मुक्तावकी नाम की भी एक पुस्तक

"शारदा" में छपी थी।

इनके लेख पढ़ने और व्याख्यान सुनने में बड़ा आनन्द आता था। जब कभी ये किसी सामयिक स्थिति पर विचार करने और उसका मर्म बताने लगते थे, तब इनकी वक्तृत्व-शक्ति देखकर आदमी दङ्ग रह जाते थे। कभी कभी ये ऐसी बातें बनाते और ऐसी नक़ल करते थे कि हँसी रोके नहीं रुकती थी। ये सुबह शाम संस्कृत पढ़ाते थे। इससे संस्कृत-विद्यार्थियों का ठट्ट इनके यहाँ जमा रहता था। अवशिष्ट समय में ये हिन्दी लिखते पढ़ते थे। इनका स्वभाव बहुत मिलनसार था। निस्पृह तो ये इतने थे कि मुफ़्त काम करते करते इनका जी ऊब जाता था। लेख लिखाने, सभा समितियों में पढ़ने के लिये कविता बनवाने और विज्ञापन आदि तैयार कराने के लिये इनके यहाँ बहुत लोग आया करते थे। ये बड़े स्पष्टवक्ता, दयाशील, मिष्टभाषी और श्रमी पुरुष थे। पुराने ढर्रे के पण्डित होने पर भी इन में यथेष्ट सामयिकता थी। कविता में इनका उपनाम "श्रीकवि" था।

भारतेन्दु का किया हुआ रत्नावली का अनुवाद विष्कम्भक तक ही मिलता है। उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है—"इस नाटिका में मूल संस्कृत में जहाँ छन्द थे, वहाँ मैंने भी छन्द दिये हैं"। यह प्रतिज्ञा करके भी उन्होंने माङ्गलिक श्लोकों के अनुवाद पद्य में नहीं किये। पर पण्डितजी ने दो अनुवाद पद्य में किये हैं। देखिये, मूल श्लोक यह है—

पादाग्रस्थितया मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रतां
शम्भोः संस्पृहलोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराधने
ह्रीमत्याः शिरसीहितः सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया
विश्लिष्यन् कुसुमाञ्जलिर्गिरिजयाक्षिप्तोऽन्तरे पातु वः॥

पद्यानुवाद

सेवा के समै में शम्भुशीश पै चढ़ाइबे को
फूल भरी अञ्जली पधारी उमा नेह सों।

लखि ललचाने तीन लोचन तिलोचन के
थहरी, पसीजी, लजी, पुलकित देह सो ॥
बार बार एड़ी अलगाय कै उचकि लफी,
गई लचि बहुरि पयोधर विदेह सो।
बिखरति देखि दई बीच ही में छोड़ि जाको
जग की सहाय होवे प्रियता सदेह सो ॥

अब हिन्दी का एक संस्कृतानुवाद सुनिये। पद्माकर का एक कबित्त है—

सिन्धु के सपूत सुत सिन्धुतनया के बन्धु मन्दिर अमन्द सुभ सुन्दर सुधाई के। कहै पदमाकर गिरीस के बसे हो सीस तारन के ईस कुलकारन कन्हाई के ॥ हाल ही के विरह बिचारि ब्रजबाल ही पै ज्वाल से जगावत हो ज्वाल ही जुन्हाई के। ऐरे मतिमन्द चन्द ! आवत न तो को लाज ह्वै कै द्विजराज काज करत कसाई के।

संस्कृतानुवाद

त्वं सिन्धोस्तनयश्च सिन्धुतनयाबन्धुः सुधामन्दिरं
तारेशश्च गिरीशशेखरमणिः श्रीकृष्णवंशाङ्कुरः।
भूत्वापि द्विजराज आः विरहिणीस्तैरंशुभिस्तापय—
स्त्वं जिह्रेषि न चन्द्र ! मन्द किमरे कुर्वन्पशुघ्नक्रियाम् ॥

इस हिन्दी--संस्कृत--कविता को यदि अलग अलग पढ़ें तो स्वतन्त्र कविता का आनन्द मिलता है। त्रिपाठीजी की अन्य हिन्दी--कविताएँ सुनिये—

(१)

पर न किसी की दशा एकसी नित रहती है,
पछिवा पुरवा हवा बदलती ही बहती है।
बख़्तियार ने अख़्तियार जब किया यहाँ पर,
रहा खार ही खार बहार गयी अपने घर।

बदल गया एक बार ही, मगध विहार असार हो।
सुख-समृद्धि कैसे रहें, जहाँ न उचित विचार हो॥

(विहार-गौरव से)

(२)

चूनि कै चूनरी है पहिरावति भाव कै जावक देति है पैंया।
आपने हाथन पाटी सँवारि सिँगार सिँगारि कै लेति बलैया॥
कैसी भई कछु जानि परे नहीं 'श्रीकवि' पूछे पै भाषित है या—
जीवननाथ की जीवनमूरि ये मेरिऊ जीवनमूरि है दैया॥

(३)

ध्यावत ही मन बावरो होत मझावत ही मति होति है भोरी।
मोहिनी ती की रुमावली की छबि 'श्रीकवि' भाषत है बरजोरी॥
आपने हाथ मनोज कहारने खैंचि धरी जुग सोनी कमोरी।
नाभी गभीर सुधारस कूप लों है लरकी मखतूल की डोरी॥

(४)

बहत सुगन्ध मन्द शीतल समीर जहाँ भृङ्ग पुञ्ज गुञ्जित निकुञ्ज के कुटीर मैं। रति विपरीत रची दम्पति सप्रीति तहाँ झुकि झुकि झूमि झूमि कीरति लली रमैं॥ भनत विजयानन्द विथुरित केश पाश बगर्‍यो तिया कै गौर सुन्दर शरीर मैं। जनु कनकारविन्द लुण्ठित सेवारन से मन्द मन्द डोलत कलिन्दजा के नीर मैं॥

(५)

शीतल सुगन्ध मन्द बहति बयारि जहाँ भृङ्ग-पुञ्ज गुञ्जित निकुञ्ज के बसेरे में। रति विपरीत हेत लाडिली निहोरे लाल सूधी हुती आय गई नागर के फेरे मैं॥ झूमिबे में गूजरी ललाट ते उचटि परी हीर कनी रूरी डांक बींदुली सो हेरे मैं। 'श्रीकवि' विराजे घनश्यामज के हीतल पै "गरक गई है मानो बीजुरी अंधेरे मै"॥

(६)

भारती अरथ वारि वीचि बिम्ब प्रतिबिम्ब सरिस अभिन्न भये दोऊ दुहूँ हेरे मैं। दूसरो लखै ना मोहि यातें अकुलानी सती जानकी समानी राम ही तल बसेरे मैं ॥ दूसरी लखै ना मोहूँ रामहु छिपे ता ही मैं यातें कढ़ी भारती विवस क्रम फेरे मैं। बीजुरी मैं मानो भये गरक अंधेरो अरु गरक गई है मानो बीजुरी अंधेरे मैं ॥

(७)

कैधों हेमशल श्रृङ्ग जुग पै सिमिटि राजै घन की घटा धौं पाय पद्मली उरोज की। कैधों रतिरानी के सोहाग के सिँधोरे नग नीलम जडित शोभा अति चित्त चोज की ॥ 'श्रीकवि' धौं मत्त ये मिलिन्द जुग सोये आन पलिका विछाय मृदु कलिका सरोजकी। दीरघ द्रगी के उच्च कुच्च पै चुचुक कैधों कैधों सुधा कुम्भ मुख मोहर मनोज की ॥

(८)

कैधौं काम-राज-अभिषेक हेम घट राजै कैधौं कोक जुग हार प्रभा वाहिनी को है। कैधों मत्त मार गजराज कै विराजे कुम्भ कैधों केलि कन्दुक मनोज-भामिनी को है ॥ कैधों कन्द सुभुजमृणालिका को 'श्रीकविजू' कैधों फल लीलालता मनभाविनी को है। कैधों दो सरोज कैधों सम्पुट रतन मञ्जु कैधों विवि उन्नत उरोज कामिनी को है ॥

(९)

केलिके सदन सो गहन भयो बाँसवारो त्रिविध समीर सी बयारि भयी लहरी। भूमि भई सेज सी पराग अंगराग सो भो ग्रीवा भयो गडुआ सो झार सो मसहरी ॥ 'श्रीकवि' सँकाने विरहागि झरसाने दोऊ मिलि सरसाने को बखाने प्रीति गहरी। सूर भयो चन्द सो प्रकाश भयो चाँदनी सो शरद निशा सी भई जेठ की दुपहरी ॥

अम्बिकादत्त व्यास

साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने विहारी-विहार में "संक्षिप्त निज वृत्तान्त" स्वयं लिखा है। उन्हीं के शब्दों में हम यहाँ उनके संक्षिप्त वृत्तान्त का भी संक्षिप्त उद्धृत करते हैं। इससे पाठकों को जीवनी के साथ ही साथ व्यासजी के गद्य का भी ढंग मालूम हो जायगा।

"राजपुताने में जयपुर के समीप भानपुर (मानपुर ?) नामक ग्राम चिरकाल से प्रसिद्ध विद्वत्स्थान है। वहां के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद पं० ईश्वरराम जी गौड़ थे। इन के प्रपौत्र पंडित हरिजी रामजी राजाश्रय के कारण रावतजी की धूला नामक ग्राम में रह गये। परन्तु उनके पुत्र पंडित राजारामजी धूला से सम्बन्ध छोड़ सकुटुम्ब काशी में आ बसे, और अपने गुण-गौरव से काशी के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी कहाये। इनके अनेक सन्तानों में चिरञ्जीवी दोही पुत्र हुए, ज्येष्ठ पंडित दुर्गादत्तजी और कनिष्ठ पंडित देवीदत्तजी। ये पंडित दुर्गादत्तजी वेही हैं जो कविमंडल में दत्त कवि प्रसिद्ध हैं। ये कभी जयपुर में भी जाके कुछ दिन रह जाते थे और कभी काशी में भी रहते थे। इनके द्वितीय पुत्र का जन्म जयपुर ही में, सिलावटों के महल्ले में, सं० १९१५ चैत्र शुक्ल ८ को हुआ। वही मैं हूँ। सं० १९१६ में मेरे पूज्य पिता पंडित दुर्गादत्तजी जयपुर से काशी आये।

शास्त्रानुसार पंचम वर्ष से मेरी शिक्षा का आरम्भ किया गया। मेरी माता, बड़ी बहनें और दादी तथा चाची भी पढ़ी थीं। मेरी शिक्षा चतुरस्र होने लगी। दस वर्ष के वय में मैं हिन्दी-भाषा में कुछ कुछ कविता करने लग गया था। परन्तु मेरी कविता जो सुनता था, वह कहता था कि इनकी बनाई कविता नहीं है, पिता जी से बनवाई है। सं० १९२६ में जोधपुर के राजगुरु ओझा तुलसीदत्तजी काशी में आये। इनने भी मेरी कविता

सुन वही आशंका की कि इस छोटे वय में ऐसी अच्छी कविता का होना बहुत कठिन है। इस संदेह की निवृत्ति के लिए उनने एक दिन समस्या दी और कहा कि मेरे सामने पूरी करो।

समस्या—मूँदि गई आँखैं तब लाखैं कौन काम की।

मैंने तत्क्षण कवित्त बनाया, सो यह है :—

चमकि चमाचम रहे हैं मनिगन चारु
सोहत चहूँधा धूम धाम धन धाम की।
फूल फुलवारी फल फैलि कै फबे हैं तऊ
छवि छटकीली यह नाहिन अराम की॥
काया हाड़ चाम की लै राम की विसारी सुधि
जामकी को जानै बात करत हराम की।
अम्बादत्त भाखैं अभिलाषैं क्यों करत झूठ
मूँदि गई आखैं तब लाखैं कौन काम की॥

ओझाजी ने पारितोषिक, सर्वाङ्ग के दिव्य वस्त्र तथा प्रशंसापत्र देकर गुणग्राहिता प्रकट की। गुणियों के समाज में इसी समय मेरा नाम फैला।

ग्यारह वर्ष के वय में मैं अमरकोष; रूपावली और कुछ काव्य समाप्त कर पंडित कृष्णदत्तजी से लघुकौमुदी पढ़ने लगा। श्रीमद्भागवत दशम स्कंध पिताजी से पढ़ता था। और पंडित ताराचरण तर्करत्न भट्टाचार्य के यहाँ साहित्य-दर्पण और सिद्धान्त-लक्षण पढ़ना आरम्भ किया।

जिस समय मेरा बारह वर्ष का वय था उसी समय एक तैलङ्ग वृद्ध अष्टावधान काशी में आये और प्रसिद्ध गुणिप्रिय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी के यहाँ अपना अष्टावधान-कौशल दिखलाया। बाबू हरिश्चन्द्रजी ने पंडित की ओर दृष्टि देकर कहा कि इस समय काशीवासी भी कोई चमत्कार इनको दिखलाते तो काशी का नाम रह जाता। यह सुन सब तो चुप रहे, परन्तु मेरे पूज्य पिता ने कहा कि अच्छा, यह बालक एक सरस्वती मंत्र कविता करता है सो देखिये। मेरे आगे लेखनी, मसि, पत्र खसकाये

गये। मैंने एक पत्र पर आठ आठ कोष्ठ की चार पंक्ति वाला आयत यंत्र बनाया और पूछा कि किस पदार्थ का वर्णन हो। बाबू हरिश्चन्द्र के सहोदर अनुज बाबू गोकुलचन्द्रजी ने कौतुकपूर्वक कहा कि इस घड़ी का वर्णन कीजिए। मैंने कहा—"इन कोष्ठों में जहाँ जहाँ कहिये, मैं कोई कोई अक्षर लिखता जाऊँ, सूधा बाँचने में श्लोक होगा"। इसका भावार्थ तैलङ्ग शतावधान को समझा दिया गया। वे जिस जिस कोष्ठ में बताते गये, वहाँ वहाँ मैं अक्षर लिखता गया। अंत में यह श्लोक प्रस्तुत हुआ—

घटी सुवृत्ता सुगतिर्द्वादशाङ्क समन्विता।
उन्निद्रा सततं भाति वैष्णवीव विलक्षणा॥

साधुवाद के अनन्तर शतावधान ने कहा—"सुकविरेषः"। बाबू हरिश्चन्द्रजी ने "इससे बढ़ के आपको क्या दें" कहा। एक प्रशंसापत्र लिख दिया, उसमें "काशी-कविता-वर्द्धिनी सभा" से सुकवि पद मिला, इसकी सूचना दी।

तेरह ही वर्ष के वय में मैं पितृचरण सहित डुमरांव राजधानी में आया। यहाँ के राजा महाराज राधिकाप्रसाद सिंह मेरी कविता सुन अति प्रसन्न हुये।

क्रमशः मुझको इधर तो सांख्य, योग, वेदान्त पढ़ने का व्यसन हुआ और उधर संगीत में सितार, जलतरङ्ग, नसतरङ्ग आदि का। सं० १९३२ में काशी के गवर्नमेंट कालिज में एंग्लो संस्कृत विभाग में मैंने नाम लिखाया। अंग्रेज़ी भी कुछ कुछ समझ चला। अपने बहनोई पंडित वासुदेवजी से वैद्य-जीवनादि छोटे छोटे वैद्यक ग्रंथ भी पढ़ने लगा। मैंने बंगभाषा में भी परिश्रम आरम्भ किया और धीरे धीरे हिन्दी के लेख लिखने लगा। इन दिनों मेरा और भारत-जीवन के सम्पादक बाबू रामकृष्ण का अधिक संघट्ट रहता था और बाबू देवकीनन्दन, बाबू अमीर सिंह और बाबू कार्तिकप्रसाद प्रभृति हम लोगों के अंतरङ्ग मित्र थे।

महाराज मिथिलेश का राज्याभिषेक-समय आसन्न था। उनके पं०

युगलकिशोर पाठकजी के द्वारा राजाज्ञा पाकर मैंने महाराज के लिए प्रसिद्ध सामवत नाटक बनाया।

सं० १९३४ में एंग्लो की उत्तम वर्ग तक की पढ़ाई मैंने समाप्त की। इसी वर्ष अभिनव स्थापित काश्मीराधीश के संस्कृत कालेज में मैंने नाम लिखवाया। वहाँ परीक्षा दी। कालिज की प्रधान अध्यक्षता जगत्प्रसिद्ध स्वामी विशुद्धानन्दजी के हाथ में थी। इनने यावत्पंडितों के समक्ष मुझे व्यास पद दिया। यों तो मैं पहले ही से व्यासजी कहा जाता था। परन्तु अब वह पद और भी पक्का हो गया।

सं० १९३७ में काशी गवर्नमेंट कालिज में मैंने आचार्य परीक्षा दी। इस वर्ष साहित्य में १३ और व्याकरण में १५ छात्र परीक्षा देने गये थे। उनमें साहित्य में केवल मैं उत्तीर्ण हुआ और व्याकरण में २ छात्र उत्तीर्ण हुए। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के कारण गवर्नमेंट से मुझे साहित्याचार्य-पद मिला। सं० १९३१ में तो मेरी माता का परलोक होगया था। सं० १९३७ के आरम्भ ही में मेरे पूज्य पिता का भी काशीवास हो गया। इस कारण मैं अति दुःखित था। ऋण अधिक हो गया। और आश्चर्य यह है कि इसी अवस्था में मुझे आचार्य-परीक्षा पास करना पड़ा था, जो ईश्वर की कृपा ही से हुआ।

थोड़े ही दिनों के अनन्तर पोरबन्दर के गोस्वामी वल्लभ-कुलावतंस श्रीजीवनलालजी महाराज से मुझे परिचय हुआ। वे मुझसे कुछ पढ़ने लगे। उनके साथ साथ कलकत्ते गया। वहाँ सनातन-धर्म के विभिन्न विषयों पर मेरी २८ वक्तृताएँ हुईं। कई सभाओं में बङ्गदेशीय पंडितों से गहन शास्त्रार्थ हुए।

काशी में आने पर मैंने वैष्णव-पत्रिका नामक मासिक पत्र निकाला। उस समय मुझे ऐसा अभ्यास हो गया था कि २४ मिण्ट में १०० श्लोक बना लेता था। इसको देखकर काशी के ब्रह्मामृत-वर्षिणी सभा के सभ्य

पंडितों ने सं० १९३८ के माघ मास में मुझे "घटिकाशतक" पद सहित एक चाँदी का पदक दिया।

जीविका के अभाव से मैं कष्टग्रस्त था, और ऋण सिर पर सवार था। सं० १९४० में बनारस कालिज के प्रिंसिपल ने मुझे मधुबनी संस्कृत स्कूल का अध्यक्ष बना दरभङ्गे ज़िले में भेज दिया। सं० १९४३ में इन्स्पेक्टर ने मुज़फ्फ़रपुर ज़िला स्कूल में मुझे हेड पण्डित नियत किया। सं० १९४४ में भागलपुर ज़िला स्कूल क्षतिग्रस्त हो रहा था। इन्स्पेक्टर ने मुझे वहाँ भेज दिया। सं० १९४५ में सामवत नाटक खड्गविलास में छपकर तैयार हुआ। महाराज मिथिलेश के अर्पित हुआ। महाराज बहादुर ने भी अपनी योग्यतानुसार मेरा सम्मान किया। सं० १९४८ में बिहारी-बिहार कई वर्ष के परिश्रम से मैंने बनाकर समाप्त किया। पर किसी ने यह पुस्तक हस्तलिखित ही चुरा लिया। पुनः इसको बहुत श्रम से तैयार किया। सं० १९५० में छुट्टी लेकर देश-भ्रमण के लिये मैं चला। काशी की महासभा में काँकरौली-नरेश गोस्वामी बालकृष्णलाल महाराज ने मुझे "भारतरत्न" पद सहित सुवर्ण-पदक दिया। सनातन-धर्म-महामण्डल दिल्ली से "बिहारभूषण" पद के साथ सोने का तगमा मुझे मिला। महाराजाधिराज श्रीअयोध्यानरेश ने मुझे "शतावधान" पद सहित सुवर्ण-पदक तथा सम्मान-पत्र दिये और बम्बई में श्रीगोस्वामी घनश्यामलालजी महाराज ने सभा कर "भारत-भूषण" पद सहित सुवर्ण-पदक दिया।

एक समय महाराज जयपुर के प्रधान सेनापति ठाकुर हरिसिंह ने मुझे वेद के मंत्रार्थ की समस्या दी। मैं उसी दिन आमेर का महल * देख के आया था, सो यह पूर्ति की—

---

* इसी महल की प्रशंसा में बिहारी ने भी कहा है:—

प्रतिबिम्बित जयसाह दुति, दीपति दर्पन धाम।
सब जग जीतन को कियो, कायव्यूह जनु काम॥

प्रविष्टो राजभवने प्रतिबिम्बैर्न को भवेत् ।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥"

व्यासजी ने यहाँ तक अपनी जीवनी स्वयं लिखी है, जो बिहारी-बिहार में प्रकाशित है ।

भागलपुर से व्यासजी की बदली छपरा को हुई थी । उस समय व्यास जी की संतान में सात वर्ष के एक पुत्र राधाकुमार * और एक कन्या थी । इसके बाद इन्हें गवर्नमेंट पटना कालेज में प्रोफेसर का पद मिला । परन्तु ये शरीर से अस्वस्थ रहते थे । मानो दैव ने उस पद का भोग इनके भाग्य में लिखा ही न था । सं० १९५७ (१९ नवम्बर, सन् १९००) में, काशी में व्यासजी ने शरीर त्याग किया ।

बिहार में जो सब से बड़ा काम व्यासजी ने किया, वह "संस्कृत-संजीवनी समाज" का स्थापित करना है । इस समाज के द्वारा बिहार की अनिश्चित शिक्षा-प्रणाली का ऐसा सुधार हुआ कि जिससे अब सैकड़ों छात्र प्रति वर्ष संस्कृत शिक्षा पाकर उपाधि प्राप्त करते हैं । व्यासजी शतावधान थे । अनेक गुणों के लिए प्रख्यात थे । राजा महाराजाओं के यहाँ सम्मान पाते थे । संस्कृत के सिवाय बंगला, मराठी, गुजराती और अंग्रेज़ी आदि भाषायें भी जानते थे । किन्तु इतने पर भी अर्थाभाव से दुःखी और ऋणग्रस्त थे ।

व्यासजी ने छोटी बड़ी मिलाकर संस्कृत और हिन्दी में कुल ७८ पुस्तकें लिखी हैं । उनमें से कुछ प्रकाशित, कुछ अप्रकाशित और कुछ अपूर्ण हैं । सब पुस्तकों के नाम नीचे लिखे जाते हैं:—

प्रस्तार-दीपक, गणेश-शतक, शिव-विवाह, संख्या-सागर-सुधा, पातञ्जल-प्रतिबिम्ब, कुण्डली-दर्पण, सामवत नाटक, इतिहास संक्षेप, रेखा-गणित

* खेद है कि, पंडित राधाकुमार का भी सं० १९७७ में देहान्त हो गया ।

(श्लोकबद्ध), ललिता नाटिका, रत्नपुराण, आनन्द-मंजरी, चिकित्सा-चमत्कार, अबोध निवारण, गुप्ताशुद्धि-प्रदर्शन, ताश-कौतुक-पचीसी, समस्या-पूर्ति-सर्वस्व, रसीली कजरी, द्रव्य-स्तोत्र, चतुरङ्ग-चातुरी, गोसंकट नाटक, महाताश-कौतुक पचासा, तर्क-संग्रह भाषाटीका, सांख्य-तरङ्गिणी, क्षेत्र-कौशल, पंडित-प्रपंच, आश्चर्य वृत्तान्त, छन्दः प्रबंध, रेखागणित भाषा, धर्म की धूम, दयानन्द-मत-मूलोच्छेद, दुःख-द्रुम-कुठार, पावस-पचासा, दोषग्राही ओ गुणग्राही, उपदेश-लता, सुकवि-सतसई, मानस-प्रशंसा, आर्य-भाषा सूत्रधार, भाषा भाष्य, पुष्पवर्षा, भारत-सौभाग्य, बिहारी-बिहार, रत्नाष्टक, मन की उमंग, कथा-कुसुम, पुष्पोपहार, मूर्तिपूजा, संस्कृताभ्यास पुस्तक, कथा-कुसुम-मालिका, प्राकृत-प्रवेशिका, संस्कृत-संजीवन, प्राकृत गूढ़ शब्दकोष, अनुष्टुब्लक्षणोद्धार, शिवराज-विजय, बाल व्याकरण, हो हो होरी, झूलन झमक, स्वर्ग-सभा, विभक्ति-विभाग, पढ़े पढ़े पत्थर, सहस्र नाम रामायण, गद्य-काव्य-मीमांसा (संस्कृत), मरहट्ठा नाटक, साहित्य-नवनीत, वर्ण-व्यवस्था, बिहारी-चरित, आश्रम-धर्म-निरूपण, अवतार कारिका, अवतार-मीमांसा, बिहारी-व्याख्याकार चरितावली, पश्चिम यात्रा, स्वामि चरित, शीघ्र लेखप्रणाली, गद्य-काव्य-मीमांसा (हिन्दी), घनश्याम-बिनोद, रांची यात्रा, निज वृत्तान्त ।

"बिहारी बिहार" में व्यासजी ने बिहारी के दोहों पर कुण्डलियाँ रची हैं। बिहारी ने दोहे रूपी छोटे छोटे घड़ों में जो अमृत भरा है, व्यासजी ने कुण्डलियों की लपेट से उसे छलका कर बाहर लाने का प्रयत्न किया है। कविता में ये अपना उपनाम "सुकवि" रखते थे।

यहाँ हम व्यासजी की हिन्दी-कविता के कुछ नमूने उनके ग्रन्थों से उद्धृत करते हैं :—

(१)

"मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाईं परे, श्याम हरित दुति होय ॥"

श्याम हरित दुति होय परत तन पीरी झाईं ।
राधाहू पुनि हरी होत लहि स्यामल छाईं ॥
नयन हरे लखि होत रूप अरु रङ्ग अगाधा ।
"सुकवि" जुगुल छवि धाम हरहु मेरी भव बाधा ॥

(२)

"सोहत ओढ़े पीतपट, स्याम सलोने गात ।
मनो नीलमनि सैल पर, आतप पर्‍यो प्रभात ॥"
आतप पर्‍यो प्रभात ताहि सों खिल्यो कमल मुख ।
अलक भौंर लहराय जूथ मिलि करत विविध सुख ॥
चकवा से दोउ नैन देखि इहिँ पुलकत मोहत ।
"सुकवि" बिलोकहु स्याम पीतपट ओढ़े सोहत ॥

(३)

"इन दुखियाँ अँखियान कों, सुख सिरजोई नाहिँ ।
देखै बनैं न देखते, अनदेखे अकुलाहिँ ॥"
अनदेखे अकुलाहिँ हाय आँसू बरसावत ।
नेह भरेहू रूखे ह्वै अति जिय तरसावत ॥
"सुकवि" लखतहू पलक कलप सत सरिस सुहाइ न ।
प्रान जाइ जो तोऊ दोऊ दृग को दुख जाइ न ॥

(४)

गुञ्जारी तू धन्य है, बसत तेरे मुख स्याम ।
यातें उर लाये रहत, हरि तोकों बसु जाम ॥

(५)

मोर सदा पिउ पिउ करत, नाचत लखि घनश्याम ।
यासों ताकी पाँखहूँ, सिर धारी घनश्याम ॥

लाला सीताराम

ला सीताराम का जन्म २० जनवरी, सन् १८५८ को अयोध्या में हुआ। ये जाति के श्रीवास्तव (दूसरे) कायस्थ हैं। इनके पूर्वज पहले जौनपूर में रहते थे। किन्तु इनके पिता बावा रघुनाथदास के शिष्य थे। इससे वे अयोध्या में जा बसे थे।

लाला सीताराम का विद्यारम्भ बावा रघुनाथदास ने ही कराया था। पीछे से एक मौलवी साहब इन्हें उर्दू फ़ारसी पढ़ाने के लिए नियत हुये। मौलवी साहब हिन्दी भी जानते थे। इन्होंने उनसे हिन्दी भी सीख ली। इनके पिता वैष्णव धर्मावलम्बी थे। उन्हें धर्म-सम्बन्धी ग्रन्थों से बड़ा प्रेम था। उनके संसर्ग से इन्हें भी उन ग्रन्थों के पढ़ने का शौक़ हुआ। इसीसे धर्म की ओर विशेष प्रवृत्ति होने के साथ ही साथ इन्हें हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान हो गया।

इनका क्रमशः संक्षिप्त जीवन-चरित्र इस प्रकार है :—

विद्योपार्जन

सात बरस की अवस्था से घर पर फ़ारसी, अरबी, हिन्दी पढ़कर जुलाई १८६९ ईस्वी में अयोध्या स्कूल के चौथे क्लास में भरती हुये। सितम्बर मास की परीक्षा में कक्षा में पहला नम्बर पाकर उत्तीर्ण हुये। दो बरस में चार क्लास उत्तीर्ण होकर अयोध्या में स्थानाभाव से फैज़ाबाद के तीसरे क्लास में पहुँचे, जो अब आठवाँ कहलाता है।

१८७४ ई० में इन्ट्रेन्स परीक्षा में उत्तीर्ण होकर लखनऊ कैनिंग कालेज के एफ़० ए० क्लास में भरती हुये।

१८७६ ई० की परीक्षा में पहला नम्बर पाकर बी० ए० क्लास में आए।

१८७९ ई० के जनवरी मास की परीक्षा में कलकत्ता विश्वविद्यालय में सबसे ऊँचा स्थान पाया और गणित में सर्वश्रेष्ठ रहे।

कलकत्ते में पढ़ने का बुलावा आया और १००) मासिक की छात्रवृत्ति मिली। पर पिता के अनुरोध से कलकत्ते न जा सके।

इसके उपरान्त विद्याभ्यास में सुगमता देखकर स्कूल की नौकरी कर ली।

१८८६ ई० में जजी की वकालत की परीक्षा में उत्तीर्ण हुये।

१८८७ ई० में अवध लोकल लाज की परीक्षा पास की।

१८९० ई० में हाईकोर्ट वकील की परीक्षा में उत्तीर्ण हुये।

अर्थोपार्जन

१८७९ ई० में बनारस कालेज के थर्ड मास्टर नियत हुये।

१८८० ई० सीतापुर हाईस्कूल के हेडमास्टर कर दिये गये।

१८८२ ई० में फैज़ाबाद में कालेज क्लास खुलने पर केमिस्ट्री पढ़ाने के लिए फैज़ाबाद भेजे गये।

१८८३ ई० में बनारस कालेज में सेकंड मास्टर हुये और इस पद पर जून, १८८३ तक रहे। यहीं कठिन परिश्रम से संस्कृत अध्ययन किया और वेद, उपनिषद्, ज्योतिष, दर्शन-शास्त्र, काव्य, नाटक पढ़ डाले और भाषा-कविता करने लगे।

१८८७ ई० में फैजाबाद की बदली हुई। पर तीन महीना पीछे कानपुर हाईस्कूल के हेडमास्टर कर दिये गये।

इसी साल एक महीना पीछे इलाहाबाद डिवीज़न के असिस्टेंट इंसपेक्टर हुये।

१८८८ ई० में मेरठ हाई स्कूल के हेडमास्टर हुए। पत्नी के रोगग्रस्त होने के कारण छुट्टी लेली।

१८८९ ई० में फैज़ाबाद अपने स्थान पर लौट आये।

१८८३ ई० में फैज़ाबाद हाई स्कूल के हेडमास्टर रहे और दो बरस

तक कालेज के दर्जे को पढ़ाया। जिसका परिणाम यह हुआ कि इनके शिक्षित लड़कों ने परीक्षा में प्रथम और द्वितीय स्थान पाया।

१८९४ ई० में आगरे के असिस्टेंट इंस्पेक्टर हुये।

१८९५ ई० में डिप्टी कलक्टर हुये और १९११ में ३२ बरस सर्कार की सेवा करके पेन्शन ले ली।

साहित्य-सेवा

१८७९ ई० में कालेज छोड़ने पर उर्दू के प्रसिद्ध समाचार पत्र "अवध अख़बार" में तीन बरस तक विज्ञान-विषय के लेख लिखे।

१८८१ ई० में उर्दू में मिस्बाहुल अर्ज़ (प्राकृतिक भूगोल) छपाया।

१८८२ ई० में उर्दू में शेक्सपियर के तीन नाटकों का अनुवाद किया।

१८८३ ई० में मेघदूत का और चाणक्य शतक का पद्यात्मक भाषा-नुवाद छपाया।

१८८४ ई० में पार्वती पाणिग्रहण के नाम से कुमारसंभव के सात सर्गों का पद्यात्मक भाषानुवाद छपाया। इसी साल शेक्सपियर के कमिडी आफ़ एरर्स का उर्दू अनुवाद भूल भुलैयाँ के नाम से छपा।

१८८५ ई० में श्रीसीताराम-चरितामृत के नाम से रघुवंश के सात सर्गों का पद्यात्मक भाषानुवाद प्रकाशित किया गया और पंचतन्त्र का पाँचवाँ तंत्र भी भाषा गद्य में छपा।

१८८६ ई० में रघुवंश के सात सर्गों का पद्यात्मक भाषानुवाद रघुचरित्त के नाम से छपा।

१८८७ ई० में नागानन्द का गद्य-पद्यात्मक भाषानुवाद छपा।

१८८८ ई० में शेक्सपियर के मच अडू अबौट नथिंग का उर्दू अनुवाद दामे मुहब्बत छपा।

१८९० ई० में शेक्सपियर के टेम्पेस्ट का उर्दू अनुवाद दरियाय तिलिस्म नाम से छपा।

१८९१ ई० में श्रीअयोध्या-नरेश की आज्ञा से शंकरोपासना-चिन्ह छपा।

१८९२ ई० में सावित्री और संपूर्ण रघुवंश का पद्यात्मक भाषानुवाद प्रकाशित किया गया।

१८९३ में मेघदूत आदि के साथ ऋतुसंहार का भाषानुवाद छपा। ेक्सपियर का लियर उर्दू में छपा।

१८९७ ई० में प्राचीन नाटक मणिमाला के तीन नाटक महावीर चरित, उत्तररामचरित, मालती-माधव के भाषानुवाद छपे।

१८९८-९९ ई० में शेष तीन नाटक मालविकाग्निमित्र, मृच्छकटिक और नागानन्द (शुद्ध करके) छापे गये।

१९०० ई० में हिन्दी-शिक्षावली के छः भाग लिखे गये।

१९०१ ई० में प्रजा के कर्त्तव्यकर्म नामक ग्रन्थ अनुवादित किया गया।

१९०२ ई० में किरातार्जुनीय का पूर्वार्द्ध भाषा-छन्दों में प्रकाशित किया गया। इसी साल हितोपदेश पूर्वार्द्ध का भाषानुवाद छपा।

१९०३ ई० में हितोपदेश उत्तरार्द्ध का भाषानुवाद प्रकाशित किया गया।

१९०४ ई० में प्राचीन ज्योतिष मरीचिमाला का अङ्कगणित प्रकाशित किया गया।

१९०५ ई० में इपिक्टिटस का उर्दू-अनुवाद प्रकाशित किया गया। इसी साल इंडियन प्रेस रीडर्स की आलोचना की गई और गुलिस्ताँ पूर्वार्द्ध का भाषानुवाद नीतिवाटिका के नाम से लिखा गया।

१९०७ ई० में प्राचीन ज्योतिष मरीचिमाला का दूसरा अङ्क बीज-गणित प्रकाशित हुआ।

१९१३ ई० में भारतवर्ष का इतिहास छपा।

१९१४ ई० में भारतीय इतिहास के नायक, हिन्दुस्तान के इतिहास

की सरल कहानियाँ, सूर्यकुमारी, सीताराम, कृष्णचन्द की बाललीला, पंचतंत्र की कहानियाँ छपीं और मैकमिलन की स्टोर्स रीडर्स के पाँच भाग फिर से लिखे गये।

१९१५ ई० में शेक्सपियर के पाँच नाटकों के अनुवाद, रामकथा और महाभारत के उपाख्यान अब तक छप चुके हैं।

लाला सीताराम बड़े विद्याव्यसनी हैं। इस समय ये युक्त-प्रदेश की सरकार के रिपोर्टर, टेक्स्टबुक कमिटी के मेम्बर और स्पेशल मजिस्ट्रेट हैं। इतने झंझटों के होते हुये, इस वृद्धावस्था में भी ये हिन्दी-साहित्य की उन्नति करते रहते हैं। इन्होंने तुलसीदास कृत अयोध्याकांड को राजापुर की प्रति से ठीक ठीक मिलाकर छपवाया है। कलकत्ता-युनिवर्सिटी के लिए इन्होंने कई खंडों में हिन्दी का कोर्स बड़े परिश्रम से तैयार किया है। इन्हीं दिनों इनका लिखा हुआ अंग्रेज़ी में सिरोही राज्य का इतिहास (अंगरेज़ी में) छपकर प्रकाशित हुआ है।

लाला सीताराम सीताराम के बड़े भक्त हैं। सरकारी काम से इन्हें जो कुछ अवकाश मिलता है, उसे ये भगवद्भजन या साहित्य के अनुशीलन में लगाते हैं। हिन्दी-साहित्य के सर्वोत्तम ज्ञाताओं में से ये एक हैं। भारतधर्म महामण्डल ने इनको "साहित्य-रत्न" की उपाधि दी है।

इनके चार पुत्र हैं। चारों ग्रेजुएट हैं। एक डाक्टर हैं। तीन भिन्न भिन्न विभागों में सरकारी नौकर हैं।

लाला सीताराम निम्नलिखित भिन्न भिन्न सरकारी और ग़ैर सरकारी संस्थाओं के सदस्य, सहायक और कार्यकर्त्ता रह चुके हैं। और इनमें से कितनें पदों पर अभी तक ये हैं भी।

१—आनरेरी फ़ेलो आफ़ दि युनिवर्सिटी आफ़ एलाहाबाद।

२—मेम्बर आफ़ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ़ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैंड।

३—मेम्बर आफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल।
४—मेम्बर आफ़ प्रोविंशल टेक्स्ट बुक कमिटी, यू० पी०
५—मेम्बर आफ़ प्रोविंशल म्यूज़ियम कमिटी।
६—मेम्बर आफ़ एलाहाबाद पब्लिक लाइब्रेरी कमिटी।
७—मेम्बर आफ़ यू० पी० हिस्टोरिकिल सोसाइटी।
८—जेनरल सेक्रेटरी वर्नाक्युलर साइंटिफ़िक सोसाइटी।
९—मेम्बर आफ़ आल इण्डिया मिन्टो मेमोरियल कमिटी।
१०—एग्ज़ामिनर इन कलकत्ता एण्ड एलाहाबाद युनिवर्सिटीज़।
११—वाइस प्रेसिडेंट हिन्दू-सभा, इलाहाबाद।
१२—प्रेसिडेंट स्मार्त धर्मावलम्बिनी सभा।
१३—आनरेरी लेकचरर आन रेलिजन एण्ड मोरेलिटी टू दी जुवेनाइल्स इन एलाहाबाद सेंट्रल प्रिज़न।
१४—मेम्बर आफ़ दी रूरल एजुकेशन एण्ड एक्सपर्ट कमिटी, डिस्ट्रिक्ट फैमिन रिलीफ़ कमिटी एलाहाबाद, डिस्ट्रिक वार फंड कमिटी, डिस्ट्रिक्ट वार लोन कमिटी इत्यादि।

लाला सीताराम हिन्दी, अंग्रेज़ी, फ़ारसी, अरबी, फ्रेञ्च, संस्कृत, बंगला, गुजराती और मराठी आदि भाषाओं तथा कई बोलियों के ज्ञाता हैं।

यहाँ हम रघुवंश के पद्यानुवाद से लालाजी की रचना का कुछ नमूना उद्धृत करते हैं :—

रघुवंश

भये प्रभात धेनु ढिग जाई। पूजि रानि माला पहिराई॥
बच्छ पियाइ बाँधि तब राजा। खोल्यो ताहि चरावन काजा॥
परत धरनि गो चरन सुहावन। सो मग धूरि होत अति पावन॥
चली भूप तिय सोइ मग माँही। स्मृति श्रुति अर्थ संग जिमि जाहीं॥

चौ सिन्धुन थन रुचिर बनाई। धरनिहि मनहु बनी तहँ गाई॥
प्रिया फेरि अवधेश कृपाला। रक्षा कीन्ह तासु तेहि काला॥
व्रत महँ चले गाय करि आगे। सेवक शेष सकल नृप त्यागे॥
इक केवल निज वीर्य्य अपारा। मनु-सन्तति-तन रक्षनहारा॥
कबहुँक मृदु तृन नोचि खिआवत। हाँकि माछि कहुँ तनहिँ खुजावत॥
जो दिसि चलत चलत सोई राहा। यहि विधि तेहि सेवत नरनाहा॥
जहँ बैठी सोइ धेनु अनूपा। बैठे तहँहिं अवधपुर भूपा॥
खड़े ताहि ठाढ़ी नृप जानी। चले चलत धेनुहि अनुमानी॥
पियत नीर कीन्हों जल पाना। रहे तासु सङ्ग छाँह समाना॥
राज-चिन्ह यद्यपि सब त्यागे। तऊ तेज बस नृप सोइ लागे॥
छिपे दान रेखा के सङ्गा। होत मनहु मद-मत्त मतंगा॥
केश लता सब बाँधि बनाये। बन विचर्यो धनु बान चढ़ाए॥
ऋषय धेनु रक्षक जनु होई। आयो पशुन सुधारन सोई॥
बरुन सरिस धरि तेज प्रभाऊ। चले जदपि सेवक बिनु राऊ॥
तरु पंछिन करि शब्द सुहावा। जनु चहुँ दिसि जय घोष सुनावा॥
जानि निकट कोशलपति आए। फूल वायु बस लता गिराए॥
जिमि नरेश निजपुर जब आवहिं। धान नगर कन्या बरसावहिं॥
चले जदपि नृप कर धनु धारी। तउँ दयाल तेहि हरिनि बिचारी॥
निरखत तासु शरीर मनोहर। लोचन फल पायो तेहि अवसर॥
भरि भरि पवन रन्ध्र युत बाँसा। बेणु शब्द तब करत प्रकासा॥
बन देविन कुञ्जन महँ जाई। नृप कीरति तहँ गाइ सुनाई॥
जानि घाम बस म्लान सरीरा। सुगन्ध सोइ मिलत समीरा॥
बन रक्षक तेहि आवत जानी। बिना वृष्टि बन आगि बुझानी॥
बाँध्यो सबल निबल पशु नाहीं। भे फल फूल अधिक बन माहीं॥
करि पवित्र दिसि चहुँ दिसि जाई। धेनु साँझ आश्रम कहँ आई॥
यज्ञ श्राद्ध साधन सोई साथा। इमि सोहत तहँ कोशल नाथा॥

श्रद्धा मनहुँ दृश्य तनु धारी । सोहत सन्त प्रयत्न मँझारी ॥
जल सन उठत बराह समूहा । चलत रूख दिस नभचर जूहा ॥
हरी घास जहँ बैठ कुरङ्गा । चल्यो लखन सोइ सौरभि सङ्गा ॥
एक भरे थन भार दुखारी । धरे सरीर एक अति भारी ॥
मन्द चाल सन दोउ तहँ आई । तपवन सोभा अधिक बढ़ाई ॥
चलत वशिष्ठ धेनु के पाछे । लौटत अवध भूप छवि आछे ॥
प्यासे दृगन विलास बिसारी । लख्यो ताहि मगधेस कुमारी ॥
आगे खड़ी रानि मग माहीं । पीछे भूप मनहुँ परछाहीं ॥
सोहत वीच धेनु यहि भाँती । संध्या सङ्ग मनहुँ दिन राती ॥
अछत पात्र कर धरे सयानी । फिरी गाय चहुंदिसि तब रानी ॥
चरन वन्दि गो माथ बिसाला । पूज्यो अवध-रानि तेहि काला ॥
मिलन हेत बच्छहिं अकुलानी । यद्यपि रही धेनु गुनखानी ॥
पूजन काज रही सोई ठाढ़ी । सो लखि प्रीति भूप मन बाढ़ी ॥
समरथ चहत देन फल जेही । प्रथम प्रसाद जनावत तेही ॥
पुनि सन्ध्या विधि नृप निपटाई । सादर गुरु पद कमल दबाई ॥
जिन नृप भुज बल शत्रु गिराए । दुहन अन्त गो सेवन आए ॥
पुनि पत्नी सङ्ग भूप दिलीपा । धारि धेनु आगे बलि दीपा ॥
सोए तहँ तेहि सोवत जानी । जागे जगी धेनु अनुमानी ॥
सन्तति हित सेवत यहि भाँती । बीते त्रिगुण सप्त दिन राती ॥
भक्त चित्त परखन इक बारा । हिम गिरि गुहा धेनु पग धारा ॥
मनहुँ न सकहिं जन्तु यहि मारी । यह नरेश मन माँहिं बिचारी ।
नग छबि लगे लखन नरराई । धेनुहि धन्यो सिंह इक धाई ॥
तड़पत सिंह गुहा के द्वारा । भयो तुरत तहँ शब्द अपारा ॥
भूप दृष्टि भूधरपति लागी । परी धेनु पर नग दिसि त्यागी ॥
सिंहहि लख्यौ धेनु पर कैसा । गेरू गुहा लोध तरु जैसा ॥

भयो क्रोध नाहर वध काजा। खैंचन चह्यो तीर तव राजा॥
नख छवि कङ्क-पत्र महँ डारी। गुरिन त्रिशिख पुंख तहँ धारी॥

नाथूराम शङ्कर शर्मा

कविराज पंडित नाथूराम शङ्कर शर्मा का जन्म संवत् १९१६ की चैत्र शु० पंचमी को हरदुआगंज (अलीगढ़) में हुआ था। इनके पिता पं० रूपरामजी शर्मा गौड़ ब्राह्मण थे। शङ्करजी की माता इन्हें साल सवा साल का छोड़कर परलोकवासिनी हो गई थीं। अतएव बचपन में इनका लालन-पालन इनकी नानी और बुआ ने किया था।

शङ्करजी पढ़ाई समाप्त करके कानपुर चले गए और वहाँ नहर के दफ्तर में नक़शानवीस होगए। कानपुर में कोई साढ़े छः बरस रहकर ये फिर हरदुआगंज वापस आए और इन्होंने चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ कर दिया। इनकी चिकित्सा की बड़ी प्रसिद्धि हुई। अब ये पीयूषपाणि वैद्य समझे जाते हैं।

शङ्करजी को कविता करने का शौक कोई तेरह साल की अवस्था से है। ये स्कूल में पढ़ते समय इतिहास और भूगोल के पाठ को पद्य का रूप देकर याद किया करते थे। इस प्रकार के पचासों शेर इनको अब तक याद हैं। कानपुर में स्व० पं० प्रतापनारायण मिश्र से इनकी गहरी मित्रता हो गई थी। वहाँ ख़ूब साहित्य-चर्चा रहती थी। कानपुर से लौटने पर शङ्करजी की प्रतिभा-शक्ति का ख़ूब विकास हुआ। उस समय समस्या-पूर्ति सम्बन्धी पत्रों और कवि-समाजों का बड़ा ज़ोर था। सभी साहित्य-सेवी सज्जन पूर्तियाँ करते थे। पर शङ्करजी की पूर्तियाँ विशेष आदर की दृष्टि से देखी जाती थीं। इनका नम्बर प्रायः सब से ऊँचा रहता था। इनको उत्तम पूर्तियों के उपलक्ष में पदक, पुस्तक, उपाधि, घड़ी, पगड़ी, दुशाले आदि उपहार-स्वरूप

मिले। जिन्हें इस विषय में अधिक जानना हो और समस्यापूर्तियाँ पढ़नी हों, उन्हें 'कवि व चित्रकार', 'काव्य-सुधाधर', 'रसिकमित्र' आदि पत्रों की पुरानी फ़ायलें देखनी चाहिएँ।

इसके बाद शङ्करजी ने सामयिक प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में लिखना आरम्भ किया। इससे इनकी कविता की और भी ख्याति हुई। समस्या-पूर्ति करने तक शङ्करजी अधिकतर व्रजभाषा में कविता करते थे। पर पीछे इन्होंने खड़ी बोली को अपनाया और उसमें ये बड़ी सरल, सरस और सुन्दर कविता करने लगे। जो लोग कहा करते हैं कि खड़ी बोली की कविता में व्रजभाषा का सा आनन्द नहीं आता उन्हें शङ्करजी की कविता पढ़नी चाहिए।

शङ्करजी को कविता करने का बड़ा अभ्यास है। ये मिनटों में अच्छी कविता कर डालते हैं। एक बार कविता करने में ये इतने तल्लीन हो गए कि सामने गाजे बाजे से गुज़रती हुई बारात की भी इनको कुछ खबर न हुई। ये सब रसों में, विविध विषयों पर कविता लिखते हैं। कोई १० वर्षों से ये अपनी कविता में एक बड़े कड़े नियम का निर्वाह कर रहे हैं। वह यह कि ये मात्रिक और मुक्तक छन्दों में भी वर्णों की समान संख्या रखते हैं। वर्ण-वृत्त में तो ऐसा होता ही है, पर मात्रिक छन्दों में इस नियम का निभाना बहुत कठिन काम है।

शङ्करजी एक समस्या की अनेक रसों में पूर्तियाँ कर सकते हैं। एक बार जयपुर के एक सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी संस्कृत-विद्वान् ने इनका "इमि कंज प सोहि रह्यो चतुरानन" समस्या देकर उसकी पूर्ति बीभत्स रस में चाही। कविजी ने उक्त समस्या की पूर्ति ऐसी उत्तमता से की कि पण्डित जी महाराज दंग हो गए और इनकी कल्पनाशक्ति की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

बहुत दिनों से हिन्दी में कितने ही छन्द बिना नाम के प्रचलित हो रहे थे। शङ्करजी ने उनका नामकरण कर दिया और अब वे छन्द इनके

दिए नामों से पुकारे जाने लगे। 'मिलिन्दपाद', 'शङ्कर छन्द' 'राजगीत' आदि शङ्करजी के रक्खे हुए छन्दों के ही नाम हैं।

शङ्करजी को कई संस्थाओं से कितने ही सोने चाँदी के पदक प्राप्त होने के सिवाय 'कविराज', 'भारत-प्रज्ञेन्दु', 'कविता-कामिनी--कान्त' इत्यादि उपाधियाँ भी मिल चुकी हैं। शारदा-मठ के जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य महाराज ने इनको 'कवि-शिरोमणि' की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया है।

शङ्करजी ने छोटी मोटी कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं। जिनमें से कुछ तो छप गईं और कुछ अप्रकाशित और अपूर्ण पड़ी हैं। छपी हुई पुस्तकों में, 'शङ्कर-सरोज', 'अनुराग-रत्न', 'गर्भरण्डा-रहस्य' और 'वायस-विजय' मुख्य हैं। इन पुस्तकों की काव्यमर्मज्ञों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। यदि कविजी के फुटकर लेखों का संग्रह किया जाय तो एक बड़ी पुस्तक बन सकती है।

शङ्करजी उर्दू में भी अच्छी कविता कर लेते हैं। ये संस्कृत और फ़ारसी में भी दख़ल रखते हैं। स्वभाव के ये बड़े ही सरल और मिलनसार हैं। प्रेम और दया के भाव इन में कूट कूट कर भरे हैं। इनमें हँसमुखता, सचाई और स्पष्टवादिता प्रसिद्ध गुण हैं। घंटों बैठे रहने पर भी इनके पास से उठने को जी नहीं चाहता। साफ़ कहने में ये किसी की रियायत नहीं करते। दियानतदारी इनकी यहाँ तक है कि जायदाद सम्बन्धी कितने ही बड़े बड़े मुकदमों में ये पंच सरपंच बनाए गए और इनके निर्णय को दोनों पक्षों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। इनको अपने गाँव से बाहर जाना बहुत नापसन्द है। अधिक आर्थिक लाभ होने पर भी ये चिकित्सार्थ बहुत कम बाहर जाते हैं। अनेक सभा-समाजों तथा राजों महाराजों के निमन्त्रण पाकर भी ये कहीं नहीं गए। अधिक आग्रहपूर्वक बुलाने पर ये छतरपुर और अमेठी इन दो राज्यों के अतिथि हुए थे। पर दो दो चार चार दिन रहकर अपने घर चले आए। कविजी की वक्तृत्व

शक्ति बहुत अच्छी है। इनका भाषण बड़ा प्रभावपूर्ण होता है। जीविकार्थ चिकित्सा में समय लगाने के अतिरिक्त ये अपना शेष समय कविता और ब्रह्मविद्या-सम्बन्धी बातों के विचारने में व्यय करते हैं। गत वर्ष इनके दो पुत्रों का देहान्त हो जाने से इनके मन पर बहुत शोक छा गया है। इस वृद्धावस्था में इनको यह कष्ट असहनीय है।

कविता-प्रेमी सज्जन शङ्करजी की कविता का बड़ा आदर करते हैं। इनके पास बड़े बड़े विद्वानों के प्रायः नित्य प्रशंसापरक पत्र आते रहते हैं। शङ्करजी का सम्बन्ध आर्यसमाज से है। अतएव इन्होंने अधिकतर समाज-सम्बन्धी कविताएँ ही लिखी हैं। पर समाज में अच्छी कविता की क़द्र न होने से कभी कभी इनको बड़ा दुःख होता है। समाज की खान-पान-सम्बन्धी भ्रष्टता और लोगों की अनधिकार चेष्टा को ये अच्छा नहीं समझते। शङ्करजी के पुत्रों में एक पं० हरिशङ्कर शर्मा भी खड़ी बोली के बड़े अच्छे कवि और सुलेखक हैं। खेद है कि गत् वर्ष शङ्करजी के दो पुत्रों का स्वर्गवास हो गया। शङ्करजी पर हिन्दी-भाषा को बड़ा अभिमान है। ईश्वर करे इनके द्वारा अभी बहुत दिनों तक साहित्य-भाण्डार की श्रीवृद्धि होने का सौभाग्य प्राप्त होता रहे।

यहाँ इनकी कविता के नमूने दिये जाते हैं :—

(१)

शंकर के सेवक दुलारे गुरु लोगन के नीति के निकेत निगमागम पढ़त हैं। जीवन के चारो फल चाखन की चाह कर उन्नति की ओर निशि बासर बढ़त हैं। भारती के भूषण प्रतापशील पूषण से जिनकी कृपा से पर दूषण कढ़त हैं। ऐसे नर नागर तरेंगे भवसागर को प्यारे परमारथ के पोत पै चढ़त हैं॥

(२)

नीकी करनी संसार में, नामी नर कर जाते हैं। टेक।
जो ध्रुव धर्मबीर होते हैं, पर दुख देखदेख रोते हैं, सो विशाल संसृति सागर

को पल में तर जाते हैं ॥ वृथा काल को खोने वाले, बीज पाप के बोने वाले, कायर कूर कुपूत कुचाली योंहीं मर जाते हैं ॥ धर्म कर्म का मर्म न जानै, केवल मनमानी तक तानै, ऐसे बकवादी समाज में संशय भर जाते हैं ॥ मिट गये नाम नीच कपटिन के, शंकर सुयश शेष हैं तिनके, जिनके जीवन के अनुगामी जीव सुधर जाते हैं ॥

(३)

साँची मान सहेली परसों पीतम लैवे आवैगौ री । टेक ।
माता पिता भाई भौजाई, सब सों राख सनेह सगाई, दो दिन हिल-मिल काट वहाँ से फिर को तोहिं पठावैगौ री ॥ अब कौ छेता नाहिं टरैगो, जानो पिय के संग परैगो, हम सब को तेरे बिछुरन कौ दारुण शोक सतावैगौ री ॥ चलने की तैयारी कर ले, तोशा बाँध गैल को धर ले, हालँ हाल बिदा की बिरियाँ को पकवान बनावैगौ री ॥ पुर बाहरलौं पीहर वारे, रोवत साथ चलैंगे सारे, शंकर आगे आगे तेरौ डोला मचकत जावैगौ री ॥

(४)

सैयाँ न ऐसी नचावो पतुरियाँ ।

गाने पै रीझौ बजाने पै रीझौ, बन्दी की छाती में छेदौ न छुरियाँ । पापों की पूँजी पचैगी न प्यारे, खाते फिरौगे हकीमों की पुरियाँ ॥ डोलोगे डाली डुलाते डुलाते, हाथों में पूरी न होंगी अँगुरियाँ । जो हाय शंकर दशा होगी ऐसी, तो मेरी कैसे बचालोगे चुरियाँ ॥

(५)

शैल विशाल महीतल फोड़ बढ़े तिनको तुम तोड़ कढ़े हौ ।
लै लुढ़की जलधार धड़ाधड़ ने धर गोल मटोल गढ़े हौ ॥
प्राण विहीन कलेवर धार विराज रहे न लिखे न पढ़े हौ ।
हे जड़देव शिला-सुत शंकर भारत पै करि कोप चढ़े हौ ॥

(६)

द्विज वेद पढ़ैं सुविचार बढ़ैं बल पाय चढ़ैं सब ऊपर को।
अविरुद्ध रहैं ऋजु पंथ गहैं परिवार कहैं वसुधा भर को॥
ध्रुव धर्म धरैं पर दुःख हरैं तन त्याग तरैं भवसागर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को॥

(७)

विदुषी उपजैं क्षमता न तजैं व्रत धार भजैं सुकृती वर को।
सधवा सुधरैं विधवा उबरैं सकलंक करैं न किसी घर को॥
दुहिता न बिकैं कुटनी न टिकैं कुलबोर छिकैं तरसैं दर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को॥

(८)

नृपनीति जगै न अनीति ठगै भ्रम भूत लगै न प्रजाधर को।
झगड़ें न मचैं खल खर्व लचैं मद से न रचैं भट संगर को॥
सुरभी न कटैं न अनाज घटै सुख भोग डटैं डपटैं डर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को॥

(९)

महिमा उमड़ै लघुता न लड़ै जड़ता जकड़ै न चराचर को।
शठता सटकै मुदिता मटकै प्रतिभा भटकै न समादर को॥
विकसै विमला शुभकर्म कला पकड़ै कमला श्रम के कर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को॥

(१०)

मत जाल जलैं छलिया न छलैं कुल फूल फलैं तज मत्सर को।
अघ दम्भ दबैं न प्रपञ्च फबै गुनमान नवैं न निरक्षर को॥
सुमरें जप से निरखें तप से सुरपादप से तुझ अक्षर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को॥

(११)

मैं समझता था कहीं भी कुछ पता तेरा नहीं ।
आज 'शंकर' तू मिला तो अब पता मेरा नहीं ॥

(१२)

अबलों न चले उस पद्धति पै जिस पै व्रतशील विनीत गये ।
वह आज अचानक सूझ पड़ी भ्रम के दिन बाधक बीत गये ॥
प्रभु "शंकर" की सुधि साथ लगी मुख मोड़ हठी विपरीत गये ।
चलते चलते हम हार गये पर पाय मनोरथ जीत गये ॥

(१३)

जिस अविनाशी से डरते हैं ।
भूत देव जड़ चेतन सारे ॥ टेक ॥
जिसके डरसे अम्बर बोले, उग्र मन्द गति मारुत डोले ।
पावक जले प्रवाहित पानी, युगल वेग बसुधा ने धारे ॥
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥
जिसका दण्ड दसों दिस धावे, काल डरे ऋतु चक्र चलावे ।
बरसे मेघ दामिनी दमके, भानु तपै चमकें शशि तारे ॥
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥
मन को जिसका कोप डरावे, घेर प्रकृति को नाच नचावे ।
जीव कर्म फल भोग रहे हैं, जीवन जन्म मरण के मारे ॥
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥
जो भय मान धर्म धरते हैं, शंकर कर्मयोग करते हैं ।
वे विवेक बारिधि बड़भागी, बनते हैं उस प्रभु के प्यारे ॥
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥

(१४)

चलोगे बाबा, अब क्या प्रभु की ओर ॥ टेक ॥
खेल पसारे बालकपन में, उकसे रहे किशोर।
आगे चल के चन्द्रमुखी के, चाहक बने चकोर ॥
पकड़े प्राणप्रिया बनिता ने, बतलाये चितचोर।
मारे कन्दुक मदन दर्प के, गोल उरोज कठोर ॥
दुहिता पुत्र घने उपजाये, भोग बटोर बटोर।
अगुआ बने बड़े कुनबा के, पकड़ा पिछला छोर ॥
पटके गाल अंग सब झूले, अटके संकट घोर।
शंकर जीत जरा ने जकड़े, उतरी मद की खोर ॥

(१५)

हे वैदिक दल के नर नामी, हिन्दू मण्डल के करतार।
स्वामि सनातन सत्य धर्म के, भक्ति भावना के भरतार ॥
सुत वसुदेव देवकीजी के, नन्द यशोदा के प्रिय लाल।
चाहक चतुर रुक्मिणी जी के, रसिक राधिका के गोपाल ॥ १ ॥
मुक्त अकाय बने तन धारी, श्रीपति के पूरे अवतार।
सर्व सुधार किया भारत का, कर सब शूरों का संहार ॥
ऊँचे अगुआ यादव-कुल के, बीर अहीरों के सिरमौर।
दुविधा दूर करो द्वापर की, ढालो रङ्ग ढङ्ग अब और ॥ २ ॥
भड़क भुला दो भूतकाल की, सजिये वर्तमान के साज।
फैसन फेर इंडिया भर के, गोरे गाड बनो ब्रजराज ॥
गौर वर्ण वृषभानुसुता का, काढ़ो काले तन पर तोप।
नाथ उतारो मोर मुकुट को, सिर पै सजो साहिबी टोप ॥ ३ ॥
पौडर चन्दन पोंछ लपेटो, आनन की श्री ज्योति जगाय।
अंजन अँखियों में मत आँजो, आला ऐनक लेहु लगाय ॥

रखधर कानों में लटका लो, कुण्डल काढ़ मेकराफून।
तज पीताम्बर कम्बल काला, डाटो कोट और पतलून॥ ४॥
पटक पादुका पहिनों प्यारे, बूट इटाली का लुकदार।
डालो डबल वाच पाकट में, चमके चेन कञ्चनी चार॥
रख दो गाँठ गठीली लकुटी, छाता बेंत बगल में मार।
मुरली तोड़ मरोड़ बजाओ, बाँकी बिगुल सुने संसार॥ ५॥
फरिया चीर फाड़ कुब्री को, पहिनालो पँचरङ्गी गौन।
अवलक लेडी लाल तिहारी, कहिये और बनैगी कौन॥
मुदना नहीं किसी मन्दिर में, काटो होटल में दिन रात।
पर नजखौआ ताड़ न जावैं, बढ़ियाँ खानपान की बात॥ ६॥
बैनतेय तज ब्योमयान पै, करिये चारों ओर बिहार।
फक फक फूँ फूँ फूँको चुरटें, उगलें गाल धुआँ की धार॥
यों उत्तम पदवी फटकारो, माधो मिस्टर नाम धराय।
बाँटो पदक नई प्रभुता के, भारत जातिभक्त हो जाय॥ ७॥
कह दो सुबुध विश्वकर्मा से, रच दे ऐसा हाल विशाल।
जिस पै गरमी नरमी वारे, कांगरेस कुल की पण्डाल॥
सुर नर मुनि डेलीगेटों को, देकर नोटिस टेलीग्राम।
नाथ बुला लो उस मण्डप में, बैठें जैंटिलमैन तमाम॥ ८॥
उमगें सभ्य सभासद सारे, सर्वोपरि यश पावैं आप।
दर्शक रसिक तालियाँ पीटें, नाचै मंगल मेल मिलाप॥
जो जन विविध बोलियाँ बोलें, टर्रीली गिट पिटको छोड़।
रोको उस गोबर गणेश को, करे न सर भाषा की होड़॥ ९॥
बेद पुराणों पर करते हैं, आरज हिन्दू वादविवाद।
कान लगाकर सुन लो स्वामी, सब के कूट कटीले नाद॥
दोनों के अभिलषित मतों पै, बीच सभा में करो विचार।
सत्य झूठ किसका कितना है, ठीक बता दो न्याय पसार॥ १०॥

जगदीश्वर ने वेद दिये हैं, यदि विद्या बल के भण्डार।
उनके ज्ञाता हाय न करते, तो भी अभिनव आविष्कार॥
समझा दो वैदिक सुजनों को, उत्तम कर्म करें निष्काम।
जिनके द्वारा सब सुख पावैं, जीवित रहैं कल्प लों नाम॥ ११॥
निपट पुराणों के अनुगामी, ऊलें निरखो इनकी ओर।
निडर आपको भी कहते हैं, नर्त्तक जार भगोड़ा चोर॥
प्रतिदिन पाठ करें गीता के, गिनते रहैं रावरे नाम।
पर हो मनमौजी मतवाले, बनते नहीं धर्म के धाम॥ १२॥
कलुप कलंक कमाते हैं जो, उनको देते हैं फल चार।
कहिये इन तीरथ देवों के, क्यों न छीनते हो अधिकार॥
यों न किया तो डर न सकैंगे, डाँकू उदरासुर के दास।
अधम अनारी नीच करेंगे, मनमाने सानन्द विलास॥ १३
वैदिक पौराणिक पुरुषों में, टिके टिकाऊ मेल मिलाप।
गैल गहैं अगले अगुवों की, इतनी कृपा कीजिये आप॥
जिस विधि से उन्नत हो बैठे, युरुप अमरीका जापान।
विद्या बल प्रभुता उनकी सी, दो भारत को भी भगवान॥१४॥
युक्तिवाद से निपट निराली, सुनलो बीर अनूठी बात।
इसका भेद न पाया अब लों, पै अवितर्क विश्व-विख्यात॥
योग बिना क्वारी मरियम ने, कैसे जने मसीह सपूत।
कैसे शक्कुल कमर कहाया, छाया रहित खुदा का दूत॥१५॥
इस घटना की सम्भवता को, कहिये तर्क तुला पै तोल।
गड़बड़ है तो खोल दीजिये, ढिल्लड़ ढोंग ढोल की पोल॥
यह प्रस्ताव और भी सुन लो, उत्तर ठीक बता दो तीन।
किस प्रकार से फल देते हैं, केवल कर्म चेतनाहीन॥१६॥
देव आदि के अधिवेशन में, पूरे करना इतने काम।
हिप हिप हुर्रा के सुनते ही, खाना टिफ़न पाय आराम॥

झंझट झगड़े मतवालों के, जानो सब के खंड विभाग।
तीन चार दिन की बैठक में, कर दो संशोधन बेलाग ॥१७॥
बनिये गौर श्यामसुन्दरजी, ताक रहे हैं दर्शक दीन।
हमको नहीं हँसाना वन के, बाघ त्रितुण्डी कछुआ मीन॥
धार सामयिक नेतापन को, दूर करो भूतल का भार।
निष्कलङ्क अवतार कहैंगे, शंकर सेवक बारम्बार ॥१८॥

(१६)

कर सुन्दर शृङ्गार चलीं चुपचाप लुगाईं।
बटुओं में भर भेंट मुदित मन्दिर में आईं॥
अटकी काल कुचाल कुसङ्गति ने मति फेरी।
मुझको लेकर साथ सघन पहुँची माँ मेरी ॥१॥
साधन सर्व सुधार सजीले सदुपदेश के।
दर्शन को झट खोल दिये पट गोकुलेश के॥
श्री गुरुदेव दयालु महाछवि धार पधारे।
सब ने धन से पूज देह जीवन मन वारे ॥२॥
अबला एक अधेड़ अचानक आकर बोली।
हिलमिल खेलो फाग उठो अब सुन लो होली॥
लाल गुलाल उड़ाय कीच केशर की छिड़की।
सब को नाच नचाय सुगति की खोली खिड़की ॥३॥
फैल गया हुरदङ्ग होलिका की हलचल में।
फूल फूल कर फाग फला महिला-मण्डल में॥
जननी भी तज लाज बनी ब्रजमक्खो सब की।
पर मैं पिण्ड छुड़ाय जवनिका में जा दबकी ॥४॥
कूद पड़े गुरुदेव चेलियों के शुभ दल में।
सदुपदेश का सार भरा फागुन के फल में॥

अड़ के अङ्ग उघार पुष्ट प्रण के पट खोले ।
सब के जन्म सुधार कृपा कर मुझ पै बोले ॥५॥
जिसने केवल मन्त्रयुक्त उपदेश लिया है ।
अब तक योगानन्द महामृत को न पिया है ॥
वह रङ्गीला छोड़ कहाँ छुप गई छबीली ।
सुन प्रभु से संकेत चली कुटनी नचकीली ॥६॥
मुझको दबकी देख अड़ीली आकर अटकी ।
मुख पै मार गुलाल अछूती चादर झटकी ॥
घोर घुमाय घसीट घुड़क लाई दङ्गल में ।
फिर यों हुआ प्रवेश अमङ्गल का मङ्गल में ॥७॥
मेरा बदन बिलोक घटी दर दारागण की ।
करता है शशि मन्द यथा छवि तारागण की ॥
बृषवल्लभ गोस्वामि बने कामुक दुर्मति से ।
मनुज मोहनी मान मुझे दौड़े पशुपति से ॥८॥
परखा पाप प्रचण्ड प्रमादी पामरपन में ।
उपजा उग्र अदम्य रोष मेरे तन मन में ॥
लमकी लटकी देख लाय तलवार निकाली ।
गरजी छन्द कृपाण सुनाकर सुमरी काली ॥ ९ ॥
वीर भयानक रुद्र रूप समझी रणचण्डी ।
सुन मेरी किलकार गिरी गच पै हुरसण्डी ॥
मूत रहे न पुरीष रुका पटकी पिचकारी ।
रस बीभत्स बहाय दुरे प्रभु प्रेम पुजारी ॥ १० ॥
भङ्ग हुआ रसरङ्ग भयातुर हुल्लड़ भागा ।
निरखि नर्तनागार छुपा रसराज अभागा ॥
लौट गया हुरदंग भुजा मेरी फिर फड़की ।
भड़की उर में आग क्रोध की तड़िता तड़की ॥ ११ ॥

बोली रसिक सुजान फाग अब आकर खेलो।
सर्वं समर्पण रूप आँस इस असि की झेलो॥
निकलो खोल कपाट निरख लो नारि नवेली।
फिर न मिलेगी और जन्म भर मुझसी चेली॥ १२॥
गुप्त रहे गुरुदेव न भीतर से कुछ बोले।
भूल गये रस रीति अनीति किवाड़ न खोले॥
कुटनी भी भयभीत ससकती रही न बोली।
अस्त हुई इस भाँति मस्त गुरुकुल की होली॥ १३॥

(गर्भरंडा-रहस्य)

(१७)

सीस पग तीर नीर गौरता तरङ्ग तुण्ड त्रिवली चिबुक नाभि भँवर परत हैं। खाड़ी भुज पाद मध्य मेरु कुच शृङ्ग हिम कंचुकी की ओट ठीक दीख न परत हैं॥ केश काल कच्छप कपोल श्रुति सीप जोंक भृकुटी कुटिल झष लोचन चरत हैं। 'शङ्कर' रसिक सुख भोगी बड़भागी लोग ऐसे रूप सागर में मज्जन करत हैं॥

(१८)

ताकत ही तेज न रहैगो तेजधारिन में मङ्गल मयङ्क मन्द पीले पड़ जायेंगे। मीन बिन मारे मर जायेंगे तड़ागन में डूब डूब 'शङ्कर' सरोज सड़ जायेंगे॥ खायगौ कराल काल केहरी कुरङ्गन को सारे खंजरीटन के पङ्ख झड़ जायेंगे। तेरी अँखियान सों लड़ेंगे अब और कौन केवल अड़ीले दृग मेरे अड़ जायेंगे॥

(१९)

भौंड़े मुख लार बहै आँखिन में गीड़ राधि कान में सिनक रैंट भीतन पै डार देति। खौंस खौंस खुरच खुजावे ठाड़ी पेड़ू पेट टूँड़ी लौं लटकते कुचन को उघार देति॥ लौट लौट चीन घाघरे की बार बार फिर बीन बीन

डींगर नखन धर मार देति। लूगरा गँधात खड़ी चीकट सी गात मुख धोवे न अन्हात प्यारी फूहड़ वहार देति ॥

(२०)

यौवन मानसरोवर में कुच हंस मनोहर खेलन आये।
मोतिन के गल हार निहार अहार विहार मिले मन भाये ॥
कंचुकी कुञ्ज पतान की ओट दुरे लट नागिन के डरपाये।
देखि छिपे छिपके पकड़े धर 'शङ्कर' बाल मराल के जाये ॥

(२१)

आनन की ओर चले आवत चकोर मोर दौर दौर वार बार बेनी झटकत हैं। बैठ बैठ 'शङ्कर' उरोजन पै राजहंस हारन के तार तोर तोर पटकत हैं ॥ झूम झूम चखन को चूम चूम चंचरीक लटकी लटन में लिपट लटकत हैं। आज इन वैरिन सौं बन में बचावे कौन अबला अकेली मैं अनेक अटकत हैं ॥

(२२)

देखत की भोरी, मन श्याम, तन गोरी, गारी देत कोरी कोरी गोरी नेक न सँकाति हो। मेरी गेंद चोरी, तापै ऐसी सीनाजोरी, रिस थोरी करो, 'शङ्कर' किशोरी क्यों रिसाति हो ॥ खोल के गहावो, नहीं चोली दिखलावो, जो न होय घर जावो, आवो काहे सतराति हो। सारी सरकावो, अंचरा में न दुरावो, लावो, कंचुकी में कंदुक चुराये कहाँ जाति हो ॥

(२३)

मङ्गल करनहारे कोमल चरण चारु मङ्गल से मान मही गोद में धरत जात। पङ्कज की पँखुरी से आँगुरी अंगूठन की जाया पञ्चवाण जी की भाँवरी भरत जात ॥ 'शङ्कर' निरख नख नग से नखत श्रेणी अम्बर सों छूट छूट पायन परत जात। चाँदनी में चाँदनी के फूलन की चाँदनी पै हौले हौले हंसन की हाँसी सी करत जात ॥

(२४)

मुँदे न राखति दीठ त्यों, खुले न राखति लाज।
पलक-कपाट दुहून के, पलपल साधत काज॥

(२५)

सास ने बुलाई घर बाहर की आई, सो लुगाइन की भीर मेरौ घूँघट उघारै लगी। एक तिनमें की तृण तोरि तोरि डारै लगी, दूसरी सरैया राई नौन की उतारै लगी। 'शङ्कर' जेठानी बार बार कछु वारै लगी, मोद मढ़ी ननदी अटोक टोना टारै लगी। आली पर साँपिन सी सौति फुसकारै लगी, हेरि मुख हा! कर निशाकर निहारै लगी॥

(२६)

राजा तू सदेह सदा स्वर्ग में रहैगो ऐसौ, 'शङ्कर' असीस जाके मुखते निकसिगो। ताही गाधिनन्दन कौ योगबल पाय उड़ो, तीर सो त्रिशंकु नभमण्डल में धँसिगो॥ वासव ने मारो त्राहि त्राहि सो पुकारो, मिलो मुनि को सहारो अधवर ही में बसिगो। आयो न मही पर न पायौ लोक देवन को, चुम्बक युगल बीच मानो लोह फँसिगो॥

(२७)

भरिबो है समुद्र को शम्बुक में छिति को छिगुनी पर धारिबो है।
बँधिबो है मृणाल सों मत्त करी जुही फूलसों सैल विदारिबो है॥
गनिबो है सितारन को कवि 'शङ्कर' रेणु सों तेल निकारिबो है।
कविता समुझाइबो मूढ़न को सविता गहि भूमि पै डारिबो है॥

(०८)

शब्द अर्थ सम्बन्ध युक्त भाषा विशाल थल।
शक्ति सरोवर गद्य पद्य रचना विशुद्ध जल॥
आशय मूल प्रबन्ध नाल भूषण सुन्दर दल।
'शङ्कर' नवरस फूल ग्रन्थ मकरन्द मोद फल॥

परहित पराग छकि छकि मुदित, रसिक भृङ्गगण गुञ्जरत।
नित या 'साहित्य-सरोज' की उन्नति कवि-कुल-रवि करत॥

(२९)

बोझ लदे हय हाथिन पै खर खात खड़े नित जायखु जाये।
बन्धन में मृगराज पड़े शठ स्यार स्वतन्त्र पुकारत पाये॥
मानसरोवर में विहरें बक, 'शङ्कर' मार मराल उड़ाये।
मान घटो गुरु लोगन को, जग वंचक पामर पञ्च कहाये॥

(३०)

लम्बे लम्बे झोंटन सों झूलत ही सौतिन की, बिरवा की डारन में पटली अटक गई। लागत ही झटका उखड़ गयो आसन पै, ताड़िका सी डोरिन को पकड़े लटक गई॥ 'शङ्कर' छिनार पद पाथर पै टूट पड़ी, फूटो सिर, फाटी नर, पिलही पटक गई॥ छूट गई नारी सीरी पड़ गई सारी आज, मर गई दारी, मेरे मन की खटक गई॥

(३१)

ईस गिरिजा को छोड़ यीशु गिरिजा में जाय, 'शङ्कर' सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे। बूट पतलून, कोट, कम्फ़टर-टोपी डाट, जाकट की पाकट में 'वाच' लटकावेंगे॥ घूमेंगे घमण्डी बने रंडी का पकड़ हाथ, पियेंगे बरण्डी मीट होटल में खावेंगे। फ़ारसी की छारसी उड़ाय इँगरेज़ी पढ़, मानों देव-नागरी का नाम ही मिटावेंगे॥

(३२)

बाहर बाँध गिरीश गये हरि को मुख हेरन नन्द गली को।
डील फुलाय कुडौल भयो हम रोक सके न बिजार बली को॥
लाखन गाय रम्हाइ रहीं खुल खाय गयो सब न्यार खली को।
हा! अब चूँस न जाय कहूँ यह शङ्कर को वृष भांनुलली को॥

(३३)

मन चंचल और नपुंसक है इस भाँति विचार बसीठ बनाया।
वह पास गया जिसके उसने रस खेल खिलाय वहीं बिरमाया॥
निशि बीत चुकी पर भामिनि को अबलौं कबि शङ्कर साथ न लाया।
पढ़ पाठ महामुनि पाणिनि के हमने फल हाय! भयानक पाया॥

(३४)

सावन में सारे झील झावर झिल्लार गये धार से कछार चढ़े बाँगर भरन लगे। घेर घेर अम्बर भदैंया घन गाज रहे बोरे न नदी की बाढ़ गाँव के डरन लगे॥ मेंह और मारी के लताड़े लोग भाग रहे 'शङ्कर' पयान चारों ओर को करन लगे। अम्मा जी पतोहू जो न चाहती हो दूसरा तो भेजो रथ मायके में मूसटा मरन लगे॥

(३५)

बुढ़ापा नातवानी ला रहा है।
ज़माना ज़िन्दगी का जा रहा है॥
किया क्या ख़ाक? आगे क्या करेगा?
अख़ीरी वक्त दौड़ा आ रहा है॥

(३६)

बाबाजी बुलाये वीर डूँगरा के डोकरा ने, जेमन को आसन बछेल के बिछायेरी। औंड़े औंडे ऊदला महेरी के सपोट गये झार गये झोर रोट झाल भरे खायेरी॥ छोड़ी न गजरभत नेकहू नदोरिया में रोंथ रोंथ रूखी दर भुजिया अघायेरी। संतन के रेवड़ जो चमरा चरावत हैं संकर सो बाने बन्द वेदुआ कहायेरी॥

(३७)

मुण्डन की मण्डली फरैया फगुना को फली मौजिया को जामड़ महाजन जनायोरी। ठूँसी ठकुराई ठेलि ठेठुआ ठकुरिया में बोना बजमारो बेठ ब्राह्मन बनायोरी॥ रँगुआ रँगैया भयो गोढ़िया रँगैलन को ज्ञानी गल बजन

में गँगुआ गनायोरी। सङ्कर की किरपा सों ऊँचे पै चमार चढ़े चेतो है चमर-हानो मङ्गल मनायोरी॥

(३८)

सुख भोगे भर पूर, उमा वर वामदेव को।
रहती है कब दूर, त्याग रति कामदेव को॥
प्रेम-भक्ति अपनाय, बनी सिय शक्ति राम की।
उलही प्रिया कहाय, रुक्मिणी रसिक श्याम की॥
यों सधवा-धर्म-प्रचारिणी, तज तुक्कड़-कुल जार को।
हे कविता, मङ्गलकारिणी! भज शङ्कर भरतार को॥

(३९)

शङ्कर नदी नद नदीसन के नीरन की भाप बन अम्बर तें ऊँची चढ़ जायगी। दोनों ध्रुव छोरन लौं पल में पिघल कर घूम घूम धरनी धुरी सी बढ़ जायगी॥ झारेंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति जारेंगे खमण्डल में आग मढ़ जायगी। काहू विधि विधि की बनावट बचेगी नाहिं जो पै वा वियोगिनि की आह कढ़ जायगी।

(४०)

पास के गये पै एक बूँद हू न हाथ लगै दूरसों दिखात मृगतृष्णिका में पानी है। शङ्कर प्रमाण सिद्ध रङ्ग को न सङ्ग पर जान पड़े अम्बर में नीलिमा समानी है॥ भाव में अभाव है अभाव में त्यों भाव भर्यो कौन कहे ठीक बात काहू ने न जानी है। जैसे इन दोउन में दुबिधा न दूर होत तैसे तेरी कमर की अकथ कहानी है॥

(४१)

कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है कि श्याम घनमण्डल में दामिनी की धारा है। यामिनी के अङ्क में कलाधर की कोर है कि राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है॥ शङ्कर कसौटी पर कञ्चन की लीक है कि

तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है। काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है कि ढाल पर खाँडा कामदेव का दुधारा है॥

(४२)

उन्नत उरोज यदि युगल उमेश हैं तो काम ने भी देखो दो कमानें ताक तानी हैं। शङ्कर कि भारती के भावने भवन पर मोह महाराज की पताका फहरानी है। किंवा लट नागिनी की साँवली सँपेलियों ने आधे विधु-बिम्ब पै विलास विधि ठानी है। काटती हैं कामियों को काटती रहैंगी कहो भृकुटी कटारियों का कैसा कड़ा पानी है॥

(४३)

तेज न रहेगा तेजधारियों का नाम को भी मङ्गल मयङ्क मन्द मन्द पड़ जायँगे। मीन बिन मारे मर जायँगे सरोवर में डूब डूब शङ्कर सरोज सड़ जायँगे॥ चौंक चौंक चारोंओर चौकड़ी भरेंगे मृग खञ्जन खिलाड़ियों के पङ्ख झड़ जायँगे। बोलो इन अँखियों की होड़ करने को अब कौन से अड़ीले उपमान अड़ जायँगे॥

(४४)

आँख से न आँख लड़ जाय इसी कारण से भिन्नता की भीत करतार ने लगाई है। नाक में निवास करने को कुटी शङ्कर की छवि ने छपाकर की छाती पै छवाई है॥ कौन मान लेगा कीर तुण्ड की कठोरता में कोमलता तिल के प्रसून की समाई है। सैकड़ों नकीले कवि खोज खोज हारे पर ऐसी नासिका की और उपमा न पाई है॥

(४५)

अम्बर में एक यहाँ दौज के सुधाकर दो छोड़ें बसुधा पै सुधा मन्द मुसकान की। फूले कोकनद में कुमुदनी के फूल खिले देखिये विचित्र दया भानु भगवान की॥ कोमल प्रवाल के से पल्लवों पै लाखा लाल लाखे पर लालिमा विलास करे पान की। आज इन ओठों का सुरङ्गी रस पान कर कविता रसीली भई शङ्कर सुजान की॥

(४६)

उन्नति के मूल ऊँचे उर अवनीतल पै मन्दिर मनोहर मनोज के यमल हैं। मेल के मनोरथ मथेंगे प्रेम-सागर को साधन उतङ्ग युग मन्दर अचल हैं॥ उद्धत उमङ्ग भरे यौवन खिलाड़ी के ये शङ्कर से गोल कड़े कन्दुक युगल हैं। तीनों मत रूखे रसहीन हैं, उरोज पीन सुन्दर शरीर सुरपादप के फल हैं॥

(४७)

कञ्ज से चरण कर कदली से जंघ देखो क्षुद्रतण्डुला से दो उरोज गोल गोल हैं। कृष्णकुण्डला से कान भृङ्गवल्लभा से दृग किंसुक सी नासिका गुलाब से कपोल हैं॥ चञ्चरीक पटली से केश नई कोंपल से अधर अरुण कलकण्ठ के से बोल हैं। शङ्कर वसन्तसेना बाई में बसन्त के से सोहने सुलक्षण अनेक अनमोल हैं॥

(४८)

बार् की बाहर देखी मौसिमे बाहर में तो दिले अन्दलीब को रिझाया गुलेतर से। हम चकराते रहे आसमाँ के चक्कर में तौ भी लौ लगी ही रही माह की महर से॥ आतिशे मुसीबत ने दूर की कुदूरत को बात की न बात मिली लज्जतें शकर से। शङ्कर नतीजा इस हाल का यही है बस सच्ची आशिक़ी में नफ़ा होता है ज़रर से॥

(४९)

केरल की तारा

माँग देकर पाटियों में पीठ पर चोटी पड़ी।
फाड़ मुँह फैलाय फन छबिराशि पै नागिन अड़ी॥
भाल पर चाहक चकोरों का बड़ा अनुराग था।
क्यों न होता चन्द्र का वह ठीक आधा भाग था॥
भ्रू नहीं मैंने कहा रसराज के हथियार हैं।
काम के कमठा लियेतारुण्य की तलवार हैं॥

मीन खंजन मृग मरें दृग देह-द्रुम के फूल हैं।
इन्दु मङ्गल मन्द से तीनों गुणों के मूल हैं॥
फूल अंबर के न कानों को बताकर चुप रहा।
रूप सागर के सजीले सीप हैं यों भी कहा॥
गोल गुदकारे कपोलों को कड़ी उपमा न दी।
पुलपुली मोयन पड़ी फूली कचौड़ी जान ली॥
नाक थी किंवा कुटी छवि की छपाकर पै नई।
लौर लटकन की कि बिजली लौ दिया की बन गई॥
खिलखिलाकर मुख बतीसी को कहा बेलाग यों।
कुन्द की कलियाँ कमल के कोश में छिपती हैं क्यों॥
सब उड़ाऊ भूषणों के सोहने श्रृङ्गार थे।
कण्ठ में केवल मनोहर मोतियों के हार थे॥
पीन कृश उकसे कसे कोमल कड़े छोटे बड़े।
गुप्त सारे अङ्ग साड़ी की सजावट में पड़े॥

जगन्नाथप्रसाद "भानु"

बाबू जगन्नाथप्रसाद का जन्म श्रावण शुक्ल १०, संवत् १९१६ को हुआ था। इनके पिता श्रीयुत बख्शी राम पल्टन में जमादार थे। वे बड़े अच्छे कवि थे। उनका बनाया हनुमान नाटक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। मध्यप्रदेश में उसका अच्छा आदर है।

स्कूल में अंग्रेज़ी तथा हिन्दी की साधारण शिक्षा पाकर बाबू जगन्नाथप्रसाद १५) मासिक पर शिक्षा-विभाग में नौकर हुए और अपनी योग्यता से इन्होंने क्रमशः यहाँ तक उन्नति की कि एक्स्ट्रा असिस्टैंट कमिश्नर और

असिस्टैंट सेटिलमेंट आफ़िसर तक हो गये। कुछ दिनों के लिये ये सेटिलमेंट आफ़िसर भी रह चुके हैं। यह पद यद्यपि केवल सिविलियनों को ही मिलता है तो भी सिविलियन न होकर ये उस पद तक पहुँच चुके हैं। और अब लगातार ३४ वर्षों तक सरकारी सेवा करके इन्होंने पेंशन ले ली है। अब बिलासपुर (मध्यप्रदेश) में रहते हैं। सरकारी नौकरी के समय इन्होंने प्रजा-हित के कई कार्य्य किये हैं। खँडवा ज़िले में इन्होंने पचास नये रैयतवारी गांव बसाकर उनका बहुत ही हलका बंदोबस्त किया। अकाल और विशेषकर प्लेग, विशूचिका आदि के समय इनके द्वारा दीन-दुखियों को अच्छी सहायता मिला करती है। यहाँ तक कि खँडवा में इनके नाम के भजन गाये जाते हैं। प्रजा और सरकार दोनों ही इन्हें बराबर सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

इन्हें बहुत दिनों से मातृ-भाषा हिन्दी पर बड़ा अनुराग है और ये सदा उसकी सेवा की चिन्ता में लगे रहते हैं। इनका अधिकांश समय साहित्य-सेवा में हीं बीतता है। काव्य पर इनका प्रेम बहुत अधिक है और ये उस शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं। अबतक इन्होंने काव्यप्रभाकर, छन्दःप्रभाकर, नवपंचामृत रामायण, काव्य-कुसुमाञ्जलि, छंदः सारावली, हिन्दी-काव्यालंकार, अलंकार-प्रश्नोत्तरी, रसरत्नाकर, काव्यप्रबंध, नायिका-भेद, शंकावली, अंकविलास, कालप्रबोध, इत्यादि ग्रंथ हिन्दी में लिखे हैं और गुलज़ारे सख़ुन और गुलज़ारे फ़ैज़ नामक पुस्तकें उर्दू में लिखी हैं। छन्दः-प्रभाकर और काव्य-प्रभाकर से इनके काव्यशास्त्र-सम्बन्धी पांडित्य का बहुत अच्छा परिचय मिलता है। ये दोनों ग्रन्थ हिन्दी-काव्य के अच्छे रत्न हैं। इनके लिखने में कई वर्षों का परिश्रम और बहुत धन लगा है। छन्दःप्रभाकर तो भारतवर्ष में इतना लोकप्रिय हुआ है कि अभी तक उसके कई संस्करण निकल चुके हैं। ये उर्दू में भी बहुत अच्छी कविता करते हैं और उसमें इनका उपनाम "फ़ैज़" रहता है। बिलासपुर में इनका निज का एक "जगन्नाथ प्रेस" है।

पेंशन लेने के बाद इन्होंने बड़ा प्रयत्न करके बिलासपुर में को-आपरेटिव सेण्ट्रल बैंक लिमिटेड की स्थापना की है। बहुत समय तक उसके आनरेरी सेक्रेटरी का काम करके अब ये उसके प्रेसीडेंट चुन लिये गये हैं। यह बैंक मध्य-प्रदेश के समस्त को-आपरेटिव बैंकों में, कई बातों में आदर्श रूप है।

सन् १८८५ के लगभग एक बार ये काशी आकर बाबू रामकृष्ण वर्मा के यहाँ ठहरे थे। वहाँ अनेक विद्वानों के सामने इन्होंने पिङ्गल-शास्त्र का चमत्कार दिखाया था। इनकी प्रतिभा और विद्वत्ता देख सब लोगों ने चकित होकर कहा था—"आप तो साक्षात् पिङ्गलाचार्य्य हैं। कवियों में भानु हैं।" तभी से लोग इन्हें "भानु कवि" कहने लगे। जबलपुर, सागर, खंडवा, बत्तूल, नरसिंहपुर आदि कई शहरों में इन्हीं के नाम पर "भानुकवि-समाज" स्थापित हैं। ये यथाशक्ति इन समाजों में सहायता तथा उत्साह-दान देते हैं। इन समाजों में किसी से कुछ चन्दा नहीं लिया जाता। इनके उद्योग से कुछ दिनों तक दो काव्य-सम्बन्धी मासिक पत्र चलते रहे। पर अंत में कई झगड़ों से वे बन्द होगये।

सरकार तथा देशी रजवाड़ों में भी इनकी बहुत अच्छी प्रतिष्ठा है। गत दिल्ली-दरबार के अवसर पर इन्हें शाही सनद और दिल्ली-दरबार-पदक मिला था। इन्हें सन् १९२१ के प्रारम्भ में रायसाहिब की और सन् १९२५ के प्रारम्भ में रायबहादुर की उपाधि सरकार से मिली है। ये अव्वल दर्जे के आनरेरी मजिस्ट्रेट भी हैं। इन्होंने सन् १९२५ के दिसम्बर मास में अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन के सभापति के आसन को भी सुशोभित किया था। उस समय इन्होंने जो भाषण दिया था, वह महत्वपूर्ण और मर्मस्पर्शी था। कई वर्तमान-पत्रों ने उसे पूरा पूरा ससम्मान प्रकाशित किया था। हैदराबाद के भूतपूर्व निज़ाम इनसे बहुत स्नेह रखते थे। सन् १९०२ में रीवाँनरेश इनसे खंडवा में मिलकर बड़े प्रसन्न हुए थे। एक बार मैहर के महाराज ने इनसे मिल

और इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर इन्हें एक मान-पत्र दिया था। रायगढ़ के स्वर्गवासी राजा बहादुर भी इनसे बड़ा प्रेम रखते थे। उन्होंने इनकी कवित्व-शक्ति से प्रसन्न होकर इन्हें "साहित्याचार्य" की उपाधि से विभूषित किया था। अभी थोड़े दिन हुए, भारत-धर्म-महामंडल ने इन्हें रौप्य-पदक और मान-पत्र दे सम्मानित किया है।

भानु कवि का हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, मराठी और उड़िया भाषाओं पर भी अच्छा अधिकार है। साथ ही इनकी संस्कृत और अंग्रेज़ी की भी योग्यता बहुत अच्छी है। ये सहृदय, गुणग्राही और मधुरभाषी हैं। वयोवृद्ध होने पर भी ये कुछ न कुछ करते ही रहते हैं। इनका अधिकांश समय काव्यशास्त्र-विनोद में बीतता है। शायद ही ऐसा कोई दिन बीतता हो, जिस दिन इनके यहाँ एक न एक पंडित, गुणी, गायक या कवि का पदार्पण न होता हो। ये यथाशक्ति सब का सम्मान करते हैं।

यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं :—

(१)

गावत गजानन सकुचि एक आनन तें,
जात चतुरानन हू बैठि वश लाज के।
मौन गहि रहे शंभु कहि पंच आनन तें,
भाषत षड़ानन ना सामुहें समाज के॥
कहौ पुनि कौन विधि गाइये गुणानुवाद,
'भानु' लघु आनन तें देव सिरताज के।
शेष जब गावैं सहसानन तें तौ हूँ गुन,
गायें ना सिरात व्रजराज महाराज के॥

(२)

गोपियों का उपालंभ अष्टक

व्रजललना जसुदासों कहतीं, अर्ज सुनो इक नँदरानी।
लाल तुम्हारे पनघट रोकैं, नहीं भरन पावत पानी॥

दान अनोखो हमसों मांगैं, करैं फजीहत मनमानी।
भयो कठिन अब ब्रज को बसबो, जतन करौं कछु महरानी ॥१॥
हँडलि सीसगिरि ठननननन मोरी, तुचक पुचक कहुँ ढरकानी।
चुरियाँ खनकीं खननननन मोरी, करक करक भुइँ बिखरानी॥
पायजेब बज छननननन मोरी, टूट टूट सब छहरानी।
बिछियाँ झनकें झननननन मोरी, हेरतहू नहिं दिखरानी ॥२॥
लालन बरजो ना कछु तरजो, करौ कछू ना निगरानी।
जाय कहेंगे नंदबबा से, न्याव कछुक दैहैं छानी॥
कहि सकुचानी दृग ललचानी, जसुदा मन की पहिचानी।
बड़ी सयानी अवसर जानी, बोली बानी नय सानी ॥३॥
भरमानी घरबर बिसरानी, फिरो अरी क्यों इतरानी।
अबै लाल मेरो* बारो भोरो, तुम मदमाती बौरानी॥
दीवानी सम पाछे डोलौ, लाज न कछु तुम उर आनी।
जाव जाव घर जेठन के ढिग, उचित न अस कहिबो बानी ॥४॥
उततें आये कुँवर कन्हाई, लखी मातु कछु घबरानी।
कह्यो मातु ये झूठी सब मुहिं, पकर लेत बालक जानी॥
माखन मुख बरजोरी मेलत, चूमि कपोलन गहि पानी।
नाच अनेकन मोहिं नचावैं, रंग तरंगन सरसानी ॥५॥
ए मैया मुँहि दै दै गुलचा, बड़ी करत री हैरानी।
कोउ कहै मोरि गैया दुहिदे, साँझ बेर अब नियरानी॥
कोउ देवन सों बर बर माँगैं, बार बार हिय लपटानी।
जस तस कर जो भागन चाहूँ, दूजी आय गहत पानी ॥६॥
भागतहूँ ना पाछो छाड़ैं, बड़ी हठीली गुनमानी।
मुहिं पहिरावत लहँगा लुगरा, पहिरि चीर कोई मरदानी॥

*इन शब्दों के प्रत्येक वर्ण को लघु मानकर उसकी एक ही मात्रा समझो।

थेइ थेइ थेइ मुहिं नाच नचावत, नित्य नेम मन महँ ठानी।
मनमोहन की मीठी मीठी, सुनत बात सब मुसुकानी ॥७॥
सुनि सुनि बतियाँ नंदलाल की, प्रेमफंद सब उरझानी।
मन हर लीनो नटनागर प्रभु, भूलि उरहनो पछितानी ॥
मातु लियो गर लाय लाल को, तपन हिये की सियरानी।
भानु निरखि तब बालकृष्ण छवि, गोपि गईं घर हरखानी ॥८॥

(३)

देखि कालिका को जंग सब होय जात दंग मति कविहू की पङ्ग नहीं सकत बखानं। कहूँ देखो न जहान नहिं परो कहूँ कान ऐसो युद्ध भो महान महाप्रलय लखान॥ यातुधान कुल हान देखि देव हरखान मन मुदित महान हने तबल निसान। जब झमकि झमकि पग ठमकि ठमकि चहूँ लमकि लमकि काली झारी किरपान ॥

(४)

रूप देखि विकराल काँपे दसो दिगपाल अब ह्वै है कौन हाल शेषनाग घबरान। महाप्रलय समान मन कीन अनुमान राम रावण को युद्ध काहू गिनती न आन॥ लखि देवन अंदेश विधि हरि औ महेश तब साथ लै सुरेश करी अस्तुति महान। माई कालिका की जय माई कालिका की जय माई हूजे अब शांत खूब झारी किरपान ॥

(५)

सुनि विनय अमान रूप छाड़ो है भयान सब मन हरखान करै माई गुणगान। चढ़ि चढ़ि के विमान देव छाये आसमान लिये पूजा को समान बहु फूल बरखान॥ थाके वेद औ पुरान माई करत बखान यश तेरो है महान किमि कहै लघु भान। दीजै यही बरदान दास अपनो ही जान रहै बैरिन पै सान चढ़ी तोरी किरपान ॥

श्रीधर पाठक

पण्डित श्रीधर पाठक सारस्वत ब्राह्मण हैं। लगभग ग्यारह सौ वर्ष पहले इनके पूर्वज पंजाब से आकर आगरा ज़िले के जोन्धरी नामक गाँव में बसे थे। इनके तायाजी पंडित धरणीधर न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे, और पिता पण्डित लीलाधर, यद्यपि एक साधारण पण्डित थे, किन्तु बड़े ही सच्चरित्र और भगवद्भक्तिपरायण थे। संवत् १९६३ में उनका शरीरान्त हुआ। उनके शोक में पाठकजी ने "आराध्य शोकाञ्जलि" नामक कुछ संस्कृत पद्यों की एक पुस्तिका रची, जो बड़ी ही करुणापूर्ण है।

पाठकजी का जन्म माघ कृष्ण चतुर्दशी, संवत् १९१६, ता० ११ जनवरी सन् १८६० ई० को जोन्धरी गाँव में हुआ। प्रारम्भ में इन्हें संस्कृत पढ़ाई गई। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। इससे १०, ११ वर्ष की अवस्था में ही ये संस्कृत बोलने और लिखने लगे। इसके बाद पढ़ना लिखना छोड़कर, दो तीन वर्ष खेल-कूद में बिताकर, १४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने फिर पढ़ना प्रारम्भ किया। पहले कुछ फ़ारसी पढ़ी। फिर सन् १८७५ में तहसीली स्कूल से हिन्दी की प्रवेशिका-परीक्षा पास की। इस परीक्षा में ये प्रांत भर में सबसे प्रथम हुये। सन् १८७९ में आगरा कालेज से इन्होंने अंग्रेज़ी मिडिल की परीक्षा में भी प्रांत भर में सर्वोच्च स्थान पाया और सन् १८८० में एंट्रेंस की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। पाठकजी पहले पहल कलकत्ते में सेंसस कमिश्नर के दफ़्तर में नौकर हुए। इसी नौकरी में इन्हें शिमला जाकर हिमालय का सौन्दर्य देखने का अवसर मिला। वहाँ से लौटने पर ये लाट साहब के दफ़्तर में नौकर हुए, और दफ़्तर के साथ नैनीताल गये। एक वर्ष तक ये भारत गवर्नमेंट के दफ़्तर में डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट और सुपरिण्टेण्डेण्ट भी रहे। पाठकजी सरकारी काम बड़े परिश्रम और सावधानी से करते थे। इनको रिश्वत,

अन्याय, खुशामद और सुस्ती से बड़ी चिढ़ थी। उत्तम अंगरेज़ी लिखने के लिये ये विख्यात हैं। १८९८-९९ की इरीगेशन रिपोर्ट में इनकी प्रशंसा छपी है। सुपरिण्टेण्डेण्ट के पद पर इनको ३००) मासिक मिलता था। कई वर्ष हुये, ये पेंशन लेकर प्रयाग में रहने लगे। प्रयाग के लूकरगंज में इनका पद्मकोट नाम का एक बहुत सुन्दर बँगला है। उसे इन्होंने लताओं और वृक्षावलि से सजाकर बहुत रमणीक बना लिया है। उसी में ये सकुटुम्ब रहते हैं। इस समय इनके दो पुत्र और एक कन्या है। दिन में किसी समय पद्मकोट में जाने से पाठकजी किसी कमरे में बैठे साहित्यानुशीलन में निमग्न मिलेंगे। कविता का इन्हें पक्का व्यसन है।

पाठकजी प्राकृतिक सौन्दर्य के बड़े प्रेमी हैं। इनकी कविता पढ़ने से पता लगता है कि सृष्टि-सौन्दर्य का अध्ययन इन्होंने बड़े मनोयोग से किया है। पाठकजी बड़े मिलनसार, सरस हृदय और आनन्दी पुरुष हैं। प्रयाग में रहने से मुझे प्रायः इनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ ही करता है। जितना समय इनकी संगति में कट जाता है, वह बहुत सुखमय होता है।

पाठकजी खड़ीबोली और व्रजभाषा दोनों में कविता करते हैं। यद्यपि आजकल इनकी खड़ीबोली की कविता में बहुत से क्रियापदों का प्रयोग विशुद्ध खड़ीबोली का नहीं कहा जा सकता। किन्तु लोग इन्हें खड़ीबोली का आचार्य भी कहते हैं। इन्होंने गोल्डस्मिथ के तीन ग्रन्थों का पद्यानुवाद "एकान्तवासी योगी", "ऊजड़ग्राम" और "श्रान्तपथिक" नाम से बड़ी योग्यतापूर्वक किया है। श्रान्तपथिक में अंग्रेज़ी पद्य की एक पंक्ति का हिन्दी की एक पंक्ति में अनुवाद है। पाठकजी की साहित्यिक योग्यता पर मुग्ध होकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने लखनऊ में अपने पंचम अधिवेशन का इन्हें सभापति बनाया था। अब तक इनके जितने ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, उनके नाम ये हैं :—

आराध्य शोकाञ्जलि, श्रीगोखले-प्रशस्ति, एकान्तवासी योगी, ऊजड़ ग्राम, श्रान्त पथिक, जगतसचाईसार, काश्मीर-सुखमा, मनोविनोद, श्रीगोखले

गुणाष्टक, देहरादून, तिलिस्माती मुँदरी, गोपिका-गीत, भारतगीत।

इनकी कविता के नमूने हम यहाँ उद्धृत करते हैं :—

(१)

जगत सचाई सार से—

ध्यान लगा कर जो तुम देखो सृष्टी की सुघराई को।
बात बात में पाओगे उस ईश्वर की चतुराई को॥
ये सब भाँति भाँति के पक्षी ये सब रङ्ग रङ्ग के फूल।
ये बन की लहलही लता नव ललित ललित शोभा के मूल॥
ये नदियाँ ये झील सरोवर कमलों पर भौंरों की गुञ्ज।
बड़े सुरीले बोलों से अनमोल घनी वृक्षों की कुञ्ज॥
ये पर्वत की रम्य शिखा औ शोभा सहित चढ़ाव उतार।
निर्मल जल के सोते झरने सीमा-रहित महा विस्तार॥
छै प्रकार की ऋतु का होना नित नवीन शोभा के सङ्ग।
पाकर काल वनस्पति फलना रूप बदलना रङ्ग-बिरङ्ग॥
चाँद सूर्य की शोभा अद्भुत बारी से आना दिन रात।
त्यों अनन्त तारा-मण्डल से सज जाना रजनी का गात॥
यह समुद्र का पृथ्वी तल पर छाया जो जलमय विस्तार।
उसमें से मेघों के मण्डल हों अनन्त उत्पन्न अपार॥
लरजन गरजन घन-मण्डल की बिजली बरषा का सञ्चार।
जिसमें देखो परमेश्वर की लीला अद्भुत अपरम्पार॥

(२)

एकान्तवासी योगी से—

साधारण अति रहन सहन मृदुबोल हृदय हरनेवाला।
मधुर मधुर मुसक्यान मनोहर मनुज वंश का उजियाला॥

सभ्य, सुजन, सत्कर्म-परायण सौम्य, सुशील, सुजान ।
शुद्ध चरित्र, उदार, प्रकृति-शुभ, विद्या-बुद्धि-निधान ॥
प्राण पियारे की गुण गाथा, साधु कहाँ तक मैं गाऊँ ।
गाते गाते चुके नहीं वह चाहे मैं हीं चुक जाऊँ ॥
विश्व-निकाई विधि ने उसमें की एकत्र बटोर ।
बलिहारौं त्रिभुवन धन उस पर वारौं काम करोर ॥

(३)

ऊजड़ ग्राम से—

कबहुँ न तहाँ पधारि ग्राम्यजन पग अब धरिहैं ।
मधुर भुलौनी माँहिं नित्य चिन्ताहि बिसरिहैं ॥
ना किसान अब समाचार तहँ आय सुनैहैं ।
ना नाऊ की बातैं सब कौ मन बहलैहैं ॥
लकड़हार कौ विरहा कबहुँ न तहँ सुनि परिहैं ।
तान श्रवन आनन्द-उदधि कबहूँ न उमरिहैं ॥
माँथौ पोंछि लुहार काम को तहँ रुकिहै ना ।
भारी बलहि ढिलाय सुनन बातैं झुकिहै ना ॥
घर कौ स्वामी आपु दीखिहै तहँ अब नाहीं ।
झाग उठे प्याले कों फिरवावत सब पाहीं ॥
धनी करहु उपहास तुच्छ मानहु किन मानी ।
दीनन की यह लघु सम्पति साधारन जानी ॥
मोहि अधिक प्रिय लगै अधिक ही मो हिय भाई ।
सबरी बनावटनि सों एक सहज सुघराई ॥

(४)

श्रान्त पथिक से—

उक्त शब्द से दीपित मेरी प्रतिभा पङ्ख लगाती है ।
पश्चिमीय-वारिधि-बसंत-सेवित ब्रिटेन को जाती है ॥

शीतल मृदुल समीर चतुर्दिक सुखित चित्त को करती है।
कोमल कल संगीत सरस ध्वनि तरु तरु प्रति अनुसरती है॥
सकल सृष्टि की सुघर सौम्य छवि एकत्रित तहाँ छाई है।
अति की बसै मनुष्यों ही के मन में अति अधिकाई है॥
मनन-वृत्ति प्रति हृदय-मध्य दृढ़ अधिकृत पाई जाती है।
अति गरिष्ट साहसिक लक्ष्य उत्साह अमित उपजाती है॥
गति में गौरव गर्व, दृष्टि में दर्प धृष्टता-युत धारी।
देखूँ हूँ मैं इन्हें मनुज-कुल-नायकता का अधिकारी॥
सदा वृहत व्यवसाय-निरत, सुविचारवन्त दीखैं सारे।
सुगम स्वल्प आचार शील और शुद्ध प्रकृति के गुण धारे॥
स्वाभाविक दृढ़ चित्त अटल उद्धत असीम साहसकारी।
निज स्वत्वों के व्रती निपट निर्भय स्वतंत्र-सत्ताधारी॥
कृषिकर भी प्रत्येक स्वत्व को जाँच गर्वयुत करता है।
त्यों मनुष्य होने का मान सबके समान मन धरता है॥
जिस स्वतंत्रता को ब्रिटेनजन इतना लाड़ लड़ाते हैं।
सामाजिक सम्बन्ध उसी से खंडित अपने पाते हैं॥
आवेगा एक समय जब कि सौभाग्य-शून्य होकर यह देश।
वीरों का पितृगेह विज्ञ विद्वानों का आवास अशेष !!
धन-तृष्णा का घृणित एक सामान्य कुण्ड बन जावैगा।
नृपति, शूर, विद्वान आदि कोई भी मान नहिं पावैगा॥
स्वतंत्रता का हो सकता है यह सब से बढ़कर उद्देश।
व्यक्ति व्यक्ति पर रहै भार शासन का शक्ति-अनुसार अशेष॥

(५)

काश्मीर-सुखमा से—

कै यह जादू भरी विश्व बाजीगर-थैली।
खेलत में खुलि परी शैल के सिर पै फैली॥

पुरुष प्रकृति कौं किधौं जबै जोबन-रस आयौ।
प्रेम-केलि-रस-रेलि करन रङ्ग-महल सजायौ॥
खिली प्रकृति-पटरानी के महलन फुलवारी।
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार-पिटारी॥
प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति॥
विमल-अम्बु-सर मुकुरन महँ मुख-बिम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति॥
यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर।
यहिं अमरन कौ ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥

(६)

गोपिका-गीत से—

महर नन्द का पुत्र तू नहीं, निखिल सृष्टि का साक्षिरूप है।
उदित है हुआ वृष्णि-वंश में, व्यथित विश्व के त्राण के लिए॥
तव सुधामयी प्रेम-जीवनी, अघ-निवारिणी क्लेशहारिणी।
श्रवण-सौख्यदा विश्व-तारिणी, मुदित गा रहे धीर-अग्रणी॥

(७)

सुसंदेश

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमञ्जु वीणा बजा रही है।
सुरों के संगीत की सी कैसी सुरीली गुञ्जार आ रही है॥
हरेक स्वर में नवीनता है, हरेक पद में प्रवीनता है।
निराली लय है औ लीनता है अलाप अद्भुत मिला रही है॥
अलक्ष्य पर्दों से गत सुनाती तरल तरानों से मन लुभाती।
अनूठे अटपट स्वरों में स्वर्गिक सुधा की धारा बहा रही है॥

कोई पुरन्दर की किंकिरी है कि या किसी सुर की सुन्दरी है।
वियोग-तप्ता सी भोग-मुक्ता हृदय के उद्गार गा रही है॥
कभी नई तान प्रेममय है, कभी प्रकोपन कभी विनय है।
दया है दाक्षिण्य का उदय है अनेकों बानक बना रही है॥
भरे गगन में हैं जितने तारे हुये हैं मदमस्त गत पै सारे।
समस्त ब्रह्माण्ड भर को मानों दो उँगलियों पर नचा रही है॥
सुनो तो सुनने की शक्ति वालो सको तो जाकर के कुछ पता लो।
है कौन जोगन ये जो गगन में कि इतनी चुलबुल मचा रही है॥

(८)

जहाँ मनुष्यों को मनुष्य-अधिकार प्राप्त नहिं।
जन जन सरल सनेह सुजन व्यवहार व्याप्त नहिं॥
निर्धारित नरनारि उचित उपचार आप्त नहिं।
कलि-मल-मूलक कलह कभी होवै समाप्त नहिं॥
वह देश मनुष्यों का नहीं, प्रेतों का उपवेश है।
नित नूतन अघ उद्देश थल, भूतल नरक निवेश है॥

(९)

घन-विनय

हे घन ! किन देशन महँ छाये, वर्षा बीति गई।
फिरहु कहाँ भरमाये, क्या यह रीति नई॥
सावन परम सुहावन, पावन सोभा जोय।
सो बिन तुम्हरे आवन, रह्यो भयावन होय॥
गयौ सलूनो सूनो, तुम बिन निपट उदास।
दुख बाढ़ै दिन दूनो, चहुँ दिसि परि रह्यो त्रास॥
सरवर सरित सुखानी, रजमय मलिन अकास।
ऊबि अवनि अकुलानी, खग मृग मरि रहे प्यास॥

कहँ सब साज सजाये, करि रहे कहँ घन घोर।
दल बादल कहँ छाये, जिहि लखि नाचत मोर॥
विकट भयङ्कर ग्रीसम, ऊसम तपत प्रचंड।
दहि रह्यो दस दिसि भीसम, उत्कट अतिव उदंड।
निर्दय सतत सतावत, तापत सो महि लोक।
बिलपावत कलपावत, सब जग परि रह्यो सोक॥
तुम बिन कौन उबरि है, करि है तिनकर मान।
हरि है घोर उधरि है, हे जगजीवन प्रान॥
तुम अम्बुध जगजीवन, जीवन नाम तुम्हार।
चाहत तुव पय पीवन, जीव नवीन उदार॥
भादों हूँ अस बीती, बिन जल बिन्दु अकास।
सूखी रूखी रीती, निर्धन सून्य अकास॥
जहँ अगाध जल दलदल, पुल बिन नहिं उतराव।
तहँ पैदलहि पथिक दल, चलि रहे बहु बिन नाव॥
कहुँ कहुँ कूपहु सूखे, हरे हरे झुरि गये सूख।
एक तुम्हरे भये रूखे, हमहिं सबहि भये रूख॥
हे घन! अबहुँ न चितवहु, इत बहु बिपति निहारि।
तुम सुख दिन कित बितवहु, हम कहँ दुख महँ डारि॥
हे वारिद! नव जलधर! हे धाराधर नाम!
हे पयोद! पय सुन्दर, हे अतिशय अभिराम!!
हे प्रानद आनँद-घन, हे जगजीवन सार!
हे सजीव जीवन-धन, हे त्रिभुवन-आधार!!
हे घनस्याम परम प्रिय, हे आनन्द घनस्याम!
मुदित करनहार जन-हिय, हे हरि तनुज मुदाम!!
हे जग जीय जुड़ावन, भीय- छुड़ावनहार!
हे बक-तीय उड़ावन, हीय- बढ़ावनहार!!

हे रन बंक धनुस धर, सर तरकस जलधार !
ग्रीसम-विसम कलुस-हर, रवि-कर प्रखर प्रहार !!
हे गिरि-तुङ्ग-शिखर चर, हे निर्भय नभ यान !
हे नित नूतन तन धर, हे पवमान विमान !!
तुम भारत के धन बल, गुन गौरव आधार ।
तुम ही तन तुम ही मन, तुम प्रानन पतवार ॥
परम पुरातन तुम्हरो, भारत सँग सत प्रेम ।
जिहि जानत जग सगरौ, मानत निहिचल नेम ॥
सो तुम कों नहिं चहियत, छाँड़न हित सम्बन्ध ।
अटल सदैवहि कहियत, पूरन प्रकृति प्रबन्ध ॥
सोचहु सुमिरि सुजस निज, हे उज्जल जसभौन ।
इन दुखियनहि तुमहिँ तज, घन अवलम्बन कौन ?
पठवहु परम सुहावनि, पावनि पूरब पौन ।
सुभ सन्देस सुनावनि, जल झर लावनि जौन ॥
स्यामघटा लै धावहु, छावहु नभहिं दबाय ।
दिव्य छटा फैलावहु, लावहु दलहि सजाय ॥
घोरहु घुमड़ि घमंकहु, घेरहु दसहु दिसान ।
दामिनि द्रुतहि दमंकहु, धारहु धनुस निसान ॥
करखा कुपित गवावहु, जिहि सुनि हिय हरसाय ।
बरखा विपुल मचावहु, जिहि लखि जिय भरि जाय ॥
गरजन गहन सुनावहु, रन व्रत वीर समान ।
लरजन ललित दिखावहु, बाँधहु धुर धुरवान ॥
मुग्ध मयूर नचावहु, निज घन घोर सुनाय ।
दादुर भेक बुलावहु, नव अभिषेक कराय ॥
कहुँ कहुँ कड़कि सुनावहु, विज्जु पतन ठनकार ।
कहुँ मृदु श्रवन करावहु, झिल्ली गन झनकार ॥

बन बन कीट पतङ्गन, घर घर तिय गन तान।
पुरवहु रङ्ग बिरंगन, हे बहु ढङ्ग-निधान !!
बीर बहूटिन के हित, हरि हरि वास बिछाउ।
करहु नवेलिन के चित, रति-रस केलि उछाउ॥
पोखर नदी तड़ागन, बागन बगियन बीच।
गैल गली घर आँगन, भरहु मचावहु कीच॥
कजरी मधुर मलारन, की धुनि पुनि सुनवाउ।
मङ्गल मोर मनावन, की चरचा चलवाउ॥
झूलन फूल हिँडोलन, काम किलोल कराउ।
पुनि पुनि पिय पिय बोलन, पपियन प्यास बुझाउ॥
करि कृतकृत्य किसानन, सम्वतसर सरसाउ।
सींचि सस्य तृन धानन, तब निज धाम सिधाउ॥
समै समै पुनि आवहु, पुनि जावहु इहि रीति।
सहज सुभाग बढ़ावहु, गहि मग प्राकृत नीति॥
प्रथित प्रेम रस पागहु, पूरन प्रनय प्रतीत।
सदा सरस अनुरागहु, हे घन! विनय विनीत॥

(११)

स्मरणीय भाव

वन्दनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अभिमानी हों।
बान्धवता में बँधे परस्पर परता के अज्ञानी हों॥
निन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज-अज्ञानी हों।
सब प्रकार परतन्त्र पराई प्रभुता के अभिमानी हों॥

(१२)

भारत-सुत

एहो ! नव युव वर, प्रिय छात्र-वृन्द !
भारत-हृदि-नन्दन, आनन्द-कन्द !!

जीवन-तरु-सुन्दर-सुख-फल अमन्द !
भारत-उर-आशा-आकाश-चन्द !!
आरज-गृह-गौरव-आधार-थम्ब !
भारत-भुवि-सर्वस प्रानावलम्ब !!
तुमही तिहि तन, मन, धन, रजत-जोति !
हीरा, मनि, मरकत, मानिक्य, मोति !!
तुमही तिहि आतम-अन्तर-शरीर !
प्रानाधिक-प्रियतम सुत, धीर, वीर !!
तुम्हरे नव विकसित सुठि सबल अंग ।
उन्नत मति चंचल चित, चपल ढंग ॥
शैशव-गुन-संभव, नव नव तरङ्ग ।
नव वय, नव विद्या, नव-युव-उमङ्ग ॥
बाढ़हु भुवि स्वर्गिक सेवा के हेतु ।
फहरै जग भारत-कीरति कौ केतु ॥

(१३)

बन-शोभा

चारु हिमाचल आँचल में एक साल बिसालन कौ बन है ।
मृदु मर्मर शील झरैं जल-स्रोत हैं पर्वत-ओट है निर्जन है ॥
लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन प्रवीन विहंगन कौ गन है ।
भटक्यौ तहाँ रावरौ भूल्यौ फिरै, मद बावरौ सौ अलि को मन है ॥
भारत में वन ! पावन तूही, तपस्वियों का तप-आश्रम था ।
जग-तत्व की खोज में लग्न जहाँ ऋषियों ने अभग्न किया श्रम था ॥
जब प्राकृत विश्व का विभ्रम और था, सात्विक जीवन का क्रम था ।
महिमा बन-बास की थी तब और प्रभाव पवित्र अनूपम था ॥

(१४)

सान्ध्य-अटन

विजन वन-प्रान्त था प्रकृति मुख शान्त था।
अटन का समय था रजनि का उदय था॥
प्रसव के काल की लालिमा में छिसा
बाल शशि व्योम की ओर था आ रहा।
सद्य उत्फुल्ल अरविन्द-निभ नील सुवि—
शाल नभ-वक्ष पर जा रहा था चढ़ा॥
दिव्य दिंनारि की गोद का लाल सा
या प्रखर भूख की यातना से प्रहित
पारणा रक्त-रस लिप्सु, अन्वेषणा-
युक्त या क्रीड़नासक्त, मृगराज शिशु
या अतिव क्रोध-सन्तप्त जर्मन्य नृप
सा किया अभ्र बैलून उर में छिपा
इन्द्र, या इन्द्र का छत्र या ताज या
स्वर्ग्य गजराज के भाल का साज या
कर्ण उत्ताल, या स्वर्ण का थाल सा
कभी यह भाव था, कभी वह भाव था।
देखने का चढ़ा चित्त में चाव था॥
विजन वन शान्त था चित्त अभ्रान्त था।
रजनि-आनन अधिक हो रहा कान्त था॥
स्थान-उत्थान के साथ ही चन्द्र-मुख
भी समुज्ज्वल लौ था अधिकतर भला।
उस विमल बिम्ब से अनति ही दूर, उस
समय एक व्योम में बिन्दु सा लख पड़ा

स्याह था रंग कुछ गोल गति डोलता
किया अति रंग में भंग उसने खड़ा,
उतरते उतरते आ रहा था उधर
जिधर को शून्य सुनसान थल था पड़ा।
आम के पेड़ से थी जहाँ दीखती
प्रेम आलिंगिता मालती की लता
बस उसी वृक्ष के सीस की ओर कुछ
खड़खड़ाकार एक शब्द सा सुन पड़ा
साथ ही पंख की फड़फड़ाहट, तथा
शत्रु निःशंक की कड़कड़ाहट, तथा
पक्षियों में पड़ी हड़बड़ाहट, तथा
कंठ और चोंच की चड़चड़ाहट, तथा
आर्ति-युत कातर स्वर, तथा शीघ्रता
युत उड़ाहट भरा दृश्य इस दिव्य-छवि
लुब्ध दृग युग्म को घृणित अति दिख पड़ा।
चित्त अति चकित अत्यन्त दुःखित हुआ॥

(१५)

म्युनिसिपेलिटी-ध्यानम्

शुक्ल-श्यामांग-शोभाढ्यां, गौन-साड़ी-बिभूषिताम्।
महा-मोह-लसज्जालां, करालां, काल-सोदराम्॥
चन्दा चुङ्गीं विचिन्वन्तीं, खुली नालीं निकालतीम्।
डालतीं च नज़र अपनी, चारों जानिब रुआब से॥
टौनहौले महाभीमे, टेबिल-चेयर-शतान्विते।
लैम्प लोलुप सन्दीप्ते, प्यून भृत्य निषेविते॥
उच्चासन समासीनां, पेपर पेन-चलत्कराम्।

महा विचार में मग्नां, मनोलग्नां धनागमे ॥
तां श्री महाम्युनिसिपेलिटीति ।
ख्यातां सतीं भारत-भाग्य-देवीम् ॥
सर्वं वयं नम्र-विनीत-शीर्षाः ।
पुनः पुनः पौरजना नमामः ॥

सुधाकर द्विवेदी
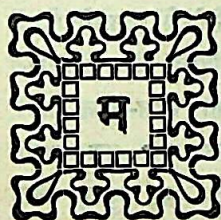
महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी पण्डित कृपालदत्त के पुत्र थे। पण्डित कृपालदत्त ज्योतिष-विद्या में बड़े निपुण और भाषाकाव्य के बड़े प्रेमी थे। उनके पूर्वज चैनसुख नामक एक सरयूपारी दुबे ब्राह्मण काशी में संस्कृत पढ़ने के लिये आये थे और शिवपुर के पास मंडलाई गाँव में एक उपाध्यायजी के यहाँ अध्ययन करने लगे थे। उपाध्यायजी निस्सन्तान थे। इससे चैनसुख ही उनकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हुए। चैनसुख ही के वंश में सुधाकरजी हुये।

सुधाकरजी के जन्म के समय इनके पिता मिर्ज़ापुर में थे। इनके चचा दरवाज़े पर बैठे थे। डाकिये ने 'सुधाकर' नामक पत्र उनके हाथ में दिया। उसी समय घर में से लड़का पैदा होने का समाचार आया। उन्होंने कहा कि लड़के का नाम सुधाकर हुआ। सुधाकरजी का जन्म सं० १९१७, चैत्र शुक्ला चतुर्थी, सोमवार को हुआ था। ९ मास की अवस्था होते ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। इससे इनके पालन-पोषण का भार इनकी दादी पर पड़ा।

आठ वर्ष की अवस्था तक इनकी शिक्षा का कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ। इसके बाद जब ये पढ़ाये जाने लगे, तब इन्होंने अपनी धारणा शक्ति का

अद्भुत चमत्कार दिखलाया। एक वार पढ़ने ही से पद्य इन्हें कंठस्थ हो जाते थे।

बालकपन से ही इनकी रुचि ज्योतिष की ओर अधिक थी। केवल लीलावती पढ़कर ही ये गणित के बड़े बड़े प्रश्न सहज में हल करने लग गये थे। इनकी ऐसी प्रतिभा देखकर पंडित बापूदेव शास्त्री ने क्वींस कालेज के प्रिंसिपल ग्रिफ़िथ साहब से इनकी प्रशंसा की। इससे इनका उत्साह बहुत बढ़ गया। पंडित बापूदेव शास्त्री के पीछे ये बनारस के संस्कृत कालेज में गणित और ज्योतिष के अध्यापक हुये और अन्तकाल तक उस पद पर सुशोभित रहे।

पंडित सुधाकरजी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मित्रों में से थे। इन्होंने हिन्दी भाषा में १७ पुस्तकें रचीं। तुलसी, सूर, कबीर तथा हिन्दी के अन्य प्रसिद्ध कवियों की कविता में इनकी अच्छी गति थी। इनकी रहन-सहन सादी, स्वभाव सीधा और चाल-ढाल सर्वप्रिय थी। ये अनेक वर्षों तक काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के सभापति रहे। इनकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर गवर्नमेंट ने इन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि दी थी। योरोप तक इनकी कीर्ति फैली हुई थी।

इनका देहान्त २८ नवम्बर सन् १९१० को काशी में हुआ। इन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की। ये सरल हिन्दी के बड़े पक्षपाती थे।

एक जगह ये लिखते हैं:—मैं तो समझता हूँ, संस्कृत-काव्य से बढ़ कर हिन्दी काव्य में आनन्द मिलता है।

इनकी कविता के कुछ नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं:—

दोहे

राजा चाहत देन सुख, पर परजा मतिहीन।
पर जामत ही चहत हैं, भूमि करन पग तीन॥१॥
एहि सुराज मँह एकरस, पीअत बकरी बाघ।
छन मँह दौरत बीजुरी, सागर हू को लाँघ॥२॥

छपि छपि कर परकास भे, लुप्त रहे जे ग्रंथ।
पढ़ि पढ़ि के पंडित भए, बने नये बहु पन्थ ॥ ३ ॥

आगि पानि दोऊ मिले, जान चलावत जान।
विना जान सब जन लिये, राजत लखहु सुजान ॥ ४ ॥

अरनी की करनी गई, चकमक चकनाचूर।
घर घर गंधक गंध में, आगि रहति भरपूर ॥ ५ ॥

बाप चलाई एक मत, बेटा सहस करोर।
भारत को गारत किये, मतवाले बरजोर ॥ ६ ॥

मत झगरन महँ मत परहु, इन महँ तनिक न सार।
नर हरि करि खर घोर वर, सब सिरजो करतार ॥ ७ ॥

सबही को यह जगत महँ, सिरज्यौ बिधिना एक।
सब महँ गुन अवगुन भरे, को बड़ छोट विबेक ॥ ८ ॥

काज पड़े सबही बड़ा, बिना काज सब छोट।
पाई हेतु भँज़ावते, रुपया मोहर लोट ॥ ९ ॥

गुन लखि सब कोइ आदरै, गारी धक्का खाय।
कौन पिटाई डुगडुगी, रेल चढ़हु हे भाय ॥१०॥

देखत देखत रात दिन, गुनि जन को नहिं मान।
रेल छाँड़ि अब चहत हैं, उड़न लोग असमान ॥११॥

सौ गुन ऊपर मैं चलउँ, बात बनाइ बनाइ।
कैसे रीझे पियरवा, जानि मोहिं हरजाइ ॥१२॥

अपनी राह न छाड़िये, जौ चाहहु कुसलात।
बड़ी प्रबल रेलहु गिरत, और राह में जात ॥१३॥

मतवालन देखन चला, घर ते सब दुख खोय।
लखि इनकी विपरीत गति, दिया सुधाकर रोय ॥१४॥

मल से उपजा मल बसा, मल ही का व्यवहार।
नाम रखाया संत हम, ऐसे गुरू हज़ार ॥१५॥

का ब्राह्मन का डोम भर, का जैनी क्रिस्तान।
सत्य बात पर जो रहै, सोई जगत महान ॥१६॥

समरथ चाहै सो करै, बड़ो खरो लघु खोट।
नोहर मोहर से बढ़ी, लघु कागज़ की लोट ॥१७॥

सिद्ध भये तो क्या भया, किये न जग उपकार।
जड़ कपास उनसे भला, परदा राखनहार ॥१८॥

सहजहि जौं सिखयो चहहु, भाइहि बहु गुन भाय।
तौ निज भाषा मैं लिखहु, सकल ग्रंथ हरखाय ॥१९॥

बाना पहिरे बड़न का, करैं नीच का काम।
ऐसे ठग को ना मिलैं, नरकहु में कहुँ ठाम ॥२०॥

बिन गुन जड़ कुछ देत हैं, जैसे ताल तलाव।
भूप कूप की एक गति, बिनु गुन बूँद न पाव ॥२१॥

बातन में सब सिद्धि है, बातन में सब योग।
ये मतवाले होय गए, मतवाले सब लोग ॥२२॥

धन दे फिर लेवैं नहीं, जगत सेठ ते आहिँ।
विद्या-धन देइ लेहिँ नहिँ, सो गुन पण्डित माहिँ ॥२३॥

जहाँ तार की गति नहीं, अंजन हूँ बेकाम।
तहाँ पियरवा रमि रहा, कौन मिलावै राम ॥२४॥

भाषा चाहै होय जो, गुन गन हैं जा माहिँ।
ताहीं सौं उपकार जग, सबै सराहहिं ताहि ॥२५॥

अब कविता को समय नहिं, निरखहु आँख उघारि।
मिलि मिलि कर सीखो कला, आपन भला बिचारि ॥२६॥

विनय-पत्रिका के एक पद का संस्कृत अनुवाद

पद

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि रामभक्ति सुरसरिता, आस करत ओस कन की ॥
धरम समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घन की ।
नाहिँ तहँ शीतलता न वारि पुनि, हानि होत लोचन की ॥
ज्यों गच काँच बिलोकि स्येन जड़, छाँह आपने तन की ।
टूटत अति आतुर अहार बस, छतिबिसारि आनन की ॥
कहँलौं कहौं कुचाल कृपानिधि, जानत हौ गति जन की ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निजपन की ॥

अनुवाद

एतादृशी मूढ़ता मनसः ।
रामभक्ति सुरसरितं हित्वा वाञ्छति कणं कुपयसः ॥
धूमपटलमवलोक्य चातको बुध्वा यथा अमलसः ।
लभते तत्र न शीतलमम्भो दृग्वैरिणं च वयसः ।
श्येनः काच कुट्टिमे दृष्ट्वा सं विम्बं मतिरभसः ।
पतित तत्र परपतत्रिरूपे हानिमुपैति च वचसः ॥
मनसः किं वर्णये जड़त्वं करुणानिधे कुयशसः ।
कृत्वाऽऽत्म पणल पा जनस्यापहर दुःखमति तपसः ॥

वन-विहार-पञ्चपदी

(१)

पिया हो, कसकत कुस पग बीच ।
लखन लाज सिय पिय सन बोली हरुए आइ नगीच ॥
सुनि तुरन्त पठयो लखनहिं प्रभु जल हित दूरि सुजान ।
लेइ अङ्क सिय जोवत कुस कन धोवत पद अँसुआन ॥

बार बार झारत कर सों रज निरखत छत बिललात ।
हाय, प्रिये, मान्यो न कह्यो लखु नहिं बन बिच कुसलात ॥
सहस सहचरी त्यागि सदन मधि सासु ससुर सुखकारि ।
हठ करि लगि मो संग सहत तुम हा हा यह दुख भारि ॥
कहत जात यों प्रभु वहु बतियाँ तिया पिया की छाँह ।
देइ गलबहियाँ चली विहँसि कहि यह सुख नाथ अथाह ॥

(२)

नाथ कुश साथरी साथ सुहाई ।
जो सुख सुखनिधान निसि पाई सो क्यों हूँ न कहाई ॥
चहल पहल निसि राज महल बिच चेरिन को समुदाई ।
सासु ससुर के अदब न दबकत दुसह तुम्हार जुदाई ॥
मन भावन मन भावत बतियाँ बतराईं तहँ नाहीं ।
तातें तहँ तें सौगुन सुख बन बिहरत दै गलबाहीं ॥
गगन मगन सोभा मन लोभा देखत नखत निकाई ।
जा छवि आगे सीस महल की पबि छबि प्रगट फिकाई ॥
आलस तजि आरसी बिलोकहु मंगल द्विज जुति भाई ।
बिनु गुनमाल भली छबि पिय हिय कहि सिय मुरि मुसुकाई ॥

(३)

पिया, जब देखी मैं फुलवरियाँ ।
अस मन भयो धाइ गर लागौं त्यागि सकल कुल गलियाँ ॥
लखन लाल मोहि सेष सों लागे बिष सी सँग की अलियाँ ।
लाज भुअंगिनि हँकरत बाढ़ी निरखि बाग के मलियाँ ॥
मन चाह्यो पिय सँग सँग डोलूँ चुनूँ कुसुम की कलियाँ ।
गूँथि गूँथि अभरन पहिराऊँ करि पिय सँग रँगरलियाँ ॥
मन महँ धँसी साँवरी सूरत फँसी पिता पन जलियाँ ।
प्रेम नेम दुबिधा तरंग उठि मची हिये खलबलियाँ ॥

धनुष भंगि पितु नेम प्रेम मय राखि लियो विधि भलियाँ ।
सो इच्छा इकांत बिहरन अब पुरई भुज गर डलियाँ ॥

(४)

पिया हो ! मन की मनहीं माहिं रही ।
तुव सन निज कर केस सँवारन लाजन नाहिं कही ॥
सो घर जरउ जहाँ निज मन भरि पिय मन रखि न रही ।
चाहि चाहि मन पछितायो बहु नाहक नाहिं कही ॥
सहस सहचरी नित घर घेरत परी लाज के फंद ।
अँखिया भरि कबहूँ नहीं निरखी तुव मुख पूरन चन्द ॥
यह बन निज कर नाथ सँवारत बेनी गुँथत बनाय ।
को बड़ भागिनि मो सम तिहुँ पुर यह सुख जाहि जनाय ॥
कोटि मनोज लजावन भावन तुव छवि पीयत पीय ॥
अँखियाँ बहुत दिनन की प्यासी नेक अघात न हीय ॥

(५)

जियत नहिं बे पानी को मीन ।
रतनाकर करिवर की मोतिया बे पानीं छबि हीनं ॥
बे पानी सर राजहंस लखि होत बहुत बेहाल ।
तान अलाप मृदङ्ग न भावत बे पानी को ताल ॥
लहलहात खेतन बिच शाली बे पानी जु सुखात ।
लोह घाव हू बे पानी के छन छन बहुत दुखात ॥
प्राननाथ बे पानी व्यञ्जन कोऊ न सरस सुहात ।
बे पानी के नर नारी जग अति खल नीच लखात ॥
हम अबला पुनि चार पानि कर पकर्‍यो आप बनाय ।
बे पानी अब तुव अनुगामी कहो अनत कस जाय ॥
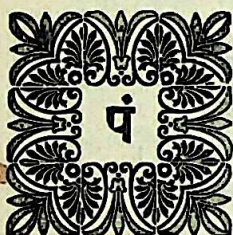
शिवसम्पति

डित शिवसम्पति सुजान शर्मा का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल ५, सं० १९२० को ग्राम उदियाँव ज़िला आज़मगढ़ में हुआ। इनके पिता का नाम पंडित रघुवीर शर्मा और माता का रासकेशी था। ये भूमिहार ब्राह्मण हैं। सं० १९२८ में विद्याध्ययन आरंभ करके सं० १९३८ तक ये शिक्षा पाते रहे। हिन्दी और फ़ारसी पर इनका अच्छा अधिकार है। साधारण संस्कृत भी जानते हैं। अध्यापकी ही इनकी प्रारंभ से जीविका थी। आजकल अध्यापकी छोड़कर ये घर पर रहते हैं। घर पर कुछ ज़मींदारी का भी काम होता है। उसका प्रवन्ध इनके अनुज परमेश्वर मिश्र बड़ी योग्यता से करते हैं। ये चार भाई थे। किन्तु अब दोही जीवित हैं। संतान में चार कन्यायें थीं। अब एक भी जीवित नहीं।

सं० १९५६ या ५७ के लगभग ये मेरे जन्म-स्थान कोइरीपुर (जि० जौनपुर) में अपर प्राइमरी स्कूल के प्रधानाध्यापक होकर गये थे। मैंने अपर प्राइमरी तक इनसे ही शिक्षा पाई है। पद्य-रचना भी मैंने इनसे ही सीखी है। इनके साथ स्कूल में जो इनका निजका पुस्तकालय था, उससे हिन्दी-साहित्य का परिचय पाने में मुझे बड़ी ही सहायता मिली थी। कोइरीपुर में इन्होंने शिक्षा का अच्छा विस्तार किया। अब तक वहाँ के लोग इन्हें प्रशंसा के साथ याद किया करते हैं। ये बड़े निस्पृह और उन्नत विचार के अध्यापक थे।

इन्होंने पद्य में कई पुस्तकें लिखी हैं। दो एक को छोड़कर अभी तक प्रायः सभी अप्रकाशित हैं। इनके रचे हुये ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

१—शिवसम्पति सुजान शतक, २—शिवसम्पति शिक्षावली, ३—शिवसम्पति सर्वस्व, ४—शिवसम्पति नीति-शतक, ५—शिवसम्पति-सम्वाद,

६—नीति-चन्द्रिका, ७—आर्य-धर्म-चन्द्रिका, ८—बसन्त-चन्द्रिका, ९—चौताल-चन्द्रिका, १०—सभा-मोहिनी, ११—यौवनचन्द्रिका, १२—जौनपुर-जलप्रवाह-विलाप, १३—मनमोहिनी, १४—पचरा-प्रकाश, १५—भारत-विलाप, १६—प्रेमप्रकाश, १७—ब्रजचन्द-विलास, १८—प्रयाग-प्रपंच, १९—सावन-विरह-विलाप, २०—राधिका-उराहनो, २१—ऋतु-विनोद, २२—कजली-चन्द्रिका, २३—स्वर्णकुँवरि-विनय, २४—शिव-सम्पति-विजय, २५—ऋतु-संहार, २६—शिवसम्पति-साठा, २७—प्राणपियारी, २८—कलि-काल-कौतुक, २९—उपाध्यायी उपद्रव, ३०—चित्त-चुरावनी, ३१—स्वार्थी संसार, ३२—नये बाबू, ३३—पुरानी लकीर के फकीर, ३४—शतमूर्ख प्रकाशिका, ३५—भूमिहार-भूसुर-भूषण, ३६—कलियुगोपकार ब्रह्महत्या, ३७—रामनारायण-स्तोत्र, ३८—दिल्ली दरबार, ३९—बृटिश-विजय, ४०—गोरखधन्धा, ४१—संसार-स्वप्न।

हम इनकी पुस्तकों से चुनकर इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे उद्धृत करते हैं:—

पचरा-प्रकाश

(१)

छैला जिनि करु देहियाँ के गुमनवाँ न।

यामें नली नली सब जोरी, देखत हौ जो काली गोरी।
पाँचों तत्वन थोरी थोरी, ब्रह्मा करिके मिश्रित विरचे जिव भवनवाँ न॥
जबलों चाहै तब लों बोलै, जग में चारिहु ओरन डोलै।
करि बहु भाँति विनोद कलोलै, चाहे जब करै छोड़ि के गवनवाँ न॥
कोऊ जग में काम न आवै, वित हित सबै सनेह लगावै।
निरधन लखि नहि पास बिठावै, एइसे इहि दुनिया के इनसनवाँ न॥
भजले ब्रह्म सनातन प्यारे, रहना विषय भोग से न्यारे।
श्रीशिवसम्पति हितू तिहारे, खाली चारिहु वेद कै कहनवाँ न॥

(२)

जागो मोह निसा ते राही होत बिहनवाँ न ।
इहँवा सिगरे लोग बिगाना, कोऊ आपन नहीं यगाना ।
नाहक क्यों फँसि के ललचाना, प्यारे जगत मुसाफिर खनवाँ न ॥
माया भठिहारिन ललचाई, आपन सुन्दर रूप दिखाई ।
लूट्यो बहु पथिकन बहकाई, प्यारे अँग अँग पहिरि गहनवाँ न ॥
कितने इहि सराय में आई, भागे निज निज माल गँवाई ।
काहू की नहिं कछुक बसाई, नास्यो करि करि लाख बहनवाँ न ॥
छोड़ो भोग विषय की आसा, जानो सब छिन भंग तमासा ।
पावैं वितै न अवसर खासा, त्यागो तिरछे नयन की सयनवाँ न ॥
आखिर पीछे से पछतैहौ, सब विधि तुमहूँ जब ठगि जैहौ ।
श्रीशिवसम्पति का तब पैहौ, छोड़ो माया भठिहारिन कै गोहनवाँ न ॥

फुटकर

दोहा

देखत जो रंगी महल, घन गजराज तुरंग ।
सो कोऊ जैहैं नहीं, श्रीशिवसम्पति संग ॥१॥
धर्म करो मन क्यों परो, कहो कुमति के धंध ।
का करिहौ चलि हौ जबै, मूढ़ ! चारि के कंध ॥२॥
रे मन, निति रहिहै नहीं, तरुनापन अभिलाख ।
चार दिना की चाँदनी, फिर अँधियारा पाख ॥३॥
लह्यो न जग सुख ब्रह्म को, धर्‌यो न हिय में ध्यान ।
घर को भयो न घाट को, जिमि धोबी को स्वान ॥४॥
सुबह साँझ के फेर में, गुजरी उमर तमाम ।
द्विविधा महँ खोये दुऊ, माया मिली न राम ॥५॥
विषै भोग की आस में, सब दिन दियो बिताय ।

रे मन, करिहै काह अब, पीरी पहुँची आय ॥६॥
पीरी पहुँची आय के, करी फकीरी नाहिं ।
श्रीशिवसम्पत्ति व्यर्थ ही, जीवत या जग माहिं ॥७॥
चतुरानन की चूक सब, कहँलों कहिये गाय ।
सतुआ मिलै न सन्त को, गनिका लुचुई खाय ॥८॥

सवैया

(१)

काम तजै अरु क्रोध तजै मद लोभ तजै उर धीरज आनै ।
वस्तु विषै सब त्याग करै अरु लाज करै निज को पहिचानै ॥
ध्यान धरै परमेश्वर को कवि श्रीशिवसम्पति मिश्र बखानै ।
नाहि त रे मन हाथ कछू नहिं आइ है अन्त समैं पछतानै ॥

(२)

जा तिय को अति उत्तम रूप बनायहु ता तिय को पति हीना ।
जौ मन भावन छैल दई पुनि तौ तिय ही को कुरूपिनि कीना ॥
जौ बहु रूप दई दुहुँ को पुनि तौ कलपावत पुत्र बिहीना ।
तीनहुँ जाहि दई शिवसम्पतिजू विधि ताहि दरिद्रता दीना ॥

(३)

फलहीन महीरुह त्यागि पखेरू वनानलतें मृग दूरि पराहीं ।
रसहीन प्रसूनहि त्याग करैं अलि शुष्क सरोवर हंस न जाहीं ॥
पुरुषै निरद्रव्य तजै गनिका न अमात्य रहैं बिगरे नृप पाहीं ।
शिवसम्पति रीति यही जग की बिन स्वारथ प्रीति करै कउ नाहीं ॥

(४)

याद कुनी हर वक्त खुदा जिहि ते दुउ लोक में होवे भला ।
यार शबाब मुदाम न बाशद जानहु ज्यों चमकै चपला ॥
बादज़ मर्ग चेख़ाहद कर्द अभी बनि घूमत हौ छयला ।
पंद मरा कुन गोश अज़ीज़ "वृथा जनि बात बनाओ लला" ॥

(५)

श्याम क़दीम मुहब्बत हैफ़ महो कुल कर्द न दर्द रहम ।
ज़र्द शुदम् अज़ फ़ुर्क़त रूप य लाग़र वेश तमाम तनम ॥
वक़्त ब उल्फ़त दस्त गिरफ्त इफ़ाय रिफ़ाक़त कर्द कसम ।
श्रीशिवसम्पति आख़िर क़ौम अहीर चे दानद इश्क़ रसम ॥

कबित्त

शुद्ध शुद्ध बोलै भेद वेदन को खोलै भले ब्रह्म सों मिलावै अन्त मुक्ति देनहारी है । जानै ना असत्य नेक सत्य ही बखानै सदा आरज के धर्म की करत रखवारी है ॥ प्रेम परिवार सों बढ़ावै शिवसम्पतिजू सबही सों मोद भरी बोलै बैन प्यारी है । भारत-निवासी बन्धु ताहि क्यों बिसारी हाय, ऐसी गुनवारी भाषा नागरी हमारी है ॥

छप्पै

गंजा नर शिर भानु ताप तें दग्धन लाग्यो ।
विधि-वश छाया हेत ताड़ तरवर तर भाग्यो ॥
ताहि जात तिहि ठौर वृक्ष तें फल इक टूट्यो ।
भयो भयानक शब्द गिरत गंजा शिर फूट्यो ॥
श्री शिवसम्पति कवि भनै सुनो मुख्य यह बात है ।
बिपति संग लगि जात तहँ भाग्यहीन जहँ जात है ॥१॥

काह लाभ ? सँग गुणी, काह दुख ? संगति दुरमति ।
का छति ? समया चूक, निपुणता काह ? धर्म रति ॥
कौन शूर ? इंद्रियन जीत, तिय को ? अनुकूला ।
काह अचल धन जगत माह ? विद्या सुखमूला ॥
का सुख ? शिवसम्पति सुकवि बास नहीं परदेश को ।
राज्य काह ? निज मंत्र युत रहिबो सदा स्वदेश को ॥२॥

अग्नि ताहि जल होत सिन्धु सरिता तिहि छन में ।
मेरु स्वल्प पाखान सिंह हरिना तिहि बन में ॥

पुष्पमाल सम होत ताहि अति विषधर व्याला।
अमृत सम ह्वै जात ताहि विष विषम कराला॥
नीति ग्रंथ मत देखि कै श्रीशिवसम्पति कवि कहै।
सकल लोक मोहन करन शील जासु तन में रहै॥३॥

महावीरप्रसाद द्विवेदी

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का जन्म ज़िला रायबरेली के दौलतपुर गाँव में, सं० १९२१, वैशाख शुक्ल ४, को हुआ। इनके पिता का नाम पण्डित रामसहाय था। जन्म होने के आधे घण्टे बाद, जातकर्म होने के पहले, ज्योतिर्विद् पण्डित सूर्यप्रसाद द्विवेदी ने इनकी जिह्वा पर सरस्वती का बीजमन्त्र लिखा था।

गाँव के मदरसे में इन्होंने हिन्दी और उर्दू का अभ्यास किया। घर पर अपने चाचा पण्डित दुर्गाप्रसाद के प्रबन्ध से इन्होंने थोड़ा सा संस्कृत-व्याकरण, दुर्गा-सप्तसती, विष्णु-सहस्त्रनाम, शीघ्रबोध और मुहूर्त चिन्तामणि आदि पुस्तकें कंठस्थ कीं। गाँव के मदरसे की शिक्षा समाप्त कर, १३ वर्ष की अवस्था में, ये घर से ३२ मील दूर रायबरेली के हाईस्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये गये। अंग्रेज़ी के साथ इनकी दूसरी भाषा फ़ारसी थी। घर से रायबरेली दूर होने के कारण ये पुरवा क़स्बे (ज़िला उन्नाव) के एँग्लो वर्नाक्युलर टाउन स्कूल में भर्ती हुए। थोड़े दिनो में यह स्कूल टूट गया। तब ये फ़तहपुर के स्कूल में गये और फिर वहाँ से उन्नाव। उन्नाव से ये अपने पिता के पास बम्बई चले गये। वहाँ इन्होंने गुजराती और मराठी सीखी तथा संस्कृत और अंग्रेज़ी का भी कुछ अभ्यास बढ़ाया। कुछ दिन पढ़ने के बाद इन्होंने

रेलवे में नौकरी कर ली। वहाँ से ये नागपुर आये। किन्तु वह स्थान इन्हें पसन्द न आया। इससे ये अजमेर चले गये और वहाँ राजपूताना रेलवे के लोको आफ़िस में नौकर हो गये। वहाँ भी ये अधिक समय न ठहरे। एक वर्ष बाद ही फिर बम्बई चले गये। बम्बई में इन्होंने तार का काम सीखा। और फिर जी० आई० पी० रेलवे में सिगनेलर होकर क्रम क्रम से उन्नति करते हुए हर्दा, खँडवा, हुशंगाबाद और इटारसी में कोई पाँच वर्ष तक काम किया। उसी अवसर में तार के काम के सिवा इन्होंने फ़ौज के काम में भी अच्छी प्रवीणता प्राप्त कर ली।

इन्डियन मिडलैंड रेलवे के मैनेजर मिस्टर डब्लू० बी० राइट ने इन्हें झाँसी में टेलिग्राफ़ इन्सपेक्टर नियत किया। इन्होंने तार-सम्बन्धी एक पुस्तक अंग्रेज़ी में लिखी और नई तरह से लाइन क्लियर ईजाद करने में बड़ी योग्यता दिखलाई। कुछ दिनों के बाद ये हेड टेलिग्राफ़ इन्स्पेक्टर कर दिये गये।

रातदिन दौड़-धूप के काम से इनकी तबीअत उकता गई। तब इन्होंने अपनी बदली जनरल ट्रैफ़िक मैनेजर के दफ़्तर में करा ली। वहाँ ये क्लेम्स डिपार्टमेंट के हेड क्लर्क नियत हुए। जब आई० एम० और जी० आई० पी० रेलवे एक हो गईं, तब ये बम्बई बदल दिये गये। वहाँ जी न लगने से इन्होंने अपनी बदली फिर झाँसी करा ली। झाँसी में ये डिस्ट्रिक्ट ट्रैफ़िक सुपरिन्टेंडेंट के चीफ़ क्लर्क हुए। वहीं बङ्गालियों की संगति से इन्होंने बंगला भाषा सीखी और संस्कृत में काव्य और अलङ्कार-शास्त्र का विशेष रूप से अध्ययन किया। कुछ समय के पश्चात् पुराने डिस्ट्रिक्ट ट्रैफ़िक सुपरिन्टेडेन्ट की बदली हो गई, और उनके स्थान पर एक नये साहब आये। उनसे इनकी नहीं पटी। इन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया।

हिन्दी-कविता की ओर इनकी रुचि लड़कपन से ही थी। नौकरी की हालत में ये हिन्दी की सेवा बराबर किया करते थे। नौकरी छोड़ने के बाद तो ये बिल्कुल स्वतन्त्र होकर हिन्दी-साहित्य की सेवा में लग गये।

द्विवेदीजी बड़े परिश्रमी हैं। अपने परिश्रम से ही इन्होंने अच्छी

विद्वत्ता प्राप्त की है। रेल्वे के काम में भी ये अपने परिश्रम और प्रतिभा के आधार पर उन्नति करते रहे। और जब साहित्य-क्षेत्र में आये, तो अपने समय में हिन्दी-साहित्य में एक ख़ास शक्ति होकर प्रतिष्ठित हुए। एक व्यक्ति परिश्रम से कहाँ तक योग्यता प्राप्त कर सकता है, द्विवेदीजी इसके आदर्श हैं।

द्विवेदीजी अच्छे कवि हैं। संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में ललित कविता करते हैं। खड़ी बोली की कविता की आजकल जो कुछ उन्नति है, उसके प्रधान कारण द्विवेदीजी हैं। इनके प्रोत्साहन से कितने ही नये कवि और लेखक हिन्दी का गौरव बढ़ाने लगे। द्विवेदीजी की गद्य लिखने की एक ख़ास शैली है। ऐसा अच्छा गद्य लिखने वाले वर्तमान हिन्दी-लेखकों में बहुत कम हैं। अपने समय में अपने जोड़ के द्विवेदीजी एक ही लेखक हैं। अपने जीवन का जितना भाग द्विवेदीजी ने हिन्दी-सेवा के लिए दिया है, उतना देने का सौभाग्य अभीतक किसी हिन्दी लेखक को प्राप्त नहीं हुआ है।

द्विवेदीजी का अँग्रेज़ी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी, मराठी, बँगला, गुजराती आदि भाषाओं में अच्छा अधिकार है। इन्होंने अंग्रेज़ी, संस्कृत और बँगला से कई उपयोगी पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। कई पुस्तकों पर स्वतंत्र समालोचनाएँ लिखीं और कई स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे। ख़ास ख़ास पुस्तकों के नाम ये हैं:—

हिन्दी महाभारत (बँगला से अनुवादित), रघुवंश (हिन्दी गद्यानुवाद), कुमार सम्भव (हिन्दी गद्यानुवाद), किरातार्जुनीय (हिन्दी गद्यानुवाद, मेघदूत (हिन्दी गद्यानुवाद), नाट्य शास्त्र, विक्रमांकदेव-चरित-चर्चा (समालोचना), कालिदास की निरंकुशता (समालोचना), सम्पत्तिशास्त्र, जलचिकित्सा, शिक्षा (अँग्रेज़ी Education का अनुवाद), स्वाधीनता (अँग्रेज़ी Liberty का अनुवाद), बेकन-विचार-रत्नावली, नैषध चरित-चर्चा (समालोचना), हिन्दी-कालिदास की समालोचना,

कुमारसम्भव-सार (हिन्दी पद्यानुवाद), हिन्दी भाषा की उत्पत्ति, काव्य-मंजूषा (द्विवेदीजी की कविताओं का संग्रह) ।

इनके सिवा इन्होंने कुछ रीडरें भी सङ्कलित की हैं। ये एक अच्छे समालोचक हैं। इनके कुछ फुटकर लेखों का संग्रह प्राचीन पण्डित और कवि, बनिता-विलास और रसज्ञ-रञ्जन नाम से प्रकाशित हुआ है। ख़ास ख़ास कविताओं का एक संग्रह "सुमन" नाम से छपा है।

लगभग बीस वर्षों तक द्विवेदीजी ने सरस्वती का संपादन किया था। द्विवेदीजी ने सरस्वती को हिन्दी की सर्वोत्तम मासिक पत्रिका बना दिया। उसी तरह सरस्वती भी द्विवेदीजी को गौरवान्वित करने में एक कारण हुई। सरस्वती का सम्पादन छोड़ने के बाद अब ये कभी जूही (कानपुर) और कभी दौलतपुर (रायबरेली) रहते हैं।

इनका सारा समय पढ़ने-लिखने में ही बीतता है। इसी से इनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। इसी कारण से अथवा स्वभाव में अधिक विरक्त भाव होने के कारण ये सभा-समितियों में बहुत कम सम्मिलित होते हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति होने के लिए हिन्दी-संसार ने इनसे कई बार प्रार्थनायें कीं, किन्तु इन्होंने स्वीकार नहीं की। त्रयोदश सम्मेलन (कानपुर) की स्वागत समिति के सभापति द्विवेदीजी हुये और उसी सम्मेलन में उसके उपसभापति चुने गये।

इनकी हिन्दी-कविता के कुछ नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं :—

(१)

विचार करने योग्य बातें

मैं कौन हूँ ? किसलिये यह जन्म पाया ?
क्या क्या विचार मन में किसने पठाया ?
माया किसे, मन किसे, किसको शरीर ?-
आत्मा किसे कह रहे सब धर्म्मधीर ? ॥१॥

क्यों पाप-पुण्य-पचड़ा जग बीच छाया ?
माया-प्रपंच रच क्यों सब को भुलाया ?
आया मनुष्य फिर अन्त कहाँ सिधारे ?
ये प्रश्न क्यों न जड़ जीव सदा विचारे ? ॥२॥

नाना प्रकार जग में जन जन्म पाते।
पीते तथा नित्त यथा-विधि खाद्य खाते॥
तौ भी सदैव मरते सब जीवधारी।
क्यों अल्पकालिक हुई फिर सृष्टि सारी ? ॥३॥

क्या वस्तु मृत्यु ? जिसके भय से विचारे।
होते प्रकम्प-परिपूर्ण मनुष्य सारे ?
क्या वाघ है ? विशिख है ? अहि है विषारी ?
किंवा विशाल-तम तोप दृढाङ्गधारी ? ॥४॥

पृथ्वी-समुद्र-सरिता-नर-नाग- सृष्टि।
माङ्गल्य-मूल-मय वारिद-वारि-वृष्टि॥
कर्तार कौन इनका ? किस हेतु नाना—
व्यापार-भार सहता रहता महाना ? ॥५॥

विस्तीर्ण विश्व रच लाभ न जो उठाता।
स्रष्टा समर्थ फिर क्यों उसको बनाता ?॥
जो हानि लाभ कुछ भी उसको न होता।
तो मूल्यवान फिर क्यों निज काल खोता ? ॥६॥

कोई सदैव सुख-युक्त करे विहार।
कोई अनेक विधि दुःख सहे अपार॥
जो भेद-भाव सब में यह विद्यमान।
क्या बीज-वस्तु उसकी जग में प्रधान ? ॥७॥

तेजोनिधान रवि-बिम्ब सुदीप्ति-धारी।
आह्लादकारक शशी निशि-ताप-हारी॥

जो ये प्रकाशमय पिण्ड गये बनाये।
तो व्योम बीच कब ये किस भाँति आये ? ॥८॥
क्यों एक देश सहसा बल-वृद्धि पाता ?
क्यों अन्य दीर्घ दुख-सागर में समाता ?
ये खेल कौन ? किस कारण खेलता है ?
क्यों नित्य नित्य सुख में दुख मेलता है ? ॥९॥
ये हैं महत्व-परिपूरित प्रश्न सार।
एकान्त जो नर करैं इनका विचार ॥
होवें अवश्य जन वे जग में महान।
सज्ञान और वर बुद्धि विवेकवान ॥१०॥

(२)

कुमारसम्भवसार

(तृतीय सर्ग)

सारे देववृन्द से खिंचकर देवराज के नयन हज़ार,
कामदेव पर बड़े चाव से आकर पड़े एकही बार।
अपने सब सेवक-समूह पर स्वामी का आदर-सत्कार,
प्रायः घटा बढ़ा करता है सदा प्रयोजन के अनुसार ॥१॥
'सुख से बैठो यहाँ मनोभव !—इस प्रकार कर वचन-विकास,
आसन रुचिर दिया सुरपति ने अपने ही सिंहासन पास।
स्वामी की इस अनुकम्पा का अभिनन्दन कर शीश झुकाय,
रतिनायक इस भाँति इन्द्र से बोला उसे अकेला पाय ॥२॥
सब के मन की बात जानने में अति निपुण ! प्रभो देवेश,
विश्व-बीच कर्तव्य कर्म तब क्या है मुझे होय आदेश।
करके मेरा स्मरण अनुग्रह दिखलाया है जो यह आज,
उसे अधिक करिए आज्ञा से यही चाहता हूँ सुरराज ॥३॥

इन्द्रासन के इच्छुक किसने करके तप अतिशय भारी,
की उत्पन्न असूया तुझ में—मुझसे कहो कथा सारी।
मेरा यह अनिवार्य शरासन पाँच कुसुम-सायक धारी।
अभी बना लेवे तत्क्षण ही उसको निज आज्ञाकारी ॥४॥
जन्म-जरा-मरणादि दुःख से होकर दुखी कौन ज्ञानी,
तव सम्मति प्रतिकूल गया है भक्ति-मार्ग में अभिमानी।
भृकुटी कुटिल कटाक्ष-पात से उसे सुन्दरी सुरबाला,
बाँध डाल रक्खे, वैसे ही पड़ा रहे वह चिरकाला ॥५॥
नीति शुक्र से पढ़ा हुआ भी है यदि कोई अरि तेरा,
पहुँचे अभी पास उसके झट दूत राग रूपी मेरा।
जल का ओघ नदी तट दोनों पीड़ित करता है जैसे,
धर्म अर्थ दोनों ही उस के पीड़न करूँ, कहो तैसे ॥६॥
महापतिव्रत धर्मधारिणी किस नितम्बिनी ने अमरेश!
निज चारुता दिखाकर तेरे चञ्चल चित में किया प्रवेश।
क्या तू यह इच्छा रखता है, कि वह तोड़ लज्जा का जाल,
तेरे कण्ठ-देश में डाले आकर अपने बाहु-मृणाल ॥७॥
समझ सुरत-अपराध, कोप कर, किस तरुणी ने हे कामी!
तुझे तिरस्कृत किया? हुआ तव शीस यदपि तत्पद-गामी।
उमताप से व्याकुल होकर वह मन में अति पछतावे,
पड़ी रहे पल्लव-शय्या पर, किये हुये का फल पावे ॥८॥
मुदित हूजिये वीर! वज्र नव करे अखण्डित अब विश्राम,
बतलाइये, देवताओं का बैरी कौन पराक्रम-धाम।
मेरे शरसमूह से होकर विफल-बाहुबल कम्पित गात,
अधर कोप-विस्फुरित देखकर डरे स्त्रियों से भी दिनरात ॥९॥
हे सुरेश! तेरे प्रसाद से कुसुमायुध ही मैं, इस काल,
साथ एक ऋतुपति को लेकर, और प्रपञ्च यहीं सब डाल।

धैर्य पिनाकपाणि हर का भी, कहिये स्खलित करूँ देवार्थ,
और धनुष धरने वाले सब मेरे सन्मुख तुच्छ पदार्थ ॥१०॥
पादपीठ को शोभित करते हुये इन्द्र ने इतने पर,
जङ्घा से उतार कर अपना खिले कमल सम पद सुन्दर।
निज अभिलषित विषय में सुनकर मन्मथ का सामर्थ्य महा,
उससे अति आनन्द-पूर्वक, समयोचित, इस भाँति कहा ॥११॥
सखे! सभी तू कर सकता है, तेरी शक्ति जानता हूँ,
तुझको और कुलिश को ही मैं अपना अस्त्र मानता हूँ।
तपोबली पुरुषों के ऊपर वज्र व्यर्थ हो जाता है,
मेरा तू अमोघ साधन है, सभी कहीं तू जाता है ॥१२॥
तेरा बल है विदित, तुझे मैं अपने तुल्य समझता हूँ,
बड़े काम में इसीलिए ही तव नियुक्ति मैं करता हूँ।
देख लिया जब यह कि शेष ने सिर पर भूमि उठाई है,
तभी विष्णु ने उस पर अपनी शय्या सुखद बनाई है ॥१३॥
यह कहकर कि सदाशिव पर भी चल सकता है शर तेरा,
मानों अङ्गीकार कर लिया काम! काम तू ने मेरा।
यही इष्ट है, क्योंकि शत्रु अब अति उत्पात मचाते हैं,
यज्ञभाग भी देववृन्द से छीन छीन ले जाते हैं ॥१४॥
जिसके औरस पुत्र-रत्न को करके अपना सेनानी,
सुरविजयी होना चहते हैं, मार असुर सब अभिमानी।
वही महेश समाधिमग्न हैं, पास कौन जा सकता है?
तेरा विशिख तथापि एक ही कार्य सिद्ध कर सकता है ॥१५॥
ऐसा करो उपाय जाय कर, हे रतिनायक बड़भागी,
हों जिससे पवित्र गिरिजा में योगीश्वर हर अनुरागी।
उनके योग्य कामिनी कुल में वही एक गिरि-बाला है,
सत्य बचन ब्रह्मा ने अपने मुख से यही निकाला है ॥१६॥

जहाँ हिमालय ऊपर हर ने तपःक्रिया विस्तारी है,
गिरिजा वहीं पिता की अनुमति से सेवार्थ सिधारी है।
यह संवाद अप्सराओं से सुन पाया मैंने सारा,
भेद जान लेता हूँ सब का सदा इन्हीं के ही द्वारा ॥१७॥
अतः सुरों की कार्य-सिद्धि के लिए करो अब तुम प्रस्थान,
इसे करेंगी सफल उमा ही, इसमें कारण वही प्रधान।
तू भी है तथापि इन सब का हेतु अपेक्षाकृत बलवान,
उग आने के पहले आदिम अंकुर के जलदान समान ॥१८॥
सकल सुरों की विजयकामना के उपाय हैं हर, उन पर,
शर तेरे ही चल सकते हैं, बड़भागी है तू अतितर।
अप्रसिद्ध भी कार्य और से हो सकता जो कभी नहीं,
उसके भी करने में यश है, यह तो विश्रुत सभी कहीं ॥१९॥
ये सब सुर तेरे याचक हैं, गति इनकी कुण्ठित सारी,
है तीनों लोकों का मन्मथ ! कार्य महासंगलकारी।
तव धन्वा के लिए काम यह नहीं निपट घातक भारी,
तेरे तुल्य न वीर और हैं, अहो विचित्र वीर्यधारी ! ॥२०॥
ऋतुनायक तेरा सहचर है सदा साथ रहने वाला,
बिना कहे ही तुझको देगा वह सहायता, इस काला।
शिखा अग्नि की बढ़ा दीजिये हे समीर ! जीवन दाता,
भला पवन से भी क्या कोई इस प्रकार कहने जाता ॥२१॥
एवमस्तु कहकर स्वामी के अनुशासन को अति अभिराम,
मालावत मस्तक ऊपर रख सादर चला वहाँ से काम।
ऐरावत की पीठ ठोंकने से कर्कश कर को स्वच्छन्द,
सुरपति ने उसके शरीर पर फेरा कई बार सानन्द ॥२२॥
प्रिय बसन्त प्रियतमा प्राणसम रति भी दोनों निपट सशङ्क,
मन्मथ के अनुगामी होकर चले साथ उसके सातङ्क।

"मैं अवश्य सुरकार्य करूँगा, चाहे हो शरीर भी नाश,"
यह दृढ़ कर हिमशैल-शृङ्ग पर गया अनङ्ग शिवाश्रम पास ॥२३॥
उस आश्रमवाले अरण्य में थे जितने संयमी मुनीश,
उनके तपोभङ्ग में तत्पर हुआ वहाँ जाकर ऋतुईश।
मन्मथ के अभिमान रूप उस मधु ने अपना प्रादुर्भाव,
चारों ओर किया कानन में, दिखलाया निज प्रबल प्रभाव ॥२४॥
यक्षराज जिसका स्वामी है उसी दिशा की ओर प्रयाण
करते हुये देख दिनकर को, उल्लङ्घन कर समय-विधान।
मन में अति दुःखित सी होकर, हुआ समझ अपना अपमान,
छोड़ा दक्षिण-दिशा-वधू ने मलयानिल निश्वास-समान ॥२५॥
कामिनियों के मधुर मधुर रवकारक नव नूपुर-धारी,
पद से स्पर्श किये जाने की न कर अपेक्षा सुखकारी।
गुद्दे से लेकर अशोक ने, तत्क्षण महा-मनोहारी,
कली नवल-पल्लव-युत सुन्दर धारण की प्यारी प्यारी ॥२६॥
कोमल पत्तों की बनाय झट पक्षपंक्ति लाली लाली,
आममञ्जरी के प्रस्तुत कर नये विशिख शोभाशाली।
शिल्पकार ऋतुपति ने उन पर मधुप मनोहर बिठलाये;
काम नाम के अक्षर मानो काले काले दिखलाये ॥२७॥
रहती है यद्यपि कनेर में रुचिर रङ्ग की अधिकाई,
तदपि सुबास-हीनता उसके मन को हुई दुःखदायी।
वही विश्वकर्ता करता है जो कुछ जी में आता है;
सम्पूर्णता गुणों की प्रायः कहीं नहीं प्रकटाता है ॥२८॥
बालचन्द्र सम जो टेढ़ी है, जिनका अब तक नहीं विकाश;
ऐसी अरुण वर्ण कलियों से अतिशय शोभित हुआ पलाश।
मानो नव वसन्त नायक ने, प्रेम-विवश होकर तत्काल,
बनस्थली को दिये नखों के क्षतरूपी आभरण रसाल ॥२९॥

नई वसन्ती ऋतु ने करके तिलक फूल को तिलक समान,
देकर मधुपमालिका रूपी मृदु कज्जल शोभा की खान।
जैसा अरुण रङ्ग होता है बाल सूर्य में प्रातःकाल,
तद्वत नवल आम-पल्लव-मय अपने अधर बनाये लाल ॥३०॥
रुचिर चिरौंजी के फूलों की रज जो उड़ उड़ कर छाई;
हरिणों की आँखों में पड़कर पीड़ा उसने उपजाई।
इससे वे अन्धे से होकर मरमरात पत्तेवाले,
कानन में समीर सम्मुख सब भागे मद से मतवाले ॥३१॥
आममञ्जरी का आस्वादन कोकिल ने कर बारंबार,
अरुण कण्ठ से किया शब्द जो महा मधुरता का आगार।
"हे मानिनी कामिनी! तुम सब अपना मान करो निःशेष"
इस प्रकार मन्मथ महीप का हुआ वही आदेश विशेष ॥३२॥

(३)

विधि-विडम्बना

चारु चरित तेरे चतुरानन! भक्ति-युक्त सब गाते हैं।
इस सुविशाल विश्व की रचना तुझसे ही बतलाते हैं॥
कहते हैं तुझ में चतुराई है इतनी सविशेष।
जिसको देख चकित होते हैं शेष महेश रमेश॥
चतुर्वेद की शपथ तुझे है मुझे बात यह बतलाना।
तूने भी, कह, क्या अपने को महा चतुर मन में माना॥
माना सत्य, क्यों कि तूने कुछ कहा नहीं प्रतिकूल।
कमलासन! सचमुच यह तेरी हैगी भारी भूल॥
भली बुरी बातें सुत की सब पिता सदा सुन लेता है।
अनुचित सुन लेवै तौ भी वह उसे क्षमा कर देता है॥

तेरा तौ त्रिभुवन में विश्रुत परम पितामह नाम ।
फिर तुझसे कहने सुनने में भय का है क्या काम ? ॥
दोष राशि से दूषित तेरी करतूतैं हम पाते हैं ।
अतः यहाँ पर कोई कोई उनमें से दरसाते हैं ॥
अति नीरस अति कर्कश अति कटु वेद-वाक्य-विस्तार ।
क्षण भर तू समेटकर सुन निज अविचारों का सार ॥
विक्रम भोजादिक महीपवर मही मयङ्क महा ज्ञानी ।
सरस्वती के सच्चे सेवक देवद्रुम समान दानी ॥
तूने इनसे भूतल भूषित किया अल्प ही काल ।
भूल और क्या हो सकती है इससे अधिक विशाल ॥
काव्य-कला-कौशल सम्बन्धी रुचिर सृष्टि के निर्माता ।
मधु मिश्री से भी अति मीठी वचन-मालिका के दाता ॥
कालिदास भवभूति आदि को अन्य लोक पहुँचाय ।
कविता-वधू विधे ! तूने ही विधवा कर दी हाय ॥
कपिल कणाद पतञ्जलि गौतम व्यास आदि बर विज्ञानी ।
जिनकी कीर्ति-ध्वजा अभीतक सतत फिरै है फहरानी ॥
उनको भी तूने क्षणभंगुर किया विवेक बिहाय ।
दिखलावें हम तेरी किन किन भूलों का समुदाय ॥
रम्यरूप रसराशि, विमलवपु, लीला ललित मनोहारी ।
सब रत्नों में श्रेष्ठ शशिप्रभ अति कमनीय नवल नारी ॥
रच फिर उसको जराजीर्ण तू करता है निः ेष ।
भला और तुझ जरठ जीव से क्या होगा सुविशेष ॥
उपलपात, जलपात, भयङ्कर वज्रपात भी सहते हैं ।
देहपात तक भी सहने में कोई कुछ नहिं कहते हैं ॥
किन्तु असह्य उरोजपात का करते ही सुविचार ।
तेरी विषम-बुद्धि पर बुधवर हँसते हैं शतबार ॥

कटु इन्द्रायण में सुन्दर फल मधुर ईख में एक नहीं।
बुद्धिमान्द्य की सीमा तूने दिखलाई है कहीं कहीं॥
निपट सुगन्धहीन यदि तूने पैदा किया पलाश।
तो क्या कञ्चन में भी तुझको करना न था सुबास?
विश्व बनाने वाला तुझको सब कोई बतलाते हैं।
विहग बनाने में भी तेरी भूल किन्तु हम पाते हैं॥
यदि तेरे कर में कुछ होता कला-कुशल लवलेश।
काक और पिक एक रङ्ग के क्यों होते लोकेश!॥
वायस विहरैं हैं गलियों में हंस न पाये जाते हैं।
कण्टकारि सब कहीं, कमल-कुल कहीं कहीं दिखलाते हैं॥
मृगमद पाने का क्या कोई था ही नहीं सुपात्र।
जो तूने उससे पशुओं का किया सुगन्धित गात्र॥
नित्य असत्य बोलने में जो तनिक नहीं सकुचाते हैं।
सींग क्यों नहीं उनके सिर पर बड़े बड़े उग आते हैं॥
घोर घमण्डी पुरुषों की क्यों टेढ़ी हुई न लङ्क।
चिन्ह देख जिसमें सब उनको पहचानते निशङ्क॥
दुराचारियों को तू प्रायः धर्म्माचार्य बनाता है।
कुत्सित कर्म्म-कुशल कुटिलों को अक्षरज्ञ उपजाता है॥
मूर्ख धनी विद्वज्जन निर्धन उलटा सभी प्रकार।
तेरी चतुराई को ब्रह्मा बार बार धिक्कार॥
घोड़े जहाँ अनेक गधों का वहाँ काम क्या था सच कह।
विदित हो गई तेरी सारी चतुराई तू चुप ही रह॥
शुद्धाशुद्ध शब्द तक का है जिनको नहीं विचार।
लिखवाता है उनके कर से नए नए अख़बार॥
विधे, मनोज्ञ मातृभाषा के द्रोही पुरुष बनाना छोड़।
राम-नाम सुमिरन कर बुड्ढे और काम से अब मुख मोड़॥

एकानन हम, चतुराननन तू, अतः कहैं क्या और विशेष।
बुद्धिमान जन को इतना ही बतलाना बस है भुवनेश ! ॥

(४)

सरगौ नरक ठेकाना नाहिं।

(१)

देवी शारदा तुमका सँवरौं मनियाँ देव महोबे क्यार।
तुमही रक्षक हौ सब जग के बेड़ा खेइ लगावो पार ॥
आपन कथा सुनावों तुमका सुनिये ज्वानौ कान लगाय।
जब सुधि आवै उन बातन क जियरा कलपि कलपि रहि जाय ॥

(२)

सात पुस्ति तें पुरिखा हमरे बसे गाउँ में घर बनवाय।
निगुरन के पुरवा में आजौ ठाढ़ि हमारि मड़ैया आय ॥
पैदा हुवें भैन हम भैया ख्याला खावा नित उठि रोजु।
दिन दिन भरि हम घरे न आयन बाप न पावा रंचौ खोज ॥

(३)

मूँड़ कै धरती बहुत उठावा तब भै दादा के मन ऊब।
हाथ पकरि बसिलायन हमका कीन्हेन्हि लाल कनगुदी खूब ॥
रहे पढ़ावत लरिका याके लाला नाउँ मदारीलाल।
हुवैं गन बैठायन हमका अब आगे को सुनौ हवाल ॥

(४)

एक्का एकु पढ़ै हम लागेन परै लागि नित हम पै मारु।
छिन छिन मैं हाँ लाला जौं के कलुआ आपन हाथु निकारु ॥
छड़ी तड़ातड़ हम पर बरस लागी नित कम से कम बीस।
अटई डेडा तहू न छाँड़ा मैया अस हम रहेन खबीस ॥

(५)

ज्यों त्यों कै हम पढ़ा मोहल्ला फिरि खरीदि औ बेंचु व्रियाजु ।
पिच मित तरकुन मंत्र पढ़ायनि लाला रोजु ढोवायनि नाजु ॥
फिरि हम गयेन झंझर खेरे मच्छू मियाँ मोलवी पास ।
लागे पढ़न अलिफ्बे हौवा धरम करमु भा सत्यानाश ॥

(६)

परेन पेंच में जेर जबर के हालि हालि लागेन अभुवाय ।
घर माँ जानैं पढ़ी पारसी चिलमैं भरत दिनौंना जाय ॥
पढ़ा करीमा अहमद नामा खालिक बारी बारा दाँय ।
दस्तूरुस्सुबियाँ पढ़ि डारा जिनके पढ़े पितर तरि जाँय ॥

(७)

यहू के आगे और बढ़ेन हम पढ़ी किताबैं हम छा सात ।
मनु तौं रहे अरब माँ अरबी पढ़ी जाय पै बदे कै बात ॥
घर माँ कहै लाग सब कोऊ कल्लू बन्द करहु यह खेलु ।
बहुत पारसी जो तुम पढ़िहौ तुम्हैं परी ब्याँचै का तेलु ॥

(८)

भैंसि भवानी कै तब सेवा लागे करन पढ़ब गा छूटि ।
बटुवन दूध दुहा इन हाथन धार न कबहुँ दुहत माँ टूटि ॥
मोटरिन कटिया भथुरा सानी कीन रोज हम बाँह चढ़ाय ।
मस्त भयन तब आल्हा गावा उपर दुहत्था हाथु उठाय ॥

(९)

होत बनियई आई हमरे को अब तुमते झूठ बताय ।
हमहूँ घिउ बरसन ब्याँचा है छोटी बड़ी बजारन जाय ॥
हियाँ की बातें हियईं रहिगै अब आगे का सुनौ हवाल ।
गाउँ छाड़ि हम सहर सिधायेन लागेन लिखै चुटकुला ख्याल ॥

(१०)

अचकुन पहिरि बूट हम डाटा बाबू बनेन डेरात डेरात।
लागेन आवै जाय सभन माँ कण्ठु फूट तब बना बतात्त॥
जब तक हमरे तन माँ तनिकौ रहा गाउँ के रस का अंसु।
तब तक हम अखबार किताबै लिखि लिखि कीन उजागर बंसु॥

(११)

जहाँ गाउँ का खुनू खतम भा तहाँ फूटिगै भागि हमारि।
अक्किल सासु छाँड़िग हमका दुर्गति कह ते कहन पुकारि॥
कुँभीपाक नरक असि लाखन जाजरूर जहँ परे गँधायँ।
गटरन ते भुँइ पोलि परी है मनई चलत फिरत धँसि जायँ॥

(१२)

आठौ पहर भकाभक निकरै धुवाँ जहाँ अकास उड़ाय।
कौनी तना बताओं तुमका अक्किल रहै लहुरवा भाय॥
ऐसे बुरे सहर माँ रहिके पाकि उठा सब मगज हमार।
नीक नकारा हमैं न सूझै मुँह ह्वैगा भुजवा का भार॥

(१३)

जिनका नमक मुद्दतिन खावा तानि डुपट्टा सोवा भाय।
कलम कुदारी लै उनही की जरै बगारन लागेन हाय॥
जिन बभनन का पुरिखन पूजा हमहूँ जिनके ज्वारा हाथ।
हमरिन गारिन के फूलन ते उनहिन के भै बोझिल माथ॥

(१४)

घेरे रहैं गाउँ वाले जो मदति देइँ औ राखैं प्रीति।
उनहिन का हम उठि गरियाई असि हमार भइ उलटी रीति॥
अपने करमन कै सुधि आये हियरा टूक टूक ह्वै जाय।
धरती माता जो तुम फाटौ मैं मुँह के बल जाउँ, समाय॥

(१५)

गुन जसु मानबु कौन चीज है सो हम अपन्यौ जानित नाँहिं ।
अस किरतघ्न और जो ढूढ़ैं मिली न सात बिलाइत माँहिं ॥
जो हमार संगी साथी हैं सुख दुख माँ जे सदा सहाय ।
उनहुन का अपमान करी हम बीच बजार बैठि गोहराय ॥

(१६)

घिन लागै अपने मनइन तें उनका पास न आवै ध्यान ।
जो कोउ भूलि गाँउ ते आवै वहिका आड़े हाँथन ल्यान ॥
कोऊ न जानै की इनके हैं भ्वासरि भई बन्द नक्कास ।
यहि ते काम परै पग हमहीं घर कै दौरी दुइसै कास ॥

(१७)

अपने मतलब का हम जिनकी चेरिया बिनती करी हजारु ।
उनहिन के पीछे परि जाईं चाहै हँसै सकल संसारु ॥
पढ़ा गुना हम कुछौ नहीं ना जो कुछ सिखा राम का नाउँ ।
तहू बिरस्पति जो कुछ ब्वालैं वहिमा दौरि धुसारी पाउँ ॥

(१८)

हमरी नस नस बीच बियावै इरखा और लोभ महराज ।
उनहिन की दीन्हीं खाइत है रोटी छाँड़ि लोक कै लाज ॥
जहि का चढ़ी चढ़ाई ऊपर जहि का चही गिराई कीच ।
हाय, हाय अस हमैं वेगारा सहरु ससुर यहु है अस नीच ॥

(१९)

साफ कहित है हम ऐसेन का सरगौ नरक ठेकाना नाँहि ।
बूड़ि मरी जो हम गङ्गा मां तौ हत्या लागै हम काहि ॥
हे भगवान उबारौ हमका दीनदयाल धर्म्म के नाथ ।
तुम्हरे पायन माँ हम आपन पटकत हैं यह फुटहा माथ ॥

(२०)

जो हम जनतेन अस गति होई तौ हम हाय न छँड़तेन गाँउँ ।
भूखे चाहै मरित न लेइत भूलिउ कबौं सहर का नाँउँ ॥
देखि हमारि हाल जो काऊ फिरिऊ सहर के आई पास ।
तनिकौ चलन कही हम होई वहिका सब बिधि सत्यानास ॥

(५)

कर्त्तव्य-पंचदशी से

दुर्भिक्ष राक्षस जहाँ सब को सताता ।
लाखों मनुष्य यह प्लेग कृतान्त खाता ॥
नाना बिपत्ति-अभिभूत प्रजा जहाँ है ।
कर्त्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहाँ है ? ॥१॥
आरोग्य-युक्त बल-युक्त सुपुष्ट गात ।
ऐसा जहाँ युवक एक न दृष्टि आता ॥
सारी प्रजा निपट दीन दुखी जहाँ है ?
कर्त्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहाँ है ? ॥२॥
पाता न शिक्षण जहाँ शिशु-वृन्द सारा ।
बाला-समूह सब मूर्ख जहाँ हमारा ॥
नाना कला कुशलता न कहीं जहाँ है ।
कर्त्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहाँ है ? ॥३॥
है भूतकाल सब स्वप्न-कथा-समान ।
चिन्ता-निमग्न निशिवासर वर्तमान ।
नैराश्य पूर्ण अगली गति भी जहाँ है ।
कर्त्तव्य क्या न कुछ भी तुझ को वहाँ है ? ॥४॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म वैशाख कृ० ३, १९२२ में हुआ। ये अगस्त गोत्रीय, शुक्ल यजुर्वेदीय सनाढ्य ब्राह्मण हैं। इनके पिता का नाम पंडित भोला-सिंह उपाध्याय था। इनके पूर्वज बदाऊँ के रहने वाले थे। किन्तु लगभग तीन सौ वर्षों से वे आज़मगढ़ के निकट, तमसा नदी के किनारे, कसबा निज़ामाबाद में आ बसे थे। इस परिवार की जीविका ज़मींदारी और वंश-परंपरागत पाण्डित्य है।

उपाध्यायजी का विद्यारंभ इनके सुयोग्य पंडित और सच्चरित्र चचा ब्रह्मासिंह ने पाँच ही वर्ष की अवस्था में करा दिया था। सात वर्ष की अवस्था में ये निज़ामाबाद के तहसीली स्कूल में भरती हुये। वहाँ से सं० १९३६ में मिडिल वर्नाक्यूलर की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर और मासिक छात्रवृत्ति पाकर ये बनारस के क्वींस कालेज में अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। किन्तु थोड़े ही दिनों में स्वास्थ्य बिगड़ जाने से इन्हें अंग्रेज़ी पढ़ना छोड़कर घर चला आना पड़ा। इसके बाद घर पर इन्होंने चार पाँच वर्ष तक उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत का अभ्यास किया। सं० १९३९ में इनका विवाह हुआ। और सं० १९४१ में ये निज़ामाबाद के तहसीली स्कूल में अध्यापक नियत हुये। सं० १९४४ में इन्होंने नार्मल-परीक्षा पास की। निज़ामाबाद में सिख-सम्प्रदाय के एक साधु बाबा सुमेरसिंह रहते थे। वे हिन्दी-भाषा के अच्छे कवि थे। उनकी ही संगति से उपाध्यायजी को हिन्दी की ओर विशेष अभिरुचि उत्पन्न हुई। पहले-पहल इन्होंने वेनिस का बाँका और उर्दू रिपवान विंकल का हिन्दी-अनुवाद करके काशी-पत्रिका में प्रकाशित कराया। इसके पश्चात् कुछ निबन्धों का हिन्दी-अनुवाद करके "नीति-निबन्ध," गुलज़ार दबिस्ताँ का हिन्दी-अनुवाद करके "विनोद-वाटिका"

और गुलिस्ताँ के आठवें बाबका हिन्दी-अनुवाद करके "उपदेश-कुसुम" नाम से तीन पुस्तकें लिखीं। सं० १९४६ में इन्होंने क़ानूनगोई की परीक्षा पास की और एक वर्ष बाद ही क़ानूनगो का स्थायी पद भी प्राप्त कर लिया। तब से ये रजिस्ट्रार क़ानूनगो, सदर नायब क़ानूनगो और गिरदावर क़ानूनगो आदि कई पदों पर काम करते करते अंत में लगभग बीस वर्ष तक आज़मगढ़ के सदर क़ानूनगो के पद पर थे। अब ये १ नवम्बर, १९२३ से पेंशन लेकर काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में हिन्दी-साहित्य के अध्यापक का काम करते हैं और दिन रात साहित्य-चर्या में लगे रहते हैं।

सरकारी नौकरी में उपाध्यायजी ने बड़ी निस्पृहता, न्याय-प्रियता, और सहन-शीलता से तथा निष्पक्षपात होकर ऐसा काम किया है कि प्रजा और राजकर्मचारी दोनों संतुष्ट थे।

उपाध्यायजी यद्यपि सनातन-धर्मावलम्बी हैं, पर अंध-परम्परा के हिमायती नहीं हैं। ये विलायत-यात्रा, पतितोद्धार और हिन्दू-धर्म के विस्तार के पक्षपाती हैं। ये बाल-विधवा-विवाह को बुरा नहीं समझते। किसी मत से इनका द्वेष नहीं। समाज-सेवा का भाव इनमें पूर्ण रूप से है। आज़मगढ़ की संस्कृत-पाठशाला और सनातन-धर्म-सभा के संचालकों में ये भी थे।

उपाध्यायजी का परिवार सब तरह से सुखी है। इनकी स्त्री का देहान्त अब से २२ वर्ष पहले हो चुका है। इन्होंने फिर दूसरा विवाह नहीं किया। इनके एक पुत्र, एक कन्या, दो पौत्र और दो पौत्री हैं। इनके छोटे भाई पंडित गुरुसेवकसिंह उपाध्याय, बी० ए०, आजकल को-आपरेटिव बैंक के असिस्टेंट रजिस्ट्रार हैं। उनके चार पुत्र और एक कन्या है। पं० गुरुसेवकसिंह विलायत हो आये हैं।

उपाध्यायजी बँगला भाषा के भी अच्छे जानकार हैं। खड्गविलास प्रेस के मालिक बाबू रामदीनसिंह से इनकी बड़ी मित्रता थी। इनकी रचित और अनुवादित प्रायः सब पुस्तकें खड्गविलास प्रेस ही से प्रकाशित हुई हैं।

इनका लिखा हुआ "ठेठ हिन्दी का ठाठ" सिविल-सर्विस-परीक्षा के कोर्स में है।

वर्तमान हिन्दी-कवियों में उपाध्यायजी एक ख़ास स्थान के अधिकारी हैं। हिन्दी-साहित्य में इनकी पहुँच प्रामाणिकता के स्थान तक समझी जाती है। इनका लिखा हुआ हिन्दी में अतुकान्त महाकाव्य "प्रियप्रवास" इनकी प्रतिभा का उज्ज्वल प्रमाण है। ये कठिन से कठिन और सरल से सरल, दोनों प्रकार की हिन्दी में गद्य-पद्य-रचना करने में सिद्धहस्त हैं। प्रियप्रवास के बाद इन्होंने रोज़मर्रा की बोलचाल में दो पद्य पुस्तकें और लिखीं—चोखे चौपदे और चुभते चौपदे। इन चौपदों में हिन्दी के महावरों का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया गया है। पहले ये ब्रजभाषा में कविता लिखा करते थे, अब खड़ी बोली में लिखते हैं। ब्रजभाषा में भी इनकी कविताएँ बड़ी ही ललित हुई हैं।

उपाध्यायजी समय समय पर कितनी ही साहित्यिक सभाओं के सभापति भी चुने गये हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी हो चुके हैं।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

प्रभुप्रताप

चाँद औ सूरज गगन में घूमते हैं रात दिन।
तेज औ तम से दिशा होती है उजली औ मलिन॥
वायु बहती है, घटा उठती है, जलती है अगिन।
फूल होता है अचानक बज्र से बढ़कर कठिन॥
जिस अलौकिक देव के अनुकूल केलि-कलाप बल।
वह करे, सब काल में संसार का मङ्गल सकल॥१॥
क्या नहीं है हाथ में वह नाथ क्या करता नहीं।
चाहता जो है उसे करते कभी डरता नहीं॥

सुख मिला उसको न, दुख जिसका कि वह हरता नहीं।
कौन उसको भर सके ? जिसको कि वह भरता नहीं॥
है अछूती नीति, करतूतें निराली हैं सभी।
भेद का उसके पता कोई नहीं पाता कभी ॥२॥
हैं बहुत सुन्दर बसे कितने नगर देता उजाड़।
है मिलाता धूल में कितने बड़े-ऊँचे-पहाड़॥
एक झटके में करोड़ों पेड़ लेता है उखाड़।
एक पल में है सकल ब्रह्माण्ड को सकता बिगाड़॥
काँपते सब देवते आतंक से हैं रात दिन।
मोम करता है उसे, है जोकि पत्थर से कठिन ॥३॥
देखते हैं राज पाकर हम जिसे करते बिहार।
माँगता फिरता रहा कल भीख वह कर को पसार॥
एक टुकड़े के लिये जो घूमता था द्वार द्वार।
आज धरती है कँपाती उसके धौंसे की धुकार॥
नित्य ऐसी सैकड़ों लीला किया करता है वह।
रंक करता है, कभी सिर पर मुकुट धरता है वह ॥४॥
जड़ जमा कितने उजड़तों को बसाता है वही।
बात रख कितने बिगड़तों को बनाता है वही॥
गिर गयों को कर पकड़ करके उठाता है वही।
भूलतों को पथ बहुत सीधा बताता है वही॥
इस धरा पर सुन सका कोई नहीं जिसकी कही।
उस दुखी की सब बिथा सुनता समझता है वही ॥५॥
डाल सकता शीश पर जिसके पिता छाया नहीं।
गोद माता की खुली जिसके लिये पाया नहीं॥
है पसीजी देखकर जिसकी व्यथा जाया नहीं।
काम आती दीखती जिसके लिये काया नहीं॥

बाँह ऐसे दीन की है प्यार से गहता वही।
सब जगह सब काल उसके साथ है रहता वही ॥६॥
वह अँधेरी रात, जिसमें है घिरी काली घटा।
वह विकट जङ्गल, जहाँ पर शेर रहता है डटा॥
वह महा मरघट पिशाचों का जहाँ है जमघटा।
वह भयङ्कर ठाम जो है लोथ से बिल्कुल पटा॥
मत डरो ये कुछ किसी का कर कभी सकते नहीं
क्या सकल संसार पाता है पड़ा सोता कहीं ॥७॥
जिस महा मरुभूमि से कढ़ती सदा है लू लपट।
वारि की धारा मधुर रहती उसी के है निकट॥
जिस विशद जल-राशि का है दूर तक मिलता न तट।
हैं उसी के बीच हो जाता धराराल भी प्रगट॥
वह कृपा ऐसी किया करता है कितनी ही सदा।
लाभ जिससे हैं उठाते सैकड़ों जन सर्वदा ॥८॥
जिस अँधेरे को नहीं करता कभी सूरज शमन।
उस अँधेरे को सदा करता है वह पल में दमन॥
भूल करके भी किसी का है जहाँ जाता न मन।
वह बिना आयास के करता वहाँ भी है गमन॥
देवतों के ध्यान में भी जो नहीं आता कभी।
उस खेलाड़ी के लिये हस्तामलक है वह सभी ॥९॥
जगमगाती व्योम-मंडल की विविध तारावली।
फूल, फल, सब रंग के खिलती हुई सुन्दर कली॥
सब तरह के पेड़ उनकी पत्तियाँ साँचे ढली।
रंग विरंगे पंख की चिड़ियाँ प्रकृति-हाथों पली॥
आँखवाले के हृदय में हैं बिठा देती यही।
इन अनूठे विश्व-चित्रों का चितेरा है वही ॥१०॥

देख जो पाया अरोराबोरिएलिस का समा।
रंग जिसकी आँख में है मेघमाला का जमा॥
जो समझ ले व्यूह तारों का अधर में है थमा।
जो लखे सब कुछ लिये है घूमती सारी क्षमा॥
कुछ लगाता है वही करतूत का उसकी पता।
भाव कुछ उसके गुणों का है वही सकता बता॥११॥

है कहीं लाखों करोड़ों कोस में जल ही भरा।
है करोड़ों मील में फैली कहीं सूखी धरा॥
हैं कहीं पर्वत जमाये दूर तक अपना परा।
देख पड़ता है कहीं मैदान कोसों तक हरा॥
बह रही नदियाँ कहीं, हैं गिर रहे झरने कहीं।
किस जगह उसकी हमें महिमा दिखाती है नहीं॥१२॥

जी लगा कर आँख की देखो क्रिया कौतुक भरी।
इस कलेजे की बनावट की लखो जादूगरी॥
देखकर भेजा बिचारो फिर बिमल बाजीगरी।
इस तरह सब देह की सोचो सरस कारीगरी॥
फिर बता दो यह हमें संसार के मानव सकल।
इस जगत में है किसी की तूलिका इतनी प्रबल॥१३॥

जब जनमने का नहीं था नाम भी हमने लिया।
था तभी तैयार उसने दूध का कलसा किया॥
दूर की बहु आपदायें बुद्धि, बल, वैभव दिया।
की भलाई की न जानें और भी कितनी क्रिया।
तीन पन बीते मगर तब भी तनिक चेते नहीं।
हैं पतित ऐसे कि उसका नाम तक लेते नहीं॥१४॥

हे प्रभो! है भेद तेरा वेद भी पाता नहीं।
शेष शिव सनकादि को भी अंत दिखलाता नहीं॥

क्या अजब है जो हमें गाने सुयश आता नहीं।
व्योम तल पर चींटियों का जी कभी जाता नहीं ॥
मन मनाने के लिये जो कुछ ढिठाई की गई।
कीजिये उसको क्षमा, है बात तो अनुचित हुई ॥१५॥

(२)

कर्मवीर

देखकर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं।
रह भरोसे भाग के दुख भोग पछताते नहीं ॥
काम कितना ही कठिन हो किन्तु उकताते नहीं।
भीड़ में चंचल बने जो वीर दिखलाते नहीं ॥
हो गये यक आन में उनके बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब काल में वे ही मिले फूले फले ॥ १ ॥
आज करना है जिसे करते उसे हैं आज ही।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही ॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आपही ॥
भूलकर वे दूसरों का मुँह कभी तकते नहीं।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ॥ २ ॥
जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं ॥
आज कल करते हुए जो दिन गँवाते हैं नहीं।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं ॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके किये।
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये ॥ ३ ॥
व्योम को छूते हुये दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठों पहर ॥

गर्जते जल-राशि की उठती हुई ऊँची लहर।
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लवर ॥
ये कँपा सकती कभी जिसके कलेजे को नहीं।
भूल कर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ॥ ४ ॥

चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवें बना।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना ॥
जो कि हँस हँस के चबा लेते हैं लोहे का चना।
"है कठिन कुछ भी नहीं" जिनके है जी में यह ठना ॥
कोस कितने ही चलें पर वे कभी थकते नहीं।
कौन सी है गाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं ॥ ५ ॥

ठीकरी को वे बना देते हैं सोने की डली।
रेग को कर के दिखा देते हैं वे सुन्दर खली ॥
वे बबूलों में लगा देते हैं चंपे की कली।
काक को भी वे सिखा देते हैं कोकिल-काकली ॥
ऊसरों में हैं खिला देते अनूठे वे कमल।
वे लगा देते हैं उकठे काठ में भी फूल फल ॥ ६ ॥

काम को आरंभ करके यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुँह मोड़ते ॥
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहिं तोड़ते।
संपदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते ॥
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन।
काँच को करके दिखा देते हैं वे उज्ज्वल रतन ॥ ७ ॥

पर्वतों को काट कर सड़कें बना देते हैं वे।
सैंकड़ों मरुभूमि में नदियाँ बहा देते हैं वे ॥
गर्भ में जल राशि के बेड़ा चला देते हैं वे।
जंगलों में भी महा-मंगल रचा देते हैं वे ॥

भेद नभतल का उन्होंने है बहुत बतला दिया।
है उन्होंने ही निकाली तार की सारी क्रिया॥ ८ ॥
कार्य्य-थल को वे कभी नहिं पूछते "वह है कहाँ"।
कर दिखाते हैं असम्भव को वही संभव यहाँ॥
उलझनें आकर उन्हें पड़ती हैं जितनी ही जहाँ।
वे दिखाते हैं नया उत्साह उतना ही वहाँ॥
डाल देते हैं विरोधी सैकड़ों ही अड़चलें।
वे जगह से काम अपना ठीक करके ही टलें॥ ९ ॥
जो रुकावट डालकर होवे कोई पर्वत खड़ा।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वे उड़ा॥
बीच में पड़कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा।
तो बना देंगे उसे वे क्षुद्र पानी का घड़ा॥
बन खँगालेंगे करेंगे व्योम में बाजीगरी।
कुछ अजब धुन काम के करने की उनमें है भरी॥१०॥
सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले।
बुद्धि, विद्या, धन विभव के हैं जहाँ डेरे डले॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गये इतने भले।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले॥
लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी।
देश की औ जाति की होगी भलाई भी तभी॥११॥

(३)

बीरवर सौमित्र

कर करवाल लिये रण-भू में निधरक जाना।
विचकर विशिखादिक से पग पीछे न हटाना॥
लखकर रुधिर-प्रवाह और उत्तेजित होना।
रोम रोम छिद गये न दृढ़ता चित की खोना॥

गिरते लख करके लोथ पर लोथ देख शिर का पतन।
नहिं विचलित होना अल्प भी हुआ देख शत-खंड तन ॥१॥
तोपों का लख अग्नि-काण्ड चित शंक न लाना।
न कांपना लख शिर पर से गोलों का जाना ॥
भिड़ना मत्त गयन्द संग केहरि से लड़ना।
कर द्वारा अति क्रुद्ध व्याल को दौड़ पकड़ना ॥
लख काल-वदन विकराल भी त्याग न देना धीरता।
अकले भिड़ना भट विपुल से यदपि है बड़ी वीरता ॥२॥
किन्तु वीरता उच्च कोटि की और कई हैं।
कथित वीरताओं से जो वर कही गई हैं ॥
करना स्वार्थ-त्याग क्रोध से विजित न होना।
विपत-काल औ कठिन समय में धैर्य न खोना ॥
ऐसी ही कितनी और हैं द्वितिय भाँति की वीरता।
जिनमें न चाहिये विपुल बल और न वज्र-शरीरता ॥३॥
रामानुज में द्विविध वीरता है दिखलाती।
समय समय पर जो चित को है बहुत लुभाती ॥
पति बन जाता देख सिया थी जब अकुलाई।
सुत-वियोग-वश जब कौशल्या थी बिलखाई ॥
उस काल सुमित्रा-सुअन ने जो दिखलाया आत्म-बल।
वह उनके कीर्ति-निकेत का कलित खंभ है अति अचल ॥४॥
तजा उन्होंने राजभवन-सुख सुर-उर-ग्राही।
तजी सुमित्रा-सदृश जननि सब भाँति सराही ॥
आह ! न जिसका विरह कभी जन सम्मुख आया।
तजी उर्मिला जैसी परम सुशीला जाया ॥
पर बाल-प्रीति की डोरि में बँधे भायप रँग में रँगे।
वह तज न सके प्रियबन्धु को विपिन गये पीछे लगे ॥५॥

यों उनका तिय-जननि-राज-सुख को तज जाना।
यती-भाव से वन में चौदह बरस बिताना॥
राम सिया को मान पिता माता औ स्वामी।
बन में सह दुख विपुल बना रहना अनुगामी॥
संसार चकित-कर कार्य्य है मिलित मनोरम धीरता।
है यही आत्म-बल-संभवा परम अलौकिक वीरता ॥६॥
कुसुम चयन करते अलकावलि बीच लगाते।
जब सीता सँग विविध केलि-रत राम दिखाते॥
उसी काल सौमित्र रुचिर उटजादि बनाते।
कर्त्तन करते मंजु शाल-शाखा दिखलाते॥
सो किशलय पर जो यामिनी राम बिताते सुमुखि सह।
वह निशि व्यतीत करते लखन नखतावलि गिन सजग रह ॥७॥
कभी जानकी पट-भूषण-पेटिका लिये कर।
वे दिखला पड़ते चढ़ते गिरि दुरारोह पर॥
लता, वेलि काटते, कटीले तरु छिनगाते।
सुपथ बनाते, गहन विपिन में कभी दिखाते॥
पथ कभी सिय-कुटी से सरसि तक का हित गमनागमन।
चिन्हित करते वे दीखते बाँध पादपों में बसन ॥८॥
यक तुषार से मलिन चन्द्रिकावती रयन में।
जब वह थी गतप्राय बड़ी सरदी थी बन में॥
वे थे देखे गये बारि सरसी में भरते।
सीकरमय तृण-राजि बीच बचकर पग धरते॥
यक जलद-मयी यामिनी में शिर पर जलधारादि ले।
चूती कुटीर के काज वे तृण पत्ते लाते मिले ॥९॥
यह अति कोमल राज-कुँवर कुवलय-कर-लालित।
सुबरन का सा कान्तिमान सुख में प्रतिपालित॥

कुसुम-सेज पर शयन-निपुण, मृदु-भूतल-चारी।
वर व्यञ्जन वर बसन वर विभव का अधिकारी॥
जब कानन में था दीखता करते परम कठोर व्रत।
तब अवगत था जग को हुआ वह कितना है राम-रत॥१०॥

कपि-दल लेकर राम जलधि-तट पर जब आये।
उसका देख कराल रूप कपि-पति अकुलाये॥
सुन गर्जन आवर्त्त सहित लख तुङ्ग तरंगें।
हो बिलीन सी गईं चमू की सकल उमङ्गें॥
पर विचलित हुये न अल्प भी शूर-शिरोमणि श्री लखन।
कर धनु, शायक, लेकर कहे परम ओजमय ये बचन॥११॥

वही वीर है जो कर्त्तव्य-विमूढ़ न होवे।
कार्य-काल को जो नहिं बन आकुल चित खोवे॥
क्या है यह जल-राशि कहो शर मार सुखाऊँ।
या कर इसे प्रभाव-हीन घट तुल्य बनाऊँ।
पर मरजादा का तोड़ना कभी नहीं होता उचित।
इसलिये करो सुयतन, विवश हो करके न बनो दुचित॥१२॥

इसी सुमित्रा-सुवन-कथन का सुफल हुआ यह।
जो बारिधि था अगम गया गिरि से बाँधा वह॥
उस पर से ही उतर पार सेना सब आई।
फिर लङ्का पर धूमधाम से हुई चढ़ाई॥
रण छिड़ जाने पर लखन ने जो दिखलाया विपुल बल।
वह अकथनीय है अगम है वीर-वृन्द में है विरल॥१३॥

सुनकर धनु-टंकार मेदिनी थर्राती थी।
दिग्दन्ती की द्विगुण दलक उठती छाती थी॥
विशिख-वृन्द से नभमण्डल था पूरित होता।
जो था दश दिशि बीच बहाता शोणित सोता॥

प्रलय-वन्हि थी दहकती त्रिपुरांतक थे कोपते ।
जिस काल वीर सौमित्र थे रण-भू में पग रोपते ॥१४॥
अमर वृन्द जिसके भय से था थर थर कपता ।
जो प्रचण्ड पूषण सा था रण-भू में तपता ॥
पाहन द्वारा गठित हुई थी जिसकी काया ।
विविध-भयङ्कर मूर्तिमती थी जिसकी माया ॥
वह परम साहसी अति प्रबल मेघनाद सा रिपु-दमन ।
जिसके कोपानल में जला धन्य वह सुमित्रा-सुवन ॥१५॥
बालमीक मुनि-पुङ्गव ने वदनाम्बुज द्वारा ।
चरित सुमित्रा-सुत का जो अति सरस उचारा ॥
वह नितान्त तेजोमय है अति ओज भरा है ।
एक राम-जीवन-मय है निरुपम सुथरा है ॥
निज रुचि-प्रियता ममतादि का है न पता उसमें कहीं ।
धारायें उसमें राम-हित की शुचिता सँग हैं बहीं ॥१६॥
अकपट-चित से बन अनन्य मन रोप युगल पग ।
वे करते अनुसरण राम का नीरवता सँग ॥
उसी काल यह मौन तपस्वी जीभ हिलाता ।
जब रघुपति हित सुजस मान पर सङ्कट आता ॥
जग-जनित ताप उपशमन के लिये त्याग निजता गिला ।
सौमित्र आत्मरति नीर था राम-प्रीति पय में मिला ॥१७॥
कुण्ठित मति पौरुष-विहीनता पर-वशता से ।
वे न सिया-पति अनुगत थे स्वारथ-परता से ॥
वरन् हृदय में भ्रातृ-भक्ति उनके थी न्यारी ।
जिसने थी मोहनी अपर भावों पर डारी ।
उनके जीवन-हिम-गिरि-शिखर पर अमरावति से खसी ।
राका-रजनी-चाँदनी सी स्नेह-वीरता थी लसी ॥१८॥

वे बासर थे परम मनोहर दिव्य दरसते ।
जब थे भारत-मध्य लखन-से बन्धु विलसते ॥
आज कलह, छल, कूट-कपट घर घर है फैला ।
हृदय बंधु से बंधु का हुआ है अति मैला ॥
हे प्रभो ! बंधु सौमित्र से फिर उपजें गृह गृह लसें ।
शुचि चरित सुखी परिवार फिर भारत-वसुधा में बसें ॥१९॥

(४)

होली

मान अपना बचाओ, सम्हलकर पाँव उठावो
गावो भाव भरे गीतों को, बाजे उमग बजावो ॥
तानें ले ले रस बरसावो, पर ताने न सहावो ।
भूल अपने को न जावो ॥१॥

बात हँसी की मरजादा से कहकर हँसो हँसावो ।
पर अपने को बात बुरी कह आँखों से न गिरावो ।
हँसी अपनी न करावो ॥२॥

खेलो रंग अबीर उड़ावो लाल गुलाल लगावो ।
पर अति सुरँग लाल चादर को मत बदरङ्ग बनावो ।
न अपना रंग गँवावो ॥३॥

जन्म-भूमि की रज को लेकर सिर पर ललक चढ़ावो ।
पर अपने ऊँचे भावों को मिट्टी में न मिलावो ।
न अपनी धूल उड़ावो ॥४॥

प्यार-उमंग-रंग में भीगो सुन्दर फाग मचावो ।
मिलजुल जी की गाँठें खोलो हित की गाँठ बँधावो ।
प्रीति की बेलि उगावो ॥५॥

(५)

दुखिया के आँसू

बावले से घूमते जी में मिले।
आँख में बेचैन बनते ही रहें ॥
गिर कपोलों पर पड़े बेहाल से।
बात दुखिया आँसुओं की क्या कहें ॥१॥
हैं व्यथायें सैकड़ों इनमें भरी।
ये बड़े गंभीर दुख में हैं सने ॥
पर इन्हें अवलोक करके दो बता।
हैं कलेजा थामते कितने जने ॥२॥
बालकों के आँसुओं को देखकर।
है उमड़ आता पिता-उर प्रेममय ॥
कौन सी इन आँसुओं में है कसर।
जग-जनक भी जो नहीं होता सदय ॥३॥
चन्द्रवदनी आँसुओं पर प्यार से।
हैं बहुत से लोग तन मन वारते ॥
एक ये हैं, लोग जिनके वास्ते।
हैं नहीं दो बून्द आँसू डालते ॥४॥
क्या न कर डाला खुला जादू किया।
आँख के आँसू कढ़े या जब बहे ॥
किन्तु ये ही कुछ हमें ऐसे मिले।
हाथ ही में जो विफलता के रहे ॥५॥
पोंछ देने के लिये धीरे इन्हें।
है नहीं उठता दयामय कर कहीं ॥
इन बेचारों पर किसी हमदर्द की।
प्यार वाली आँख भी पड़ती नहीं ॥६॥

क्यों डरों से ये दृगों में आ कढ़े ।
था भला, जो नाश हो जाते वहीं ॥
जो किसी का भी इन्हें अवलोक कर ।
मन न रोया जी पसीजा तक नहीं ॥७॥
भाग फूटा बेबसी लिपटी रही ।
बहु दुखों से ही सदा नाता रहा ॥
फिर अजब क्या, इस अभागे जीव के ।
आँसुओं का जो असर जाता रहा ॥८॥
बह पड़ी जो धार दुखिया आँख से ।
क्यों न पानी ही उसे कहते रहें ॥
है नहीं जिसने जगह जी में किया ।
हम भला कैसे उसे आँसू कहें ॥९॥
है कलेजे को घुला देता कोई ।
मैल चितवन पर कोई लाता नहीं ॥
कौन दुखिया आँसुओं पर हो सदय ।
पूछ ऐसों की नहीं होती कहीं ॥१०॥

(६)

आँख का आँसू

आँख का आँसू ढलकता देखकर ।
जी तड़प करके हमारा रह गया ॥
क्या गया मोती किसी का है बिखर !
या हुआ पैदा रतन कोई नया ॥१॥
ओस की बूँदें कमल से हैं कढ़ी ।
या उगलती बून्द हैं दो मछलियाँ ॥
या अनूठी गोलियाँ चाँदी मढ़ी ।
खेलती हैं खंजनों की लड़कियाँ ॥२॥

या जिगर पर जो फफोला था पड़ा ।
फूट करके वह अचानक बह गया ॥
हाय ! था अरमान जो इतना बड़ा ।
आज वह कुछ बून्द बनकर रह गया ॥३॥
पूछते हो तो कहो मैं क्या कहूँ ।
यों किसी का है निरालापन गया ॥
दर्द से मेरे कलेजे का लहू ।
देखता हूँ आज पानी बन गया ॥४॥
प्यास थी इस आँख को जिसकी बनी ।
वह नहीं इसको सका कोई पिला ॥
प्यास जिससे होगई है सौगुनी ।
वाह ! क्या अच्छा इसे पानी मिला ॥५॥
ठीक करलो जाँच लो धोखा न हो ।
वह समझते हैं मकर करना इसे ॥
आँख के आँसू निकल करके कहो ।
चाहते हो प्यार जतलाना किसे ॥६॥
आँख के आँसू समझ लो बात यह ।
आन पर अपनी रहो तुम मत अड़े ॥
क्यों कोई देगा तुम्हें दिल में जगह ।
जब कि दिल में से निकल तुम यों पड़े ॥७॥
हो गया कैसा निराला यह सितम ।
भेद सारा खोल क्यों तुमने दिया ॥
यों किसी का हैं नहीं खोते भरम ।
आँसुओ ! तुमने कहो यह क्या किया ॥८॥
झाँकता फिरता है कोई क्यों कुँआ ।
हैं फँसे इस रोग में छोटे बड़े ॥

है इसी दिल से तो वह पैदा हुआ।
क्यों न आँसू का असर दिल पर पड़े ॥९॥
रंग क्यों इतना निराला कर लिया।
है नहीं अच्छा तुम्हारा ढंग यह ॥
आँसुओ! जब छोड़ तुमने दिल दिया।
किस लिये करते हो फिर दिल में जगह ॥१०॥
बात अपनी ही सुनाता है सभी।
पर छिपाये भेद छिपता है कहीं ॥
जब किसी का दिल पसीजेगा कभी।
आँख से आँसू कढ़ेगा क्यों नहीं ॥११॥
आँख के परदों से जो छनकर बहे।
मैल थोड़ा भी रहा जिसमें नहीं ॥
बूँद जिसकी आँख टपकाती रहे।
दिल-जलों को चाहिये पानी वही ॥१२॥
हम कहेंगे क्या कहेगा यह सभी।
आँख के आँसू न ये होते अगर ॥
बावले हम हो गये होते कभी।
सैकड़ों टुकड़े हुआ होता जिगर ॥१३॥
है सगों पर रंज का इतना असर।
जब कड़े सदमे कलेजे ने सहे ॥
सब तरह का भेद अपना भूलकर।
आँख के आँसू लहू बनकर बहे ॥१४॥
क्या सुनावेंगे भला अब भी खरी।
रो पड़े हम पत तुम्हारी रह गई ॥
ऐंठ थी जी में बहुत दिन से भरी।
आज वह इन आँसुओं में बह गई ॥१५॥

बात चलते चल पड़ा आँसू थमा।
खुल पड़ें ऐंड़ी सुनाई रो दिया॥
आज तक जो मैल था जी में जमा।
इन हमारे आँसुओं ने धो दिया॥१६॥
क्या हुआ अंधेर ऐसा है कहीं।
सब गया कुछ भी नहीं अब रह गया॥
ढूँढ़ते हैं पर हमें मिलता नहीं।
आँसुओं में दिल हमारा बह गया॥१७॥
देखकर मुझको सम्हल लो, मत डरो।
फिर सकेगा हाय! यह मुझको न मिल॥
छीन लो, लोगो! मदद मेरी करो।
आँख के आँसू लिये जाते हैं दिल॥१८॥
इस गुलाबी गाल पर यों मत बहो।
कान से भिड़कर भला क्या पा लिया॥
कुछ घड़ी के आँसुओ मेहमान हो।
नाक में क्यों नाक का दम कर दिया॥१९॥
नागहानी से बचो, धीरे बहो।
है उमंगों से भरा उनका जिगर॥
यों उमड़कर आँसुओ सच्ची कहो।
किस ख़ुशी की आज लाये हो ख़बर॥२०॥
क्यों न वे अब और भी रो रो मरें।
सब तरफ़ उनको अँधेरा रह गया॥
क्या बिचारी डूबती आँखें करें।
तिल तो था ही आँसुओं में बह गया॥२१॥
दिल किया तुमने नहीं मेरा कहा।
देखते हैं खो रतन सारे गये॥

जोत आँखों में न कहने को रही।
आँसुओं में डूब ये तारे गये ॥२२॥
पास हो क्यों कान के जाते चले।
किसलिये प्यारे कपोलों पर अड़ो ॥
क्यों तुमारे सामने रहकर जले।
आँसुओ आकर कलेजे पर पड़ो ॥२३॥
आँसुओं की बूँद क्यों इतनी बढ़ी।
ठीक है तक़दीर तेरी फिर गई ॥
थी हमारे जी से पहले ही कढ़ी।
अब हमारी आँख से भी गिर गई ॥२४॥
आँख की आँसू बनी मुँह पर गिरी।
धूल पर आकर वहीं वह खोगई ॥
चाह थी जितनी कलेजे में भरी।
देखता हूँ आज मिट्टी हो गई ॥२५॥
भर गई काजल से कीचड़ में सनी।
आँख के कोनों छिपी ठंढी हुई ॥
आँसुओं की बूँद की क्या गत बनी।
वह बरौनी से भी देखो छिद गई ॥२६॥
दिल से निकले अब कपोलों पर चढ़ो।
बात बिगड़ी क्या भला बन जायगी ॥
ऐ हमारे आँसुओ! आगे बढ़ो।
आपकी गरमी न यह रह जायगी ॥२७॥
जी बचा तो हो जलाते आँख तुम।
आँसुओ! तुमने बहुत हमको ठगा ॥
जो बुझाते हो कहीं की आग तुम।
तो कहीं तुम आग देते हो लगा ॥२८॥

काम क्या निकला हुये बदनाम भर ।
जो नहीं होना था वह भी हो लिया ॥
हाथ से अपना कलेजा थामकर ।
आँसुओं से मुँह भले ही धो लिया ॥२९॥
गाल के उसके दिखाकर के मसे ।
यह कहा हमने हमें ये ठग गये ॥
आज वे इस बात पर इतने हँसे ।
आँख से आँसू टपकने लग गये ॥३०॥
लाल आँखें कीं, बहुत बिगड़े बने ।
फिर उठाई दौड़कर अपनी छड़ी ॥
वैसे ही अब भी रहे हम तो तने ।
आँख से यह बूँद कैसी ढल पड़ी ॥३१॥
बूँद गिरते देखकर यों मत कहो ।
आँख तेरी गड़ गई या लड़ गई ॥
जो समझते हो नहीं तो चुप रहो ।
किरकिरी इस आँख में है पड़ गई ॥३२॥
है यहाँ कोई नहीं धूआँ किये ।
लग गईं मिरचें न सरदी है हुई ॥
इस तरह आँसू भर आये किसलिये ।
आँख में ठंढी हवा क्या लग गई ॥३३॥
देख करके और का होते भला ।
आँख जो बिन आग ही यों जल मरे ॥
दूर से आँसू उमड़ कर तो चला ।
पर उसे कैसे भला ठंढा करे ॥३४॥
पाप करते हैं न डरते हैं कभी ।
चोट इस दिल ने अभी खाई नहीं ॥

सोचकर अपनी बुरी करनी सभी।
यह हमारी आँख भर आई नहीं ॥३५॥
है हमारे औगुनों की भी न हद !
हाय ! गरदन भी उधर फिरती नहीं।
देख करके दूसरों का दुख दरद।
आँख से दो बूँद भी गिरती नहीं ॥३६॥
किस तरह का वह कलेजा है बना।
जो किसी के रञ्ज से हिलता नहीं ॥
आँख से आँसू छना तो क्या छना।
दर्द का जिसमें पता मिलता नहीं ॥३७॥
वह कलेजा हो कई टुकड़े अभी।
नाम सुनकर जो पिघल जाता नहीं ॥
फूट जाये आँख वह जिसमें कभी।
प्रेम का आँसू उमड़ आता नहीं ॥३८॥
पाप में होता है सारा दिन बसर।
सोच कर यह जी उमड़ आता नहीं ॥
आज भी रोते नहीं हम फूटकर।
आँसुओं का तार लग जाता नहीं ॥३९॥
बू बनावट की तनिक जिनमें न हो।
चाह की छीटें नहीं जिन पर पड़ीं ॥
प्रेम के उन आँसुओं से हे प्रभो !
यह हमारी आँख तो भीगी नहीं ॥४०॥

(७)

एक तिनका।

मैं घमण्डों में भरा ऐंठा हुआ।
एक दिन जब था मुँडेरे पर खड़ा ॥

आ अचानक दूर से उड़ता हुआ।
एक तिनका आँख में मेरी पड़ा ॥१॥
मैं झिझक उट्ठा, हुआ बेचैन सा।
लाल होकर आँख भी दुखने लगी ॥
मूँठ देने लोग कपड़े की लगे।
ऐंठ बेचारी दबे पावों भगी ॥२॥
जब किसी ढब से निकल तिनका गया।
तब समझ ने यों मुझे ताने दिये ॥
ऐंठता तू किसलिये इतना रहा।
एक तिनका है बहुत तेरे लिये ॥३॥

(८)

एक बूँद।

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से।
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी ॥
सोचने फिर फिर यही जी में लगी।
आह क्यों घर छोड़कर मैं यों कढ़ी ॥१॥
दैव मेरे भाग में क्या है बदा।
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में ॥
या जलूँगी गिर अँगारे पर किसी।
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में ॥२॥
बह गई उस काल एक ऐसी हवा।
वह समुन्दर ओर आई अनमनी ॥
एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला।
वह उसी में जा पड़ी मोती बनी ॥३॥
लोग यों ही हैं झिझकते सोचते।
जब कि उनको छोड़ना पड़ता है घर ॥

किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें ।
बूँद लौं कुछ और ही देता है कर ॥४॥

(९)

फूल और काँटा

हैं जनम लेते जगह में एक ही ।
एकही पौधा उन्हें है पालता ॥
रात में उन पर चमकता चाँद भी ।
एकही सी चाँदनी है डालता ॥१॥

मेह उन पर है बरसता एक सा ।
एक सी उन पर हवाएँ हैं वहीं ॥
पर सदा ही यह दिखाता है हमें ।
ढङ्ग उनके एक से होते नहीं ॥२॥

छेद कर काँटा किसी की उँगलियाँ ।
फाड़ देता है किसी का वर बसन ॥
प्यार-डूबीं तितलियों का पर कतर ।
भौंर का है बेध देता श्याम तन ॥३॥

फूल ले कर तितलियों को गोद में ।
भौंर को अपना अनूठा रस पिला ॥
निज सुगन्धों औ निराले रङ्ग से ।
है सदा देता कली जी की खिला ॥४॥

है खटकता एक सब की आँख में ।
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर ॥
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे ।
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ॥५॥

(१०)

यशोदा का विरह।

(प्रियप्रवास से)

प्रिय पति, वह मेरा प्राणप्यारा कहाँ है।
दुख-जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है॥
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नैन-तारा कहाँ है॥१॥
पल पल जिसके मैं पन्थ को देखती थी।
निशिदिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती॥
उर पर जिसके है सोहती मुक्तमाला।
वह नवनलिनी से नैनवाला कहाँ है॥२॥
मुझ बिजित-जरा का एक आधार जो है।
वह परम अनूठा रत्न सर्वस्व मेरा॥
धन मुझ निधनी का लोचनों का उजाला।
सजल जलद की सी कान्तिवाला कहाँ है॥३॥
प्रतिदिन जिसको मैं अङ्क में नाथ ले के।
निज सकल कुअङ्कों की क्रिया कीलती थी॥
अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला निराला।
वह किसलय के से अङ्गवाला कहाँ है॥४॥
वर बदन विलोके फुल्ल अंभोज ऐसा।
करतल गत होता व्योम का चन्द्रमा था॥
मृदु रव जिसका है रक्त सूखी नसों का।
वह मधुमयकारी मानसों का कहाँ है॥५॥
रसमय वचनों से नाथ जो सर्वदा ही।
मम सदन बहाता स्वर्ग-मंदाकिनी था॥

श्रुति-पुट टपकाता बूँद जो था सुधा की।
वह नव-खनि न्यारी मञ्जुता की कहाँ है ॥ ६ ॥
स्वकुल जलज का है जो समुत्फुल्लकारी।
मम परम निराशा-यामिनी का विनाशी ॥
व्रज-जन बिहगों के वृन्द का मोद-दाता।
वह दिनकर शोभी रामभ्राता कहाँ है ॥७॥
मुख पर जिसके है सौम्यता खेलती सी।
अनुपम जिसका हूँ शील सौजन्य पाती ॥
पर दुख लख के है जो समुद्विग्न होता।
वह सरलपने का स्वच्छ सोता कहाँ है ॥८॥
गृहतिमिर निराशा का समाकीर्ण जो था।
निज मुख-दुति से है जो उसे ध्वंसकारी ॥
सुखकर जिस से है कामिनी जन्म मेरा।
वह रुचिकर चित्रों का चितेरा कहाँ है ॥९॥
सहकर कितने ही कष्ट औ सङ्कटों को।
बहु यजन करा के पूज के निर्जरों को ॥
यह सुअन मिला है जो मुझे यत्न-द्वारा।
प्रियतम ! वह मेरा कृष्ण प्यारा कहाँ है ॥१०॥
मुखरित करता जो सद्म को था शुकों सा।
कलरव करता था जो खगों सा बनों में ॥
सुध्वनित पिक लौं जो बाटिका था बनाता।
वह बहु विधि कंठों का बिधाता कहाँ है ॥११॥
बन बन फिरती हैं खिन्न गायें अनेकों।
शुक भर भर आँखें भौन को देखता है ॥
सुधि कर जिसकी है शारिका नित्य रोती।
वह निधि मृदुता का मञ्जु मोती कहाँ है ॥१२॥

गृह गृह अकुलाती गोप की पत्नियाँ हैं।
पथ पथ फिरते हैं ग्वाल भी उन्मना हो॥
जिस कुँवर बिना मैं हो रही हूँ अधीरा।
वह खनि सुखमा का स्वच्छ हीरा कहाँ है॥१३॥
वहु विभव वहाँ का देख के श्याम भूला।
वह बिलम गया या वृन्द में बालकों के॥
फँस कर जिसमें हा! लाल छूटा न मेरा।
सुफलक-सुत ने क्या जाल कोई बिछाया॥१४॥
परम शिथिल हो के पन्थ की क्लान्तियों से।
वह ठहर गया है क्या किसी वाटिका में॥
प्रियतम तुमसे या दूसरों से जुदा हो।
वह भटक रहा है या कहीं मार्ग ही में॥१५॥
विपुल कलित कुञ्जें कालिँदी-कूल वाली।
अतुलित जिन में थी प्रीति मेरे प्रियों की॥
पुलकित चित से वे क्या उन्हीं में गये हैं।
कतिपय दिवसों की श्रान्ति उन्मोचने को॥१६॥
विविध सुरभिवाली मण्डली बालकों की।
पथ युगल सुतों ने क्या कहीं देख पाई॥
निज सुहृद जनों में वत्स में धेनुओं में।
बहु बिलम गये वे क्या इसी से न आये॥१७॥
निकट अति अनूठे नीप फूले फले के।
कलकल बहती जो धार है भानुजा की॥
अति प्रिय सुत को है दृश्य न्यारा वहाँ का।
वह समुद उसे ही देखने क्या गया है?॥१८॥
यदि वह अति नेही शील सौजन्यशाली।
तजकर निज भ्राता को नहीं सद्म आया॥

व्रज-अवनि बता दो नाथ कैसे बसेगी।
बिन बदन विलोके आज मैं क्यों बचूँगी ॥१९॥
हा! वृद्धा के अतुल धन हा! वृद्धता के सहारे।
हा! प्राणों के परम प्रिय हा! एक मेरे दुलारे ॥
हा! शोभा के सदन-सम हा! रूप लावण्यवारे।
हा! बेटा हा! हृदय-धन हा! नैनतारे हमारे ॥२०॥
कैसे होके अलग तुझसे आज लौं मैं बची हूँ।
जो मैं ही हूँ समझ न सकी तो तुझे क्यों बताऊँ ॥
हा! जीऊँगी न अब, पर है वेदना एक होती।
तेरा प्यारा बदन मरती बार मैंने न देखा ॥२१॥

(११)

देव-देव

अब बहुत ही दलक रहा है दिल।
हो गईं आज दसगुनी दलकें ॥
ऊबता हूँ उबारने वाले।
आइये हैं बिछी हुई पलकें ॥१॥
डाल दे सिर पर न सारी झंझटें।
जी हमारा कर न डाँवाडोल दे ॥
इन दिनों तो है विपत खुल खेलती।
तू भला अब भी पलक तो खोल दे ॥२॥
कुछ बनाये नहीं बनी अब तक।
जान पर आ बनी बचा न सके ॥
हम कहें क्या तपाक की बातें।
आप की राह ताक ताक थके ॥३॥
मान औ आन-बान-महलों पर।
डाह बिजली अनेक बार गिरी ॥

हो गये फेर में पड़े बरसों।
आप की दीठ आज भी न फिरी ॥४॥
बैर है बरबाद हमको कर रहा।
फूट का है दुंद घर घर में मचा ॥
हम बचाये बच सकेंगे आप के।
आप मत अपनी निगाहें लें बचा ॥५॥
हम बड़े ही बखेड़िये होवें।
आप यों मत उखेड़िये बखिये ॥
पास करना अगर पसंद नहीं।
गाह गाहे निगाह तो रखिये ॥६॥
गत हमारी बना रहे हो क्यों।
मिल न, गत की सकी हमें लकड़ी ॥
पाँव हम तो रहे पकड़ते ही।
पर कहाँ बाँह आप ने पकड़ी ॥७॥
देखिये आप आ कलेजे में।
पड़ गये कुछ अजीब छाले हैं ॥
आप के हाथ अब निबाह रही ॥
आप ही चार बाँह वाले हैं ॥८॥
खोलिये पलकें दयाकर देखिये।
मूँछ के भी बाल अब हैं बिन रहे ॥
दिन फिरेंगें या फिरेंगे ही नहीं।
ऊब दिन हैं उँगलियों पर गिन रहे ॥९॥
अब नहीं है निबाह हो पाता।
नेह करिये निहारिये हम को ॥
क्या उबर अब नहीं सकेंगे हम।
हाथ देकर उबारिये हम को ॥१०॥

पास मेरे इधर उधर आगे ॥
है दुखों का पड़ा हुआ डेरा ॥
है गई अब बुरी पकड़ पकड़ी ।
आप आ हाथ लें पकड़ मेरा ॥११॥
फिर रही है बुरी बला पीछे ।
खोलता दुख बिहंग है फिर पर ॥
बेतरह फेर में पड़े हम हैं ।
फेरते हाथ क्यों नहीं सिर पर ॥१२॥
बह रहे हैं विपत लहर में हम ।
अब दया का दिखा किनारा दें ॥
क्या कहूँ और—हूँ बहुत हारा ।
प्रभु हमें हाथ का सहारा दे ॥१३॥
क्यों दिखाने में अँगूठा दीन को ।
आप की रुचि आज दिन यों है तुली ॥
हैं तरसते एक मूठी अन्न को ।
आप की मूठी नहीं अब भी खुली ॥१४॥
दें न हलवे छीन तो करवे न लें ।
नाथ कब तक देखते जलवे रहें ॥
कब तलक बलवे रहेंगे देस में ।
कब तलक हम चाटते तलवे रहें ॥१५॥

(१२)

ब्रजभाषा की कविता के नमूने

(१)

तेरीहीं कला से कलानिधि है कलानिधान,
है सकेलि तेरी केलि कलित पतङ्ग मैं ।

गुरु गिरिगन हैं तिहारी गुरुता के लहे,
पावन प्रसङ्ग है तिहारो पूत सङ्ग मैं ॥
"हरिऔध" तेरी हरियाली से हरे हैं तरु,
तू ही हरि बिहर रहा है हर अङ्ग मैं ॥
तेरो रङ्ग ही है रङ्ग रङ्ग के प्रसूनन में,
तू ही है तरङ्गित तरङ्गिनी-तरङ्ग मैं ॥

(२)

उठो उठो बीरो चीरो अरि के करेजन को,
पीरो मुख परे बनी बातहू बिगरि है ।
छटकि छटकि छाती छ्वुनी करैयन को,
कौन आज उछरि उछरि कै पछरि है ॥
"हरिऔध" कहै बीर बाँकुरे न बेर करो,
हाँक से तिहारी बीर हू ना धीर धरि है ।
पारावार-धार में उड़ेगी छार आँच लगे,
ठोकर की मार से पहार गिरि परि है ॥

(३)

मिलि मिलि मोदवारी मुकुलित मल्लिका सों,
कुञ्ज-कुञ्ज क्यारिन कलोल करि फूले हौ ।
पान कै प्रकाम रस आम मञ्जरीन हू के,
अभिराम उरके अराम उनमूले हौ ॥
"हरिऔध" ठौर ठौर झौंरि झुकि झूमि झूमि,
चूमि चूमि कञ्ज की कलीन अनुकूले हौ ।
तजि महमही मञ्जु मालती चमेलिन को,
कौन भ्रम बेलिन भ्रमर आज भूले हौ ॥

राधाकृष्णदास

बाबू राधाकृष्णदास भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे। बाबू हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचन्द की दो बहनें थीं, यमुना बीबी और गंगा बीबी। बाबू राधाकृष्णदास गंगा बीबी के दूसरे पुत्र थे। इनके पिता का नाम बाबू कल्याणदास और बड़े भाई का बाबू जीवनदास था। इनसे छोटी इनकी एक बहन थी, उसका नाम लक्ष्मीदेई था। लक्ष्मीदेई एक विदुषी कन्या थीं। उनका विवाह बाबू दामोदरदास, बी० ए०, के साथ हुआ था।

बाबू राधाकृष्णदास का जन्म संवत् १९२२, श्रावण पूर्णिमा को हुआ। जब ये दस महीने के थे, तभी इनके पिता का देहान्त हो गया, और थोड़े ही दिन बाद इनके बड़े भाई भी चल बसे। इनके लालन-पालन का भार इनकी दुखिया माता पर पड़ा। ये बाबू हरिश्चन्द्र के ही परिवार में सम्मिलित होकर रहते थे। अतएव बाबू हरिश्चन्द्र को इनकी शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने का अवसर मिला। वे इन्हें बहुत प्यार करते थे, और बच्चा कहकर पुकारते थे। बाबू हरिश्चन्द्र बड़े कौतूहल-प्रिय थे। वे एक न एक युक्ति लड़कों को प्रसन्न करने की निकाला करते थे। इससे ये बराबर उन्हीं के साथ रहते थे और उनकी एक एक बात को बड़े ध्यान से देखते थे। जब ये दस वर्ष के थे, एक दिन ये बाबू हरिश्चन्द्र के साथ रामकटोरा बाग में गये थे। वहाँ लल्लू नाम का एक लड़का छत पर उछलता कूदता फिरता था। संयोगवश वह नीचे गिर गया। यह देखकर तुरन्त बालक राधाकृष्णदास ने यह दोहा कहा :—

लल्लू से मल्लू भये, मल्लू चढ़े अटारि।
अटा कूदि नीचे गिरे, रोवत हाथ पसारि॥

इससे जान पड़ता है कि बाबू हरिश्चन्द्र की संगति से इनकी प्रतिभा बालकपन ही से जाग पड़ी थी। इनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। महीने दो महीने ठीक रहे, फिर बीमार पड़ गये। किन्तु विद्या की ओर इनकी स्वाभाविक अभिरुचि थी। इससे बीमारी की परवा न करके इन्होंने बाबू हरिश्चन्द्र की देखरेख में सत्रह वर्ष की अवस्था तक एंट्रेंस तक अंग्रेज़ी पढ़ ली और साथही साथ हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी औरबँगला भाषा में भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। पीछे से इन्होंने गुजराती भाषा का भी अभ्यास कर लिया था।

१५ वर्ष की अवस्था में इन्होंने "दुःखिनी बाला" नाम का एक छोटा सा रूपक "बाल-विवाह और विधवा-विवाह-निषेध और जन्मपत्र विवाह के अशुभ परिणाम" पर लिखा। १६ वर्ष की छात्रावस्था में इन्होंने "निस्सहाय हिन्दू" नाम का एक सामाजिक उपन्यास बाबू हरिश्चन्द्र की आज्ञा से लिखा। पद्य-रचना की ओर बालकपन से ही इनकी रुचि थी।

बाबू राधाकृष्णदास नागरी-प्रचारिणी-सभा के नेताओं में मुख्य थे। ये बालकपन से लेकर जीवन के अंत समय तक सभा का काम बड़े उत्साह से करते रहे। सभा से इनका बड़ा प्रेम था। ये मरते समय अपनी लिखी कुल पुस्तकों का स्वत्व सभा के नाम वसीयत कर गये हैं। इन्होंने हिन्दी-साहित्य की जैसी कुछ सेवा की है, वह किसी साहित्य-सेवी से छिपी नहीं है।

बाबू राधाकृष्णदास बड़े सच्चरित, सुशील और मिलनसार पुरुष थे। क्रोध और कुचाल का तो इनमें लेशमात्र भी नहीं था। जाति-बिरादरी में भी और सर्वसाधारण में भी इनका बड़ा आदर था। ये आजीविका के लिये अपने एक मित्र के साथ ठीकेदारी का काम करते थे। इनका विद्याभ्यास उदरपोषण के लिये नहीं, वरन् हिन्दी की सेवा के लिये था।

इनके रचित, सम्पादित तथा अनुवादित ग्रन्थों के नाम निम्न-लिखित हैं:—

१—दुःखिनी बाला, २—निस्सहाय हिन्दू, ३—महारानी पद्मावती, ४—आर्य-चरितामृत, ५—रामेश्वर का अदृष्ट, ६—स्वर्णलता, ७—धर्मालाप, ८—स्वर्ग की सैर, ९—नागरीदास का जीवनचरित, १०—हिन्दी-भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास, ११—कविवर बिहारीलाल, १२—राजस्थान-केसरी, १३—आर्यचरित्र, १४—दुर्गेशनन्दिनी, १५—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जीवन-चरित, १६—रहिमन-विलास, १७—नया संग्रह, १८—सूरसागर, १९—रासपंचाध्यायी, २०—जंगनामा, २१—नहुषनाटक, २२—रामचरित-मानस।

इनके सिवाय विविध विषयों पर लिखे हुये गद्य-पद्य मय २४ लेख, जो सरस्वती आदि सामयिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये थे, और कुछ अधूरी पुस्तकें भी हैं। इनकी रची हुई पुस्तकों में राजस्थानकेसरी नाम का नाटक सबसे उत्तम है।

बाबू राधाकृष्णदास की कविता सरस और भावपूर्ण होती थी। नन्ददास के 'भ्रमर गीत' की चाल पर इन्होंने 'प्रतापविसर्जन' नाम की एक कविता लिखी थी, जो अप्रेल, १९०२ की सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं। इससे इनकी कवित्वशक्ति और देश-भक्ति का पूरा परिचय मिलेगा।

प्रताप-विसर्जन

उन्नत सिर गिरिअवलि गगन सों उत बतरावत।
इत सरवर पाताल भेदि अति छवि छहरावत॥
मन्द पवन सीरी बहै होन लगे पतझार।
पर्नकुटी नरसिंह लसत इक मानौ कोउ अवतार॥
हरन भुवभार को॥

मुखमंडल अति शान्त कान्तिमय चितवन सोहै।
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारिहुँ दिसि जोहै॥

वीरमण्डली घेरि कै प्रभु की गति रहे जोहि ।
मनु भीपम सर-सयन परे कौरव पाण्डव रहे सोहि ॥
हृदय उमड़्यो परै ॥

लखि निज प्रभु की अंत समय की वेदन भारी ।
व्याकुल सब मुख तकैं सकैं धीरज नहिं धारी ॥
राव सलूमर रोकि निज हिय उद्वेग महान ।
हाथ जोरि विनती कियो अति हरुए लगि प्रभु कान ॥
बैन आरत सने ॥

अहो नाथ, अहो वीर-सिरोमनि-भारत-स्वामी !
हिन्दू-कीरति थापन में समर्थ सुभ नामी !!
कहाँ वृत्ति है आपकी, कौन सोच, कहँ ध्यान ?
देखि कष्ट हिय फटत है, केहि सङ्कट में हैं प्राण ॥
कृपा करिकै कहो ॥

सुनत दुख भरे बैन नैन तिनके दिशि फेर्‍यो ।
भरि कै दीरघ साँस सबन तन व्याकुल हेर्‍यो ॥
पुनि लखि सुत तन फेरि मुख अति संतप्त अधीर ।
धरि धीरज अति छीन सुर बोले वचन गँभीर ॥
परम आतङ्क सों ॥

हे हे वीर सिरोमनि सब सरदार हमारे ।
हे विपत्ति-सहचर प्रताप के प्रान पियारे ॥
तुव भुज-बल लहि मैं भयो रच्छा करन समर्थ ।
मातृभूमि-स्वाधीनता को प्रवल सत्तु करि व्यर्थ ॥
अनेकन कष्ट सहि ॥

या प्रताप नै उचित कहौ कै अनुचित भाखौ ।
वा स्वतन्त्रता हेतु जगत सुख तृन सम नाखौ ॥

ढाइ महल खँडहर किये सुख सामान विहाय।
छानि बनन की धूरि को गिरि गिरि में टकराय॥
क्लेश को लेश नहिं॥

पै जब आवत ध्यान लह्यो जो सहि दुख इतने।
सो अमूल्य निधि मम पाछे रहिहै दिन कितने॥
तुच्छ वासना में पग्यो दुःख सहन असमर्थ।
चञ्चल अमरहिं देखि के होत आस सब व्यर्थ॥
सोच भावी दसा॥

कहि दुखमय ये वचन अमर तन दुख सों देख्यो।
मूँदि नैन जल भरे स्वास लै सब दिशि पेख्यो॥
सन्नाटा चहुँ दिशि छयो सब के मुख गंभीर।
पृथ्वी दिशि हेरैं सबै भरे महा हिय पीर॥
बैन नहिं कछु कढ़ैं॥

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो।
अभिवादन करि अति विनीत ये वचन सुनायो॥
पृथ्वीनाथ यह सोच क्यों उपज्यो प्रभु हिय आज।
कुँवर बहादुर तैं परी कौन चूक केहि काज॥
निरासा जो भई॥

बदलि पास कछु सँभरि बैन परताप कह्यों पुनि।
अति गंभीर सतेज मनहुँ गुंजत केहरि धुनि॥
"सुनौ वीर मेवार के गौरव राखनहार।
मेरे हिय की वेदना जो कियो आस सब छार॥
अमर के कर्म ने॥

एक दिवस एहि कुटी अमर मेरे ढिग बैठ्यो।
इतने हि में मृग एक आनि के वहाँ जु पैठ्यो॥

हरखराइ सन्धानि सर अमर चल्यो ता ओर ।
कुटिया के या बाँस में फँस्यो पाग को छोर ॥
अमर तौहुँ न रुक्यो ॥

बढ़न चहत आगे वह पगिया खैंचत पाछे ।
पै नहिं जिय में धीर छुड़ावै ताको आछे ॥
पागहु फटी सिकारहू लग्यो न याके हाथ ।
पटकि पाग लखि झोपड़िहिं अतिहिं क्रोध के साथ ॥
बैन मुख ते कढ़े ॥

रहु रहु रे निर्बोध अमर-गति रोकनहारे ।
हम न लेहिंगे साँस बिना तोहिं आज उजारे ॥
राजभवन निर्मान करि तेरो चिन्ह मिटाइ ।
जो दुख पाये तोहि मैं सो दैहौं सबै भुलाइ ॥
सुखद आवास रचि ॥

तबहीं ते ये बैन शूल सम खटकत मम हिय ।
यह परि सुख-वासना अवसि दुख दिवस बिसारिय ॥
अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ विषय के दाम ।
बेचि सिसोदिय कीर्ति को यह करिहै अवसि निकाम ॥
रुके हम सोचि एहि"॥

हिन्दूपति के बैन सुनत छत्री कोपे सब ।
अति पवित्र रजपूत रुधिर नस नस दौर्‌यो तब ॥
लै लै असि दृढ़पन कियो छ्वै छ्वै प्रभु के पाय ।
"जौ लौं तन, स्वाधीनता तौ लौं रखौं बचाय ॥
सङ्क करिये न कछु" ॥

दृढ़ प्रतिज्ञ छत्रिनपन सुनि राना मुख बिकस्यो ।
आश-लता लहलही भई मुखतें यह निकस्यो ॥

"धन्य वीर तुम जोग ही यह पन तुमहिं सुहाइ।
अब हम सुख सों मरत हैं, हरि तुम्हरे सदा सहाय॥
यही आसीस मम"॥

देखत देखत शान्ति-सदन परताप सिधाये।
पराधीनता मेघ बहुरि भारत सिर छाये॥
सबही सुख परताप सँग कियो विसर्जन हाय।
दीन हीन भारत रह्यो सुख सम्पदा गँवाय॥
ताहि प्रभु रच्छिए॥

बालमुकुन्द गुप्त

हिन्दीप्रेमियों में ऐसे बहुत ही कम लोग होंगे जो स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त को न जानते हों। ये हिन्दी-भाषा के एक अप्रतिम सुलेखक और समालोचक थे। ये सरल, शुद्ध, और चटकीली भाषा लिखने में अद्वितीय थे। इनकी कविता भी सुन्दर और मर्म-भेदिनी होती थी। हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध साप्ताहिक समाचारपत्र "भारतमित्र" के ये सम्पादक थे। ये हिन्दीभाषा की उन्नति के लिये सदा चेष्टा करते थे। पर शोक है कि कुटिल काल से हिन्दी की उन्नति देखी नहीं गई।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त हरियाना प्रान्त के रोहतक ज़िले के गुरियानी ग्राम के निवासी थे। वहीं गुप्तजी का जन्म मिती कार्तिक शुक्ला ४, संवत् १९२२ को हुआ था। ये अग्रवाल वैश्य थे। इनके पूर्वज दीघल स्थान से आकर गुरियानी में बसे थे। इससे ये दीघलिया कहलाते थे। इनका वंश "नग्गे पोते" के नाम से भी प्रसिद्ध है।

गुप्तजी पहले-पहल सन् १८८७ ईस्वी में मिरज़ापुर ज़िले के चुनार से प्रकाशित होनेवाले उर्दू पत्र "अख़बारे चुनार" के सम्पादक नियत हुये।

सन् १८८८—८९ में चुनार से लाहौर गये और वहाँ के उर्दू अख़बार "कोहेनूर" का सम्पादन करने लगे। मेरठ में श्रीयुत पण्डित दीनदयालु शर्मा तथा और कई महाशयों के साथ इन्होंने हिन्दी सीखने की प्रतिज्ञा की। वह प्रतिज्ञा बहुत शीघ्र पूरी हो गई। १८८९ के अन्तिम भाग में कालाकांकर के दैनिक हिन्दी-पत्र "हिन्दोस्थान" से इनका सम्बन्ध हुआ। उस समय उसके सम्पादक माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय जी और प्रसिद्ध पण्डित प्रतापनारायणजी मिश्र थे। मिश्रजी से हिन्दी सीखने में इनको बहुत कुछ सहायता मिली। कुछ दिन "हिन्दोस्थान" के सहकारी सम्पादक रहकर ये उससे पृथक् हो गये।

फिर पाँच वर्ष पर्यन्त "हिन्दी बङ्गवासी" के सहकारी सम्पादक रहे इन्होंने वहाँ भी अपनी योग्यता का पूर्ण परिचय दिया। इन्होंने सन् १८९८ में "भारतमित्र" का सम्पादन-भार ग्रहण किया और अन्त समय तक उसीसे सम्बन्ध रक्खा।

"भारतमित्र" में आकर ही गुप्तजी प्रगट हुये। गुप्तजी ने "भारत-मित्र" की बहुत कुछ उन्नति की। इस विषय में स्वयं "भारतमित्र" लिखता है—"जिस समय गुप्तजी ने "भारतमित्र" को अपने हाथ में लिया, उस समय इसकी अवस्था बहुत शोचनीय थी। गुप्तजी ने अपने अदम्य उत्साह, अपरिमेय साहस, अकथनीय उद्योग, अनमोल परिश्रम, अक्लान्त चेष्टा और अपूर्व तेजस्विता से काम कर के "भारतमित्र" की वह उन्नति की, जो उनसे पहिले उसको प्राप्त नहीं हुई थी। उन्होंने "भारत मित्र" का नाम किया और "भारतमित्र" ने उनका। इत्यादि।

गुप्तजी का स्वभाव बड़ा सरल था। ये आडम्बरशून्य और सत्यप्रिय थे। सनातन-धर्म के पक्के अनुयायी और धर्मभीरु थे। पुरानी चाल बहुत

पसन्द करते थे। प्राचीन लोगों के बड़े भक्त थे। उनकी निन्दा सह नहीं सकते थे। जो अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए प्राचीन कवि और पण्डितों के दोष निकालते थे, उनसे गुप्त जी बहुत कुढ़ते थे। इसीसे उन लोगों की कभी कभी बहुत तीव्र आलोचना कर बैठते थे। जिसके पीछे गुप्तजी पड़ते, उसकी धज्जियाँ उड़ा डालते थे। सच्ची बातें कहने में कभी नहीं चूकते थे। इनकी समालोचना से लोग बहुत डरते थे। हिन्दी-भाषा में इनकी बड़ी धाक थी। इतने पर भी ये किसी से ईर्ष्याद्वेष नहीं रखते थे। ये बड़े निष्कपट और मिलनसार थे।

गुप्तजी बड़े हास्यप्रिय थे। हँसना-हँसाना बहुत पसन्द करते थे। बात-बात में हँसी मज़ाक निकालना तो गुप्तजी के लिये साधारण बात थी। व्यङ्गमयी तीव्र आलोचना, चुटीली कविता, हास्यपूर्ण अथच गम्भीर लेख लिखने में ये एक ही थे।

गुप्तजी की लिखी तथा अनुवाद की हुई पुस्तकें कई हैं। जैसे (१) मडेल भगिनी (२) हरिदास (३) रत्नावली नाटिका (४) शिव-शम्भु का चिट्ठा (५) स्फुट कविता (६) खिलौना (७) खेल-तमाशा (८) सर्पाघात-चिकित्सा इत्यादि।

शिवशम्भु के चिट्ठे और स्फुट कविता से गुप्तजी का देश-दशा-ज्ञान, स्वदेशानुराग तथा हास्य-प्रियता प्रकट होती है।

यहाँ गुप्तजी की कुछ कविताएँ उद्धृत की जाती हैं:—

(१)

श्रीरामस्तोत्र

अब आये तुम्हरी सरन, हारे के हरि नाम।"
साख सुनी रघुवंशमणि, "निर्बल के बल राम" ॥१॥
जपबल तपबल बाहुबल, चौथो बल है दाम।
हमरे बल एकौ नहीं, पाहि पाहि श्रीराम ॥ २ ॥

सेल गईं बरछी गईं, गये तीर तलवार।
घड़ी छड़ी चसमा भये, छत्रिन के हथियार ॥ ३ ॥
जो लिखते अरि हीय पै, सदा सेल के अङ्क।
झपत नैन तिन सुतन के, कटत कलम को डङ्क ॥ ४ ॥
कहाँ राज कहँ पाट प्रभु, कहाँ मान सम्मान।
पेट हेत पायन परत, हरि तुम्हरी सन्तान ॥ ५ ॥
जिनके करसों मरन लौं, छुट्यो न कठिन कृपान।
तिनके सुत प्रभु पेट हित, भये दास दर्बान ॥ ६ ॥
जहाँ लरैं सुत बाप सँग, और भ्रात सों भ्रात।
तिनके मस्तक सों हटै, कैसे पर की लात ॥ ७ ॥
बार बार मारी मरत, बारहिं बार अकाल।
काल फिरत नित सीस पै, खोले गाल कराल ॥ ८ ॥
अब तुम सों बिनती यहै, राम गरीब नेवाज।
इन दुखियन अँखियान महँ, बसै आपको राज ॥ ९ ॥
जहँ मारी को डर नहीं, अरु अकाल को त्रास।
जहाँ करै सुख सम्पदा, बारह मास निवास ॥ १० ॥
जहाँ प्रबल को बल नहीं, अरु निबलन की हाय।
एक बार सो दृश्य पुनि, आँखिन देहु दिखाय ॥ ११ ॥
अबलों हम जीवित रहे, लै लै तुम्हरो नाम।
सोहू अब भूलन लगे, अहो राम गुनधाम ॥ १२ ॥
कर्म्म धर्म्म संयम नियम, जप तप जोग विराग।
इन सबको बहु दिन भये, खेलि चुके हम फाग ॥ १३ ॥
जनबल, धनबल, बाहुबल, बुद्धि विवेक बिचार।
तान मान मरजाद को, बैठे जूआ हार ॥ १४ ॥
हमारे जाति न वर्न है, नहीं अर्थ नहिं काम।
कहा दुरावैं आपसे, हमरी जाति गुलाम ॥ १५ ॥

बहु दिन बीते राम प्रभु, खोये अपनो देस।
खोवत हैं अब बैठ के, भाषा भोजन भेस॥ १६॥
नहीं गाँव में झूँपड़ो, नहिं जङ्गल में खेत।
घर ही बैठे हम कियो, अपनो कञ्चन रेत॥ १७॥
दो दो मूठी अन्न हित, ताकत पर मुख ओर।
घर ही में हम पारधी, घर ही मैं हम चोर॥ १८॥
तौ हू आपस में लड़ैं, निसिदिन स्वान समान।
अहो! कौन गति होयगी, आगे राम सुजान॥ १९॥
घर में कलह बिरोध की, बैठे आग लगाय।
निसिदिन तामैं जरत हैं, जरतहि जीवन जाय॥ २०॥
विप्रन छोड़्यो होम तप, अरु छत्रिन तरवार।
बनिकन के पुत्रन तज्यो, अपनो सद्व्यवहार॥ २१॥
अपनो कछु उद्यम नहीं, तकत पराई आस।
अब या भारत भूमि में, सबै बरन हैं दास॥ २२॥
सबै कहैं तुम हीन हौ, हमहु कहैं हम हीन।
धक्का देत दिनान को, मन मलीन तनछीन॥ २३॥
कौन काज जन्मत मरत, पूछत जोरे हाथ।
कौन पाप यह गति भई, हमरी रघुकुलनाथ॥ २४॥

(२)

लक्ष्मीपूजा

जयति जयति लच्छमी जयति मा जग उजियारी।
सर्बोपरि सर्बोपम सब्बहु तें अति प्यारी॥
ब्यापि रह्यो चहुँ ओर तेज जननी एक तेरो।
तव आनन की जोति होत यह बिस्व उजेरो॥
जहँ चन्द्रमुखी मुखचन्द्र की, किरनन उजियारो करैं।
तहँ तम न कटै युग कोटि लौं, कोटि भानु पचि पचि मरैं॥१॥

"बिन तेरे सब जगत जननि ! मृतवत् अरु निसफल ।"
देवन बात कही यह साँची छाँड़ि छोभ छल ॥
तोहि छाँड़ि मा ! देवन केतो ही दुख पायो ।
सुरपति चन्द्र कुबेरहु तैं नहिं मिट्यो मिटायो ॥
जब सूखे तालू ओठ मुख, चरन गहे तव आय के ।
तब दूर भयो दुख सुरन को, रहे नैन झर लाय के ॥२॥
जा घर नहिं तव बास मात सोही घर सूनो ।
द्वार द्वार बिडरात फिरे तव कृपा बिहूनो ॥
औरन की को कहे स्वजन जब धक्का मारैं ।
अपने घर के ही घरसों कर पकरि निकारैं ॥
नहिं भ्रात मात अरु बन्धु कोउ, निरधन को आदर करै ।
निज नारिहु मा तव कृपा बिन, आनन मोरि निरादरै ॥३॥
कोटि बुद्धि किन होहिं बिना तव काम न आवैं ।
कोटिन चतुराई तव बिन धूरहिं मिलि जावैं ॥
तहँ कहँ बुद्धि थिराय मात जहँ बास न तेरो ।
जहाँ न दीपक बरै रहे केहि भाँति उजेरो ॥
बहु बुद्धिमान तव कृपा बिन, बुद्धि खोय मारे फिरैं ।
केते मूरख तव लाड़िले, दूरि दूरि तिनको करैं ॥४॥
जप तप तीरथ होम यज्ञ तव बिन कछु नाहीं ।
स्वारथ परमारथ सबरो तेरे ही माहीं ॥
चलै न घर को काज न पितृन अरु देवन को ।
जनम लेत तव कृपा बिना नर दुख सेवन को ॥
जय जयति अखिल ब्रह्माण्ड के, जीवन की आधार जो ।
जय जयति लच्छमी जगत की, एकमात्र सुख सार जो ॥५॥
भलो कियो री मात आप कीन्हों पुनि फेरो ।
तुम्हरे आये हमरे घर को मिट्यो अँधेरो ॥

तुम्हरे कारन आज मात दीपावलि बारी ।
घर लीप्यो टूटी फूटी सब वस्तु सँवारी ॥
तुम्हरे आये तव सुतन को, आज अनन्द अपार है ।
सब फूले फूले फिरत हैं, तन की नाहिं सम्हार है ॥६॥
मात आपने कङ्गालन की दसा निहारो ।
जिनके आँसुन भीज रह्यो तव आँचल सारो ॥
कोटिन पै रही उड़त पताका मा जिनके घर ।
सो कौड़ी कौड़ी को हाथ पसारत दर दर ॥
हा ! तोसी जननी पाय कै, कङ्गाल नाम हमरो पर्‌यो ।
धिक धिक जीवन मा लच्छमी, अब हम चाहत हैं मर्‌यो ॥७॥
गजरथ तुरग बिहीन भये ताको डर नाहीं ।
चँवर छत्र को चाव नाहिं हमरे उर माहीं ॥
सिंहासन अरु राजपाट को नाहिं उरहनो ।
ना हम चाहत अस्त्र वस्त्र सुन्दर पट गहनो ॥
पै हाथ जोरि हम आज यह, रोय रोय बिनती करैं ।
या भूखे पापी पेट कहँ, मात कहो कैसै भरैं ॥८॥

(२ नवम्बर, १८९६)

(३)

बसन्तोत्सव

आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओं में प्यारी ।
तेरा शुभागमन सुन फूली केसर क्यारी ॥
सरसों तुझको देख रही है आँख उठाये ।
गेंदे ले ले फूल खड़े हैं सजे सजाये ॥
आस कर रहे हैं टेसू तेरे दर्शन की ।
फूल फूल दिखलाते हैं गति अपने मन की ॥

बौराई सी ताक रही है आम की मौरी ।
देख रही है तेरी बाट बहोरि बहोरी ॥
पेड़ बुलाते हैं तुझको टहनियाँ हिलाके ।
बड़े प्रेम से टेर रहे हैं हाथ उठाके ॥
मारग तकते बेरी के हुये सब फल पीले ।
सहते सहते शीत हुये सब पत्ते ढीले ॥
नीबू नारङ्गी हैं अपनी महक उठाये ।
सब अनार हैं कलियों की दुरबीन लगाये ॥
पत्तों ने गिर गिर तेरा पाँवड़ा बिछाया ।
झाड़ पोंछ वायू ने उसको स्वच्छ बनाया ॥
फुलसुँघनी की टोली उड़ उड़ डाली डाली ।
झूम रही हैं मद में तेरे हो मतवाली ॥
इस प्रकार है तेरे आने की तैयारी ।
आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओं में प्यारी ॥ १ ॥
एक समय वह भी था प्यारी जब तू आती ।
हर्ष हास्य आमोद मौज आनन्द बढ़ाती ॥
होते घर घर बन बन मङ्गलचार बधाई ।
राव चाव से होती थी तेरी पहुनाई ॥
ठौर ठौर पर गाये जाते गीत सुहाने ।
दूर दूर जाते तेरा तिहवार मनाने ॥
कुछ दिन पहिले सारे बन उद्यान सुधरते ।
सुन्दर सुन्दर कुञ्ज मनोहर ठाँव सँवरते ॥
लड़की लड़के दौड़ दौड़ उपवन में जाते ।
अच्छे अच्छे फूल तोड़ते हार बनाते ॥
क्यारी क्यारी में फिर जाते मालिन माली ।
चुग चुग सुन्दर फूल बनाते कितनी डाली ॥

ठाँव ठाँव पर बिछती सुन्दर फटिक शिलायें ।
आनेवाले बैठे छबि निरखें सुख पायें ।
सखी देखने आतीं उनकी वह सुघराई ॥
एक दूसरी को देती सानन्द बधाई ॥
सारी शोभा देख देखकर घर को फिरतीं ।
कहके अपनी बात मुदित सखियों को करतीं ॥
कहती थीं प्रमुदित हो हो के सब सुकुमारी ।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओं में प्यारी ॥ २ ॥
सब किसान मिल के अपने खेतों में जाकर ।
फूल तोड़ते सरसों के आनन्द मनाकर ॥
बन में होते लड़कों के पाले औ दङ्गल ।
चढ़ते ढाकों पर और फिरते जङ्गल जङ्गल ॥
कूद फाँद कर भाँति भाँति की लीला करते ।
महा मुदित हो जहाँ तहाँ स्वच्छन्द बिचरते ॥
कोसों तक पृथ्वी पर रहती सरसों छाई ।
देती दृग की पहुँच तलक पीतिमा दिखाई ॥
सुन्दर सुन्दर फूल वह उसके चित्त लुभाने ।
बीच बीच में खेत गेहूँ जौ के मनमाने ॥
वह बबूल की छाया चित को हरने वाली ।
वह पीले पीले फूलों की छटा निराली ॥
आस पास पालों के बटवृक्षों का झूमर ।
जिसके नीचे वह गायों भैसों का पोखर ।
ग्वालवाल सब जिनके नीचे खेल मचाते ।
बूट चने के लाते होले करते खाते ॥
पशुगण जिनके तले बैठ के आनँद करते ।
पानी पीते पगुराते स्वच्छन्द बिचरते ॥

पास चने के खेतों में बालक कुछ जाते ।
दौड़ दौड़ के सुरुचि साग खाते घर लाते ॥
आपस में सब करते जाते खिल्ली ठट्ठा ।
वहीं खोलकर खाते मक्खन रोटी मट्ठा ॥
बातें करते कभी बैठ के बाँधे पाली ।
साथ साथ खेतों की करते थे रखवाली ॥
कहते हर्षित सभी देख फूली फुलवारी ।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओं में प्यारी ॥ ३ ॥
हाय समय ने एक साथ सब बात मिटाई ।
एक चिन्ह भी उसका नहिं देता दिखलाई ॥
कटे पिटे मिट गये वह सब ढाकों के जङ्गल ।
जिनमें करते थे पशुपक्षी नितप्रति मङ्गल ॥
धरती के जी में छाई ऐसी निठुराई ।
उपजीविका किसानों की सब भाँति घटाई ॥
रहा नहीं तृण न्यार कहीं कृषकों के घर में ।
पड़े ढोर उनके गोभक्षक-कुल के कर में ॥
जिन सरसों के पत्तों को डङ्गर थे खाते ।
उनसे वह अपना जीवन हैं आज बिताते ॥
कहाँ गये वह गाँव मनोहर परम सुहाने ।
सबके प्यारे परम शान्तिदायक मनमाने ॥
कपट और क्रूरता पाप और मद से निर्म्मल ।
सीधे सादे लोग बसें जिनमें नहिं छल बल ॥
एक साथ बालिका और बालक जहँ मिलकर ।
खेला करते औ घर जाते साँझ पड़े पर ॥
पाप भरे व्यवहार पाप मिश्रित चतुराई ।
जिनके सपने में भी पास कभी नहिं आई ॥

एक भाव से जाति छतीसों मिल कर रहतीं।
एक दूसरे का दुख सुख मिलजुल कर सहतीं॥
जहाँ न झूठा काम न झूठी मान बड़ाई।
रहती जिनके एक मात्र आधार सचाई॥
सदा बड़ों की दया जहाँ छोटों के ऊपर।
औ छोटों के काम भक्ति पर उनकी निरभर॥
मेल जहाँ सम्पत्ति प्रीति जिनका सच्चा धन।
एकहि कुल की भाँति सदा बसते प्रसन्न मन॥
पड़ता उनमें जब कोई झगड़ा उलझेड़ा।
आपस में अपना कर लेते सब निबटेड़ा॥
दिन दिन होती जिनकी सच्ची प्रीति सवाई।
एक चिन्ह भी उसका नहीं देता दिखलाई॥
पतित पावनी पूजनीय यमुना की धारा।
सदा पापियों का जो करती थी निस्तारा॥
अपनी ठौर आज तक वह बहती है निरमल।
बना हुआ है वैसा ही शीतल सुमिष्ट जल॥
विस्तृत रेती अब तक वैसी ही तट पर है।
आसपास वैसा ही वृक्षों का झूमर है॥
छिटकी हुई चाँदनी फैली है वृक्षों पर।
चमक रहे हैं चारु रेणुकण दृष्टि दुःखहर॥
वही शब्द है अब तक पानी की हलचल का।
बना हुआ है स्वभाव ज्यों का त्यों जलथल का॥
वोही फागन मास और ऋतुराज वही है।
होली है और उसका सारा साज वही है॥
अहह देखने वाले इस अनुपम शोभा के।
कहाँ गये चल दिये किधर मुँह छिपा छिपा के॥

प्रकृति देवि ! हा ! है यह कैसा दृश्य भयानक ।
हृदय देख के रह जाता है जिसको भवचक ॥
क्या पृथ्वी से उठ गई सारी मानव जाती ।
क्यों नहिं आकर इस शोभा को अधिक बढ़ाती ॥
किसने वह सब अगली पिछली बात मिटाई ।
एक चिन्ह भी उसका नहिं देता दिखलाई ॥
सुन पड़ती नहिं कहीं आज वह ध्वनि सुखकारी ।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओं में प्यारी ॥४॥

(४)

पिता

एहौ जगतपिता के प्रतिनिधि पिता पियारे ।
मोहि जन्म दै जगत दृस्य दरसावनहारे ॥
तव पद पंकज में करौं हौं बारहि बार प्रनाम ।
निज पवित्र गुनगान की मोहिं दीजै बुद्धि ललाम ॥१॥
यद्यपि यह सिर मेरो नहिं परसाद तिहारो ।
प्रेम नेम तें तदपि चहौं तव चरननि धारो ॥
गंगाजू को अर्घ सब, है गंगहि जल सों देत ।
ऐसो बाल-चरित्र मम लखि रीझौ मया समेत ॥२॥
बन्दौं निहछल नेह रावरे उरपुर केरो ।
लालन पालन भयो सबै विधि जासों मेरो ॥
उलटै पुलटै काम मम अरु टेढ़ी मेढ़ी चाल ।
निपट अटपटे ढङ्गहू नित लखि लखि रहे निहाल ॥३॥
कहौं कहाँ लग अहौ आपनी निपट ढिठाई ।
तव पवित्र तन माहिं बार बहु लार बहाई ॥
शुद्ध स्वच्छ कपड़ान पर बहु बार कियो मल मूत ।
तवहुँ कबहुँ रिस नहिं करो मोहिं जानि पियारो पूत ॥४॥

लाखन औगुन किये तदपि मन रोष न आन्यो ।
हँसि हँसि दिये बिसारि अज्ञ बालक मोहिं जान्यो ॥
कोटि कष्ट सुख सों सहे जिहि बस अनगिनतिन हानि ।
क्स न करौं तिहि प्रेम कों नित प्रनत जोरि जुग पानि ॥५॥
बन्दौं तव मुख कमल मोहिं लखि नित्य बिकासित ।
मो सङ्ग बिद्या आछत हूँ तुतराई भासित ॥
लाल वत्स प्रिय पूत सुत नित लै लै मेरे नाम ।
सुधा सरिस रस बैन सों जो पूरित आठो याम ॥६॥
खेलत खेलत कबहुँ धाय तव गरे लपटतो ।
लरिकाई चञ्चलताई कै खरो चमटतो ॥
लटकि लटकि कै आपहीं हौं सम्मुख जातो घूमि ।
बन्दौं सो श्रीमुख कमल जो लेतो मो मुख चूमि ॥७॥
जब तब जो कछु बालबुद्धि मेरी में आयो ।
अनुचित्त उचित न जानि आय कै तुमहिं सुनायो ॥
हँसि हँसि ताहू पै दिये उचित ज्वाब मोहिं जान ।
बन्दौं अति श्रद्धासहित सो मधुर मधुर मुसकान ॥८॥
बन्दौं तुम्हरे तरुन अरुन पंकज दल लोचन ।
दया दृष्टि सों हेरि सहज सब सोच बिमोचन ॥
मेरे औगुन पै कबहुँ जिन करी न तनिक निगाह ।
सबहि दसा सब ठौर में नित बकस्यो अमित उछाह ॥९॥
मोहिं मुरझान्यो देखि तुरत जलसौं भरि आये ।
कहूँ रुष्टहू भये तहूँ ममता सों छाये ॥
तरजन बरजन करतहूँ पूरित पावन प्रेम ।
सब दिन जो तकते हुते बहु ममता सों मम छेम ॥१०॥
खेलन हेत कबहुँ जब निज मीतन सङ्ग जातो ।
जब फिर कै आतो मारग तकते ही पातो ॥

आवत मोहिं निहारिकि हो हरे भरे ह्वै जात ।
युगल नैन बन्दौं सोई मैं नितप्रति साँझ प्रभात ॥११॥
जिन नैनन के लास रह्यो मेरे मन खटको ।
पै वह खटको रह्यो पन्थ सुखसागर तट को ॥
अगनित दुरगुन दुखन ते निज राख्यो रक्षित मोहिं ।
काहे न वे दृग कमल मम श्रद्धा सर सोभा होहिं ॥१२॥
करौं बन्दना हाथ जोरि तव कर कमलन की ।
सब विधि जिनसों पुष्टि तुष्टि भइ या तन मन की ॥
दूध भात की कौरियाँ सुचि रुचि से सदा खवाय ।
इतने तें इतनो कियो जिन मोहिं मया सरसाय ॥१३॥
बड़े चावसों केस सँवारत पट पहिरावत ।
जूठे कर मुख धोवत नित निज सँग अन्हवावत ॥
कहुँ सिसुता बस याहु मैं जब रोय उठो अनखाय ।
तब रिझवत हँसि गोद लै के देत खिलौना लाय ॥१४॥

(५)

सभ्य बीबी की चिट्ठी

पीतम सङ्गी होन की, तुम्हरे मन है चाह ।
हमरो तुमरो होय पै, कैसे मिल ! निबाह ॥१॥
हमरे अङ्ग लगी रहत, पोमेटम परफ्यूम ।
सौरभ और सुगन्ध की, पड़ी चहूँ दिस धूम ॥२॥
धूल अङ्ग तुम्हरे रहत, बायू ताहि उड़ात ।
हमरो अति दुर्गंध सों, माथा फाट्यो जात ॥३॥
हमरे कोमल अङ्ग कहँ, ढाके राखत "गौन" ।
तुम्हरे अङ्ग धोती फटी, नाम मात्र की तौन ॥४॥
मेरे सिर पै कैप अरु, मोर पुच्छ लहरात ।
तेरे सिर लिपड़ी फटी, साफ मजूर दिखात ॥५॥

हमरी कटि पेटी लसै, कटि कहँ राखत छीन ।
तुम तगड़ी लटकाय जिमि, अँतड़ी बाहिर कीन ॥६॥
मम मुख "पौडर रोज" सों, मानहु खिल्यो गुलाब ।
तुम खड़ि माटी पोत कै, माथो कियो खराब ॥७॥
मेरे चरन विलायती, चिकनो सुन्दर बूट ।
नागौरा तव पाय मैं, ठाँव ठाँव रहे टूट ॥८॥
मम सुन्दर जंघान मैं, सिल्क रहत नित छाय ।
सदा असभ्य शरीर तव, रहत उघारो प्राय ॥९॥
मम मुख ढङ्ग विलायती, निकसत धीरे बात ।
बबर तुम्हारी जिह्व है, गोरू सम डकरात ॥१०॥
बावरची के हाथ हम, खायँ सदा तर माल ।
चूल्हा फूँकत तुम सदा, खाओ रोटी दाल ॥११॥
हमरी बोली 'गाड' है, तुम छोड़ो 'हरि बोल' ।
यज्ञ याग जप होम अरु, मानो उत्सव दोल ॥१२॥
देखत ही तुमको सदा, होत अरुचि उत्पन्न ।
छन छन आवत है बमी, हियो होत उत्सन्न ॥१३॥
भूमी अरु आकाश जिमि, हम तुम भेद अथाह ।
हमरो तुम्हरो होयगो, कैसे मिल निबाह ॥१४॥

(६)

साधो पेट बड़ा हम जाना ।
यह तो पागल किये जमाना ॥
मात पिता दादा दादी घरवाली नानी नाना ।
सारे बने पेट की खातिर बाकी फकत बहाना ॥
पेट हमारा हुण्डी पुर्जा पेटहि माल खजाना ।
जबसे जन्मे सिवा पेट के और न कुछ पहचाना ॥
लड्डू पेड़ा पूरी बरफी रोटी साबूदाना ।

सबै जात है इसी पेट में हलवा तालमखाना ॥
यही पेट चट कर गया होटल पी गया बोतलखाना ।
केला मूली आम सन्तरे सबका यही खजाना ॥
पेट भरे लारड कर्जन ने लेक्चर देना जाना ।
जब जब देखा तब तब समझे जहँ खाना तहँ गाना ॥
बाहर धर्म्म भवन शिवमन्दिर क्या ढूँढ़े दीवाना ।
ढूँढ़ो इसी पेट में प्यारो तब कुछ मिले ठिकाना ॥

(७)

उर्दू को उत्तर

१७ मई, १९०० के "अवध-पञ्च" में "उर्दू की अपील" नाम से एक कविता छपी थी। उसका यह उत्तर है। असल अपील भी फुट नोट में दी गई है। छोटे लाट मेकडानल्ड ने युक्त-प्रदेश की कचहरियों में नागरी अक्षर जारी किये। उस समय उर्दू के पक्ष वालों ने यह जोश दिखाया था। भारतमित्र द्वारा उसका उत्तर यह दिया गया था :—

न बीबी बहुत जी में घबराइये।
सम्हलिये ज़रा होश में आइये ॥
कहो क्या पड़ी तुम पै उफ़्ताद है।
सुनाओ मुझे कैसी फ़रियाद है ॥
किसी ने तुम्हारा बिगाड़ा है क्या।
सुनूँ हाल मैं भी तो उसका ज़रा ॥
न उठती में यों मौत का नाम लो।
कहाँ सौत मत सौत का नाम लो ॥

उक्त अपील इस प्रकार है :—

खुदाया पड़ी कैसी उफ़ताद है।
बड़े लाट साहब से फ़रियाद है ॥

बहुत तुम पे हैं मरने वाले यहाँ।
तुम्हारी हैं मरने की बारी कहाँ॥
बहुत बहकी बहकी न बातें करो।
न साये से तुम आप अपने डरो॥
ज़रा मुँह पे पानी के छींटे लगाव।
यह सब रात भर की खुमारी मिटाव॥
तुम्हारी ही है हिन्द में सब को चाह।
तुम्हारे ही हाथों है सब का निबाह॥
तुम्हारा ही सब आज भरते हैं दम।
यह सच है तुम्हारे ही सिर की क़सम॥
तुम्हारी ही ख़ातिर है छत्तीस भोग।
कि लट्टू हैं तुम पे ज़माने के लोग॥
जो हैं चाहते उन पे रीझो रिझाव।
कोई कुछ जो बैंडी कहे सौ सुनाव॥
वही पहनो जो कुछ हो तुमको पसन्द।
कसो और भी चुस्त महरम के बन्द॥
करो और कलियों का पाजामा चुस्त।
वह धानी दुपट्टा वह नकसक दुरुस्त॥
वह दाँतों में मिस्सी घड़ी पर घड़ी।
रहे आँख आईने ही से लड़ी॥
कड़े को कड़े से बजाती फिरो।
वह बाँकी अदायें दिखाती फिरो॥
मगर इतना जी में रखो अपने ध्यान।
वह बाज़ारी पोशाक है मेरी जान॥

मुझे अब किसी का सहारा नहीं।
यह बेवक़् मरना गवारा नहीं॥

जना था तुम्हे मा ने बाज़ार* में,
पली शाहआलम के दरबार में ॥
मिली तुमको बाज़ारी पोशाक भी।
वह थी दोगले काट की फ़ारसी ॥
वह फिर और भी कटती छटती चली।
वज़ रोज़ उसकी पलटती चली ॥
वही तुमको पोशाक भाती है अब।
नहीं और कोई सुहाती है अब ॥
मगर एक सुन आज मतलब की बात।
न पिछला वह दिन है न पिछली वह रात ॥
किया है तलब तुमको सरकार ने।
तुम आई हो अङ्गरेज़ी दरबार में ॥
सो अब छोड़िये शौक़ बाज़ार का।
अदब कीजिये कुछ तो दरबार का ॥
अदब की जगह है यह दरबार है।
कचहरी है यह कुछ न बाज़ार है ॥
यहाँ आई हो आँख नीची करो।
मटकने चटकने पे अब मत मरो ॥

मेरा हाल बहरे ख़ुदा देखिये।
ज़रा मेरा नक़्शोनुमा देखिये ॥
मैं शाहों की गोदों की पाली हुई।
मेरी हाय यों पायमाली हुई ॥

*तुर्की भाषा में उर्दू छावनी या बाज़ार को कहते हैं। शाहजहाँ के लश्कर में कई भाषाओं के मिलने से उर्दू बनी थी। इसीसे इसका नाम बाज़ारी भाषा अर्थात् उर्दू रखा गया।

यहाँ पर न झाँजों को झनकाइये।
दुपट्टे को हरगिज़ न खिसकाइये॥
न कलियों की याँ अब दिखाओ बहार।
कभी याँ पै चलिये न सीना उभार॥
वह सब काम कोठे पे अपने करो।
यहाँ तो अदब ही को सर पर धरो॥
यह सरकार ने दी है जो नागरी।
इसे तुम न समझो निरी घाघरी॥
तुम्हारी यह हरगिज़ नहीं सौत है।
न हक़ में तुहारे कभी मौत है॥
समझ लो अदब की यह पोशाक है।
हया और इज्ज़त की यह नाक है॥

निकाले ज़बाँ फिरती हूँ बावली।
ख़ुदाया मैं दिल्ली की थी लाड़ली॥
अदायें बलां की सितम का जमाल।
वह सजधज क़यामत वह आफ़त की चाल॥
मेरे इश्क़ का लाग भरते थे दम।
नहीं झूठ कहती ख़ुदा की क़सम॥
यह आफ़त लड़कपन में आने को थी।
जवानी अभी सिर उठाने को थी॥
निकाले थे कुछ कुछ अभा हाँथ-पाँव।
चमक फैलती जाती है गाँव-गाँव॥
कि ग़ैबी तमाचे से मुँह फिर गया।
महे चारदह अब्र में घिर गया॥
मेरी गुफ़्तगू और हिन्दी के हर्फ़।
वह शोलाफ़िसानी यह दरियाय बर्फ़॥

अदब और हुर्मत की चादर है यह ।
चढ़ो गोद में मिस्ल मादर है यह ॥
यही आप की मा की पोशाक थी ।
यह आज़ाद* से पूछना तुम कभी ॥
इनायत है तुम पे यह सर्कार की ।
तुम्हें दूसरी उसने पोशाक दी ॥
बुराई न इसकी करो दूबदू ।
बढ़ायेगी हरदम यही आबरू ॥

इस अन्दाज़ पे दिल हुआ लोट-पोट ।
दुलाई में अतलस के गाढ़े की गोट ? ॥
खुदाया न क्यों मुझको मौत आगई ? ।
कहाँ से मेरे सर ये सौत आगई ? ॥
न झूमर न छपका न बाले रहे ।
न गेसू मेरे काले काले रहे ! ॥

न अतलस का पाजामा कलियों भरा ।
दुपट्टा गुलाबी मेरा क्या हुआ ? ॥
न सुरमा न मिस्सी न मेंहदी का रंग ।
अजब तेरी क़ुदरत अजब तेरे ढङ्ग ॥
न बेले का बद्धी न अब हार है ।
न जुगनू गले में तरहदार है ॥
न झाँझों की झनझन कड़ों का न शोर ।
दुपट्टे की खसकन न महरम का जोर ॥

* आज़ाद से मतलब प्रोफ़ेसर मुहम्मद हुसेन आज़ाद से है । उन्होंने अपनी आबेहयात नाम की पुस्तक की भूमिका में उर्दू को ब्रजभाषा की बेटी कहा है ।

पुरानी भी है वह तुम्हारे ही पास।
उसे भी पहन लो रहो बेहिरास ॥
करो शुक्रिया जी से सरकार का।
कि उसने सिखाई है तुम को हया ॥

वह बाँकी अदायें वह तिरछी चलन।
फिफरूँ हुआ हो गया सब हरन ॥
बस अब क्या रहा क्या रहा क्या रहा ?।
फक़त एक दम आता जाता रहा !
यह सौदा बहुत हमको महँगा दिया।
कि ख़िलअत में हाकिम ने लहँगा दिया !
अँगोछे की अब तुम फबन देखना।
खुली धोतियों का चलन देखना ॥
वह सेन्दूर बालों में कैसी जुटी।
किसी पार्क में या कि सुर्ख़ी कुटी ॥

किशोरीलाल गोस्वामी

गोस्वामी श्रीकेदारनाथजी महाराज वृन्दावन में बड़े विद्वान् और यशस्वी हो गये हैं। उन्होंने ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता पर भाष्य और श्रीमद्भागवत पर तिलक रचा है। उनके पुत्र गोस्वामी श्रीवासुदेव-शरण देवाचार्य जी संस्कृत, व्रजभाषा, हिन्दी और बंगला के अच्छे विद्वान हुये। उनके ही पुत्र पंडित किशोरीलाल गोस्वामी हैं। इनका जन्म सं० १९२२ वि० के माघ मास की अमावस्या को हुआ।

आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत हुआ और साथ ही विद्यारम्भ भी।

इनके मातामह गोस्वामि श्रीकृष्णचैतन्यदेवजी काशी के प्रसिद्ध गोलघर नामक मन्दिर में विराजते थे। वे काशी के प्रसिद्ध रईस श्रीहर्षचन्द्रजी के गुरु और राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के पड़ोसी थे। पंडित किशोरीलालजी का पठन-पाठन काशी ही में चलने लगा। संस्कृत में इन्होंने न्याय, योग, व्याकरण, वेदान्त, ज्योतिष आदि विषयों का अध्ययन किया और साहित्य में आचार्य-परीक्षा तक के ग्रन्थ पढ़े।

इनके पिताजी बहुत दिनों तक आरा में रहे थे। अतः ये भी वहीं रहे। और आरे के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीपीताम्बर मिश्रजी तथा रुद्रदत्तजी से संस्कृत-साहित्य का अध्ययन करते रहे।

आरे में कोई पुस्तकालय नहीं था। अतः इन्होंने 'आर्य-पुस्तकालय' नाम से एक पुस्तकालय स्थापित किया। उसके द्वारा वहाँ हिन्दी-भाषा का अच्छा प्रचार हुआ। आरे और पटने के हिन्दी के प्रचारकों में इनका स्थान भी बहुत ऊँचा है। आरे के प्रसिद्ध वैद्यराज पण्डित बालगोविन्द त्रिपाठी की सहायता से 'वर्णधर्मोपयोगिनी' नाम की एक सभा भी इन्होंने स्थापित की थी और उस सभा द्वारा 'वर्णधर्मोपयोगिनी' पाठशाला स्थापित कराई थी। सभा का अधिकांश कार्य ये ही करते थे। संवत् १९४७ में ये उक्त सभा से प्रतिनिधि होकर दिल्ली में भारतधर्म महामण्डल में सम्मिलित हुए थे।

'कुरमी जाति' की वर्णव्यवस्था पर संस्कृत में इन्होंने एक पुस्तक लिखी थी, जो "विज्ञ वृन्दावन" नामक पत्र में छपा करती थी।

हिन्दी-भाषा के सुप्रसिद्ध उद्धारक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी इनके मातामह के साहित्य-शिष्य थे। इससे इनका भारतेन्दुजी से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध रहता था। इन्होंने अपने मातामह से हिन्दी-साहित्य, पिङ्गल आदि पढ़े थे। राजा शिवप्रसाद और भारतेन्दुजी की प्रेरणा से इन्होंने हिन्दी में।

"प्रणयिनी-परिणय" नामक पहला उपन्यास लिखा। इसके अनन्तर ये आरे से काशी में आ रहे।

हिन्दी-भाषा की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका सरस्वती के प्रथम व के सम्पादकों में ये भी थे और नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला, बालसखा आदि के ये सम्पादक तथा उपसम्पादक रह चुके हैं। लगभग पचीस वर्षों से ये उपन्यास नाम की एक मासिक पुस्तक निकाल रहे हैं और दश वर्षों से वैष्णवसर्वस्व नामक एक मासिक पत्र भी। सन् १९१३ में इन्होंने वृन्दावन में श्रीसुदर्शन प्रेस नाम का एक प्रेस भी खोल दिया।

ये आरम्भ से ही काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा के सभासद थे। सभा के कार्यसञ्चालकों में कुछ मतभेद होने पर इन्होंने बाबू श्यामसुन्दर-दास का पक्ष समर्थन करते हुए, सभा का सम्बन्ध त्याग दिया। कई सभाओं के ये सभापति हो चुके हैं। आगरे में गौड़ महासभा के ये ही सभापति थे। रीवाँ राज्य की चतुःसम्प्रदाय श्रीवैष्णव महासभा के ये ट्रस्टी थे। रीवाँ के स्वर्गीय महाराज इनका बहुत सम्मान करते थे।

डायमण्ड जुबिली के समय महारानी विक्टोरिया का जीवनचरित्र इन्होंने संस्कृत में लिखकर 'वैष्णव-समाज काशी' के द्वारा विलायत भेजा था। इस पर महारानी की आज्ञा से होम डिपार्टमेंट ने इनको धन्यवाद का परवाना दिया था।

इनके लिखे हुये ग्रंथों की सूची इस प्रकार है :—

कविता

(१) समस्यापूर्ति मञ्जरी (२) भागवतसार पचीसी (३) युगलरस माधुरी (४) अध्यात्म-प्रकाश (५) कण्ठमाला (६) अश्रुधारा (७) प्रेमपुष्पाञ्जलि (८) चन्द्रोदय (९) आकाशकुसुम (१०) वीरेन्द्रविजय-काव्य (११) प्रणयोपहार (१२) कन्दर्प विजय काव्य (१३) कविता-संग्रह (१४) काशी कविसमाज की समस्यापूर्ति (१५) सुजान-रसखान

(१६) रसखान शतक (१७) प्रेम-रत्नमाला (१८) प्रेम-पुष्पमाला (१९) प्रेमवाटिका (२०) कविता-मञ्जरी (२१) कवि माधुरी (२२) बालकुतूहल (२३) वनिता विनोद (२४) वीरबाला (२५) एक नारी-व्रत (२६) सावित्री (२७) होली रङ्गघोली।

गाने की पुस्तकें

(१) सावन सुहावन (२) होली मौसिम बहार (३) वर्षाविनोद (४) ठुमरी का ठाट (५) मञ्जुपदावली (६) नित्यकीर्तन मालिका (७) वर्षोत्सव कीर्तन मालिका (८) जातीय सङ्गीत (९) सङ्गीत-शिक्षा (१०) चैती गुलाब (११) वसन्तबहार।

विविध विषय

(१) वेदशिक्षा (२) हठयोग (३) अष्टाङ्गयोग (४) ज्ञान सङ्कलिनी तन्त्र (५) तन्त्र-रहस्य (६) निरालम्बोपनिषद् (७) चाक्षुषोपनिषद् (८) बैराग्य-प्रदीप (९) तीर्थ-महिमा (१०) कुम्भ-पर्व-व्यवस्था (११) गङ्गास्थिति-सिद्धान्त।

साम्प्रदायिक

(१) नित्यकृत्य-चन्द्रिका (२) युगलार्चन कौमुदी (३) वर्षोत्सव-मयूष (४) सम्प्रदाय-सिद्धान्त (५) सम्प्रदाय-दिवाकर (६) ब्रह्म-मीमांसा (७) धर्म-मीमांसा (८) सन्ध्या-प्रयोग (९) सन्ध्या संक्षिप्त (१०) सन्ध्या भाषा (११) गायत्री-व्याख्या (१२) आचार्य-चरित (१३) हंसावतार-चरित (१४) साधिकोपनिषद् (१५) कापिल सूत्र।

जीवन-चरित

(१) अर्ल मेयो (२) हम्मीर (३) मेवाड़ राज्य (४) मरहठों का उदय (५) औरङ्गज़ेब की राजनीति (६) लार्ड रिपन (७) बुद्धदेव (८) अशोक चरितावली (९) वर्द्धमान राजवंश (१०) मधुचक्र का सोपान (११) जोजेफाइन (१२) नेपोलियन (१३) श्रीकृष्ण-

चैतन्यदेव (१४) बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० (१५) बाबू राधा-कृष्णदास (१६) पण्डित मदनमोहन मालवीय (१७) सर एन्टोनी मैकडानल्ड (१८) राजा लक्ष्मण सिंह (१९) बाबू रामकाली चौधरी (२०) मैक्समूलर भट्ट (२१) राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द (२२) पण्डित अम्बिकादत्त ब्यास (२३) वाल्मीकि चरित्र (२४) भीष्म पितामह (२५) पञ्चपांडव।

नाटक-रूपक

(१) मयङ्क मञ्जरी (२) चौपट चपेट (३) भारतोदय (४) (४) नाट्यसम्भव (५) सावित्री सत्यवान (६) प्रणय-पारिजात (७) प्रबन्ध-पारिजात (८) प्रियदर्शिका (९) स्वर्ग की सभा (१०) प्रभावती परिणय (११) कन्दर्प-केलि (१२) वर्षा विहार गोष्ठी (१३) चाण्डाल चौकड़ी (१४) पोंगा बसन्त (१५) बी जान (१६) दिवाभीत (१७) बैशाख-नन्दन (१८) शाला बाबू (१९) काला साहब (२०) यमराज और हम (२१) गोबरगनेश (२२) जोरूदास (२३) वैश्या-वल्लभ (२४) एक एक के दो दो (२५) स्वर्ग की सीढ़ी।

उपन्यास

(१) चपला (२) तारा (३) लीलावती (४) रजीयाबेगम (५) मल्लिकादेवी (६) राजकुमारी (७) कुसुमकुमारी (८) तरुण तपस्विनी (९) हृदयहारिणी (१०) लवङ्गलता (११) याकूती तख्ती (१२) कटे मूड़ की दो दो बातें (१३) कनक कुसुम (१४) सुख-शर्वरी (१५) प्रेममयी (१६) गुलबहार (१७) इन्दुमती (१८) लावण्य मयी (१९) प्रणयिनी परिणय (२०) ज़िन्दे की लाश (२१) चन्द्रावली (२२) चन्द्रिका (२३) हीराबाई (२४) लखनऊ की क़ब्र (२५) पुनर्जन्म (२६) त्रिवेणी (२७) माधवी माधव (२८) राजराजेश्वरी (२९) जड़ाऊ कङ्कण में काल भुजङ्ग (३०) आरसी में हीरे की कनी

(३१) विहार-रहस्य (३२) ठगिनी (३३) भोजपुर की ठगी (३४) जगदीशपुर की गुप्त कथा (३५) राजगृह की सुरङ्ग (३६) प्रसन्न पथिक वा पथ-प्रदर्शिनी (३७) कुँवरसिंह (३८) बनारस-रहस्य (३९) हमारी रामकहानी (४०) अँगूठी का नगीना (४१) इसे जिन्दा कहें कि मुर्दा (४२) सदासोहागिन (४३) दिल्ली की गुप्तकथा (४४) ज़नानखाने में दीवान (४५) प्रेम-परिणाम (४६) पातालपुरी (४७) दो सौ तीन (४८) औरत से औरत का ब्याह (४९) रोहितासगढ़ की रानी (५०) अन्धेरी कोठरी (५१) क़ाज़ी की चीठी (५२) राजकन्या (५३) राक्षसेन्द्र राक्षस वा घड़ा भर विष (५४) साँप की बीबी (५५) सेज पर साँप (५६) इसे चौधराइन कहें कि डाइन (५७) राजबाला (५८) आप आप ही हैं (५९) नरक नसेनी (६०) अन्धेरी रात (६१) सोना और सुगन्ध (६२) आदर्श प्रणय (६३) शान्ति निकेतन (६४) बार बिलासिनी (६५) शान्ति-कुटीर ।

पत्र-पत्रिकाओं में स्फुट लेख :—

	लेख संख्या		लेख संख्या
(१) सार सुधानिधि	५७	(११) बिहार-बन्धु	६२
(२) उचित वक्ता	११	(१२) सारन-सरोज	४०
(३) भारतमित्र	२२	(१३) भारत-जीवन	३
(४) आर्यावर्त	४	(१४) भारतवर्ष	१०१
(५) पीयूस प्रवाह	७	(२५) ब्रह्मावर्त	१
(६) चम्पारन-चन्द्रिका	५१	(१६) हिन्दी-प्रदीप	७
(७) हरिश्चन्द्र-कौमुदी	१०	(१७) ब्राह्मण	१
(८) क्षत्रिय-पत्रिका	२	(१८) भारतधर्ममहामंडल	११
(९) विद्याधर्म-दीपिका	६	(१९) हिन्दोस्थान	२५
(१०) द्विज-पत्रिका	१	(२०) राजस्थानसमाचार	१२

(२१) दिनकर-प्रकाश	१	(३२) रसिक-मित्र	१
(२२) विद्या-विनोद	१	(३३) सज्जनकीर्त्ति-सुधाकर	१
(२३) भारत-भगिनी	१	(३४) सरस्वती	२८
(२४) श्रीवेंकटेश्वरसमाचार	२	(३५) नागरी प्रचारिणी-पत्रिका	२
(२५) भाषा-भूषण	७	(३६) नागरी-प्रचारिणी-ग्रन्थ-माला	१
(२६) विज्ञ वृन्दावन	३८	(३७) बाल-प्रभाकर	५
(२७) सर्वहित	३२	(३८) मित्र	३
(२८) सत्यवक्ता	८	(३९) मर्यादा	१५
(२९) सुदर्शनचक्र	१	(४०) यादवेन्द्र राघवेन्द्र	४
(३०) नागरी-नीरद	६	(४१) कलकत्ता समाचार आदि	६
(३१) विहार-भूषण	३		

गोस्वामीजी ने सात पुस्तकें संस्कृत में भी लिखी हैं, जिनके नाम ये हैं :—

(१) मयूष-मालिनी (२) प्रणयोच्छ्वास (३) श्रृङ्गार-रत्नमाला (४) श्रृङ्गार-सुधाकर (५) श्रृङ्गार-सुधाबिन्दु (६) सांख्य-सुधाकर (७) संक्षिप्त सांख्य-तत्व-समास-कारिका ।

गोस्वामी जी का जीवन साहित्यमय है । इन्होंने अपने जीवन में एक ही काम किया है और वह है हिन्दी-साहित्य-सेवा । हिन्दी-साहित्य-सेवियों के अतिरिक्त इनको मित्रता और किसी से नहीं है । असाहित्य-सेवियों से ये बातचीत करने में भी घबड़ाते हैं । मेला-तमाशा, सभा-समाज किसी में भी इनकी रुचि नहीं है । भोजन, भजन एवं शयन से जो समय बचता है, उसे ये साहित्य-सेवा में लगाते हैं । मकान से तभी निकलते हैं, जब कहीं जाने के लिए रेलवे-स्टेशन की आवश्यकता पड़े । और घर पर भी आए हुए उसी सज्जन से मिलते हैं, जो हिन्दी-साहित्य से सम्बन्ध रखता हो । पठन-पाठन के अतिरिक्त ये अपना एक मिनट भी देना नहीं चाहते । इनको जब तक विवश न किया जाय, ये किसी सभा में भी नहीं जाते । इनका

कहना है कि किसी सभा में जाकर हिन्दी की सेवा करने की अपेक्षा घर पर रहकर हिन्दी की अधिक सेवा हो सकती है। ये 'उपाधि' से बहुत दूर भागते हैं। कई बार लोगों ने इनको उपाधियाँ देनी चाहीं, पर इन्होंने साफ़ इनकार कर दिया। भारत-धर्म महामण्डल ने इनको एक बार एक उपाधि भेज दी, इस पर इन्होंने अपने एक मित्र से कहा कि असाहित्य-सेवीगण साहित्य-सेवियों को उपाधि देकर अपनी अयोग्यता ही नहीं प्रगट करते, प्रत्युत साहित्य-सेवियों का अपमान भी करते हैं। सरस्वती और मर्यादा पर इनका बहुत ही स्नेह रहा। यह इसलिए कि ये दोनों इनके मित्रों से सम्पादित होती थीं, अथवा इनके ये लेखक रहे। ये जब दो चार साहित्य-सेवियों के साथ बैठ जाते हैं, तब रोते हुए मनुष्य भी हँसते-हँसते लोटपोट होने लगते हैं। ये हिन्दी-भाषा में बहुत अच्छा व्याख्यान देते हैं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में बड़ी शीघ्रता से कविता करते हैं। यही हाल संस्कृत में भी है। ये कई तरह की भाषाएँ लिखने में सिद्धहस्त हैं। ये अपनी पुस्तकें पुस्तकालयों और अतिथियों को बड़ी ही उदारता से देते हैं। गोस्वामीजी लगभग पिछले ५० वर्ष से हिन्दी-साहित्य की निःस्वार्थभाव से सेवा कर रहे हैं। और इतनी बड़ी सेवा के परिवर्तन में इन्होंने कभी कोई वेतन, पुरस्कार, पदक आदि नहीं ग्रहण किया।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :—

(१)

भ्रातः ! कोकिल ! कूजितेन किमलं नार्घ्यत्य नष्टे गुणं।
तूष्णीं तिष्ठ विशीर्णपर्णपटलच्छन्नः क्वचित्कोटरे ॥
प्रोद्दामद्रुमसङ्कटे कटुरटत्काकावली संकुलः।
कालोऽयं शिशिरस्य सम्प्रति सखे ! नायं वसन्तोत्सवः ॥

कोकिल ! मीत ! न बोलु कछू,
कहु, नीचन ने गुन जान्यो किते कब।

याते रहै चुप होइ कछू दिन,
सूखे पलास के कोटर मैं दब ॥
ऊँचे महीरुह की फुनगीन पै;
बोलत काग कठोर इतै अब ।
ये पतझार के घोस अबै,
पर बोलियो तूहू बसंत लगै जब ॥

(२)

गन्धाढ्यासौ भुवनविदिता केतकी स्वर्णवर्णा,
पद्मभ्रान्त्या क्षुधितमधुपः पुष्पमध्ये पपात ।
अंधीभूतः कुसुमरजसा कंटकैश्छिन्नपक्षः,
स्थातुं गन्तुं द्वयमपि सखे! नैव शक्तो द्विरेफः ॥
कञ्चन रङ्ग सुगन्ध सनी,
जग जाहिर सोहति केतकी की कली ।
ताहि के फूले प्रसूनन माहिं
उपास्यो पऱ्यो रस चाखन कों छली ॥
आँधरो होइ परागन सों,
पुनि काँटनि पंख छिदायो विधी भली ।
'जाइबो त्यों रहिबो, इन दोउन
में नहिं, मीत! समर्थ भयो अली ॥

(३)

स्वच्छाः सौम्य! जलाशयाः प्रतिदिनं ते सन्तु मा सन्तु वा ।
स्वल्पं वा बहु वा जलं जलधर! त्वं देहि मा देहि वा ॥
पानीयेन विनासनो यदि पुनर्निर्यान्तु मा यान्तु वा ।
नान्येषान्तु शिरोनतिह्यभिमुखं कर्त्ताम्बुभृच्चातकः ॥
नितही सुनु मीत जलाशय सुन्दर निर्मल नीर धरै न धरै ।
कछु थोरो घनो जल बारिद! तू इन चोंचन माहिं भरै न भरै ॥

बिनही जलपान किये यह प्रान सदाही रहैं कि अबै निसरैं।
तबहूँ यह चातक औरन के ढिग नीचो न आपुनो सीस करै॥

(४)

बसन्त-बहार

वर बसन्त बानक बिसद, वृन्दाबिपिन बिराज।
बिलसत ब्रजबनितानि संग, बिमलबेस ब्रजराज॥
वृन्दावन बानक बिसद, बगर्‍यो बहुरि बसन्त।
बिबुध-बधूटी सी बिमल, ब्रजबनिता बिलसन्त॥

(५)

चन्द्रोदय

(बिम्बार्द्ध)

परमरम्य नीलाभ गगनतल पै यह को है ?
चितवत ही चख चपल अचल करि जो मन मोहै।
अहैं कहा यह राहु-सीस को काटनहारो।
चमचमात चक्रार्द्ध सुमन-गन को रखवारो॥
कै अम्बर को अमल धवल व्यापक जग माहीं।
सदा शब्दमय विजय-शंख को जानत नाहीं !
कै यह अभ्र-पयोनिधि की सुतुही अति प्यारी।
तारा-मुक्तावलि की जो उपजावनहारी।
कैधौं रजत पहार तुषार-सन्यो मनभावन।
मीनकेत्त को मीन-केत कै कलुष-नसावन॥
कै बाराह विशाल-बदन की डाढ़ माहिं इक।
बक्र दन्त दुतिमन्त अन्तकारक तम दस दिक॥
दवी कहा ? हिम-शिला मध्य अमृत की पोखी।
सुखद सराहन जोग मुग्धमन मीन अनोखी॥

कै तम कुञ्जर दमन हेत नभ-बीर महावत।
लै कर अमल अलौकिक अंकुश झूमत आवत॥
किधौं हास्यरस के तारे की है यह तारी।
कै छल बल की सकल कलावारी कल भारी॥
सोलह कला-प्रवीन कोऊ नागर नट की बर।
दीख परत इक कला अनोखी सुमन मनोहर।
प्रकृति सती को सुरस हास्य कैधों मन मोहै।
किधौं हास्यरस रससिङ्गार उर धरि अति सोहै॥
कै कामागम मत्त मनुज जन की बैतरनी।
कैधों बिरहिन-मानवतिन की मान-कतरनी॥
झलकत बाम सुभाव किधौं बामा-उर-चारी।
कै मनोज की अहै अनोखी कुटिल कटारी॥
कै सन्ध्या-बरबधू-कपोल नखच्छत पूरो।
कै अनन्त मन्दिर को राजत कुटिल कँगूरो॥
शीत-रश्मियुत पुष्प-बाण को धनु छवि छाजै।
कै कुटिलन के कुटिल हृदय को हृदय बिराजै॥
ओंकार कैधौं रतिपति-आगम को निरुपम।
कै यह बरत मसाल काल की नासन को तम॥
कैधों विधि कृत कर्म-रेख की बलित बिकारी।
कै कोऊ माला व्याकरनिन की अति प्यारी॥
किधौं शेष-फन एक धरातल-ऊपर आयो।
कै कोऊ मुनिवर को चमकत भाल सुहायो॥
कै शिशुमार चक्र की दीसत धुरी अधूरी।
किधौं व्योम-गंगा की झलकत रेती झूरी॥
किधौं विष्णु-पद-नख की कछुक छटा छवि छाजत।
कै कलिंदजा-मध्य रजतमय नौका राजत॥

यामें झलकत कहा श्यामता ? सोऊ कहिए।
ठाढ़े करत सलाह मलाह चलन कित चहिए॥
चन्द्रचूर को चन्द्र चूर ह्वै अधर पऱ्यो है।
कै सुखमा समूह को बेरा आनि अऱ्यो है॥
कै रजनी को राजत है सुहाग-फल पूरो।
किधौं सुधाधर उदित भयो है आजु अधूरो॥
कैधों जन्म्यो अवै जलधि उर तें यह बालक।
कै शशिशेखर भाल तिलक शैवन कुल पालक॥
गरल सहोदर की ज्वाला तें जरि उर माहीं।
शम्भु सीस हू चढ़ि या को नेकहुँ सुख नाहीं॥
छुद्र जीवहू कहुँ ऊँचे आसन थिर होहीं ?
याही तें यह भटकत डोलत है चहुँ कोहीं॥
सीतल करन हृदय सीतल मारुत चहुँ जोवत।
बिरहिन के मानस बरजोरी विष बहु बोवत॥

लाला भगवानदीन

लाला भगवानदीन का जन्म ज़िला फ़तहपुर के बरवट गाँव में श्रावण शुक्ला ६, सं० १९२३ में हुआ। ये श्रीवास्तव दूसरे कायस्थ हैं। इनके पूर्वज, जो पहले रायबरेली में रहते थे, ग़दर के समय में रामपुर चले गये थे। नवाबी ज़माने में इनके पूर्वजों को बख़्शी का ख़िताब मिला था।

ग्यारह वर्ष की अवस्था तक ये अपनी जन्मभूमि बरवट ही में उर्दू और फ़ारसी पढ़ते रहे। उस समय इनकी माता का देहान्त हो जाने के

कारण इनके पिता, जो बुन्देलखण्ड में नौकर थे, इन्हें अपने साथ ले गये। बुन्देलखण्ड में ये नौगाँव छावनी में अपने फूफा के पास रहकर फ़ारसी की विशेष शिक्षा पाते रहे। चार वर्ष बाद ये फिर घर लौट आये और दो वर्ष तक मदरसे में पढ़ते रहे। घर पर भी अपने दादा से इन्होंने हिन्दी पढ़ी। सत्रह वर्ष की अवस्था में ये फ़तहपुर के हाईस्कूल में भरती किये गये। वहाँ सात वर्ष पढ़कर इन्होंने इन्ट्रेंस परीक्षा पास की। मिडिल पास करने के बाद ही इनका विवाह हो गया था। किन्तु फिर भी गृहस्थी के भार को सँभालते हुये इन्होंने आगे पढ़ने का साहस किया। कायस्थ-पाठशाला प्रयाग से छात्रवृत्ति पाकर ये प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में भर्ती हुये। गृहस्थी का झञ्झट सिर पर होने के कारण इन्हें दो एक जगह ट्यूशन भी करनी पड़ती थी। इससे ये कालेज की परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सके। लाचार होकर पढ़ना छोड़ कर ये कायस्थ पाठशाला में शिक्षक नियत हो गये और डेढ़ वर्ष तक वहाँ काम करते रहे। इसके पश्चात् ज़नाना मिशन हाईस्कूल में ये फ़ारसी के शिक्षक होकर छः महीने तक वहाँ काम करते रहे। फिर राज्यस्कूल के सेकंड मास्टर होकर ये छत्रपुर चले गये और वहाँ सन् १८९४ से १९०७ तक रहे। १९०७ में ये काशी के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में उर्दू के टीचर होकर आये। डेढ़ वर्ष पीछे जब नागरी-प्रचारिणी-सभा का "हिन्दी-शब्दसागर" बनने लगा, तब ये उसके सहकारी सम्पादक होकर आ गये। कई वर्षों तक ये वहीं काम करते रहे। बीच में एक बार कोश-कार्यालय काश्मीर चला गया था, तब ये प्रयाग और गया में कुछ दिनों तक रहे। जब कोश-कार्यालय फिर काशी में वापस आया, तब ये फिर उसमें सम्मिलित होकर काम करने लगे। आज तक कोशकार्य समाप्त नहीं हुआ। किन्तु हिन्दू-विश्वविद्यालय में एक सुयोग्य हिन्दी-साहित्यज्ञ अध्यापक की आवश्यकता होने पर ये कोश-कार्य छोड़कर उसमें आ गये, और अबतक उसी पद पर हैं।

हिन्दी की ओर लालाजी की रुचि बालकपन से ही थी। १९ वर्ष

की अवस्था में एक बार इनको अपने पिता के साथ दो महीने तक हरद्वार में रहना पड़ा था। उसी अवसर में इन्होंने कृष्ण-चौसठिका नाम की एक कविता बनाई थी। छत्रपुर में ये अवकाश के समय में बाबू जगन्नाथ प्रसाद की लाइब्रेरी की पुस्तकें पढ़ा करते थे। वहाँ बुन्देलखण्ड के प्राचीन कवियों की कविता पढ़ने का इनको अच्छा अवसर मिला। वहीं पण्डित गङ्गाधर व्यास से इन्होंने काव्य के कुछ नियम सीखे, और फिर श्रृङ्गार-शतक, श्रृङ्गार-तिलक और रामायण के दोहों पर कुण्डलियों की रचना की। वहाँ इन्होंने कविसमाज और काव्यलता नाम की दो सभायें स्थापित कीं और भारतीभवन नाम का पुस्तकालय खोला था। उस समय ये रसिक-मित्र, रसिक-वाटिका और लक्ष्मी-उपदेश-लहरी में फुटकर कविताएँ और लेख भी भेजा करते थे। सन् १९०५ में लक्ष्मी-उपदेश-लहरी के सम्पादक देवरी निवासी श्रीयुत मंजु सुशील के देहान्त हो जाने पर, उनके इच्छा-नुसार लालाजी को लक्ष्मी का सम्पादन-कार्य मिला। तब से अब तक ये योग्यतापूर्वक उसका सम्पादन कर रहे हैं। इनको "भक्ति भवानी" नाम की कविता लिखने पर एक स्वर्णपदक, और "रूस पर जापान क्यों विजयी हुआ ?" शीर्षक निबंध पर १००) का पुरस्कार मिला था।

इनकी पहली स्त्री अशिक्षिता थी। पर दूसरी स्त्री बुंदेलाबाला विदुषी थीं और कविता भी करती थीं। उनका नैहर ज़िला गाज़ीपुर के क़सबा सादियाबाद में था। काशी आने पर उनका भी देहान्त हो गया। तब सन् १९१२ में इन्होंने बुन्देलाबाला की छोटी बहन से अपना तीसरा विवाह किया। यह स्त्री भी पढ़ी लिखी है। इस से इनके एक कन्या है।

लालाजी हिन्दी-साहित्य के मर्मज्ञों में से एक हैं। इन्होंने राम-चन्द्रिका, कवि-प्रिया, रसिक-प्रिया, कवितावली और बिहारी सतसई पर बड़ी प्रामाणिक टीकायें लिखी हैं। इनकी फुटकर कविताओं का एक संग्रह "नवीन बीन" नाम से इन दिनों प्रकाशित हुआ है। सूक्ति-सरोवर नाम से उत्तम कविताओं का एक संग्रह भी इन्होंने किया है। अलंकार पर

इनका लिखा हुआ "अलंकार-मंजूषा" नामक ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है, और कई परीक्षाओं में पाठ्य-ग्रन्थ है। इनका लिखा हुआ "वीर-पंचरत्न" एक पद्य-ग्रंथ हाल ही में प्रकाशित हुआ है। उसमें वीररस की अच्छी झलक है। खड़ीबोली और ब्रज-भाषा दोनों में ये अच्छी रचना कर लेते हैं। खड़ीबोली की कविता के लिये ये उर्दू-छन्दों को ज्यादा उपयुक्त समझते हैं।

लालाजी बड़े परिश्रमी और साहित्य-चर्चा के प्रेमी हैं। कुछ लिखते पढ़ते रहने का इनको व्यसन सा है। इनकी खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों प्रकार की कविताओं के नमूने नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

(१)

धनुष बान लखि राम कर, दीनहि होत उछाह।
टेढ़े सूधे जड़न को, है प्रभु हाथ निवाह॥

(२)

कोटिन कुबेरन को कनक कनूका सम ताको चारो वेद एक अलप कहानी हैं। कामधेनु कल्पतरु चिंतामणि आदिक की ताको दान देखि देखि मति चकरानी है॥ पाँचहू मुकुति ताकी दासी है खवासी करैं कालहू कराल की न ता सँग बिसानी है। 'दीन' कवि जाके मन-मंदिर में वास करैं राम सो सुराजा औ सिया सी महरानी है॥

(३)

ताके जाके थाके मान जावक जपा के सान मानिक प्रभा के प्रान बिद्रुम हिना के हैं। तूल मुहँ ताके खाय माखन सना के पेखि पाद भूमिजा के सोच कंज कलिका के हैं॥ रंग मृदुता के साके जग में जता के 'दीन' कबित लता के देनहार मनसा के हैं। सारदा सिवा के ना रमा के राधिका के ताके ऐसे शुभ पायँ जैसे जनकसुता के हैं॥

(४)

राजत राजस तामस पै कि कसौटी पै सोनो कसायो सुरंग है।
राग दबाये सिँगारहिं कै मघवाजित पै पसरो बजरंग हैं॥
नील अकास लसै अरुणोदय कै जमुना पर बाणि तरंग है।
'दीन' अनूप छटायुत क रघुलाल के गाल गुलाल को रंग है॥

(५)

कैधौं अनुराग पीछे धावत सिंगार फिरै विज्जु अनुगामी किधौं मेघ नील अंग है। कधौं स्वर्ण-सैल को खदेरे फिरै नीलाचल पोखराज-परी पीछे परो कै अनंग है। स्वर्ण रंग ब्याल पै मयूर कैधौं धावा किये बैहर बसंती पै धौं कालिया भुजंग है। 'दीन' हितकारी धनुधारी रामचंद्र कैधौं पाछे लागे जात आगे कंचन-कुरंग है॥

(६)

सघन लतान सों लखात बरसात छटा सरद सोहात सेत फूलन की क्यारी में। हिमऋतु काल जलजाल के फुहारन में सिसिर लजात जात पाटल-कतारी में॥ सौरभित पौन तें बसन्त सरसात नित ग्रीषम लौं दुःख दह सोखै चटकारी में। 'दीन' कवि सोभा षट ऋतु की निहारी सदा जनक-कुमारी की पियारी फूलवारी में॥

(७)

सुनि मुनि कौशिक तें साप को हवाल सब बाढ़ी चित करुना की अजब उमंग है। पद रज डारि करे पाप सब छारि करि नवल सुनारि दियो धामहू उतंग है। 'दीन' भनै ताहि लखि जात पति लोक और उपमा अभूत को सुझानो नयो ढंग है। कौतुकनिधान राम रज की बनाय रज्जु पदतें उड़ाई ऋषि-पतनी पतंग है॥

(८)

पाय कपीश निदेश जुरे सुप्रवर्षण पै कपि साजि समाजैं।
रंग अनेकन के बँदरा बिरचे ससिब्यूह महा धुनि गाजैं॥

मध्य लसैं सह लच्छन राम भनै कबि 'दीन' सु यौं छबि छाजैं।
घोर घटा पै सुरेस के चाँप के बीच मनो युग चंद्र बिराजैं॥

(९)

पावस की ऋतु मन भायो मास भाद्रपद पाख अँधियारो बुध बासर सुहायगो। रोहिनी नखत तिथि आठैं हरषन जोग बृषभ लगन ससि उच्च अंस पायगो॥ कारे कारे बारिधर छोड़ैं बर बारि धारा बीजुरी चमंकै सब लोक चौंधियायगो। ताही समै कारागृह माहिं देवकी के ढिग जग उजियारो धरि कारो रूप आयगो॥

(१०)

देखत गुविंद को मुखारविंद चंद सम अमित अनंद देवकी के उर छायगो। टेरि बसुदेव को दिखायो सिसु-रूप हरि पाय कै निदेस आसु गोकुलै सिधायगो॥ नंद के भवन पैठि सेज पै सोवाय बाल अति ही उताल फिरि ठौर निज आयगो। 'दीन, कवि देखि बसुदेव की उताल चाल ब्रिज्जु थहरानी पौन हिये हहराय गो॥

(११)

रोवत गुविन्द सुनि जागी नँदरानी आसु जानि सुत जायो उर आनँद समायगो। सुनि सुत जनम मुदित नंदराय भये मानो महा भूखो पाय अमृत अघायगो॥ बाजे बजवाये धन संपदा लुटाई बहु देखि सब हरषे कुबेर सकुचायगो। 'दीन' कवि बरनै अधिकता तहाँ की कैसे कमला को पति जहाँ सुत रूप आयगो॥

(१२)

सुनि सुत जनम सुनारी पुरबासिन की परम हुलासी कहैं आपुस में टेरि टेरि। छीरधि-निवासी की कृपा सी दरसात कछु नंद घरैं चलि सुख हँसी करैं फेरि फेरि॥ मंगलिक साज सजि आनँद बधाई हेत सारदा रमा सी अप्सरा सी आईं घेरि घेरि। आरती उतारैं सुभ सोहरैं उचारैं मन बारि बारि डारैं मुख सुषमा को हेरि हेरि॥

(१३)

माचो है उछाह चहुँओर ब्रजमंडल में आनँद निसान धुनि लगत सोहावनी। देखिबे को सगुन सरूप परमेसुर को तीन लोक बासी ब्रज आय छाये छावनी॥ पँवरि बिराजे नंद बकसत दीनन को भूषन बसन धन मनि अति पावनी। पावत ही अश्व गज पालकी उचारैं सब, 'जै कँधैया लाल की' सुधुनि मनभावनी॥

(१४)

देखियत हरष बिबस पुर नारिनर दीन दुखदावा दान जल तें सिराय गो। माचो दधिकाँदो दुख ताहि में हेरायगो कि धूप धूम संग नभमंडल उड़ायगो॥ छीर धार संग किधौं समुद बहायगो कि जनपद भार ते पताल में समायगो। दीनदुखहर ब्रजचंद के डरन किधौं चूर ह्वै कपूर लौं समीर में बिलायगो।

(१५)

आनँद महान अवलोकि ब्रजमंडल में कवि अनुमानैं किधौं सूर जीत पायगो। बाँझ सुत जायो किधौं अंध आँखि पायो किधौं जनम को पंगुल पहार चढ़ि धायगो॥ सुरतरु छाया लही जनम दरिद्र किधौं गुङ्ग कविराज ह्वै कै राम जस गायगो। दीन दुखदान गुबिंद भे प्रगट किधौं नंद के सदन में अनंद ढेर आयगो॥

(१६)

एहो घनश्याम नित सींचि सींचि कृपा-बारि, कवित लता को सदा राखियो हरी हरी। छाया करि आतप निवारियो कलेसन को मंद धुनि करि उलहाइयो घरी घरी॥ राधेरूप बिज्जु दरसाय हनि दुःख कीट, सफल सफूल पल राखियो हरी भरी। 'दीन' कवि चातक की बिनै अनसुनी करि ए हो घनश्याम फिर सुनिहौ खरी खरी॥

(१७)

थोरे घास पानी में अघानी रहैं रैनि दिन दूध दही माखन मलाई देत खाने को। पूतन तें खेती करवाय देत अन्न वस्त्र, जाके हाड़ चाम आँत गोबर ठिकाने को॥ 'दीन' कवि मेरे जान याही बात अनुमानि मुनिन महान धर्म मान्यो गो चराने को। ऐसे उपकारी की कृतज्ञता बिसारि अब भारतनिवासी मारे फिरैं दाने दाने को॥

(१८)

सुरति समर करि प्यारी अलसात अंग बैठी निज अटा छवि छटा लगी छहरान। नखछत सहित उरोजन पै टपकत स्वेद बुंद अरु कारे केस लगे लहरान॥ सो छवि विलोकि कवि 'दीन' जोह्यौ उपमान सोचत ही उकुति अनोखी यह ठहरान। मानो लखि घटउतकच अवसान रन रोय रहे पांडव मुदित नाचि रहे कान॥

(१९)

चाँदनी

खिल रही है आज कैसी भूमितल पर चाँदनी।
खोजती फिरती है किसको आज घर घर चाँदनी॥
घनघटा घूँघट उठा मुसकाई है कुछ ऋतु शरद।
मारी मारी फिरती है इस हेतु दर दर चाँदनी॥
रात की तो बात क्या दिन में भी बनकर कुंद काँस।
छाई रहती है बराबर भूमितल पर चाँदनी॥
सेत सारी युक्त प्यारी की छटा के सामने।
जँचती है ज्यों फूल के आगे हो पीतर चाँदनी॥
स्वच्छता मेरे हृदय की देख लेगी जब कभी।
सत्य कहता हूँ कि कँप जायेगी थर थर चाँदनी॥
नाचने लगते हैं मन आनंदियों के मोद से।
मानुषी मन को बना देती है बन्दर चाँदनी॥

भाव भरती हैं अनूठे मन में कवियों के अनेक।
इनके हित हो जाती है जोगी मछंदर चाँदनी॥
वह किसी की माधुरी मुसकान की मनहर छटा।
'दीन' को सुमिरन करा देती है अकसर चाँदनी॥

(२०)

मेंहँदी

तुमने पैरों में लगाई मेंहँदी। मेरी आँखों में समाई मेंहँदी॥
खूनी होते हैं जगत के सब्ज़ रंग। दे रही है यह दोहाई मेंहँदी॥
कुल से छूटी कूट कर पीसी गई। तब तेरे पद छूने पाई मेंहँदी॥
कष्ट से मिलता है जग में इष्ट पद। बात यह सच्ची बताई मेंहँदी॥
खैर कहता है कलेजा दे के निज। मैंने है राती बनाई मेंहँदी॥
है कथन मेरा मेरे अनुराग से। ले गई है कुछ ललाई मेंहँदी॥
माई के लालों से यह लाली मिली। इससे ढाँपे है ललाई मेंहँदी॥
वस्तु मँगनी की सुरक्षित ही रहै। दिल में रखती है ललाई मेंहँदी॥
नील नभ में ज्यों छिपी ऊषा रहै। त्यों छिपाती है ललाई मेंहँदी॥
प्रात संध्या से तुम्हारे पैर पा। व्यक्त करती है ललाई मेंहँदी॥
रागमय जन अंग हैं शृङ्गार के। यह प्रगट देती दोहाई मेंहँदी॥
दिल में रखना चाहिये अनुराग को। सीख देती है सोहाई मेंहँदी॥
मेरी प्यारी के युगल चरणों के साथ। रखती है गाढ़ी सगाई मेंहँदी॥
पैर पड़ पड़ कर पकड़ लेती है हाथ। छल में बामन से सवाई मेंहँदी॥

(२१)

आँख

कहो तो आज कह दें आपकी आँखों को क्या समझे।
सिता सिंदूर मृगमद्‌युक्त अद्भुत कुछ दवा समझे॥
अगर इसको न मानो तो बता दें दूसरी उपमा।
सहित हाला हलाहल मिश्रिता सुन्दर सुधा समझे॥

न हो सन्तोष इस पर भी तो उपमा तीसरी लेलो ।
युगल पद धारिणी त्रिगुणात्मिका ऋग की ऋचा समझे ॥
दवा कैसी ? सुधा क्या है ? ऋचा की बात जाने दो ।
हँसी अनुराग युत शृङ्गार रस की भूमिका समझे ॥
न मानो भूमिका तो पाँचवीं उपमा सुनो हमसे ।
सकल जग तारने के हित त्रिवेणी की धरा समझे ॥
त्रिवेणी की धरा सिकतामयी, ये हैं रसिकतामय ।
मकरगत मन्द-मंगल-चन्द की शुभदा छटा समझे ॥
भला इन अँखड़ियों से इस छटा की तुल्यता कैसी ।
जगत को मोहनेवाली त्रिदेवों की प्रभा समझे ॥
त्रिदेवों की प्रभा भी सामने इनके नहीं जँचती ।
खरी त्रिगुणात्मिका माया की द्व्यर्थक फक्किका समझे ॥
भला इस फक्किका से और इन आँखों से क्या संगत ।
सुविद्या एक को अपरा तो दूजी को परा समझे ॥
नहीं कहते बनी उपमा भुलावे में पड़े हम भी ।
सदा ही 'दीन' हितकर राम-सीता की दया समझे ॥

(२२)

वीरों की सुमाताओं का यश जो नहीं गाता ।
वह व्यर्थ सुकवि होने का अभिमान जनाता ॥
जो वीर सुयश गाने में है ढील दिखाता ।
वह देश के वीरत्व का है मान घटाता ॥
दुनिया में सुकवि नाम सदा उसका रहैगा ।
जो काव्य में वीरों की सुभग कीर्ति कहैगा ॥ १ ॥
'वाल्मीकि' ने जब वीरचरित राम का गाया ।
सामान सहित नाम अमर अपना बनाया ॥

श्रीव्यास ने तव नाम सुकविम्रों में है पाया ।
भारत के महायुद्ध का जब गीत सुनाया ॥
कब चंद भी हिन्दी का सुकवि आदि कहाता ।
यदि बीर पिथौरा का सुयश-गान न गाता ॥ २ ॥
'होमर' जो है यूनान का कवि आदि कहाया ।
उसने भी सुयश वीरों का है जोश से गाया ॥
'फ़िरदौसी' ने भी नाम अमर अपना बनाया ।
जब फ़ारसी वीरों का सुयश गाके सुनाया ॥
सब बीर किया करते हैं सम्मान क़लम का ।
वीरों का सुयश गान है अभिमान क़लम का ॥३॥
इस वक्त हैं हिन्दी के बहुत काव्य-धुरंधर ।
आचार्य कोई इन्दु कोई कोई प्रभाकर ॥
काव्यादि कोई, कोई हैं साहित्य के सागर ।
हैं काव्य के कानन के कोई सिंह भयङ्कर ॥
मैं काव्य सुकुल कामिनी का बाल हूँ अज्ञान ।
इस हेतु मुझे भाता है माताओं का यशगान ॥४॥

(बीरमाता से)

जगन्नाथदास (रत्नाकर)

बाबू जगन्नाथदास (रत्नाकर) का जन्म भादों सुदी ५, सं० १९२३ को काशी में हुआ। ये दिल्लीवाल अग्रवाल वैश्य हैं। इनके पूर्व-पुरुष पानीपत के रहने वाले थे, और वे मुग़ल बादशाहों के यहाँ ऊँचे ऊँचे पदों पर काम करते थे। इनके परदादा लाला तुलाराम एक बार जहाँदारशाह के साथ काशी आये और तबसे वे

यहीं रहने लगे थे।

बाबू जगन्नाथदास के पिता का नाम बाबू पुरुषोत्तमदास था। वे फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता थे। फ़ारसी तथा हिन्दी-कविता से उनको बड़ा प्रेम था। उन्हीं की देखादेखी रत्नाकरजी को कविता की ओर रुचि उत्पन्न हुई। इनके पिता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मित्रों में से थे। इससे रत्नाकरजी को भी भारतेन्दु की सत्संगति का अवसर मिलता था। एक बार इनकी किसी रचना से प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्र ने कहा था कि यह लड़का कभी अच्छा कवि होगा। सो सत्य हुआ।

इनकी शिक्षा काशी ही में हुई। सन् १८९१ में इन्होंने फ़ारसी लेकर बी० ए० की डिग्री प्राप्त की और एम० ए० में भी फ़ारसी पढ़ी। पर किसी कारण से परीक्षा न दे सके। सन् १९०० के लगभग इन्होंने रियासत आवागढ़ में नौकरी कर ली। वहाँ का जल-वायु इनके स्वास्थ्य के अनुकूल न होने के कारण, वहाँ दो वर्ष योग्यतापूर्वक काम करने के बाद, नौकरी छोड़कर ये काशी चले आये। कुछ दिनों तक घर पर बैठे रहने के बाद सन् १९०२ में ये स्वर्गीय अयोध्यानरेश महामहोपाध्याय महाराजा सर प्रतापनारायणसिंह बहादुर, के० सी० आई० ई०, के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुये, और उनके मृत्युकाल (नवम्बर, १९०६) तक उसी पद पर रहे। उनके बाद इनकी योग्यता और कार्यपटुता से प्रसन्न होकर अयोध्या की महारानी साहबा ने इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया। आज तक ये उसी पद पर सुशोभित हैं।

बी० ए० में इनकी दूसरी भाषा फ़ारसी थी। इससे पहले पहल ये उर्दू में शायरी करते रहे। धीरे धीरे इनकी रुचि हिन्दी की ओर बढ़ी, और अब ये हिन्दी-साहित्य के अच्छे ज्ञाता और ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनके कवित्तों में देव, मतिराम और पद्माकर के कवित्तों का सा आनन्द मिलता है। ये बड़े हँसमुख और ज़िन्दादिल आदमी हैं। इनके साथ बातचीत करने में साहित्यिक आनन्द ख़ूब मिलता है। स्वभाव बड़ा मधुर, स्मरण

शक्ति बड़ी तीव्र और कविता पढ़ने का ढंग बड़ा मनोहर है। इनकी कविता सरस और भावपूर्ण होती है। अबतक इन्होंने हिन्डोला, समालोचनादर्श, साहित्य-रत्नाकर, घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर और हरिश्चन्द्र नामक काव्य-ग्रन्थों की रचना की है। सं० १९८३ में बिहारी-सतसई पर इन्होंने एक बड़ी ललित टीका लिखी है। गंगावतरण, कलकाशी, अष्टक रत्नाकर और ऊधव शतक ये चार काव्य-ग्रन्थ इन्होंने और भी लिख रक्खे हैं, जो शीघ्रही प्रकाशित होंगे। इनके सिवाय कुछ फुटकर कविताएँ भी हैं, जो प्रायः प्रकाशित हैं। चंद्रशेखर के हमीर हठ, कृपाराम की हितकारिणी और दूलह कवि के कंठाभरण का भी सम्पादन इन्होंने किया है। कई वर्षों तक ये कई सहयोगियों के साथ "साहित्यसुधानिधि" नाम का एक मासिक पत्र भी निकालते रहे। उसमें इनके कुछ काव्य और दोहा-नियम प्रकाशित हुये थे, जिन्हें डाक्टर ग्रियर्सन ने अपनी "लाल-चन्द्रिका" में उद्धृत किया था।

यहाँ रत्नाकरजी की कुछ कविताएँ दी जाती हैं:—

(१)

श्मशान का वर्णन

(हरिश्चन्द्र से)

कीन्हें कम्बल बसन तथा लीन्हें लाठी कर।
सत्यव्रती हरिचन्द्र हुते टहरत मरघट पर॥
कहत पुकारि पुकारि "बिना कर कफन चुकाये।
करहि क्रिया जनि कोइ देत हम सबहिं जताये॥"
कहुँ सुलगति कोउ चिता कहूँ कोउ जाति बुझाई।
एक लगाई जाति एक की राख बहाई॥
बिबिध रंग की उठति ज्वाल दुर्गन्धनि महकति।
कहुँ चरबी सो चटचटाति कहुँ दहदह दहकति॥

कहुँ फूकन हित धर्‍यो मृतक तुरतहि तहँ आयो ।
पर्‍यो अंग अधजर्‍यो कहूँ कोऊ करखायो ॥
कहूँ स्वान इक अस्थि खंड लै चाटि चिचोरत ।
कहुँ कारौ महि काक ठोर सों ठोकि टटोरत ॥
कहुँ श्रृगाल कोउ मृतक अंग पर ताक लगावत ।
कहुँ कोउ शव पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत ॥
जहँ तहँ मज्जा मांस रुधिर लखि परत बगारे ।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे ॥
हरहरात इक दिस पीपल को पेड़ पुरातन ।
लटकत जामें घंट घने माटी के बासन ॥
वर्षा ऋतु के काज औरहू लगत भयानक ।
सरिता बहति सवेग करारे गिरत अचानक ॥
ररत कहूँ मंडूक कहूँ झिल्ली झनकारें ।
काक मंडली कहूँ अमंगल मंत्र उचारें ॥
भई आनि तब साँझ घटा आई घिरि कारी ।
सनै सनै सब ओर लगी बाढ़न अँधियारी ॥
भये इकट्ठा आनि तहाँ डाकिन पिसाचगन ।
कूदत करत कलोल किलकि दौड़त तोड़त तन ॥
आकृति अति बिकराल धरे कुइला से कारे ।
बक्र बदन लघु लाल नयन जुत जीभ निकारे ॥
कोऊ कड़ाकड़ हाड़ चाबि नाचत दै ताली ।
कोऊ पीवत रुधिर खोपरी की करि प्याली ॥
कोउ अँतड़ी की पहिरि माल इतराइ दिखावत ।
कोउ चरबी लै चोप सहित निज अंगनि लावत ॥
कोउ मुण्डनि लै मानि मोद कन्दुक लौं डारत ।
कोउ रुण्डनि पै बैठि करेजो फारि निकारत ॥

(२)

गजेन्द्र-मोक्ष

(१)

रमत रमा के संग आनँद-उमंग भरे,
अंग परे थहरि मतंग अवराधे पैं ।
कहैं रतनाकर वदन दुति औरै भई,
बूँदैं छईं छलकि दृगनि नेह नाधे पैं ॥
धाए उठि, बार न उबारन मैं लाई नैंकु,
चंचला हूँ चकित रही ह्वै बेग साधे पैं ।
आवत बितुंड की पुकार मग आधै मिली,
लौटत मिल्यौ त्यौं पच्छिराज मग आधे पैं ॥

(२)

संगवारे महत मतंगनि के संग सबै
निज-निज प्रान लै पराने पुसकर तैं ।
कहैं "रतनाकर" बिचारौ, बल-हार्‌यौ तब
टेरि हरि पार्‌यौ कल कंज गहि सर तैं ॥
पहुँचन पायो पुनि बारि लौं न जौलौं वह,
तौलौं लियौ लपकि उबारि हरवर तैं ।
एक तैं ललायौ, चक्र एक तैं चलायौ,
गह्यौ एक तैं भुसुंड, पुंडरीक एक कर तैं ॥

(३)

सुंड गहि आतुर उबारि धरनी पै धारि,
बिबस बिसारि काज सुर के समाज कौ ।
कहैं "रतनाकर" निहारि करुना की कोर,
बचन उचारि, जो हरैया दुख साज कौ ॥

अंबु पूरि दृगनि बिलंब आपनोइँ लेखि,
देखि देखि दीन्ह छत दंतनि दराज कौ।
पीतपट लै लैकै अँगौछत सरीर, कर
कंजनि सौं पोंछत भुसुंड गजराज कौ॥

(३)

श्रीगङ्गाष्टक

बोधि बुधि बिधि के कमंडल उठावत हीं,
धाक सुरधुनि की धँसी यौं घटघट मैं।
कहै "रतनाकर" सुरासुर ससंक सबै,
बिबस बिलोकत लिखे से चिलपट मैं॥
लोकपाल दौरन दसौ दिसि हहरि लागे,
हरि लागे हेरन सुपात बर बट मैं।
खसन गिरीस लागे लसन नदीस लागे,
ईस लागे कसन फनीस कटि तट मैं॥१॥
उड़त फुहारनि कौ तारनप्रभाव पेखि,
जम हिय हारे मनौ मारे करकनि के।
चित्र से चकित चित्रगुप्त चपि चाहि रहे,
बेधे जात मंडल अखंड अरकनि के॥
गङ्ग-छींट छटकि परै न कहूँ आनि इते,
दूत इमि तानत बितान तरकनि के।
भागे जित तित तैं अभागे भीतिपागे सबै,
लागे दौरि दौरि देन द्वार नरकनि के॥२॥
जाइ जमराज सौं पुकारे जमदूत सबै,
साहिबी तिहारी अब लाजतै रहति है।
पापिन की मंडली उमंडि मादमंडित,
अखंडल के मंडल लौं राजतै रहति है॥

सापी परतापी औ सुरापी हूँ न आवैं हाथ,
तिनहूँ पैं छेम छत्र छाजतै रहति है ।
दङ्गा करैं हमसौं हमेस हठि भङ्गीगन,
गङ्गा संभुसीस चढ़ी गाजतै रहति है ॥३॥
विधि वरदायक की सुकृत-समृद्धि-बृद्धि,
संभु सुरनायक की सिद्धि की सुनाका है ।
कहै "रतनाकर" त्रिलोक सोक नासन कौं,
अतुल त्रिविक्रम के विक्रम की साका है ॥
जमभय भारी तमतोम निरवारन कौं,
गङ्ग यह रावरी तरङ्ग तुङ्ग राका है ।
सगर-कुमारनि के तारन की श्रेनी सुभ,
भूपति भगीरथ के पुन्य की पताका है ॥४॥
लोटि लोटि लेत सुख कलित कछारनि कौ,
सुरतरु डारनि कौ गौरव गहै नहीं ।
कहै "रतनाकर" त्यौं कांकर औ सौंक चुनि,
चारु मुकताफल पैं नैंकु उमहै नहीं ॥
हेमहंस होन की न राखत हियै मैं हौंस,
नन्दन के कोकिल कौं कलित कहै नहीं ।
गङ्गजल तोषि दोषि सुकृत सुधासन कौ,
काक पाकसासन कौ आसन चहै नहीं ॥५॥
कहत विधाता सौं बिलखि जमराज भयौ,
अखिल अकाज है हमारी राजधानी कौ ।
सुरसरि दीनी ढारि भूप कै भुलावैं माहिँ,
कीन्यौ नाहिं नैंकु हूँ विचार हित हानी कौ ॥
निज मरजाद पै कछू तौ ध्यान दीजै नाथ,
कीजै इमि प्रगट प्रभाव बर बानी कौ ।

पावैं नर नारको न रंचक उचारि क्यौं हूँ,
गङ्गा कौ गकार औ चकार चक्रपानी कौ ॥६॥

जदपि हमारे पापपुञ्ज अतिघाती तऊ,
जनम जनम के सँघाती निरधारै तू ।
कहै "रतनाकर" ममात यह मात गङ्ग,
तातैं तिन्हैं नासन के ढङ्ग ना बिचारै तू ॥
काक करै कोकिल बलाक कलहंस करै,
आक ढाक जैसै सुरतरु कै सँवारै तू ।
त्यौंहीं पलटाइ काय तिनकौं लगाइ छाप,
पुन्यनि के कलित कलाप करि डारै तू ॥७॥

न्हाइ गङ्गधार पाइ आनँद अपार जब,
करत बिचार महा महिमा बखानी कौं ।
कहै "रतनाकर" उठति अवसेरि यहै,
फेरि फेरि पेयै क्यौं जनमि इहिं पानी कौं ॥
पञ्च की कहा है करैं पातक प्रपञ्च सबै,
रञ्चहूँ डरैं न जमजातना कहानी कौं ॥
सुरसरिपंथओर पारत हीं तौहूँ पाय,
आवति चलीयै हाय मुक्ति अगवानी कौं ॥८॥

राय देवीप्रसाद (पूर्ण)

राय देवीप्रसाद "पूर्ण", बी० ए० बी० एल०, का जन्म मार्गशीर्ष कृष्ण १३, सं० १९२५ में जबलपुर में हुआ। इनके पिता राय वंशीधर जबलपुर में वकालत करते थे।

राय देवीप्रसाद "पूर्ण" वर्तमान हिन्दी-कवियों में बहुत ऊँचा स्थान रखते थे। हिन्दी-कविता के लिये बड़े ही दुर्भाग्य की

बात है कि पूर्ण के द्वारा वह पूर्ण न होने पाई। स्वर्गीय पूर्णजी की जीवन-कथा उनके मित्र पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी की ज़बानी सुनिये :—

"बड़े दुख की बात है, बड़े ही परिताप का विषय है, बड़ी ही हृदयदाहक घटना है—राय देवीप्रसाद अब इस लोक में नहीं। गत ३० जून १९१५ को सबेरे १० बजे वे उस "धाम" के पथिक हो गये, जहाँ से फिर कोई लौटकर नहीं आता—"यद्गत्वा न निवर्त्तते"। ऐसे देशभक्त, ऐसे उत्तम वक्ता, ऐसे उत्कृष्ट कवि, ऐसे हार्दिक हिन्दी-प्रेमी, ऐसे धुरीण धर्मिष्ठ की निधनवार्ता अचानक सुननी पड़ेगी, इसका स्वप्न में भी ख़याल न था। सुनकर सिर पर बज्रपात सा हुआ। कलेजा काँप उठा। दूर होने के कारण अपने इस माननीय मित्र के अन्तिम दर्शनों से भी यह जन बञ्चित रहा। शोक! जिसकी हास्य-रसपूर्ण, पर तर्कसङ्गत और युक्तियुक्त वक्तृता सुनकर, कुछ समय पूर्व श्रोता लोग लखनऊ में मुग्ध हो गये थे, वह विद्वान्, वह नामी वकील, वह धर्मप्राण पुरुष, केवल ४५ वर्ष की उम्र में, अपने प्रेमियों को, अपने नगर के निवासियों को, अपने मित्रों और कुटुम्बियों को रुलाकर चल दिया। कानपूर में आपकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। कोई बड़ा काम ऐसा न होता था, जिसमें आप शरीक न होते हों। कोई कैसा ही क्यों न हो, यथाशक्ति आप उसकी अवश्य ही इच्छा-पूर्ति करते थे। बस, आपके यहाँ तक उसे पहुँच भर जाना चाहिये। नवयुवकों तक की सभाओं में आप प्रसन्नता-पूर्वक जाते थे, व्याख्यान देते थे और प्रार्थना करने पर सभापति का पद भी ग्रहण कर लेते थे। धर्म आपकी बड़ी प्यारी वस्तु थी। ब्रह्मावर्तसनातन-धर्म-मंडल की स्थापना आपही ने की थी। सङ्गीत में भी आप बहुत कुशल थे। कविता आप की बहुत ही सरल और स्वाभाविक होती थी। बहुत बरसों तक आपके स्थान पर हर रविवार को एक कवि-मण्डली का अधिवेशन होता था और निश्चित समस्याओं पर सुन्दर सुन्दर पूर्तियाँ बनाई जाती थीं। आप बहुत शीघ्र कविता करते

थे। आप की कई कवितायें सरस्वती में भी निकल चुकी हैं। "देशहित के कुण्डल"—पाठकों को अब तक न भूले होंगे। राय साहब थे तो कायस्थ, पर आचरण और विद्वत्ता में आप बड़े बड़े विद्वान् ब्राह्मणों से भी बढ़े हुए थे। वेदान्त आपका प्यारा विषय था। कुछ समय पूर्व आप पञ्च-दशी का परिशीलन करते थे।

कानपुर के जिले में एक मौजा भदरस है। राय साहब वहीं के रहने वाले थे। शिक्षा इन्होंने जबलपुर में पाई थी। वहीं ये बी० ए० और वहीं बी० एल० हुये। हाईकोर्ट वकील की परीक्षा पास करके इन्होंने कानपुर में वकालत शुरू की। थोड़े ही समय में इनकी गिनती कानपुर के नामी वकीलों में हो गई। ये अधिकतर दीवानी ही के बड़े बड़े मुक़दमे लेते थे। इनका दीवानी क़ानून-विषयक ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था। बड़े बड़े पेचीदा मुक़दमे बहुधा इन्हीं के पास आते थे। इन पर नगर-निवासियों का बड़ा प्रेम था। इनकी निधन-वार्ता फैलते ही शहर के बाज़ार बन्द हो गये। कचहरी भी बन्द कर दी गई।

राय साहब ने अनेक काम अपने ऊपर ले रक्खे थे। म्यूनिसिपल बोर्ड के मेम्बर थे; कांग्रेस कमेटी और पीपुल्स एसोसियेशन के सभापति थे। १९१२ में कानपुर में जो प्रान्तिक कान्फ़रेन्स हुई थी, उसकी अभ्यर्थना-समिति के ये ही सभापति थे। गत एप्रिल के आरम्भ में हिन्दी का जो प्रान्तिक सम्मेलन गोरखपुर में हुआ था, उसके भी सभापति ये ही हुये थे। लन्दन की रायल एशियाटिक सोसायटी ने इनको अपना मेम्बर बनाया था।

राय साहब की लिखी हुई कितनी ही पुस्तकें हैं। चन्द्रकला-भानु-कुमार नाटक और धाराधर-धावन की आलोचनायें, बहुत पहले सरस्वती में निकल चुकी हैं। पहले ये रसिक-वाटिका नामक कविता-पुस्तक हर महीने निकालते थे। पीछे से धर्म-कुसुमाकर नामक एक मासिक-पत्र निकालने लगे थे। वकालत सँभाल कर और

सर्वजनोपयोगी और भी कितने ही काम करके ये साहित्य-सेवा के लिये भी समय निकाल लेते थे। थियासफिस्ट होकर भी ये अच्छे वेदान्ती थे। अपने धर्म में इनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। और कामों में चाहे त्रुटि हो जाय; पर धार्मिक कामों में ये कभी त्रुटि न होने देते थे। हर साल होली पर, ये अपने गाँव में बड़े ठाट से धनुषयज्ञ करते थे। कई साल से ये सनातन-धर्म-सम्बन्धी वार्षिक उत्सव भी करने लगे थे। इन उत्सवों में दूर दूर से बड़े बड़े वक्ता आते थे।

ऐसे बहुगुण सम्पन्न, परोपकार-रत, देशहितैषी पुरुष के न रहने से कानपुर ही की नहीं, सारे प्रान्त की और देश की भी बड़ी हानि हुई। उनके कितने ही मित्र तो अनाथ-से हो गये। जो स्वयं ही शोक से विह्वल हैं, वे राय साहब के कुटुम्बियों को किस तरह धर्य्य दें और क्या कहकर समझावें। ईश्वर उन्हें इस दुसह दुख के सहने की शक्ति दे।"

यहाँ "पूर्ण" जी की कविताओं के नमूने उद्धृत किये जाते हैं:—

(१)

वर्षा का आगमन

सुखद सीतल सुचि सुगन्धित पवन लागी बहन।
सलिल बरसन लगो बसुधा लगी सुखमा लहन॥
लहलही लहरान लागीं सुमन बेली मृदुल।
हरित कुसुमित लगे झूमन बृच्छ मंजुल बिपुल॥ १॥
हरित मनि के रङ्ग लागी भूमि मन को हरन।
लसति इन्द्रबधून अवली छटा मानिक बरन॥
बिमल बगुलन पाँति मनहुँ बिसाल मुक्तावली।
चन्द्रहास समान चमकति चञ्चला त्यों भली॥ २॥
नील नीरद सुभग सुरधनु बलित सोभा धाम।
लसत मनु बनमाल धारे ललित श्री घनस्याम॥

कूप कुण्ड गँभीर सरवर नीर लाग्यो भरन ।
नदी नद उफनान लागे लगे झरना झरन ॥ ३ ॥
रटन दादुर विविध लागे रुचन चातक बचन ।
कूक छावत मुदित कानन लगे केकी नचन ॥
मेघ गर्जत मनहुँ पावस भूप को दल सकल ।
विजय दुन्दुभि हनत जग में छीनि ग्रीसम अमल ॥ ४ ॥

(२)

भरत-वाक्य

लक्ष्मी दीजै लोक में मान दीजै, विद्या दीजै सभ्य सन्तान दीजै ।
हे हे स्वामी ! प्रार्थना कान कीजै, कीजै कीजै देश-कल्याण कीजै ॥१॥

सुमति सुखद दीजै फूट को लोग त्यागैं ।
कुमति हरन कीजै द्वेष के भाव भागैं ॥
तजि कुसमय निद्रा चित्त सों चित्त जागैं ।
विषम कुपथ त्यागैं नीति के पंथ लागैं ॥ २ ॥
तन्द्रा त्यागैं लहि कुशलता होहिं व्यापार-नेमी ।
सीखैं नीकी नव नव कला होहिं उद्योग-प्रेमी ॥
पूरे रूरे नियम विधि सों स्वस्थता के निबाहैं ।
उत्कण्ठा सों दिवस निसिहूँ देश की वृद्धि चाहैं ॥ ३ ॥

पावैं पूरी प्रतिष्ठा कबिबर जग के शुद्ध साहित्य-ज्ञानी ।
होवैं आसीन ऊँचे सुजन विदित जे देश-सेवाभिमानी ॥
पीड़ा दुर्भिक्षवारी जुगजुग कबहूँ प्रान्त कोऊ न पावैं,
दीर्घायू लोग होवैं तिन ढिग कबहूँ रोग कोऊ न आवै ॥ ४ ॥

सत्सङ्ग सन्त-सुर-पूजन धेनु-प्रेम;
श्रीराम-कृष्ण-चरितामृत-पान-नेम ।
सौजन्य भाव गुरुसेवन आदि प्यारे,
सम्पूर्ण शील शुभ पावहिं देशवारे ॥ ५ ॥

अन्याय को अङ्क कहूँ रहैना, दुर्नीति की शङ्क कहूँ रहैना।
होवै सदा मोद विनोदकारी, राजा प्रजा में अनुराग भारी ॥६॥
समस्त वर्णाश्रम धर्म मानै, सदाहि कर्तव्य प्रधान जानैं।
जती तपस्वी बुधवीर होवैं, वली प्रतापी रणधीर होवैं ॥७॥
लक्ष्मी दीजै लोक में मान दीजै, विद्या दीजै सभ्य सन्तान दीज।
हे हे स्वामी प्रार्थना कान कीजै, कीजै कीजै देश-कल्याण कीजै ॥८॥

(३)

मृत्युञ्जय

प्रतिनिधे खल काल कराल के!
कुटिल क्रूर भयानक पातकी ॥
अति विलक्षण है तव दुष्क्रिया।
अशुच मृत्यु अरे अधमाधम ॥ १ ॥
करत सैर हुतें कल बाग की।
तुरँग बाग गहे कर रेशमी ॥
सुनि परे तिनकी अब बारता।
चल बसे तजि के जग बाग सो ॥ २ ॥
रतन मन्दिर मञ्जु अमन्द में।
रमत जौन निरन्तर ही रहे ॥
दिवस अन्तर में सोइ सोवहीं।
अब भयङ्कर घोर मसान में ॥ ३ ॥
मखमली मृदु मञ्जुल तूल की।
सुमन रञ्जित सेज बिहाय के ॥
मृदुल अङ्गन के लखिये परे।
कठिन काठ चिता परयंक पै ॥ ४ ॥
लखत रंग हुते गनिकान के।
निसि निरन्तर जो जन जागि कै ॥

उन लई निँदिया इमि काल की।
मुँदि गईं अँखिया सब काल को ॥५॥
गति सुधारन की करि धारना।
उचित है चित धीरज धारियो ॥
झटित हो अथवा कछु काल में।
अवशि जीतहिंगे हम काल को ॥६॥
सकल पापन सों बचि कै सदा।
शुभ सुकर्म करौ बिन वासना ॥
परम सार रहै नित ध्यान में।
सुखद पन्थ यही बर ज्ञान को ॥७॥
जगत हैं मन की सब कल्पना।
दृढ़ जबै यह निश्चय होत है ॥
जगत भासत पूरन ब्रह्म ही।
बस वही परिपूरन ज्ञान है ॥ ८ ॥
पर दशा वह पूरन ज्ञान की।
स्थिर सदा रस एक रहै नहीं ॥
न जबलौं मन को बस कीजिये।
तजि सबै जड़ जङ्गम वासना ॥ ९ ॥
सुहृद सङ्ग सहोदर सुन्दरी।
सुखद सन्तति धाम बसुन्धरा ॥
सुजस सम्पति की मनकामना।
सबन को बस बन्धन मानिये ॥१०॥
दनुज बंस भुजङ्गम देवता।
मनुज कुन्जर भृङ्ग विहङ्गम ॥
बिपिन तुङ्ग तड़ाग तरङ्गिनी।
जलद वृन्द दिवाकर चन्द्रमा ॥११॥

गगन मध्य धरातल मध्य में।
अरु रसातल में जितनो जितै ॥
सकल सो जड़ जङ्गम जानिये।
असत पञ्च प्रपञ्च विरञ्चि को ॥१२॥
यदि लखात असार जहान है।
कुढ़त जो जग बन्धन ते हियो ॥
उदित जो उर मुक्ति सु कामना।
करहु तौ तुम साधन ज्ञान को ॥१३॥
तिमिर नाश प्रकाश बिना नहीं।
घन विलात न वात विना यथा ॥
न बरखा बिन जात निदाघ ज्यों।
मिटत काल नहीं बिन ज्ञान के ॥१४॥
बिलग बारिधि ते न तरङ्ग है।
पृथकता बरु मन्द बिचारहीं ॥
लहर अम्बुधि दोनहुँ अम्बु हैं।
जगत ब्रह्ममयो तिमि जानिये ॥१५॥
कनक के बरु कङ्कन किङ्किनो।
अमित आकृति के रचिये तऊ ॥
कनक ते नहिं अन्य कछू तथा।
सकल ब्रह्ममयी जग जानिये ॥१६॥
पवन भासत नाहिं बिना चले।
अरु चले वह भासन लागई ॥
अचल चञ्चल हैं इकही हवा।
पृथक मूढ़ भलो समुझो करै ॥१७॥
यहि प्रकार अचञ्चल ब्रह्म में।
स्फुरण चञ्चलता सम जानिये ॥

जगत भासन लागत है सही।
पृथक तौन नहीं पर ब्रह्म सों ॥१८॥
भवन में मठ में घट में यथा।
गगन देखि अनेक परै तऊ ॥
विमल बुद्धिन को नभ एक है।
सबन में परमातम है तथा ॥१९॥

(४)

धाराधर-धावन

मूल

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य।
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशन्तं नगेन्द्रम् ॥

अर्थ

कनक कमल उपजानवारो मानस को जल पीजौ।
सलिल पियत त्यौं ऐरावत को मुख अँगौछि हित कीजौ॥
कलपलतादल वायुबेग सों पट समान फहरैयो।
यहि बिधि भोग-विलास विविधि करि परवत पै सुख पैयो॥

मूल

तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
नत्वा दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारीन्।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥

अर्थ

नगपति अंक लसै नागरि सी अलका नगरि सुहानी।
सुरसरिसारी रही सरकि सित तू लेहै पहिचानी॥

पावस में अभिराम कामचर ! धाम तुङ्ग अति वाके ।
धारत जलधर जाल बाल ज्यों बाल गुथे मुकना के ॥

मूल

नत्वात्मानं बहु विगुणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मागमः कातरत्वम् ।
कस्यैकान्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

अर्थ

आशा ही के सहारे अतुलित दुख में मैं धरूँ धीर जैसे ।
तू हू हे भागवन्ती दुसह विरह में राखु री बोध तैसे ॥
ना कोऊ नित्य भोगै अति सुख, अरु ना नित्य ही दुःख भारी ।
ऊँची नीची अवस्था लखियत जग में चाल ज्यों चक्रवारी ॥

(५)

गंगा जमुनी की कोऊ सुखमा बतावै कोऊ संगति सतोगुन रजोगुन अमन्द की । कोऊ धूप छाँह की बतावत छटा है कोऊ लाज पै चढ़ाई कुसुमायुध सुछन्द की ॥ सोभा सिन्धु नवला की बैस की बिलोकि संधि वारता सुहात मोहिं पूरन अनन्द की । रूप देस एकै संग राजै उजियारी चारु जोवन के सूरज की शैशव के चन्द की ॥

(६)

अदभुत डोरी प्रेम की जामें बाँधे दोय ।
ज्यों ज्यों दूर सिधारिये त्यों त्यों लाँबी होय ॥
त्यों त्यों लाँबी होय, अधिकतर राखै कसिकै ।
नेह न्यून है सकत नेक नहिं दूरहु बसि कै ॥
विधिना देत बिछोह कहूँ तासों कर जोरी ।
रखियो छेम समेत प्रेम की अद्भुत डोरी ॥

(७)

प्रेम सुमग में परि गयो विरह सिन्धु गम्भीर ।
नाव दया है रावरी पहुँचावन को तीर ॥
पहुँचावन को तीर तुमहि समरथ सुखरासी ।
मैं अबला बिन बित्त बिना दामन की दासी ॥
मेरो है न अधार दूसरो तुम बिन जग में ।
दीजौ तातें साथ प्रानपति प्रेम सुमग में ॥

(८)

धन्य जगवन्दन भैभञ्जन अनन्दकन्द, सङ्कट निकन्दन, अनन्तरूप धारी धन्य ! धाम करुणा के प्रभुता के महिमा के महासिन्धु सुखमा के श्रीरमा के चितहारी धन्य ! शेष शिव शारद सनातन शुक्रादि सेव्य संत सुर सुखद सहाय असुरारी धन्य ! आदि अज अजर अगोचर अनादि एक अमित अनेक ब्रह्म पूरन मुरारी धन्य !

(९)

कोल्हू को कठिन भार काठ औ कवार तापै कांधे प संभार धायो तिन भुस खाय खाय । सूधो चलतो तौ होतीं मञ्जिलें विपुल पार नन्दीपुर जाय हरखातो सुख पाय पाय ॥ होनहार नाहीं इन तिलन में तेल नेक पूरन सचेत होहु चित हित लाय । अजहूँ चखन खोलि सोच तौ अनारी भला केती गल काटी बैल रातौ दिन धाय धाय ॥

(१०)

माता के समान पर पतनी बिचारी नहीं, रहे सदा परधन लेनही के ध्यानन में । गुरुजन पूजा नहीं कीन्ही सुचि भावन सी गीधे रहे नानाविधि विषय विधानन में ॥ आयुस गँवाई सबै स्वारथ सँवारन में खोज्यो परमारथ न वेदन पुरानन में । जिनसों बनी न कछु करत मकानन में तिनसों बनैगी करतूत कौन कानन में ॥

(११)

रन सप्रेम जो न लेत मुख रामनाम, टीका अभिराम है निकाम तासु आनन में। उर में नहीं जो हरिमूरति बिराजी मंजु कौन महिमा है कंठमालन के दानन में ॥ आसन को नेम बिन बासना नमाये मिथ्या, बिन श्रुति ज्ञान होत मुद्रा बृथा कानन में। चहिये सुप्रीति धर्म कर्म के विधानन में रहिये मकानन में चाहे घोर कानन में ॥

(१२)

तुम्हारे अद्भुत चरित मुरारि।
कबहूँ देत बिपुल सुख जग में कबहुँ देत दुख झारि ॥१॥
कहुँ रचि देत मरुस्थल रूखो कहुँ पूरन जलरास।
कहुँ ऊसर कहुँ कुञ्ज विपिन कहुँ कहुँ तम कहूँ प्रकास ॥२॥

(१३)

बिरहा

अच्छे अच्छे फुलवा बीन री मलिनियाँ गूँधि लाव नीको नीका हार।
फुलन को हरवा गोरी गरे डरिहैं सेजिया माँ होय रे बहार ॥
हरि भजना, करु गौने कै साज।
चैत मास की सीतल चाँदनी रसे रसे डोलत बयार।
गोरिया डोलावे बीजना रे पिय के गरे बाहीं डार ॥
हरि भजना, पिय के गरे बाहीं डार ॥
बागन माँ कचनरवा फूले बन टेसुआ रहे छाय।
सेजिया पै फूल झरत रे जबही हँसि हँसि गोरी बतराय।
हरि भजना, हँसि हँसि गोरी बतराय ॥
हरबर साइति सोधि दे बह्मनवा भरनी दिहिसु बरकाय।
पाछे रे जोगिनिआँ सामने चँदरमा गोरिया क लावहुँ लेवाय ॥
हरि भजना, गोरिया क लावहुँ लेवाय ॥

कोउ रे पहिने मोतियन माला कोउ रे नौनगा हार।
गोरिया सलोनी मैं करौं रे अपने गरे का हार॥
हरि भजना, अपने गरे का हार॥
आमन कूकें कोइलिया रे मोरवा करत बन सोर।
सेजिया बोले गोरिया रे सुनि हुलसे जिय मोर॥
हरि भजना, सुनि हुलसे जिय मोर॥
काहे क बिसाहौं रँग पिचकरिया काहे धरौं अबिरा मँगाय।
होरी के दिनन माँ गोरी के तन माँ रँग रस दुगुन दिखाय॥
हरि भजना, रँग रस दुगुन दिखाय।

(१४)

पुर्जे किसी मशीन के हों कहने को साठ।
बिगड़े उनमें एक तो हों सब बारह बाठ॥
हों सब बारह बाठ बंद हो चलना कल का।
छोटा हो या बड़ा किसी को कहो न हलका॥
है यह देश मशीन लोग सब दर्जे दर्जे।
चलें मेल के साथ उड़ें क्यों पुर्जे पुर्जे॥

(१५)

चीनी ऊपर चमचमी भीतर अति अपवित्र।
करते हो व्यवहार तुम है यह बात विचित्र॥
है यह बात विचित्र अरे निज धर्म बचाओ।
चौपायों का रुधिर अस्थि अब अधिक न खाओ॥
है यह पक्की बात बड़ों की छानी बीनी।
करो भूल स्वीकार करो मत नुक्ताचीनी॥

(१६)

भरतखण्ड का हाल जरा देखो है कैसा।
आलस का जंजाल ज़रा देखो है कैसा॥

जरा फूट की दशा खोल कर आँखें देखो।
खुदग़रज़ी का नशा खोल कर आँखें देखो॥
है शेखी दौलत की कहीं, बल का कहीं गुमान है।
है ख़ानदान का मद कहीं, कहीं नाम का ध्यान है॥

(१७)

फिरते हैं अशराफ़ गली में मारे-मारे।
कहीं अहले-औसाफ़ हुए कँगले बेचारे॥
थे अमीर, पर आज बदन पर नहीं लँगोटी।
मिडिल कर लिया पास, नहीं पर मिलती रोटी॥
जब सनअ़त हिर्फ़त खोगई, रोज़गार ग़ायब हुआ;
ख़ुद कहो तुम्हीं इन्साफ़ से, यह न होय तो होय क्या?॥

(१८)

चींटी, मक्खी शहद की, सभी खोजकर अन्न।
करते हैं लघु जन्तु तक, निज गृह को संपन्न॥
निज गृह को सम्पन्न करौ स्वच्छंद मनुष्यो!
तजो तजो आलस्य अरे मतिमंद मनुष्यो!
चेत न अब तक हुआ मुसीबत इतनी चक्खी;
भारत की सन्तान! बने हो चींटी, मक्खी!

(१९)

बल ना करत काठ दल है क़तार सारी,
गिनती गिनन ही को साथी ये घनेरे हैं।
देखिके चढ़ाई आगे पीछे को करत खींच,
जानि के उतार वृथा ठेलत करेरे हैं॥
इंजन सबल बीर धूम सौं कहत बात,
एक तौ विघन मग माहिं बहुतेरे हैं।

तोप ये अलाल विन बूझ बिन सूझवारे,
डब्बे मुरदार यार पीछे परे मेरे हैं ॥

(२०)

खेती है इस देश में, सब सम्पति की मूल।
कोहनूर इस कोश में, हैं कपास के फूल ॥

(२१)

खोया सब, हाँ रही बुद्धि इतनी अलबत्ता।
दे कर चाँदी खरी मोल लेते हैं लत्ता ॥

(२२)

वो तवाँगरी, वो बहादुरी, वो दिमागो चेहरे की रोशनी।
वो गऊ के थन का ही माल था।
थी जो उपनिषद् की फिलासफ़ी, वो प्रभाव की भरी शायरी।
उसी दूध का वो उबाल था ॥

(२३)

कहाँ गईं, कान्ह तुम्हारी गैयाँ।
कहाँ गईं जमुना की कूलैं कुञ्जन की घमछैयाँ।
कहाँ गये पर्वत माखन के दूध की ताल तलैयाँ ॥

कन्हैयालाल पोद्दार

सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार का जन्म सं० १९२८ में, मथुरा में हुआ। ये रामगढ़ (सीकर-जयपुर) निवासी मारवाड़ी-समाज के सुप्रसिद्ध सेठ गुरुसहायमलजी के प्रपौत्र और मथुरा के प्रख्यात दानवीर सेठ जयनारायणजी के पुत्र हैं।

सेठ जयनारायणजी अंग्रेज़ी शिक्षा को नास्तिक-भावोत्पादक समझते थे और उसके कट्टर विरोधी थे। इसी से इन्हें अंग्रेजी शिक्षा न दिलाकर धार्मिक और व्यापारिक शिक्षा दिलाई गई। ये बारह वर्ष के थे, तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। इससे बालकपन में ही गृहस्थी का समस्त भार इन पर आ पड़ा था। पहले इनकी रुचि हिन्दी-कविता की ओर विशेष रूप से थी। पर पीछे से संस्कृत की ओर इनका अनुराग बढ़ता गया। निरन्तर श्रीमद्भागवत, संस्कृत के काव्यग्रन्थ और तुलसी के रामचरितमानस के पठन और मनन से इनमें काव्य रचने की रुचि जाग्रत हुई। सं० १९४७ में इनका "भर्तृहरिशतक" का अनुवाद कालाकांकर (प्रतापगढ़) के दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित हुआ था। सरस्वती में उसके प्रारम्भ से ही इनके लेख और कविताएँ प्रकाशित होती रही हैं।

सरस्वती में इनका एक लेख "महाकवि भारवि" शीर्षक बहुत विद्वत्ता-पूर्ण समझा जाता है। उसमें समय समय पर प्रेमसरोवर, कोकिल, बम्बई का समुद्रतट आदि फुटकर कविताएँ भी इन्होंने लिखी हैं।

सं० १९५९ में इनका रचा हुआ "अलङ्कार-प्रकाश" प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी में अलङ्कार विषयक सब से अच्छा ग्रंथ है। हिन्दी में प्रायः सब प्रतिष्ठित विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओं ने इस अलङ्कार ग्रंथ की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। यह ग्रंथ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा में पाठ्य है। अब इस ग्रंथ का दूसरा संस्करण, परिवर्तित रूप में "काव्य-कल्पद्रुम" नाम से निकला है। "अलङ्कार-प्रकाश में" केवल अलङ्कार विषय था। अब "काव्य-कल्पद्रुम" में काव्य के सब मुख्य मुख्य अंगों का वर्णन आ गया है। यह ग्रंथ अपने विषय में इस समय तक अद्वितीय है। यह केवल विद्यार्थियों के ही काम का नहीं, साहित्य के सब रसिक विद्वानों के देखने योग्य है। इसमें काव्य के जटिल विषय संस्कृत के सिद्धान्त ग्रंथों के आधार पर स्पष्ट किये गये हैं।

संस्कृत श्लोकों का समश्लोकी हिन्दी-अनुवाद करने में ये विशेष पटु हैं। श्रीमद्भागवत के कई एक अध्यायों का इन्होंने समश्लोकी हिन्दी-

अनुवाद किया है, जो "पद्यगीत" नाम से प्रकाशित हुआ है। इसी तरह पंडितराज जगन्नाथ-कृत गङ्गालहरी का भी इन्होंने समश्लोकी अनुवाद किया है, जो प्रकाशित हो चुका है।

इनका नूतन ग्रंथ "हिन्दी मेघदूत विमर्श" है। यह महाकवि कालिदास के मेघदूत का समश्लोकी हिन्दी-पद्यानुवाद और गद्यानुवाद है। इनके ग्रंथों में यह विशेष महत्व का है। इसमें कालिदास की जीवनी, तत्कालीन कवियों और सम्राटों का परिचय, प्रासंगिक साहित्य, ऐतिहासिक, भौगौलिक, सामाजिक, धार्मिक और नैतिक विषयों का बड़ा मार्मिक वर्णन है। इसमें मेघदूत सम्बन्धी अनेक नई बातें खोज निकाली गई हैं। हिन्दी के विद्वत्समाज में इस ग्रंथ को गौरवस्थान प्राप्त हुआ है।

सेठजी की हिन्दी-सेवा का यह साधारण परिचय है। सेठजी साहित्यजीवी नहीं। अपने व्यापारिक कार्यों से ही अवकाश निकालकर इन्होंने हिन्दी की अमूल्य सेवा की है। इससे इनकी हिन्दी-सेवा का मूल्य बहुत बढ़ गया है। रामगढ़ ऐसे नीरस प्रदेश में उत्पन्न होकर सरस कवि होना, लक्ष्मीवन्त के घर में जन्म लेकर सरस्वती-भक्त होना यह इनके पूर्व-जन्म के पुण्य से ही संभव है। इनका वंशवृक्ष इस प्रकार है :—

ताराचंदजी
|
गुरुसहायमलजी
|
घनश्यामदासजी
|
जयनारायणजी — लक्ष्मीनारायणजी — राधाकृष्णजी — केशवदेवजी — मुरलीधरजी

- जयनारायणजी → कन्हैयालालजी आदि तीन भाई
- लक्ष्मीनारायणजी → ब्रजमोहन
- राधाकृष्णजी → रघुनाथप्रसाद आदि ४ भाई
- केशवदेवजी → श्रीनिवास
- मुरलीधरजी → बालकृष्णलाल

मारवाड़ी व्यापारी समाज में सेठ ताराचंद घनश्यामदास (फ़र्म) की बड़ी

प्रतिष्ठा है। सेठ कन्हैयालालजी ने इसी वंश को अपने जन्म से कीर्तिसम्पन्न किया है। इस पोद्दार-वंश में सेठ केशवदेवजी और उनके सुपुत्र श्रीयुत श्रीनिवासजी और श्रीयुत बालकृष्णलालजी भी बड़े विद्यानुरागी हैं।

सेठ कन्हैयालालजी की कविताओं के नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं :—

(१)

कोकिल

उडुगण क्षय भी हों दीखते भी कहीं हो,
गत जब रजनी हो पूर्व सन्ध्या बनी हो।
मृदुल मधुर निद्रा चाहता चित्त मेरा।
तब पिक ! करती तू शब्द प्रारम्भ तेरा ॥१॥
अति सरस सुरीला शब्द सौन्दर्य गाती।
रसिक जन सभी तू नींद से है जगाती ॥
मनहरन सुना के माधुरी तू प्रभाती।
अलसित चित को भी सत्य ही है लुभाती ॥२॥
विहग सब सुनाते प्रायशः शब्द प्यारे।
निज निज दिखलाते शब्द-चातुर्य सारे ॥
ध्वनि तब करती वे क्या न निस्सार सी तू।
जब पिक बतलाती शब्द की चातुरी तू ॥३॥
सरस उपवनों में बाटिका में कभी तू।
गिरि-सरित तटों के प्रान्त में भी कभी तू ॥
सुरभित हरियाली हो जहाँ दीखती तू।
सुमधुर मतवाली कूक को कूजती तू ॥४॥
प्रिय-विरह-दशा में क्या वहीं जा छिपाती ?
सुललित वह बानी भी नहीं तू सुनाती ॥

सच कह, वह बातें क्या नहीं याद आती ?
"परभृत" यह तेरा नाम भी भूल जाती ॥५॥
कविजन गुण तेरे नित्य गाते तथापि,
अति परिचय से तू हो न फीकी कदापि ।
बस, अधिक कहें क्या ? मान काफी यहीं तू ॥
अनुपम गुण वाली भागशाली बड़ी तू ॥६॥

(२)

बम्बई का समुद्र-तट

(सायङ्कालिक दृश्य)

सायङ्काल हवा समुद्र तट की , नैरोग्यकारी महा,
प्रायः शिक्षित सभ्य लोग नित ही , आते इसी से वहाँ ।
बठे हास्य-विनोद-मोद करते , सानन्द वे दो घड़ी,
सो शोभा उस दृश्य की हृदय को , है तृप्ति देती बड़ी ॥ १ ॥
सन्ध्या को गिरती दिनेश-कर की , नोकें ललाई सनी,
होती है तब दिव्य वारिनिधि की , शोभा मनोमोहिनी ।
नीचे से जब बार बार उठती , ऊँची तरङ्गावली,
आती है बढ़ के सुदूर फिर भी , जाती वहाँ ही चली ॥ २ ॥
छोटे और बड़े जहाज़ जल में , देखो वहाँ वे खड़े,
सो भी दृश्य विचित्र किन्तु हमको , वे हानिकारी बड़े ।
ले जाते वर-वस्तु देश भर की , जानें कहाँ की कहाँ,
लाते केवल ऊपरी चटक की , चीजें विदेशी यहाँ ॥ ३ ॥
है उद्यान महामनोहर जहाँ , विख्यात वृक्षावली,
फूली है कुसुमावली नव-नवा , सौरभ्य आती चली ।
बैठी स्वागत सी जहाँ कर रही , प्यारी विहङ्गावली,
चित्ताकर्षक ख़ूब वारिनिधि की , आनन्ददायी स्थली ॥ ४ ॥

आते हैं दिन के थके जन सदा, सन्ध्या हुये पै यहीं,
प्यारी मन्द सुगन्ध-शीतल हवा, अन्यत्र पाते नहीं।
दे के स्पर्श समीर खूब करती, आतिथ्य सेवा, तथा—
खोती है श्रम सर्व और उनकी, सारी मिटाती व्यथा ॥ ५ ॥
मेंमें मन्जुल पारसीक नवला, नारी दिखाती अदा,
आती हैं सब सभ्य भव्य महिला, प्रायः सदा सर्वदा।
वे स्वाधीन सभी, समाज निज से, स्वातन्त्र्य पाई हुई,
आतीं जो मरु-वासिनी वह कथा, है सर्वथा ही नई ॥ ६ ॥

सुभग-सदन-श्रेणी प्रान्त में दीखती है।
प्रति प्रति सदनों में बाटिका भी वनी है ॥
सुरभित हरियाली चातुरी से लगी है।
विकसित कुसुमाली कुण्डिका भी धरी है ॥ ७ ॥
मदकल-मतवाली जो वहाँ कामिनी हैं,
अनुपम-छविवाली रूप-शाली बड़ी हैं ॥
दग-पथ करने से चित्त आता यही है,
सुर पुर-बनिता ही क्या यहाँ आ गई हैं ? ॥८॥

शोभा समुद्र तट की अवलोकनीय,
पाता प्रमोद मन देख उसे मदीय।
यथार्थ वर्णन न हो सकता तदीय,
है दृश्य केवल अहो ! वह दर्शनीय ॥ ९ ॥

(२)

दोहे

कपट नेह असरल मलिन, करन निकट नित बास।
गनिका कुटिल कटाक्ष खल, केहिं नहिं ठगत सहास ॥ १ ॥
धिक तेली जो चक्रधर, स्नेहिन करत बिहाल।
पारथिवन विचलित करत, चक्री धन्य कुलाल ॥ २ ॥

गुनच्युत पुरुष रु विशिखहू , पर भेदन में दक्ष ।
भय दायक केहिँ के न हों , लघु पुनि मलिन सपक्ष ॥ ३ ॥
यूथप ! तेरे मान सम , विटप न इतै लखाँहि ।
क्यों हू काट निदाघ दिन , दीरघ कित तो छाँहि ॥ ४ ॥
घन तम अरु पथ विषम अति , लखि उलका मुख ताहि ।
तकी बरन जम्बुक बहू , मूँद्यो बदन लखाहि ॥ ५ ॥
सीधे को लघुता जहाँ , टेढ़ौ गुरुता पाय ।
पिंगल लौं होवो सरल , उचित न या जग माँय ॥ ६ ॥
यद्‌पि मलय तरु को न विधि , फल अरु फूलन दीन्ह ।
तद्‌पि अहो ! निज तन करत , औरन ताप बिहीन ॥ ७ ॥
कवि अक्षर मैत्री भजत , नहिं कठोर ग्रामीन ।
शब्दऽरु पुरुषहु साधु ही , होंय अर्थ शालीन ॥ ८ ॥
गुरु सों नमऽरु लघुन सों , उन्नत सम सम प्रेम ।
उचितज्ञा ह्वै क्यों तुला , तोलत गुञ्जन हेम ॥ ९ ॥
नदी प्रवाहऽरु ईखरस , द्यूत मान संकेत ।
भ्रूलतिका पाँचों यहै , भंग भये रस देत ॥१०॥
ऋतु निदाघ दुःसह समय , मरुमग पथिक अनेक ।
मेंटे ताप कितेन की , यह मारग-तरु एक ॥११॥
फूल सुगन्ध न फल मधुर , छाँह न आवत काम ।
सेमर तरुको जगत में , बढ़िवो निपट निकाम ॥१२॥
रे कोकिल ! तू काटि कित , नीरस काल कराल ।
जो लौं अलिकुल कलित नहिं , फूलै ललित रसाल ॥१३॥
रोकत हू परबस अरी ! , करत अधर छत वीर ।
कहा मिल्यो नागर पिया ? , नहिं सखि शिशिर समीर ॥१४॥
रहि न सकत कोउ अपतिता , सखि ! बरषाऋतु माय ।
कहा भई उतकंठिता ? , नहिं पथ फिसलत पाय ॥१५॥

(४)

सवैया

पय निर्मल मानसरोवर को जु सुगन्धित पान कियो नित है।
सु खसों बसि राजमराल अहो ! जिन बैस व्यतीत करी नित है॥
कहि जाय कहा अब हाय ! दशा वह आयके ताल पर्यो कित है।
चहुँ ओर शिवाल के जाल भरे अरु भेक अनेक परे जित हैं॥१॥

दृढ़ कावरि है अघओघन की सब दोषन को यह गागरि है।
अस तुच्छ कलेवर को स्रक चंदन भूषन साजि कहा करि है॥
मलमूतन कीच गलीच जहाँ कृमि-आकुल पीव अँतावरि है।
दिन वो किन याद करै ? घिनकै जब शूकर कूकर हू फिरि हैं॥२॥

विद्रुम औ मुक्तान के बीच अलौकिक वो रस माधुरी जानिये।
केवल भार के वाहक हैं यह पुष्प नहीं इनमें अनुमानिये॥
त्यों वसुधा में सुधाहू वहाँ न सुधाकर में है सुधा ही बखानिये।
मानिये साँच न तो चलि कै तिहिँ सुन्दरि माँहि प्रतच्छ प्रमानिये॥३॥

(५)

हिन्दी-मेघदूत-विमर्श

मूल

वक्रः पन्थाः यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशाम्।
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मास्म भूरुज्जयिन्याः॥
विद्युद्दाम स्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां।
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि॥

समश्लोकी अनुवाद

होगा टेढ़ा पथ यदपि तू उत्तर-प्रान्त-गामी।
उज्जैनी के भवन-विमुखी हो न जाना तथापि॥
विद्युत् आभा सचकित वहाँ पौरलोलाक्षियों की।

लेगा जो तू दृगरस न तो जन्म ही व्यर्थ होगा ॥

मूल

श्यामास्वंगं चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं ।
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ॥
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान् ।
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥

अनुवाद

श्यामाओं में मृदुल वपु को, दृष्टि भीता मृगी में ।
चन्द्राभा में वदन छवि को, केश बर्हाकृती में ॥
भ्रूभङ्गी को चल-लहरि में देखता मानिनी ! मैं
तेरी एकस्थल सदृशता हा, न पाता कहीं मैं ॥

रामचरित उपाध्याय

पण्डित रामचरितजी उपाध्याय का जन्म एक विद्वान् सरयूपारीण ब्राह्मण-वंश में विक्रम संवत् १९२९ कार्तिक कृष्ण चतुर्थी, रविवार को गाज़ीपुर में हुआ था। इनके पिता एक विद्वान् व्यक्ति थे। उनका नाम पंडित रामप्रपन्नजी और उनकी धर्मपत्नी का अमृता देवी था। उन्होंने लड़कपन में हीं इनको अक्षर-बोध कराकर संस्कृत व्याकरण से परिचित करा दिया था। विक्रम संवत् १९४४ में इनके पिता का वैकुण्ठवास हो गया। तब से ये अपने पूर्व-पुरुषों की जन्म-भूमि महाराजपुर (आज़मगढ़) में सुकुटुम्ब आ रहे और वहाँ तथा बरेली में अपने भ्राता पण्डित महादेवप्रसाद शास्त्रीजी से संस्कृत के विविध ग्रन्थ पढ़ते रहे। सं० १९४७ में उपाध्यायजी काशी में आये और वहीं

महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्रीजी के गृह पर रहकर पाँच छः वर्षों तक विद्याध्ययन करते रहे। इनकी बुद्धि विलक्षण थी। इससे व्याकरण और साहित्य का बहुत अच्छा ज्ञान सहज ही में हो गया। गुरु-भक्त होने से गुरु की भी इन पर बड़ी कृपा रहती थी।

इतने ही में इटावे के एक रईस ब्राह्मण भट्टेले हरवंशराय जी के पुत्र को पढ़ाने के लिए अपने गुरुवर की आज्ञा से उपाध्यायजी काशी छोड़कर वहाँ चले गये और प्रायः ढाई तीन वर्षों तक उस कार्य को उत्तम रीति से करते रहे। इसके बाद फिर काशी चले आये और आकर ज्योतिषाचार्य पण्डित दीनानाथ मिश्रजी की कृपा से उसी वर्ष गणित की मध्यमा परीक्षा पास की, जिस वर्ष दिल्ली में कर्जनी दरबार हुआ था। तत्पश्चात् इन्होंने आचार्य के भी दो खण्ड पास किये। सं० १९६१ में काशी से अपने घर चले आये और वहीं पर रहकर जमींदारी तथा कृषि-कार्य करने लगे।

पण्डित रामचरित त्रिपाठी नामक एक कवि इनके जिले में थे। उन्हीं की देखा-देखी और नाम की समता से हिन्दी की कविता करने की इनकी भी अभिरुचि हुई। पहले ये होली, कजली, चैती इत्यादि पुराने ढंग की कविता लिखते रहे। उन दिनों सं० १९६३ तक इन्होंने "विजयी वसन्त" "श्रावण-शृङ्गार" "सुधा-शतक" "रामचरितावली" "बरवा चौसई" "सतसई" इत्यादि कई पुरानी चाल के काव्य पुरानी बोली में भाषा-टीका भी लिख डाली थी। कालान्तर से खड़ी बोली की कविता की ओर लोगों की रुचि देखकर इस ओर भी इनका ध्यान झुका।

"सूक्तिमुक्तावली", "राष्ट्र भारती", देवदूत" "देव-सभा", "राम-चरित-चन्द्रिका", "रामचरित-चिन्तामणि", देवी द्रौपदी", "उपदेश-रत्न-माला", "भारतभक्ति", "मेघदूत", "सत्य हरिश्चन्द्र", "विचित्र विवाह", "घटकर्पर की भाषाटीका," अंजना सुन्दरी सिंदूर प्रकरण, सामयिक पाठ का इच्छानुवाद नामक पुस्तकें इन्होंने अब तक खड़ी बोली में भी तैयार की हैं और इस समय "भारतीय रत्नाकर" लिख रहे हैं।

पण्डित रामचरित्तजी उपाध्याय का गार्हस्थ्य जीवन अत्यन्त ही सादा है। इन्हें स्वतन्त्रता बहुत प्यारी है। इन्होंने गाजीपुर में एक संस्कृत पाठ-शाला और सनातन-धर्म-सभा की भी स्थापना की है। उस सभा के साथ साथ एक हिन्दी पुस्तकालय भी चल रहा है।

इनकी कविताओं के कुछ नमूने आगे दिये जाते हैं :—

(१)

लक्ष्मी-लीला

श्रीपति ने गोसेवा की है, वही बुद्धि लक्ष्मी की भी है।
नरपशु की सेवा करती है, विज्ञों से सुदूर रहती है ॥१॥
धनीगेह में श्री जाती है, कभी न जाती निर्धन घर में।
वारिधि में गंगा गिरती है, कभी न गिरती सूखे सर में ॥२॥
जिनके घर लक्ष्मी रहती है, वे नर अविचारी होते हैं।
लक्ष्मीपति को क्या कमती है, पर वे पन्नग पर सोते हैं ॥३॥
उद्यमहीन आलसी जो नर, रमा न रहती है उसके घर।
जैसे तरुणी बूढ़े वर से, प्रेम नहीं करती है उर से ॥४॥
स्त्री की मति उलटी होती है, उभय कुलों को वह खोती है।
वारिधि सुता विष्णुकी जाया, उस श्री के मन शठ नर भाया ॥५॥

(२)

कुसङ्ग

अति खल की सङ्गति करने से, जग में मान नहीं रहता है।
लोहे के सँग में पड़ने से, घन की मार अनल सहता है ॥१॥
सब से नीति-शास्त्र कहता है, दुष्ट-सङ्ग दुख का दाता है।
जिस पय में पानी रहता है, वही खूब औंटा जाता है ॥२॥
उनके प्राण नहीं बचते हैं, जिनको दुर्जन अपनाते हैं।
जो गेहूँ के सँग रहते हैं, वे ही घुन पीसे जाते हैं ॥३॥

जहाँ एक भी दुष्ट रहेगा, वह समाज क्यों चल पावेगा।
जहाँ तनिक भी अम्ल पड़ेगा, मनों दूध भी फट जावेगा ॥४॥

(३)

सपूत

चन्दन, चन्द, उशीर, हिमोपल, हिम-रजनी भी और कपूर।
सब मिलकर भी नहीं करेंगे, मानव-हृदय-ताप को दूर॥
पर सपूत जिस कुल में होगा, उसका समय आप ही आप।
पलट जायगा, यश फैलेगा, मिट जावेगा सब सन्ताप ॥१॥
विमल चित्त हो, दानशील हो, शूरवीर हो, सरल विचार।
सत्य-वचन हो प्रेमयुक्त हो, करे सभी से सम व्यवहार॥
ज्ञानी, सहृदय, हो उपकारी, और गुणी, हो अपना धर्म।
कभी न छोड़े, देशभक्त हो, ये सब सत्पुतों के कर्म ॥२॥

(४)

कपूत

आलस-रत, शोकातुर, लम्पट, कपटी और सदा बलहीन।
मानस-मलिन, सदा निद्रातुर, लोभी और अकारण दीन॥
ऐसे सुत से क्या फल होगा, हे चतुरानन दे बरदान।
कभी कपूत किसी को मत दे, चाहे करदे निस्सन्तान ॥१॥
पर से प्रेम, द्रोह अपने से, करते नित्य दुष्ट-गुण-गान।
गुरुजन की निन्दाकर हँसते, अपने को कहते गुणवान॥
काला अक्षर भैंस बराबर, पर तो भी रखते अभिमान।
क्रोधानल में जलते रहते, यही कपूतों की पहिचान ॥२॥

(५)

याचक

"मुझे दीजिये कुछ" यों कह जब याचक कर फैलाता है।
तभी शरीर काँपने लगता उसका स्वर घट जाता है॥

उसी समय उसके शरीर से ये पाँचों हट जाते हैं।
ज्ञान, तेज, बल और मान, यश, अधम प्राण रह जाते हैं॥

(६)

वीर-वचनावली

निज बल से बलि के बन्धन को तोड़ न सका पैठि पाताल।
शशि-कलङ्क मैंने नहिं मेटा, मेरे हाथों मरा न काल॥
शेष-शीस से धरा छीन कर, ले न सका सिर उसका धार।
शत्रु-शमन कर सका न अपना, लाख बार मुझको धिक्कार॥१॥
खाकर जिसे उगल देते हैं फिर उसको ही खाते श्वान।
छोड़ दिया है जिसे उसे फिर, छूते नहीं कभी मतिमान॥
प्राणों ही के साथ सर्वदा प्रण भी उनका जाता है।
शीतल कभी न होता पावक, बुझ जरूर वह जाता है॥२॥
खाकर लात शान्त जो रहते साधु नहीं वे पूरे मूढ़।
मारो लात धूलि पर देखो, हो जावेगी सिर-आरूढ़॥
रिपु से बदला लिये बिना ही कायर नर रह जाते हैं।
तेजस्वी जन उसके सिर पर पद रख यश फैलाते हैं॥३॥

(७)

विधि-विडम्बना

सरसता-सरिता-जयिनी जहाँ,
नवनवा नवनीत-पदावली।
तदपि हा! यह भाग्य-विहीन की,
सुकविता कवि-ताप-करी हुई॥ १॥
जनम से पहले विधि ने दिये,
रजत, राज्य, रथादि तुम्हें स्वयं।
तदपि क्यों उसको न सराहते,
मचलते चलते तुम हो वृथा॥ २॥

पतन निश्चित है जिसका हुआ,
हठ उसे प्रिय है निज देह से।
अटल है उसकी विधि-वामता,
विनय से नय से घटती नहीं ॥ ३ ॥
तनिक चिन्तित हो मत तू कभी,
मिट नहीं सकती भवितव्यता।
सुकृत रक्षक है सब का सदा,
भवन में वन में मन ! मान जा ॥ ४ ॥
महिमता जिसकी अवलोक के,
अनिश निन्दक है खल-मण्डली।
सुयश क्या उसका जग में नहीं,
धवल है ? बल है यदि दव का ॥ ५ ॥
हृदय ! सुस्थिर होकर देख तू,
नियति का बल केवल है जिसे।
कठिन कण्टक-मार्ग उसे सदा,
सुगम है गम है करना वृथा ॥ ६ ॥
दुखित हैं धन-हीन, धनी सुखी,
यह विचार परिष्कृत है यदि।
मन! युधिष्ठिर को फिर क्यों हुई ?
विभवता भव-ताप-विधायिनी ॥ ७ ॥
शत सहस्र-गुणान्वित हैं यहाँ,
विविध शास्त्र-विशारद हैं पड़े।
हृदय ! क्यों उनमें फिर एक दो,
सुकृत से कृत-सेवक लोक हैं ॥ ८ ॥
जनन का मरना परिणाम है,
मरण-हीन मिले फिर देह क्यों।

मन ! बली विधि की करतूत से,
पतन का तन का चिरसङ्ग है ॥ ९ ॥
मन ! रमा, रमणी, रमणीयता,
मिल गईं यदि ये विधि-योग से ।
पर जिसे न मिली कविता-सुधा,
रसिकता सिकता-सम है उसे ॥ १० ॥
अयश है मिलता अपभाग्य से,
तदपि तू डर कुत्सित कर्म से ।
हृदय ! देख कलङ्कित विश्व में,
विबुध भी बुध भी विधि से हुये ॥ ११ ॥
स्मरण तू रखना गत शोक हो,
मरण निश्चित है, मन ! दैव के—
नियम से यम के बन जायँगे,
कवल ही बल-हीन बली सभी ॥ १२ ॥
अमर हो तुम जीव ! सहर्ष हो,
कमर बाँध सहो निज भाग्य को ।
समर है करना पर काल से,
दम नहीं मन ही मन में भरो ॥ १३ ॥
सुविध से विध से यदि है मिली,
रसवती सरसीव सरस्वती ।
मन ! तदा तुझको अमरत्वदा,
नव-सुधा वसुधा पर ही मिली ॥ १४ ॥
चतुर है चतुरानन सा वही,
सुभग भाग्य-विभूषित भाल है ।
मन ! जिसे मन में पर काव्य की,
रुचिरता चिरताप-करी न हो ॥ १५ ॥

(८)

पूर्वस्मृति

(१)

हर्म्ये सा स्वकरेण शुभ्रवसना, वेनी रही बाँधती।
औत्सुक्यातिशयेन हा मम सखे, जी भी वहीं जा बँधा॥
दृष्टोऽहं च यदा तया दयितया, मेरी दशा जो हुई।
ज्ञास्यत्येव हि तां स यस्य हृदये, होगी कटारी लगी॥

(२)

मैं था देख रहा छटा जलद की, बैठा हुआ बाग़ में।
काचित् चन्द्रमुखी पुरो मम सखे! तत्र अमन्त्यागता॥
धीरे से मुझको कुछेक हँस के, उसने इशारा किया।
स्मृत्वा तां हृदये स्फुटत्यपि कथं, प्राणा न गच्छन्ति धिक्॥

(३)

बातें थीं करती सखी सङ्ग मुझे, तो भी रही देखती।
गत्वा सा कतिचित् पदानि सुमुखी, धीरे खड़ी हो गई॥
जाने क्यों हँसती चली फिर गई, क्या मोहिनी मूर्ति थी।
स्वप्ने साद्य न दृश्यते क्षणमहो, हा, राम! मैं क्या करूँ॥

(९)

पहेली

ऐनक दिये तने रहते हैं, अपने मन साहब बनते हैं।
उनका मन औरों के काबू, क्यों सखि सज्जन?
नहिं सखि बाबू॥ १॥

जाड़ों के दिन में आता है, रोज हज़ारों को खाता है।
क्या अनुपम है उसका वेग, क्यों सखि राक्षस?
नहिं सखि प्लेग॥ २॥

ठठरी उसकी बच जाती है, जिसको हा वह धर पाती है।
छुड़ा न सकते उसे हकीम, क्यों सखि डाइन ?
नहीं अफ़ीम ॥ ३ ॥

धर्म-हेतु तन को धरते हैं, कभी न निज प्रण से टरते हैं।
परहित में देते हैं तन मन, क्यों सखि ईश्वर ?
नहिं सखि सज्जन ॥ ४ ॥

परगुण को गाते रहते हैं, दोष किसी का नहिं कहते हैं।
निज कुल को करते हैं मण्डित, क्यों सखि सुरगण ?
नहिं सखि पण्डित ॥ ५ ॥

(१०)

अङ्गद और रावण

(रामचरित-चिन्तामणि से)

अङ्गद

मम निवेदन है कुछ आपसे,
सुन उसे उर में धर लीजिये।
ग्रहण है करता जिस युक्ति से,
मधुप सारस-सार सहर्ष हो ॥ १ ॥

जनकजा रघुनायक हाथ में,
तुरत जाकर अर्पण कीजिये।
परवधूजन से रहते सदा,
अलग सन्तत सन्त तमीचर ! ॥ २ ॥

कुशल से रहना यदि है तुम्हें,
दनुज ! तो फिर गर्व न कीजिये।
शरण में गिरिये रघुनाथ के,
निबल के बल केवल राम हैं ॥ ३ ॥

दुखद है तुमको जनकात्मजा,
तुरत दूर उसे कर दीजिये।
सुखद हो सकती न उलूक को,
नय-विशारद ! शारद-चन्द्रिका ॥ ४ ॥
बहुत बार हुये विजयी सही,
पर नहीं रहते दिन एक से।
सम्हल के रहिये, अब आपकी,
ग्रह-दशा न दशानन ! है भली ॥ ५ ॥
स्वकुल की करिये शुभकामना,
सपदि युक्ति वही नृप ! सोचिये।
न अब भी जिसमें करना पड़े,
कठिन सङ्गर सङ्ग रमेश के ॥ ६ ॥
स्वमन को वश में रखिये सदा;
अनय से परवस्तु न लीजिये।
नृप ! कभी सुखदायक हैं नहीं,
सुत, रसा, धन, साधन के बिना ॥ ७ ॥
समय है अनमोल, कुकर्म में,
तुम विनष्ट करो उसको नहीं।
दनुज ! है जग में सुखदायिनी,
नियमहीन मही न महीप को ॥ ८ ॥
परम वीर चढ़े रघुवीर हैं,
तव पुरी पर बारिधि बाँध के।
क्षितिप ! आकर के रिपु-राज्य में,
तनिक भीरु कभी रुकते नहीं ॥ ९ ॥
कवि, गुणी, बुध, वीर, नयज्ञ भी,
समझिये मन में निज को स्वयम्।

पर बिना कुछ कार्य्य किये कभी,
न मन-मोदक मोद-कलाप है ॥१०॥
सब सुरासुर हैं वश आपके,
करगता यदि हों सब सिद्धियाँ।
तदपि हे दनुजेश्वर! जानना,
निज बिना शक नाशक राम को ॥११॥
अखिल-लोक नृपेश्वर राम को,
समझ के उनसे मिलिये अभी।
यह पुरी रघुनाथ-रणाग्नि में,
दनुज! होम न हो, मन में डरो ॥१२॥

रावण

सुन कपे! यम, इन्द्र, कुबेर की,
न हिलती रसना मम सामने।
तदपि आज मुझे करना पड़ा,
मनुज-सेवक से बकवाद भी ॥ १ ॥
यदि कपे! मम राक्षसराज का,
स्तवन है तुझ से न किया गया।
कुछ नहीं डर है—पर क्यों वृथा,
निलज! मानव-मान बढ़ा रहा ॥ २ ॥
तनय होकर भी मम मित्र का,
शठ! न आकर क्यों मुझ से मिला ?
उदर के वश हो किस भाँति तू,
नर सहायक हाय कपे! हुआ ॥ ३ ॥
बसन भोजन ले मुझ से सदा,
विचर तू सुख से मम राज्य में।

उस नृपात्मज के हित दे वृथा,
सुखद जीव न जीवन के लिये ॥ ४ ॥
तुम बिना करतूत बका करो,
बचन-वीर ! सुनो हम वीर हैं।
रिपु-विनाशक यज्ञ किये, बिना,
समर-पावक पा बकते नहीं ॥ ५ ॥
बल सुनाकर तू शठ ! राम का,
पच मरे, पर मैं डरता नहीं।
अहि भयातुर हो करके, बता,
कब तिरोहित रोहित से हुआ ॥ ६ ॥
कवल-दायक के गुण-गान में,
निरत तू रह वानर ! सर्वदा।
समर है सुख-दायक शूर को,
कब रुचा रण चारण को भला ? ॥ ७ ॥
जनकजाहृत चित्त हुआ सही,
तदपि तापस से कम मैं नहीं।
मधुर मोदक क्या पच जायगा,
कपि ! सवा मन वामन-पेट में ॥ ८ ॥
लड़ नहीं सकता मुझसे कभी,
तनिक भी नृप बालक स्वप्न में।
कब, कहाँ, कह तो किसने लखा,
कपि ! लवा-रण वारण से भला ॥ ९ ॥
यह असम्भव है यदि राम भी,
समर सम्मुख रावण से करे।
कह कपे ! उठ है सकती कभी,
यह रसा बक-शावक-चोंच से ॥१०॥

निलज हो बहको, निजनाथ के—
सुयश-गान करो, कपि-जाति हो।
जगत में दिखलाकर पेट को,
बचन-वीर! न वीर बना कभी ॥११॥
मम नहीं हित-साधक जो हुआ,
वह न हो सकता पर का कभी।
कपट रूप बनाकर राम का,
कपि! विभीषण भीषण शत्रु है ॥१२॥
मर मिटें रण में, पर राम को,
हम न दे सकते जनकात्मजा।
सुन कपे जग में बस वीर के,
सुयश का रण कारण मुख्य है ॥१३॥
चतुरता दिखला मत व्यर्थ तू,
रसिक हैं रण के हम जन्म से।
रुक नहीं सकते सुन के कभी,
वचन-वत्सल वत्स! लड़े बिना ॥१४॥

(११)

कली

बातें न मेरी भूल जाना, ध्यान रखना हे कली।
सब का बदलता है ज़माना, सच समझना हे कली ॥
जिस वृक्ष से उत्पन्न हो, जिस गोद में तुम हो पली।
जिस भाँति वे सम्पन्न हों, उस भाँति रहना हे कली ॥
ज्यों ज्यों अभी क्रम से बढ़ोगी, त्यों लगोगी तुम भली।
पर नेत्र पर सब के चढ़ोगी, धैर्य रखना हे कली ॥
मधु के लिए घेरे रहेंगे, मधुप रस-वश हो छली।
मतलब मधुर बहु विधि कहेंगे, तुम मचलना हे कली ॥

गाना सुना करके फँसाना, जानते हैं सब अली।
उनके प्रलोभन में न आना, दृग बचाना हे कली॥
तोड़े न तुमको मूढ़ माली, देखकर भी वे-खिली।
करना न अपनी सून डाली, युक्ति रचना हे कली॥
खाकर बसन्ती वायु भूपर, गिर न जाना मनचली।
चढ़ना कठिन है पुनः ऊपर, गिर चुकी जब हे कली॥
दुर्लभ तुम्हें यदि देखकर, कोई कहें बातें जली।
स्वार्थी जगत को लेखकर, मन में बिहँसना हे कली॥
सुर भी तुम्हें अपनायँगे, यदि विधि तुम्हारा है बली।
पामर वृथा अकुलायँगे, यह देख लेना हे कली॥
जिसने किया निज धर्म को, जग में वही फूली-फली।
तजना न सौरभ-धर्म को, नय-मर्म है यह हे कली॥
सम्पत्ति पर की आजतक, किस के नहीं मन में खली?
तुम चाहना मत राज तक, गुण है मिला जब हे कली॥
सोचो तुम्हीं, किस की घड़ी, जग में नहीं चढ़कर ढली?
है रूप की महिमा बड़ी, मत गर्व करना हे कली॥
कोई कहेगा निर्दयी, कोई तुम्हें मद की डली।
कोई कहेगा सुखमयी, चुपचाप सुनना हे कली॥
हिल्कर न खिल जाना कहीं, बिकना पड़ेगा हर गली।
जिसकी न मर्यादा रही, वह है अधमतम हे कली॥
जीवन पराये हाथ हैं, इस हेतु मत डरना कली।
जगदीश सब के साथ हैं, कर्त्तव्य निज करना कली॥

(१२)

दर्शनीय दोहे

(१)

उपजे यदपि सुवंस में, खल तउ दुखद कराल।
चन्दन हूँ की आग ले, जरे देह तत्काल॥

(२)

मानी दीन न हो सकैं, वरुक प्रान दें खोय।
बिना बुझे सपनेहुँ नहिं, पावक सीतल होय॥

(३)

अपने ते जो छुद्र अति, तिहिं पै करिउ न क्रोध।
किहूँ भाँति सोहत नहीं, केहरि ससक विरोध॥

(४)

धीरज, उद्यम, बुद्धि, बल, साहस, शक्ति, सुनीत।
ये दस सुखदायक सदा, सुतिय सुपूत सुमीत॥

(५)

चिन्ता जननी चाह है, ताको पति अविवेक।
जौ विवेक की चाह तौ, राम नाम जपु एक॥

(६)

जलचर, थलचर, शाखचर, नभचर, निशिचर तारि।
जौ न हरज इक नरहु की, सुनबी गरज मुरारि॥

(७)

चकई दृग ज्यों रवि बसै, ज्यों कुलतिय दृग लाज।
त्योंही तुम मेरे हिये, नित्त निवसहु रघुराज॥

(सतसई से उद्धृत)

(१३)

बरवै

(१)

मुधा सुधा मधु मधु विधु, बसुधा माहिं।
सुजन संग सम सपनेहुँ, सुखप्रद नाहिं॥

(२)

करु सखि दूर अँगेठिया, हिम भय नाहिं।
धधकति काम अगिनिया, नित हिय माहिं॥

(३)

बड़वानल सम रविजा, छवि है जाति।
पूस प्रात जब बिरहिनि, अहकि नहाति॥

(४)

धरे एक कर मुरली, गिरि कर एक।
हँसत नचहु मम नैनन, स्याम छिनेक॥

(५)

नहिं बिनवत नहिं मनवत, जपत न नाम।
प्रेम नेम मम केवल, निरखहु राम॥

(बरवा चौसई से)

सैयद अमीर अली (मीर)

हिन्दी-संसार के आधुनिक मुसलमान कवियों में श्रीयुत सय्यद अमीर अली 'मीर कवि' का नाम आदर के साथ लिया जाता है।

इनका जन्म कार्तिक वदी २, संवत् १९३० को मध्य प्रदेश के सागर नगर में हुआ। इनके पिता का नाम मीर रुस्तम अली था। इनकी आयु लगभग दो वर्ष की हुई थी कि इन के पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता का स्वर्गवास हो जाने पर इनका पालन-पोषण इनके सुयोग्य चाचा मीर रहमत अली ने किया।

मीर रहमत अली पुलिस विभाग के कर्मचारी थे। नौकरी की हालत

में वे सागर ज़िले के अन्तर्गत देवरी-कस्बे में बहुत समय तक रहे थे। उनके सज्जनोचित व्यवहार के कारण देवरी के लोगों से उनका बहुत मेल-जोल तथा प्रेम हो गया था। इससे पेंशन लेने पर वे देवरी ही में आकर रहने लगे। यहाँ उन्होंने अपनी आजीविका चलाने के लिये एक दूकान खोली, जो थोड़े ही दिनों में अच्छी चलने लगी। देवरी में उनकी गणना प्रतिष्ठित पुरुषों में की जाती थी।

मीर कवि ने उन्हीं के पास रहकर ट्रंडा ग्राम में प्रायमरी शिक्षा पाई थी। देवरी आने पर यहाँ के वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल में इनका नाम लिखा गया। सभी कक्षाओं में अपने सहपाठियों से ये प्रथम रहा करते थे। सन् १८९० ई० में ये टीचर्स परीक्षा पास करने के लिये जबलपूर नार्मल स्कूल को भेजे गये और सन् १८९२ में १७ वर्ष की आयु में इन्होंने उक्त परीक्षा पास की। परीक्षा पास करने पर इनको जबलपुर के अंजुमन इस्लामिया हाईस्कूल में ड्राइङ्ग मास्टरी की जगह मिली। लगभग एक वर्ष काम करने के बाद इनको बाम्बे स्कूल आफ़ आर्ट के लिए ट्रेनिङ्ग टीचर्स स्कालरशिप मिली। यह मध्यप्रदेश के पहले ही विद्यार्थी थे, जिनको यह छात्रवृत्ति मिली थी। छात्रवृत्ति पाकर ये बम्बई गये। परन्तु आँखों की बीमारी के कारण वहाँ अधिक दिन नहीं रह सके। तीन चार मास रहने के बाद देवरी लौट आये और फिर यहीं अपनी दूकान का काम करने लगे। इसी समय इन्होंने अपने ससुर हाफ़िज बदरुद्दीन के पास उर्दू और धार्म्मिक शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ किया और थोड़े ही समय में इन्होंने ने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। पैसे की कमी के कारण इनको अङ्गरेज़ी पढ़ने का अवसर न मिला।

इनका काव्य-विषय मे प्रथम सम्बन्ध उत्पन्न होने का प्रसङ्ग बहुत कौतूहल जनक है।

एक बार ये अपनी दूकान पर बैठे हुए थे। इतने में रमजान खाँ नाम का एक पुलिस कांस्टेब्ल श्रीवेंकटेश्वर समाचार की एक

प्रति हाथ में लिए हुए आया और कहने लगा—मीर साहब इस पत्र में भानु कवि-समाज सागर की दी हुई एक समस्या छपी है। सब से उत्तम पूर्ति करनेवाले को छन्द-प्रभाकर नामक ग्रन्थ पुरस्कार में दिया जायगा। क्या आप इसकी पूर्ति करेंगे? उस समय ये छन्दःशास्त्र से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। तौ भी पत्र को हाथ में लेकर देखा। समस्या थी—"लोभ तें अमी के अहि चढ्यो जात चन्द पै"—कुछ भी समझ में नहीं आया। धरती पर का रहने वाला सर्प चन्द्र पर कैसे चढ़ सकता है? इसी उधेड़-बुन में पड़े हुए थे कि रमजानखाँ ने फिर पूछा—क्या आप इसकी पूर्त्ति कर सकेंगे? इन्होंने कहा—हाँ, करूँगा। वह चला गया। तब ये समस्या लेकर अपने स्कूल के हे० मा० पं० परमानन्द जी चौबे के पास गये। उन्होंने स्कूल लायब्रेरी में से छन्दःप्रभाकर नामक ग्रन्थ देकर कहा—इसमें सब तरह के छन्द बनाने की रीतियाँ लिखी हैं। इसे पढ़ो; शायद तुम्हारा काम निकल आवे। छन्दः-प्रभाकर पाकर ये बहुत ख़ुश हुये। घर आये और प्रारंभ से लेकर पुस्तक पढ़ना शुरू कर दिया। रात भर पढ़ते रहे। परन्तु कुछ समझ में नहीं आया। तीसरे दिन नन्हेंलाल नामक एक दर्ज़ी कोई चीज़ ख़रीदने इनकी दूकान पर आया। इनको चिन्तित देखकर उसने कारण पूछा। कारण मालूम हो जाने पर उसने मीरसाहब को मनहर कवित्त बनाने की विधि बता दी। उस समस्या की पूर्ति जो मीर साहब ने करके भेजी थी, यह है—

सीता राम ब्याह को उछाह अवलोक सब,
जनक समाज बलि जात सुख कन्द पै।
वेद कुल रीति जैसी आज्ञा बशिष्ट दीनी,
भाँवरों के सुन्दर शुभ समय निरद्वन्द पै।
ता समय दुलही माँग भरबे चलाओ हाथ,
दूल्हा ने सिन्दूर लै अंगूठा अमन्द पै।

उपमा तहँ ऐसी मन आई कवि मीर मनो,
लोभ तें अमी के अहि चढ़ो जात चन्द प ।

इस पूर्त्ति को पाकर कवि-समाज ने यह पत्र भेजा—

'भाव की दृष्टि से आप की पूर्ति अन्य सब पूर्तियों से श्रेष्ठ ठहराई गई । परन्तु मालूम होता है कि आप को पिङ्गल का ज्ञान नहीं है । इस कारण छन्द निर्दोष नहीं बन सका है । यही कारण है कि आप को पुरस्कार नहीं दिया गया है । परन्तु समाज को आशा है कि यदि आप छन्दःशास्त्र का अध्ययन करेंगे तो भविष्य में आप एक अच्छे कवि हो सकेंगे । अगली बार के लिए समस्या भेजी जाती है । आशा है कि आप पूर्ति करके भेजेंगे ।

इस पत्र से उत्साहित होकर ये बड़ी लगन से काव्य-ग्रन्थों का अवलोकन करने लगे ।

मीर साहब को काव्य-कला में सफल होते देखकर देवरी के अनेक उत्साही युवक कविता सीखने के लिये आने लगे । मीर साहब के प्रयत्न से थोड़े ही समय में देवरी में काव्य-प्रेम की चर्चा प्रबल हो उठी, और काव्य-प्रेमियों का एक अच्छा समूह सा तैयार हो गया ।

सन् १८९५ ई० में देवरी में मीर मण्डल कवि समाज की स्थापना हुई ।

मीर साहब की अध्यक्षता में इस कवि-समाज ने लगातार सात-आठ वर्षों तक ख़ूब काम किया । इतने समय तक देवरी में साहित्य विषयक चर्चा ज़ोरों के साथ चलती रही । इसके फल-स्वरूप यहाँ के कुछ नव युवकों तथा विद्यार्थियों की रुचि साहित्य की ओर आकर्षित हुई । इनके शिष्य समुदाय में से अनेक आज सुकवि, सुलेखक और ग्रन्थ-प्रकाशक तथा सुचित्रकार के नाम से ख्यात हो रहे हैं । इनके दिये उत्साह और श्रीलक्ष्मीनारायण वकील औरङ्गाबाद की आर्थिक सहायता से श्रीयुत मन्जु सुशील ने लक्ष्मी मासिक पत्रिका का सम्पादन उसकी

प्रारंभिक दशा में योग्यतापूर्वक किया। उसमें मीर साहब का विशेष हाथ रहा करता था। इसी समय श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी ने जैनमित्र में लेख लिखाना प्रारंभ कराया। परिणाम यह हुआ कि वे आगे चल कर उसी पत्र के सम्पादक हो गये। कुछ समय के बाद मीर-मण्डल के रत्न मञ्जु सुशील और खान कवि के अकाल ही में स्वर्गवासी हो जाने तथा प्रेमीजी के बम्बई चले जाने के कारण उक्त कवि-समाज को भारी क्षति पहुँची और कुछ समय के उपरान्त उसका अस्तित्व ही मिट गया। मीर साहब का विचार था कि इस कस्बे में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी जाय, जिससे कुछ सुयोग्य सम्पादक, लेखक, कवि, व्याख्याता और वैद्य तैयार होकर जनता की सेवा करने लगें। परन्तु इस विचार में ये सफलता प्राप्त न कर सकें, जिसका इन्हें आज भी खेद है।

देवरी में सन् १९०७ ई० में, जिस समय पहली बार प्लेग का आक्रमण हुआ, उस समय वहाँ के मालगुजार स्वनामधन्य स्वर्गीय लाला भवानीप्रसादजी के अर्थ साहाय्य से मीर साहब ने जनता की प्रशंसनीय सेवा की थी। इनके हाथ से लगभग ४७५ आदमियों की चिकित्सा हुई थी। जिसमें से सैकड़े पीछे ८३ रोगियों को आरोग्य प्राप्त हुआ था।

इनके शांत प्रयत्न से देवरी में स्वदेशी कपड़े तथा शक्कर का खूब प्रचार हुआ था। इनका हिन्दी-प्रेम सराहनीय है। ये हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने के पक्षपाती हैं। इनकी प्रतिभा हिन्दू-शास्त्र, पुराणों के कथा प्रसङ्ग जानने में बहुत बढ़ी-चढ़ी है। गोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण पर इनको अतुल अनुराग है। ये उसे गृह-क़ानून का आदर्श ग्रन्थ बतलाते हैं। इनकी भाषा ख़ूब परिमार्जित हिन्दी है। इनसे बातचीत करते समय कोई यह नहीं अनुभव कर सकता है कि मैं एक मुसल्मान सज्जन से बातचीत कर रहा हूँ।

कुछ समय तक बम्बई तथा खण्डवा में रहने के कारण देवरी की स्थानीय दूकान टूट गई। जिससे इनको नौकरी पर जाने के लिए

विवश होना पड़ा।

पहले-पहल ये उदयपुर स्टेट मध्यप्रदेश के एक ग्राम में १५) मासिक पर प्रायमरी स्कूल के हेडमास्टर हुये। वहाँ से ये उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए क्रमशः मिडिल स्कूल की हेडमास्टरी, कोर्ट आफ वार्ड्स के आफिस की रीडरी, डिपुटी इन्स्पेक्टरी, पुलिस की इन्स्पेक्टरी, तहसीलदारी और दूसरे दर्जे की मजिस्ट्रेटी के पद पर पहुँचे।

इनके कार्य से स्टेट के न केवल अधिकारीगण तथा स्वयं राजा साहब सदैव प्रसन्न रहे, प्रजावर्ग उन से भी अधिक प्रसन्न रहा। इनको उदयपुर दरबार से इनकी कार्य-दक्षता के सम्बंध में ३।४ स्वर्ण की रत्न-जटित अंगूठियाँ, एक स्वर्ण की रिस्टवाच, एक बन्दूक, दो स्वर्ण पदक तथा अनेक सर्टीफिकेट प्राप्त हुए। ये अप्रैल सन् १९२२ में एक मास की छुट्टी लेकर घर आये। १३ वर्ष की सर्विस में यही पहला अवकाश था। फिर कई कारणों से नहीं गये।

इनका स्वभाव बहुत शान्त, गंभीर और मिलनसार है। सादगी इनको बहुत पसन्द है। स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार ये सदैव किया करते हैं। इनके कोई संतान नहीं है।

मीर महोदय गो-रक्षा के भी बहुत पक्षपाती हैं। इनके मत से भारत में कृषि-कार्य के लिए गोवंश की रक्षा करना नितान्त आवश्यक है। ये कहा करते हैं कि यदि गोवंश का विनाश जारी रहा तो निकट भविष्य में यहाँ के किसानों को विलायती बाज़ारों का मुहताज होना पड़ेगा। बहुत दिन पहले कलकत्ते के हासानंद वर्म्मा ने गोरक्षा के लिए चन्दे की अपील की थी। उस समय इन्होंने देवरी में बड़े परिश्रम से चंदा करके भिजवाया था। इनके सरल व्यवहार के कारण देवरी की हिन्दू-जनता इन्हें बहुत चाहती है।

इनको साहित्य-रत्न, काव्य-रसाल आदि उपाधियाँ अनेक प्रसिद्ध संस्थाओं से मिली हैं। गद्य लेख पर इनको कलकत्ता बड़ाबाजार लायब्रेरी

की ओर से प्रथम श्रेणी का रौप्य पदक तथा व्यङ्ग काव्य पर बाबू मदनमोहन वर्म्मा, स्वतन्त्र कार्यालय कलकत्ता द्वारा एक स्वर्णपदक मिला था। पदमा राज्य की ओर से तो ये कई बार पुरस्कृत हो चुके हैं।

इनके रचे हुए कुछ ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

बूढ़े का ब्याह, नीति दर्पण की भाषा टीका और सदाचारी बालक।

प्रयाग के प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिए लिखित इनके हिन्दी और मुसलमान शीर्षक लेख की बड़ी प्रशंसा हुई थी।

नीचे इनकी कविताओं के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

(१)

उलहना-पंचक

हिम-गिरि

गर नहीं जीने के काबिल हम रहे,
तो ढहाकर श्रृङ्ग हिमगिरि दे दबा॥
शत्रु अथवा जो हमारे हों यहाँ,
पेट में अपने उन्हें तू ले दबा।

गङ्गा

तारीफ़ सुनते हैं तुम्हारी हम बहुत,
सार्थक करती नहीं क्यों नाम को।
मात गङ्गे! पाप अरि को दो बहा,
शुद्ध कर दो हिन्द के हुक्काम को॥

हिन्द-सागर

हिन्द-सागर तुम हमारे गार्ड थे,
हाय, की तुम ने मगर कैसी दगा?
जब घुसा था शत्रु छाती चीरकर,
टाँग धर पाताल को देते भगा।

भारत-भूमि

वीर-प्रसवा तू भरत की भूमि है,
नाम को कैसा दवा तूने दिया !
सुत दुखी, पर हैं विरोधी सब सुखी,
देखकर खुद खोल आँखें, क्या किया !

विश्व-रक्षक

विश्व-रक्षक ! क्या नहीं हम विश्व में ?
क्यों नहीं देते हमें हो तुम स्वराज ?
ग़ैर हैं आज़ाद, घर में हम ग़ुलाम,
क्या यही इन्साफ़ है बंदहनवाज़ ?

(२)

भारतीय छात्रों से नम्र निवेदन ।

अहो भूप-जनपद के हितकर भारत के जीवन-आधार ।
पूर्व्व-पुरुष-गौरव के वर्द्धक शास्त्र-विहित गुण के भण्डार ॥
उच्च मनोरथ-पंकज के रवि प्रतिभा कुमुदिनि के राकेश ।
आशा भरे नयन से तव मुख देख रहा है भारत-देश ॥१॥
जिस के पंच-तत्त्व में मिलकर पूर्व्व-पुरुष हैं हुए, विलीन ।
उन्हीं पंच-भूतों का मिश्रण हम सब में है करो यकीन ॥
लेकिन जरा विचारो तो तुम पूर्व्व पुरुष थे क्या बलहीन ?
यश-गौरव-विद्या-प्रभुता से क्या वे थे हम-से ही दीन ॥२॥
नहीं नहीं वे कभी नहीं थे जैसे हम हैं अधम अगण्य ।
'लोहा उनका विश्व मानता' अब तक वे ऐसे थे धन्य ॥
बड़ा अचम्भा से दिखता है 'हुए सिंह के सदन सियार' ।
जहाँ जहाँ जाते पाते हैं लज्जाजनक हाय ! धिक्कार !! ॥३॥
आत्म-शक्ति थी उनमें अविचल नहीं सताता था भयभूत ।
मन पवित्र था सदाचार से अनाचार की लगी न छूत ॥

उन सुगुणों को यदि हम सीखें बता रहा है जो इतिहास।
कहो 'दाँत किसके मुँह में हैं?' करे हमारा जो उपहास॥४॥
आओ अपने अधःपतन पर हम सब मिलकर करें विचार।
एक बना लें नियम-तालिका हों न पाय जीवन निस्सार॥
नहीं शृङ्खला कामों में है दृढ़ निश्चय नहिं अचल विचार।
डाह-स्पर्द्धा भरी हुई है उबल रहे हैं बुरे विकार॥५॥
'हिन्दू-मुसलमान हों किंवा भारत के जनमें ईसाई।
जननी जन्मभूमि के नाते सब ही हैं भाई भाई॥
मिलकर ऐसे करो काम हो जिससे उन्नत देश-समाज।
भूल जाव कल की वे बातें जिनसे कलह न होवे आज॥६॥
कहा करें ऐसा हम सब ही नहीं करें पर सद्वर्ताव।
तब कैसे रह सकें परस्पर शान्ति सौख्यदायक सद्भाव॥
यदि अभीष्ट का निश्चय कर हम करें काम उसके अनुरूप।
तो अवश्य ही फलीभूत हों पा जावें जातीय स्वरूप॥७॥
सीखा करें सदा हम पढ़कर देश-विदेशों के इतिहास।
कौन कारणों से होता है देश-व्यापी कलह-प्रकाश॥
उन्हीं कारणों को यदि हम सब नहीं फटकने देवें पास।
तो न भूलकर कभी करें हम अपने हाथों अपना नाश॥८॥
ऐसी आदत डालो जिस से करते रहो कार्य अश्रान्त।
अधिकाधिक जी लगता जावे नहीं मध्य में होवे शान्त॥
'क्या करना है' आज बना लो उसकी सूची प्रातःकाल।
तदनुसार कर डालो उनको करके दूर सकल भ्रमजाल॥९॥
पीछे यत्न करो तुम पहले सोचो क्या होगा परिणाम।
धीर वीर हो करो उसे फिर जब तक पूर्ण न होवे काम॥
बारम्बार निराशा आवे तौभी होना नहीं निराश।
रजनी-तम का नाश अन्त में करता ही है दिवस-प्रकाश॥१०॥

सो जाने के लिए अधिकतर उत्तम निशि का पूर्व विभाग।
सूर्य-उदय होने से पहले हितकर है विस्तर का त्याग॥
आत्म-संयमन करके करते रहो सदा जीवन उपयोग।
समय भोग पावे नहिं तुमको करो समय का तुम उपभोग॥११॥
शील सरल कर्म्मण्य विवेकी क्रोध-रहित हो अगर स्वभाव।
तो पड़ सकता सकल विश्व पर बन्धु! तुम्हारा अजित प्रभाव॥
दीन दुखी आपत्ति-ग्रसित पर करो सदा तुम दया-प्रकाश।
करते रहो लोक की सेवा जब जितना पाओ अवकाश॥१२॥
करो प्रेम छोटों पर भाई और बड़ों का आदर-मान।
उतना काम करो जितने से बना रहे अपना अभिमान॥
दैव दया पुरुषार्थ आदि से जैसी जितनी तुमको शक्ति।
होवे मिली, उसी से करते रहो यथोचित सब की भक्ति॥१३॥
ब्रह्मचर्य्य जाने नहिं पावे इसका रखना भाई! ध्यान।
दम्पति पद पाजाने पर भी करना इस व्रत का सन्मान॥
बन जाना आदर्श आप ही जिससे गुणयुत हो सन्तान।
नारी-जाति दुःख नहिं पावे रखना तुम ऐसा अवधान॥१४॥
कभी भूल से भी करना नहिं मादक-द्रव्यों का व्यवहार।
अपनी भाषा नहीं भूलना जिसने खोला शिक्षा-द्वार॥
वेष बदलना कभी न अपना होती रहे जाति-पहिचान।
भोजन में भी भारतीयता रक्खो तब पाओगे मान॥१५॥
अपने पैरों से चलने का सदा काल रक्खो अभ्यास।
अपने कानों से सुन-लो जब करो तभी उस पर विश्वास॥
अगर चलोगे पंथ देखकर निज नयनों से निस्सन्देह।
बची रहेगी बाधाओं से जीवन भर निश्चय तव देह॥१६॥
देशी कला-वृद्धि करने को करो स्वदेशी-वस्तु पसन्द।
धन स्वाहा होता हो जिनमें उन बातों को कर दो बन्द॥

गरज काम वे करो बन्धु तुम जिनसे यश-रवि पड़े न मन्द।
भारत का मस्तक हो ऊँचा राजा-प्रजा रहे सानन्द॥

(३)

प्रार्थना

सब सों मीर गरीब हैं, आप गरीबनिवाज।
कोर कृपा कर फेरबी, वे दिन वे सुख साज॥ १॥
जान तुम्हें करुणायतन, करि करुणायुत बैन।
बिनवहुँ करुणा करहु अब, जासों पावहुँ चैन॥ २॥
दीनबन्धु तुम, दीन मैं, तुम्हरो ही मुहताज।
टेक नाम की राखिये, रहे दोउ की लाज॥ ३॥
तुम तो दाता सुमति के, सुमति दीजिये मोहिं।
जासों परहित करत मैं, भजत रहूँ नित तोहिं॥ ४॥
जाँचे विन फल देहु जो, दाता अहौ उदार।
करम देखि ज्यौं तारिहौ, तो कैसे करतार॥ ५॥
भटक्यो मृगजल में फिर्‌यों, अब भ्रम भागी मोर।
व्यर्थ आस तजि लीन्ह गहि, मीर भरोसो तोर॥ ६॥
जौलौं द्रवहु न नाथ तुम, तौलौं द्रवहि न और।
और कहा कहुँ मिलत ना, ठाढ़ भये को ठौर॥ ७॥

(४)

दशहरा

आ गया प्यारा दशहरा, छा गया उत्साह बल।
मातृ-पूजा, शक्ति-पूजा, बीर-पूजा है विमल॥
हिन्द में यह हिन्दुओं का विजय-उत्सव है ललाम।
शरद की इस सुऋतु में है खड्‌ग-पूजा धाम धाम॥

दिखने लगे खञ्जन यहाँ, रहने लगे चकवा अशोक ।
चल पड़े योगी यती मग की मिटी सब रोक टोक ॥
भरने लगे बाजार हैं, खुलने लगे व्यापार द्वार ।
सजने लगी सेना नृपति बजने लगे बाजे अपार ॥
यह दशहरा क्षत्रियों का प्राण जीवन पर्व है ।
हिन्द के इतिहास में इस पर्व का अति गर्व है ॥
वीर पुरुषों को यही संजीवनी का काम दे ।
जीत दे फिर कीर्ति दे फिर मान दे धन धाम दे ॥
थी विजय-दशमी यही जब राम ने दल साज कर ।
गिरि प्रवर्षण से चढ़ाई की थी लङ्का राज पर ॥
मार रावण को वहाँ उद्धार सीता का किया ।
और लंका का विभीषण को तिलक था दे दिया ॥
उस समय से इस दशहरे का बड़ा सम्मान है ।
मान गुण का यह प्रवर्तक क्षत्रियों का प्राण है ॥
आज करते हैं विजय की कामना सब वीरवर ।
जाँचते हैं दृष्टि कर गज अश्व दल हथियार पर ॥
श्रेय विजया से भरे इतिहास के बहु पत्र हैं ।
आज भी प्रतिबिम्ब उसका देखते हम अत्र हैं ॥
जो सबक लेना हमें उससे उचित लेते नहीं ।
स्वार्थ पशु-बलि त्याग की तलवार से देते नहीं ॥
इन्द्रियों की वासना ही है असुर शङ्का नहीं ।
ज्ञान शर से जीतते हैं लोभ की लङ्का नहीं ॥
हन्त जो कुविचार-रावण है उसे तजते नहीं ।
क्या कहें सुविचार श्रीवर राम को भजते नहीं ॥
नाश कर कुविचार का सद्बुद्धि सीता लाइए ।
नृप विभीषण की तरह सन्तोष को अपनाइए ॥

शान्त हो प्यारी अवध, फिर राज्य उसका कीजिये ।
' मीर ' विजया की विजय का इस तरह यश लीजिए ॥

(५)

अन्योक्ति सप्तक

मैंना तू बनवासिनी, परी पींजरे आन ।
जान दैवगति ताहि में, रहे शान्त सुख मान ॥
रहे शान्त सुख मान, बान कोमल तें अपनी ।
सब पक्षिन सरदार, तोहि कवि-कोविद बरनी ॥
कहे 'मीर' कवि नित्य, बोलती मधुरे बैना ।
तौ भी तुझको धन्य, बनी तू अजहूँ मैं ना ॥ १ ॥

तोता तू पकड़ा गया, जब था निपट नदान ।
बड़ा हुआ कुछ पढ़ लिया, तौ भी रहा अजान ॥
तौभी रहा अजान, ज्ञान का मर्म न पाया ।
जीवन पर के हाथ, सौंप निज घर बिसराया ॥
कहें 'मीर' समुझाय, हाय ? तू अबलौं सोता ।
चेता जो नहिं आप, किया क्या पढ़ के तोता ॥ २ ॥

बिल्ली निज पतिघातिनी, तुझको प्यारा गेह ।
खाती है जिसका नमक, उससे नेक न नेह ॥
उससे नेक न नेह, देह पर करती हमला ।
खा खा कर घी दूध, कमाई घर की कमला ॥
कहें 'मीर' समुझाय, पढ़े तू चाहे दिल्ली ।
नमकहरामी चाल, न छूटे तुझसे बिल्ली ॥ ३ ॥

बगला बैठा ध्यान में, प्रातः जल के तीर ।
मानौं तपसी तप करै, मलकर भस्म शरीर ॥
मलकर भस्म शरीर, तीर जब देखी मछली ।
कहैं 'मीर' ग्रसि चोंच, समूची फौरन निगली ॥

फिर भी आवें शरण, बैर जो तज के अगला।
उनके भी तू प्राण, हरेरे! छी! छी! बगला॥ ४॥
क़ैदी होने के प्रथम, था अलि 'मीर' स्वतन्त्र।
उसे पवन ने छल लिया, कह के मोहन मंत्र॥
कह के मोहन मंत्र, तंत्र सा फिर कुछ करके।
उसे गयी ले खींच, पास में गहरे सरके॥
पड़ा प्रेम में अचल, वहाँ लकड़ी का भेदी।
था जो कोमल कमल, बनाया उसने क़ैदी॥ ५॥
जाने कीन्हों शमन है, मत्त मतङ्ग न मान।
हाथ दैववश सिंह सो, पऱ्यो पींजरे आन॥
पऱ्यो पींजरे आन, श्वान के गन ढिग भूकैं।
बिहँसैं ससा, सियार, कान पै आके कूकैं॥
'मीर' बात है सत्य, लोक में कहिगे स्याने।
का पै कैसो समय, कबै परिहै को जाने?॥ ६॥
कोयल तू मन मोह के, गई कौन से देस।
तो अभाव में काग मुख, लखनो परो भदेस॥
लखनो परो भदेस, बेस तोही सो कारो।
पै बोलत हैं बोल, महा कर्कस कटु न्यारो॥
कहें मीर हे दैव, काग को दूर करो दल।
लावो फेर बसन्त, मनोहर बोले कोयल॥ ७॥

(६)

सवैया

क्यों यह सोच करै मन मूढ़ अरे दिन ये दुख के टरि हैं कब।
त्यों दुखदायक दीनन के यह पापी कबै अघसों मरिहैं दब॥
मान ले तू सिगरे जग मीत है एकहु ना हमरे अरि हैं अब।
जा दिन दैव दया करि है तब ता दिन 'मीर' मया करिहैं सब॥

(७)

कवित्त

चतुर गवैया होय, वेद को पढ़ैया चाहे
समर लड़ैया होय रणभूमि चौड़ी में।
जानत समैया होय "मीर" कवि त्यों ही चाहे
बात को जनैया होय नैन की कनौड़ी में ॥
नीति पै चलैया होय पर उपकार आदि
कुशल करैया काज हाथ की हथौड़ी में।
गुनन को शील होय तौऊ ना वसीला बिन
कोऊ हैं पुछैया भैया तोहिं तीन कौड़ी में ॥

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का जन्म संवत् १९३२ वि० विजयादशमी को नदिया ज़िले के छिटका गाँव में हुआ था। ये माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण हैं। इनके पूर्वज आगरा ज़िले के मई-स्थान के वासी थे। पर व्यापार-सम्बन्ध से बङ्गाल में जा बसे थे। नदिया ज़िले का छिटका ग्राम इनके पूर्वजों का ही था। इनके पिता पण्डित कालीप्रसाद का स्वर्गवास संवत् १९३४ में ही हो गया। उस समय इनकी अवस्था दो ही वर्ष की थी। जब यह छः सात ही महीने के थे, तब इनके मामा पंडित बलदेवप्रसाद पाण्डेय इन्हें अपने यहाँ मलयपुर (मुँगेर) ले गये थे। इनके मामा तीन भाई थे। वे इन्हें अपने पुत्र से भी अधिक लाड़ प्यार से रखते थे। वहाँ देहात में इनकी शिक्षा का समुचित प्रवन्ध न हो सका। तेरह वर्ष की अवस्था में इन्होंने

जमुई माइनर स्कूल के फोर्थ क्लास में भर्ती होकर पढ़ना आरम्भ किया। यह बुद्धि के बड़े तीव्र थे। और इसीसे अल्पकाल में ही इन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। वार्षिक परीक्षा में ये बराबर उत्तीर्ण होने लगे। सन् १८६८ में इन्होंने कलकत्ते के मेट्रोपोलिटन इन्स्टिट्यूशन से सेकेण्ड डिवीज़न में एंट्रेन्स पास किया। एफ० ए० की परीक्षा में फेल होने के कारण इन्होंने कालेज छोड़ दिया। हिन्दी लिखने-पढ़ने का इनको पहले से ही प्रेम था। हिन्दी-कविता लिखने का भी शौक बचपन से था। इनकी उस समय की कविता पर मुँगेर के कलक्टर ने वेली-पोयट्री-फ़न्ड से पारितोषिक दिया था। कालेज छोड़ने पर भारतमित्र के सुयोग्य सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। भारतमित्र में ये समय-समय पर लेख और कविता देने लगे। उसी समय इन्होंने संसार-चक्र नामक एक बड़ा ही रोचक उपन्यास लिखा।

संवत् १९५९ में ये अपने मामा के साथ चपड़े का काम देखने लगे। सं० १९६० में ये चार महीने तक हितवार्ता के सहकारी सम्पादक रहे। सं० १९६१ में इन्होंने चपड़े की दलाली शुरू की और सं० १९८२ में उसे छोड़ दी। इनके फ़र्म का नाम "मिरजामल जगन्नाथ एण्ड कम्पनी" था।

चतुर्वेदी जी बराबर मातृभाषा की सेवा निःस्वार्थ रूप से कर रहे हैं। ये गद्य और पद्य दोनों ही के प्रसिद्ध लेखक हैं। इनके लेख और कवितायें बड़ी ही रसीली और चुभीली होती हैं। ये मूर्तिमान हास्यरस हैं। इनकी वक्तृतायें भी व्यंग और हास्य से खूब भरी रहती हैं। इनकी भाषा सुसंस्कृत, व्यवहृत और मनोहारिणी होती है। इनकी लेखन-शैली भी भावपूर्ण तथा नवीन होती है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के जितने अधिवेशन हुए, ये प्रायः सभी में सम्मिलित हुए। हिन्दी-संसार ने द्वादश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन लाहौर का सभापति चुनकर इनका बहुत सम्मान किया। ये "प्रथम विहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन" के भी सभापति हुये थे। इन्होंने सदा हिन्दी-साहित्य के विकास में तन मन धन से योग दिया है।

इनके लेख तथा कवितायें इनके विनोद-प्रिय स्वभाव का परिचय देती हैं। इन्होंने निम्नलिखित गद्य-पद्यात्मक पुस्तकें रची हैं :—

(१) वसन्त मालती, (२) संसार चक्र, (३) तूफ़ान, (४) विचित्र विचरण (५) भारत की वर्तमान दशा (६) स्वदेशी आन्दोलन (७) गद्य-पद्य-माला (८) निरंकुशता निदर्शन (९) कृष्ण-चरित्र (१०) राष्ट्रीय गीत (११) अनुप्रास का अन्वेषण (१२) सिंहावलोकन (१३) हिन्दी-लिंग-विचार (१४) मधुर मिलन (नाटक), (१५) निबंध निचय।

इनकी कविता के कुछ नमूने आगे दिये जाते हैं :—

(१)

सुखमय जीवन

है विद्या और जन्म धन्य धरती पै तिनको।
पराधीनता माहिँ कटत नहिं जीवन जिनको॥
कर्म पवित्र बिचारन के जिनके अति सुन्दर।
सरल सत्य सों मिली निपुनता के जो आकर॥१॥
बुरी वासना मन में जिनके कबहुँ न आवत।
रूप भयङ्कर धारि मृत्यु नहिं जिनहिं डरावत।
जगज्जाल में बँधे करत नहिं यत्न हजारन।
गुप्त प्रकट निज नाम सदा विस्तारन कारन॥२॥
जिनहिं ईरषा होति नाहिं पर उन्नति देखे।
चाटुकारि अनजान वस्तु है जिनके लेखे॥
राजनीति को तत्व करत नहिं चित आकरसन।
धर्मनीति के ऊपर जो वारत तन-मन-धन॥३॥
भयो कलङ्कित नाहिं कबहुँ जिनको यह जीवन।
विमल विवेचक बुद्धि विपति में विनति-निकेतन॥
खुशामदी नहिं खायँ उड़ावैं जिनकी सम्पति।
औ शत्रुन कहँ प्रबल करत नहिं जिनकी अवनति॥४॥

परमेश्वर कौ भजन करत जो साँझ सबेरे।
हरि-सेवा को छाँड़ि चहैं नहिं सुख बहुतेरे॥
धर्म-ग्रन्थ- अवलोकन में ही समय वितावत।
साधुन के सत्सङ्ग बैठि हरि-कथा चलावत॥५॥
नहिं उन्नति की इच्छा औ नहिँ अवनति को डर।
आशा-बन्धन काटि भये निरद्वन्दी सो नर॥
बसुधा-शासन भूलि करत निज मनको शासन।
यद्यपि सो अति सुखी कहावत तऊ "अकिञ्चन" ॥६॥

(२)

बानी हिन्दी, भाषन की महरानी।
चन्द, सूर, तुलसी से यामें, कवी भये लासानी॥
दीन मलीन कहत जो याकों, हैं सो अति अज्ञानी।
या सम काव्य छन्द नहिं देख्यौ, है दुनियाँ भर छानी॥
का गिनती उरदू बँगला की, भरे अँगरेजिहु पानी।
आजहुँ याकां सब जग बोलत, गोरे, तुरुक, जपानी॥
है भारत की भाषा निहचय, हिन्दी हिन्दुस्थानी।
जगन्नाथ हिन्दी भाषा कौ, है सेवक अभिमानी॥

(३)

स्वदेश-प्रेम

(स्काट के LOVE OF COUNTRY का उल्था।)

है ऐसो कोउ मनुज अधम जीवित जग माहीं।
जाके मुख सों बचन कबहुँ निकस्यो यह नाहीं॥
"जन्मभूमि अभिराम यही है मेरी प्यारी।
वारौं जापै तीन लोक की सम्पत सारी॥"
सात समुद्दर पार विदेसन सों करि बिचरन।
भयो नाहिं घर चलन समय हरखित जाको मन॥

जौ ऐसौ कोउ होय वेगही ताकों देखौ।
भली भाँति सों वाके सब लच्छन कौं पेखौ॥
चाहे पदवी वाकी होय बहुत ही भारी।
वाको नाम बड़ो कर जाने दुनियाँ सारी॥
इच्छा के अनुकूल होय वाकों अगनित धन।
कविता वाके हेत तऊ नहिं करिहैं कविगन॥
केवल स्वारथपन ही में सब समय गँवायौ।
धन स्वदेश हित साधन में कबहूँ न लगायौ॥
धरी रहत सब धन, बल, पदवी, एक किनारे।
सिर पै, जमके आय बजत हैं जबहि नगारे॥
सुठि सुन्दर सुख्याति नाहिं जीवन में पैहैं।
जा माटी तें बनो फेरि वा में मिलि जैहै॥
सुमरन, सोक, सुकाव्य मरे पै कोउ न करिहैं।
करमहीन हतभाग मौत दुहरी सों मरिहै॥

(४)

शरद्वर्णन

सरद समागम होत ही, फूले कास कपास।
घन गर्ज्जन बर्ज्जन भयो, निर्ज्जल अमल अकास॥ १॥
निमल नीर नदियन बहैं, सरवर कमल खिलन्त।
विकसीं कैरव की कली, निरखि चन्द निज कन्त॥ २॥
चक्रवाक चातक सुआ, कोकिल मन्जु मराल।
चहकत चहुँ दिसि चाव सों, जानि सरद यहि काल॥ ३॥
दिव्य दिवाकर दिधित सों, दीपित दसों दिसान।
नूतन किसलय अरु लता, भासित स्वर्न समान॥ ४॥
पंक रहित पृथ्वी भई, सरितन सलिल समान।
निज निज प्यारी सों मिलन, पथिकन कीन्ह पयान॥ ५॥

खंजन मनरंजन करन, गंजन मृग चख मान।
आवत गुंजन को चुगत, चंचलता की खान ॥ ६ ॥
मन्द मन्द मारुत चलै, सीतल सुखद महान।
खेतन में झूमत खड़े, धानन के बिरवान ॥ ७ ॥
हरे हरे कोउ पके, झुके सबै फल भार।
जगत पिता की करत हैं, बिनती बाँध कतार ॥ ८ ॥
सारदीय ससि की सुधा, बरसत चारोंओर।
करि दर्सन निज बन्धु कौ, प्रमुदित होत चकोर ॥ ९ ॥
कदम करौंदा केतकी, कुसुमित बेर मकोय।
निरखत ही तिलको सुमन, मन आनन्दित होय ॥१०॥
स्वच्छ सरद की सरसता, को करि सकै बखान।
सैनन में समुझत मरम, जो हैं रसिक सुजान ॥११॥

(५)

राष्ट्र-संदेश

अपनी भाषा है भली, भलो आपुनो देस।
जो कुछ अपुनो है भलो, यही राष्ट्र-संदेस ॥ १ ॥
जो हिन्दू हिन्दी तजें, बोलें इङ्गलिश जाय।
उनकी बुद्धी पै पर्‌यो, निहचय पाथर आय ॥ २ ॥
जाको अपनी जाति कौ, नहिं नेकहु अभिमान।
कूकर सम डोलत फिरै, सो तो वृथा जहान ॥ ३ ॥
कुल कुपूत करनी निरखि, धरनी के उर दाह।
धधकि उठत सोई कबहुँ, ज्वालागिरि की राह ॥ ४ ॥
निरखि कुचाल कुपूत की, धरनी धरत न धीर।
नैनन निरझर सों झरत, यातें तातो नीर ॥ ५ ॥
देशन में भारत भलो, हिन्दी भाषन माहिं।
जातिन में हिन्दू भली, और भली कछु नाहिं ॥ ६ ॥

(६)

वसन्त-वर्णन (बेतुका छन्द)

शेष हुआ जाड़े का मौसम, आया है अब समय वसन्ती।
मगन हुए सारे नर नारी, लता, वृक्ष, पशु, पक्षी कोमल॥
सारी दुनिया मस्त हुई है, मानो सब ने छानी गहरी।
हुआ प्रकृति का रूप निराला, आहा! क्या अच्छी है शोभा॥
है आकाश स्वच्छ अति सुन्दर, सूरज भी अब तेज हुआ है।
नहिं सरदी नहिं गरमी भारी, ओ हो! क्या प्यारी हैं रातें॥
बौरे आम अधिक सुखदायी, कुहू कुहू कोयल करती है।
मन्द मन्द वायू है चलती, लिये गन्ध अति भीनी भीनी॥
फूले सेमर ढाक विपिन में, है नहिं इनमें गन्ध तनिक भी।
पर केवल है रङ्गत अच्छी, नाम बड़े और दर्शन छोटे॥
रूप देख आये बहु पक्षी, पर लौटे अपना मुँह लेकर।
इससे कवि कहता है भाई, जो कुछ चमके सो नहिं सोना॥
गेंदा और गुलाब, गुलतुरी, हुए सकल इक साथ प्रफुल्लित।
गुञ्जत मधुकर मधु की खातिर, भूमि हुई गुलशन का टुकड़ा॥
रहे वृक्ष जो लुण्डे मुण्डे, उनमें भी अब पत्ते निकले।

(७)

नया काम कुछ करना बाबा, नया काम कुछ करना।
दूध दही घृत मक्खन छोड़ो, चरबी पर चित धरना॥१॥
गो-सेवा को दूर भगावो, पालो घोड़े कुत्ते।
भगतिनियों की पूजा करके, पितरों को दो बुत्ते॥२॥
वेद शास्त्र का पढ़ना छोड़ो, छोड़ो सन्ध्या बन्दन।
ब्राम्हनपन की धाक जमाओ, खूब लगाकर चन्दन॥ ३॥
दो सच्चों को झूठा करना, खाना नमक हलाली।
"कृषि गोरक्षा वाणिज्यं" को, छोड़ो करो दलाली॥ ४॥

कन्या को वर बूढ़ा ढूँढ़ो, युवती को वर छोटा।
विधवाओं का ब्याह कराओ, मार मार कर सोंटा ॥५॥
जो न बने कुछ तुम से भाई, पीटो पकड़ लुगाई।
अथवा नाचो ताक धिनाधिन, सिर पर उसे बिठाई ॥६॥

(८)

हिन्दी

जिस हिन्दू को है नहीं, हिन्दी का अनुराग।
निश्चय उसके जान लो, फूट गये हैं भाग ॥१॥
जिसको प्यारी है नहीं, निज भाषा निज देश।
वह सूकर सा डोलता, धरे मनुज का भेष ॥२॥

(९)

वर्षा-वर्णन

धूरि दबी, गरमी मिटी, चल्यो सुशीतल पौन।
रुकी चढ़ाई नृपन की, फिरे बिदेसी भौन ॥ १ ॥
चकवा सों चकई मिली, मानस चले मराल।
चल्यो जात नहिं पंथ में, बूँद परै सब काल ॥ २ ॥
बिखरे बादर गगन महँ, कहुँ तम कहुँ परकास।
सोहै थिर सागर सरिस, कहुँ गिरि ओट अकास ॥ ३ ॥
बहत बेग सों कदम लै, नदियन गँदलो नीर।
बोलत हरखित मोरगन, बैठे दोऊ तीर ॥ ४ ॥
लोग रसीले खात हैं, जामुन अलि सम स्याम।
टपकत भू पै बायु सों, पाके बहु बिधि आम ॥ ५ ॥
बकमाला दामिनि सहित, ऊँचे सैल समान।
गरजत कारे मेघ इमि, जिमि गयंद बलवान ॥ ६ ॥

घास बढ़ी केकी नचें, मेघ चुकें झरि लाय।
संध्या को या विपिन की, सोभा अधिक लखाय॥ ७॥
जलधर जल-धारन किये, बकदल सों सरसात।
ऊँचे परवत-सृङ्ग पै, गरजत ठहरत जात॥ ८॥
बक-पाँती घन-चाह सों, उड़ती परम सुहाइ।
पुंडरीक-माला मनहुँ, घन-हित दई बनाइ॥ ९॥
बीरबहूटी घास महँ, सोभा देत अपार।
मनहुँ भूमि दुलही नई, बैठी चूनरि धार॥ १०॥
निद्रा हरि, बक मेघ ढिग, सरिता सागर माहिं।
काम सताई कामिनी, निज नायक ढिग जाहिं॥ ११॥
फूली डार कदम्ब की, वृच्छ गए ढिंग गाइ।
कानन नाचत मोर गन, तृन सों भूमि सुहाइ॥ १२॥
घन बरसत, सरिता बहति, गरजत मत्त गयंद।
बन सोहै नाचैं सिखी, चुप हैं बानर बृन्द॥ १३॥
सूँघि केतकी गंध गज, मत्त होय हरखात।
बन झरना को सबद सुनि, मोरन सँग चिल्लात॥ १४॥
लटकि कदम के फूल अलि, मस्त पिएँ मधु प्रात।
प बूँदन की चोट सों, मस्ती सब झरि जात॥ १५॥
क्वैला-सो कारौ बड़ो, फल रस भरो सुहाइ।
मानों जामुन-डार पै, बैठे मधुकर आइ॥ १६॥
सोभित बिज्जु धुजान सों, गरजत बादर घोर।
मानों रन उत्साह सों, कपि धावत करि सोर॥ १७॥
घन रव करि रव जान के, मतवारो गजराइ।
लड़न चल्यौ पाछे फिर्यौ, नहिं जब कोउ लखाइ॥ १८॥
कहुँ गूँजत हैं भौंर दल, कहुँ नाचत हैं मोर।
कहुँ झूमत करिराज बन, सोभित भाँति करोर॥ १९॥

अरजुन रम्भा कदम-तरु, सोभित साल रसाल।
पूरित हैं मधु बारि सों, बन धरती इहि काल॥ २०॥
नाचत बोलत मस्त अति, हैं मयूर हरखाइ।
सुरा-पान के भवन-सो, कानन परत लखाइ॥ २१॥
मोती सो निरमल सलिल, गिरत पात महँ आइ।
भींगे प्यासे विहग गन, पीवत मोद बढ़ाइ॥ २२॥
अलि गन बीन बजावहीं, बानर गावैं गीत।
मेघ मनहुँ मिरदंग लै, करत विपिन संगीत॥ २३॥
कबहुँ बैठि तरुवर सिखर, कबहुँ नाचि करि सोर।
मनहुँगान बन मँह करत, बड़ी पूँछ के मोर॥ २४॥
घन-रव सुनि कपि उठत जो, रहे देर लौं सोइ।
करत नाद बहु रूप के, बूँदनि घायल होइ॥ २५॥
एक तीर सों लपटिकै, दूजो तीर बिहाइ।
निज पिय सागर सों मिलन, नदी चली इतराइ॥ २६॥
जल सों पूरे नील घन, सटे एक सों एक।
झुलसे मनौं दवागि के, गिरिवर जुरे अनेक॥ २७॥
बीरबहूटी रेंगती, कूकत माते मोर।
फैली गंध कदंब की, गज घूमत चहुँ ओर॥ २८॥
धोए वारिद बूँद सों, कमलन कों तजि देत।
केसर सहित कदंब के, मधु को मधुकर लेत॥ २९॥
मुदित गवेन्द्र गजेन्द्र मद, माते बली मृगेंद्र।
रम्य नगेंद्र, नरेंद्र चुप, धन सों सुखी सुरेंद्र॥ ३०॥
घन बरसाऊ गरजते, रहे गगन महँ छाइ।
नदी, बावली, कूप, महि, भरत बारि बरसाइ॥ ३१॥
बूँद परति अति वेग सों, वायु चलत झकझोर।
पथ छाड़ति, तोरति तटन, नदी बहति अति जोर॥ ३२॥

दयो इंद्र, लायो पवन, घन गागर में तोय।
हैं अभिसिक्त नरोंद्र वर, नृप सम सोभित होय॥ ३३॥
तारा भानु न दीखते, छाए मेघ अकास।
भूमि तृप्त नभ लिप्त है, होत न कहूँ प्रकास॥ ३४॥
मोतिन की माला-सरिस, झरना बड़े सुहात।
तासों धोए गिरि-सिखर, सुन्दर अधिक लखात॥ ३५॥

कामताप्रसाद गुरु

पंडित कामताप्रसाद गुरु के पूर्वज लगभग ३०० वर्ष पूर्व उत्तर हिन्दुस्थान से मध्यप्रदेश के वर्तमान सागर शहर के पास गढ़पहरा में आये थे। जहाँ उस समय दाँगी (राजपूत) राजाओं की राजधानी थी। वहाँ वे अपनी योग्यता के कारण रानियों के गुरु नियत किये गये और राजाओं को राज-काज में भी सहायता देने लगे। बुँदेलों के आक्रमणों के कारण गढ़पहरा की राजधानी सागर में लाई गई। जिसके कारण इन के पूर्वजों को भी सागर में आकर बसना पड़ा। दाँगियों के पश्चात् मरहठों के राज्य में भी इस गुरु-वंश का मान पूर्ववत् बना रहा। और अङ्गरेज़ी राज्य में उसे पोलिटिकल पेंशन मिलने लगी। पश्चात् गृह-कलह और सरकारी नीति के कारण पेंशन बन्द कर दी गई। सागर ज़िले में अब भी गुरुजी की कुछ माफ़ी ज़मीन है।

पंडित कामताप्रसाद गुरु का जन्म संवत् १९३२ के पौष मास में मध्यप्रदेश के सागर शहर में हुआ था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण, भरद्वाज-गोत्री, कंपिला के पाण्डेय हैं। पर वंशानुक्रम से 'गुरु' ही कहलाते हैं। इनके पिता का नाम पं० गंगाप्रसाद गुरु था। जिनके समय तक सागर

के पास विलहरा में, जहाँ आजकल दाँगी राजाओं के वंशज जागीरदार हैं, दीक्षा देने का क्रम चलता रहा।

गुरूजी की शिक्षा सागर में ही हुई। सन् १८९२ में इन्होंने सागर के हाईस्कूल से १७ वर्ष की अवस्था में एंट्रेंस की परीक्षा संस्कृत लेकर पास की। फिर घर पर अभ्यास करके इन्होंने उर्दू और फ़ारसी की योग्यता प्राप्त की। परदेश में जाने की कठिनाइयों के कारण, साधन और रुचि रहते हुए भी इन्हें अंगरेजी की उच्चशिक्षा पाने अथवा कोई विशेष विद्या सीखने का अवसर न मिला। पूर्वोक्त कारण से ये अजमेर के "राजस्थान-समाचार" में भी, जहाँ ये उस समय बुलाये गये थे, साहित्यिक कार्य करने न जा सके। तब इन्होंने सागर के हाईस्कूल में शिक्षक का कार्य स्वीकार कर लिया, और वहाँ दो वर्ष तक रहे। फिर इनकी बदली रायपुर की होगई। जहाँ स्व० पं० माधवरावजी सप्रे से इनका घनिष्ट परिचय हुआ। इन्होंने सप्रेजी को समय समय पर साहित्यिक सहायता दी है। गुरूजी कालाहंडी रियासत में स्कूलों के डिप्टी इन्स्पेक्टर तथा अंगरेज़ी मिडिल स्कूल के हेडमास्टर भी रह चुके हैं। ये कुछ दिनों तक रायपुर के राजकुमार कालेज में छुईखदान रियासत के राजकुमार के शिक्षक का भी कार्य करते रहे। आजकल ये मेल नार्मल स्कूल, जबलपुर में शिक्षक हैं और विशेषतया हिन्दी-साहित्य और व्याकरण पढ़ाते हैं। गुरूजी ने सन् १९२० में, लगभग एक वर्ष तक प्रयाग के इण्डियन प्रेस में "बालसखा" और 'सरस्वती' का सम्पादन किया है। इनको नागरी—प्रचारिणी सभा की ओर से साहित्यिक सहायक का स्थान अर्पित किया गया था; पर अस्वस्थता के कारण ये उसे स्वीकार न कर सके। और भी दो एक संस्थाओं ने इन्हें सम्पादक का कार्य देने का निश्चय किया था ; पर घर न छोड़ने की इच्छा के कारण ये उसे स्वीकार न कर सके। एक वर्ष तक ये जबलपुर के राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर में भी सम्पादक रह चुके हैं।

शिक्षक का कार्य आरम्भ करने के पश्चात् इनकी रुचि हिन्दी-साहित्य की ओर हुई और ये समाचार-पत्रों में साहित्य-सम्बन्धी लेख तथा कविताएँ लिखने लगे। इनके अधिकांश लेख तथा कविताएँ सरस्वती में निकली हैं। गुरुजी के कई एक समालोचनात्मक अंग्रेजी लेख बम्बई के प्रसिद्ध मासिक पत्र "इण्डियन एजुकेशन" में प्रकाशित हुए हैं। आज कल भी ये कभी-कभी समाचार पत्रों में तथा मासिक पत्रों में लेख तथा कविताएँ लिखा करते हैं। इनकी भाषा व्याकरण-सम्मत और सहज रहती है। इनकी कई कविताएँ और लेख कल्पित नामों से निकले हैं। इनकी कविताएँ प्रसाद-पूर्ण और भावमय रहती हैं, तथा लेख न्यायसंगत और सारगर्भित होते हैं। कभी कभी उनमें विनोद की मात्रा भी पाई जाती है। भाषा पर इनका असाधारण अधिकार है।

अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी के अतिरिक्त इनको उड़िया, बंगला और मराठी का भी साधारणतया अच्छा ज्ञान है। हिन्दी व्याकरण तथा भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण का इन्होंने विशेष अध्ययन किया है। ये हिन्दी-भाषा तथा व्याकरण में प्रमाण माने जाते हैं।

आरम्भ में इन्होंने "सत्य प्रेम" नामक एक उपन्यास और ब्रजभाषा में "भौमासुर-वध" तथा "विनय-पचासा" नामक दो पद्य-ग्रंथ लिखे थे। फिर इन्होंने व्याकरण-सम्बन्धी "भाषा-वाक्य-पृथक्करण" तथा "सहज हिन्दी-रचना" नामक दो पुस्तकें लिखीं, जो मध्यप्रदेश के हिन्दी स्कूलों में प्रचलित हैं। इसके पश्चात् उन्होंने एक उड़िया पुस्तक के आधार पर "पार्वती और यशोदा" नामक उपन्यास लिखा। इन्होंने "अत्याचारी" नामक एक पद्य-विनोद-सम्बन्धिनी पुस्तक भी लिखी है। हाल में जबलपुर के मिश्रबन्धु-कार्यालय ने इनकी फुटकर कविताओं का संग्रह "पद्यपुष्पावली" नाम से प्रकाशित किया है।

गुरुजी की सब से अधिक महत्वपूर्ण और विद्वत्ता-सूचक पुस्तक हिन्दी का व्याकरण है जिसे इन्होंने कई वर्षों के परिश्रम के बाद लिखा है। और

जिसे काशी की नागरी-प्रचारणी सभा ने प्रकाशित किया है। इस व्याकरण का संशोधन करने के लिए विद्वानों की जो समिति बनाई गई थी, उसकी सम्मति में यह ग्रन्थ अद्वितीय ठहराया गया था। उक्त समिति के एक प्रतिष्ठित सदस्य ने तो यह कहा था कि गुरुजी की योग्यता और कीर्ति स्थापित करने के लिए यही एक ग्रंथ बस है। इस पुस्तक की रचना के लिए मध्यप्रदेश की सरकार ने इनको एक स्वर्ण-पदक सधन्यवाद प्रदान किया था। "हिन्दी-व्याकरण" के कई संक्षिप्त संस्करण सभा ने प्रकाशित किए हैं, जो पाठशालाओं में प्रचलित हो गये हैं। मध्यप्रदेश में आजकल जो हिन्दी-पाठ्य-पुस्तकें प्रचलित हैं उनकी रचना में इनका एक प्रमुख भाग था। ये रीडरें विषयों की विविधता और भाषा की शुद्धता की दृष्टि से आदर्श समझी जाती हैं।

गुरुजी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग और जबलपुर के मध्यप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य हैं। ये मध्यप्रदेश की टेक्स्ट-बुक कमेटी के मेम्बर और जबलपुर के कवि-समाज के सभापति हैं। ये मध्यप्रदेश के शिक्षा-विभाग की कई एक उच्च हिन्दी-परीक्षाओं के परीक्षक भी हैं।

इन में समालोचना करने की शक्ति बढ़ी-चढ़ी है। मध्यप्रदेश में ये एक अच्छे समालोचक समझे जाते हैं। अशुद्ध भाषा और विदेशी प्रयोगों को ये तुरन्त ताड़ जाते हैं।

इन्होंने अभी दो पुस्तकें और लिखी हैं जो इस समय अप्रकाशित हैं। एक 'सुदर्शन' नामक नाटक और दूसरी "हिन्दुस्तानी शिष्टाचार" है।

गुरुजी साहित्यिक तथा सामाजिक सभाओं में बहुधा योग देते हैं; और समय समय पर व्याख्यान भी दिया करते हैं। ये जातीयता के पक्ष-पाती और सामाजिक अत्याचारों के विरोधी हैं।

गुरुजी की रहन-सहन बहुत सादी है। ऊपरी आडम्बर इन्हें पसन्द नहीं। ये स्वयं शिष्टाचार का पालन करते हैं। इसलिये हिन्दुस्थानी लोगों

की अशिष्टता और कलह-प्रियता पर इन्हें बड़ा खेद होता है। ये विनोद-प्रिय और साथ ही सत्यवादी तथा स्पष्टवक्ता हैं। इनमें प्रायः इन गुणों का अभाव है जिनके द्वारा लोग येनकेन प्रकारेण अपना कार्य सिद्ध कर लेते हैं; अथवा बड़े लोगों के कृपा-पात्र हो जाते हैं।

ये आजकल सकुटुम्ब जबलपुर ही में रहते हैं। इस समय इनकी सन्तति में चार पुत्र हैं।

यहाँ इनकी कविता के नमूने दिये जाते हैं :—

(१)

सहगमन

छूटने पाया न कङ्कण ब्याह का।
आगया आदेश विक्रमशाह का॥
शीघ्र ही जयसिंह जाओ युद्ध पर।
देशहित के हेतु सर्वस त्याग कर॥
पास पत्नी के गये ठाकुर तभी।
और उसको पत्र दे बोले अभी॥
शीघ्र ही फिर भेंट कर उसको हिये।
हट गये झटपट निकलने के लिये॥
देवकी ने धीर अपना खो दिया।
प्राणपति से झट लिपट कर रो दिया॥
पर अचानक भाव उसका फिर गया।
मोह का परदा हृदय से गिर गया॥
प्रेम से उसने सुना पति का कहा।
खेद पति के चित्त का जाता रहा॥
किन्तु जब आई बिछुड़ने की घड़ी।
गाज सी दोनों मनों पर आ पड़ी॥

मोह का सङ्केत फिर कर अनसुना।
धर्म का कर्तव्य दोनों ने गुना॥
देवकी ने शीघ्र रणकङ्कण दिया।
बाँध उसको हाथ में पति ने लिया॥
चिन्ह दोनों साथ ले उत्साह में।
जा रहे जयसिंह हैं रन-राह में॥
सुध प्रिया की मार्ग में आती रही।
किन्तु रन-मैदान में जाती रही॥
युद्ध में तो और ही कुछ ध्यान है।
पूर्ण हिय में देश का अभिमान है॥
प्राण क्या है देश के हित के लिये।
देश खोकर जो जिये तो क्या जिये॥
मग्न हैं जयसिंह रन के चाव में।
ला रहे हैं शत्रु को निज दाव में॥
घाटियाँ, मैदान, पर्वत, खाइयाँ।
सब कहीं हैं सूरमा औ दाइयाँ॥
रातदिन है अग्नि-वर्षा हो रही।
रातदिन है पूर्ण लोथों से मही॥
व्योम जल थल सब कहीं है रन मचा।
युद्ध के फल से नहीं कोई बचा॥
एक दिन जयसिंह धावा मार कर।
दल सहित जब जा रहे थे केन्द्र पर॥
एक दाई घायलों के बीच में।
दिख पड़ी सोती रुधिर की कीच में॥
ध्यान से जयसिंह ने उसको लखा।
और फिर उसके हृदय पर कर रखा॥

हो विकल उसको जगाने वे लगे।
मर चुकी थी वह भला अब क्यों जगे ॥
घायलों की वीर-सेवा में लगी।
और फिर प्रिय ध्यान में पति के पगी ॥
गोलियां से शत्रु के भागी न थी।
चोट घातक झेल वह जागी न थी ॥
शोक में जयसिंह कुछ बोले नहीं।
थे जहाँ बैठे रहे बैठे वहीं ॥
दुःख में अब घोर चिन्ता छा गई।
प्रियतमा कैसे यहाँ कब आ गई ॥
आ गये उस काल सेनापति वहाँ।
वीर नारी की लखी शुभ गति वहाँ ॥
वीर होकर भी हुई उनको व्यथा।
आदि से कहने लगे उसकी कथा ॥
दाइयाँ कुछ आपके दल के लिये।
कुछ समय पहिले मुझे थीं चाहिये ॥
की गई इसकी प्रकाशित सूचना।
देवकी ने शीघ्र भेजी प्रार्थना ॥
दाइयों में इस तरह भरती हुई।
अन्त लों निज काज यह करती हुई ॥
शत्रु के अन्याय से मारी गई।
पायगा फल दुष्टता का निर्दई ॥
हाल सुन जयसिंह का दुख बढ़ गया।
शत्रु पर अब क्रोध उनको चढ़ गया ॥
सौंप कर मृत देह सेनापति-निकट।
प्रण किया सब से उन्होंने यह विकट ॥

भस्म जब मैं कर चुकूँगा रिपु-नगर।
तब पड़ेगी अग्नि इस प्रिय देह पर ॥

और जो मैं ही मरूँ रिपु हाथ में।
फूँकना मुझको प्रिया के साथ में ॥

दूसरे दिन व्योम से जलता हुआ।
पर कटे खगराज सा चलता हुआ ॥

केन्द्र से कुछ दूर रव करके बड़ा।
युद्ध का नभ-यान आकर गिर पड़ा ॥

नष्ट पुर को यान ने था कर लिया।
मार्ग रक्षित केन्द्र का था धर लिया ॥

किन्तु रिपु का क्रुद्ध गोला चल उठा।
और उसकी आग से यह जल उठा ॥

साथ ही प्रेमी युगल बुझकर जले।
और दोनों साथ ही जलकर चले ॥

एक कङ्कण से बँधे थे वे यहाँ।
दूसरे से जा बँधे दोनों वहाँ ॥

पर दिया था बुझ चुका यह आग से।
या बुझे उस दीप के अनुराग से ॥

सैनिकों ने खींच इसमें से लिया।
उस पुरुष को देश का जो था दिया ॥

प्रेम-बन्धन जन्म लय का सार है।
प्रेम-बन्धन देश का उद्धार है।

प्रेम-बन्धन देवकी जयसिंह का।
तोप से भी रिपु न खण्डित कर सका ॥

(२)

शिवाजी

जीती जाती हुई जिन्होंने भारत वाजी।
निज बल से मलमेट विधर्मी मुगल कुराजी॥
जिनके आगे ठहर सके जंगी न जहाजी।
हैं जग-जाहिर वही छत्रपति भूप शिवाजी॥१॥

वीर-वंश में स्वयं जन्म था जिस माता का।
वीर-कोख से वीर उसी ने जाया बाँका॥
वीरोचित कर्त्तव्य उसी ने सुत का ताका।
अग्र-शोच से गिरी उसी के मुगल-पताका॥२॥

राजपूत का रक्त मिला उसकी नस नस में।
क्यों फिर आकर शक्ति न होती उसके बस में॥
थे जिसके सब चरित अलौकिक बाल-वयस में।
करता सम्भव क्यों न असम्भव वह साहस में॥३॥

दादो जी से वीर विप्र ने जिसे बढ़ाया।
रामदास ने जिसे धर्म-उपदेश सुनाया॥
वही शिवाजी वीर वीर माता का जाया।
रहने देता भला कहीं निज देश पराया॥४॥

देश, नाम, कुल, धर्म हिन्दुओं का मिट जाता।
'अपना' शब्द पुनीत न कोई कहने पाता॥
आर्य्य गुणों का गान कहाँ से कोई गाता।
यह अवतारी वीर न जो भारत में आता॥५॥

करके उसका ध्यान चित्त होता है चंचल।
जिसके कारण बँधा हिन्दुओं का बिखरा बल॥
उसे अश्व पर देख फूल उठता था रण-थल।
विकट मरहठे वीर जूझते थे दल के दल॥६॥

दूर दूर जय-ध्वजा शिवाजी ने फहराई।
निज स्वतन्त्रता गई हिन्दुओं ने फिर पाई॥
एक बार फिर जन्म-भूमि यह 'निज' कहलाई।
राम-राज्य की छटा दृष्टि में फिर भी आई॥७॥
तिल-तिल भारत-भूमि जीत यवनों के कर से।
रच राई का मेरु बसाया ऊजड़ फिर से॥
अष्ट-प्रधान-प्रबंध अनोखा कर जमधर से।
पाली पुत्र समान प्रजा अपनी आदर से॥८॥
सहे देश के लिए उन्होंने नाना संकट।
गिने न पग के कष्ट वाट भी लगी न ऊवट॥
पग पग छिन छिन यद्‌पि खड़े थे सिर पर घातक।
तो भी उनका झुका न रिपु के आगे मस्तक॥९॥
कठिन विपत में भी न उन्होंने त्यागा धीरज।
गूढ़ अनूठी युक्ति सोच साधा निज कारज॥
आपस का विश्वास दूसरे देशों को तज।
आ धरता था सीस मरहठे के पद की रज॥१०॥
निज भुजबल से शीघ्र राष्ट्र को "महा" बनाया।
हरद्वार, गुजरात, सेतु, जगदीश जगाया॥
वैश्यों को भी समर-भूमि का खेल दिखाया।
पल में कर दी दूर परालम्बन की माया॥११॥
करने को उद्धार देश का कुटिल मुग़ल से।
देशभक्ति थी भरी कुटी पर्य्यन्त महल से॥
वीर मरहठे हटे न मरकर भी निज थल से।
सिसोदियों सम कटे खड़े घाटी में बल से॥१२॥
राजनीति में रही शिवाजी की चतुराई।
जिसके आगे चली न मुग़लों की मुग़लाई॥

थी उनकी निर्दोष बुराई सदा भलाई।
वैरी ने भी छिपे बड़ाई उनकी गाई ॥१३॥
शूर, साधु, कवि, गुणी इन्हें थे जी से प्यारे।
दया भक्ति नय शील रहे वे हिय में धारे॥
गुरु गो द्विज के चरण प्रेम से सदा पखारे।
किया न कोई काम बिना नृप-धर्म बिचारे ॥१४॥
क्या सेना, क्या सदन, बनिज क्या खेती खाता।
क्या शिक्षा, क्या धर्म, प्रजा-राजा का नाता॥
क्या स्वराज्य, क्या सभा, पक्ष सीरा, क्या तांता।
रहा सभी में विद्यमान यह भारत-त्राता ॥१५॥
पर विधि ने करतूत यहाँ भी अपनी साजी।
वीर-वंश में लाय हाय! उपजाया पाजी॥
कहाँ छत्रपति भूप आर्य-कुल-मुकुट शिवाजी।
कहाँ कलङ्की, क्रूर, कुटिल, कायर संभाजी ॥१६॥
भरतखंड में आज शिवाजी यदपि नहीं हैं।
तो भी उनके चिन्ह यहाँ पर सभी कहीं हैं॥
इनसे उनकी कीर्त्ति-लता नूतन उलही है।
नये जोश से भक्ति-भाव की नदी बही है ॥१७॥
उचित यही है करें वीर-पूजा मिल हम सब।
यही धर्म है सत्य यही है सच्चा करतब॥
भारत पर अति कठिन विपति आती है जब जब।
इसी भाँति अवतार ईश लेते हैं तब तब ॥१८॥

(३)

नैकटाई

काल-चाल से हैं खुले, तेरे भाग्य विचित्र।
भारत में तू होगई, कंठी तुल्य पवित्र ॥ १ ॥

धज्जी, चिंदी, चीथड़ा, लत्ता है तू आप।
पर अनिष्ट सर्वत्र तव, राज्य रहा है व्याप॥ २॥
रक्खा है जिस कंठ पर, निर्धनता का भार।
लज्जा तज उसने तुझे, किया गले का हार॥ ३॥
बोल रहे हैं इसलिए, नहीं जानते लोग।
लिपटी है तू कंठ में, बनी कंठ का रोग॥ ४॥
परवशता की है पड़ी, साँकल जहाँ कठोर।
लगी हुई है तू वहीं, फाँसी सी चहुँ ओर॥ ५॥
तुझे कंठ में देखकर, बधता है यह ध्यान।
बन्दी अपने हाथ से, हुई भरत-सन्तान॥ ६॥
होता है तुझसे प्रकट, यही भाव गम्भीर।
पराधीनता-रूप तू, है पंचाली चीर॥ ७॥
पड़ी तुझे लख हृदय पर, जाता है हिय काँप।
मानों छाती पर पड़ा, लोट रहा है साँप॥ ८॥
गले लपट तू कह रही, मानों वचन भविष्य।
ढाँकेंगे तन अन्त में, तुझ से तेरे शिष्य॥ ९॥
इससे बढ़कर और क्या, होगा जी को सोग।
असहयोग की वस्तु से, है अब तक सहयोग॥१०॥
कंठ-पाश तज बाहु में, बाँधो अब वह यन्त्र।
जिसमें है विधिवत् भरा, स्वावलम्ब का मन्त्र॥११॥

(४)

दासीरानी

हेमलता के जी में नाना चिन्तायें होती हैं आज—
हे विधि! बिगड़ी बात बनाना, तेरे ही कर है सब लाज।
मुझे लिवा जाने को प्रियतम आज धूम से आवेंगे;
निराधार सी जान देह मम अपनी देह बनावेंगे॥ १॥

पर मैं दासी-बेटी होकर नृप-कन्या कहलाती हूँ;
फिर मैं यह पदवी भी खोकर रानी होने जाती हूँ।
प्राणनाथ यह सुनकर जी में हाय! करेंगे भारी खेद;
तोभी नहीं छिपाने की मैं प्यारे पति से कोई भेद ॥ २ ॥
मरते समय कहा था माँ ने, बेटी! अब मैं जाती हूँ;
सत्यभेद यह और न जानें जो मैं तुझे बताती हूँ।
बड़ी वैस में एक कुमारी सुन्दर मैंने पाई थी;
निस्संतान पिता को प्यारी गुड़िया सी वह भाई थी ॥ ३ ॥
विधि ने गुड़िया वृद्ध भूप की पल में जग से उठवा ली;
पर मैंने फिर उसी रूप की उसी ठौर दूजी पाली।
कठिन गूढ़ कारज स्वामी-हित साधा था यह तब माँने;
आज कहीं होती वह जीवित सुख पाती तू मनमाने ॥ ४ ॥
क्या जाने निज माता ने क्यों मुझे न पाला जनकर आप;
सोचा कौन लाभ मेरा यों जो लादा सिर पर यह पाप?
यद्यपि अपने प्रभु के हित में है सेवक को उचित प्रपंच;
निरा ठाठ है भला जगत में, नहीं कपट का पाया मंच ॥ ५ ॥
क्यों जनमी मैं जिसके कारण चार जनों ने पाया क्लेश!
इतने पर भी पति ही के मन में अब उपजाऊँगी द्वेष।
बात मानकर रानी-माँ की, जो मैं पति से करूँ दुराव,
दशा भोगकर दक्ष-सुता की बना सकूँगी नहीं बनाव ॥ ६ ॥
तोभी बूढ़े धर्म-पिता को मैं कुछ भी न बताऊँगी;
बढ़ी हुई उनकी चिन्ता को कसे अधिक बढ़ाऊँगी।
दोनों दिशि दहती है दारुण दई! दहकते दुख की दाह;
कुछ तो दीन-विनय मेरी सुन, बता मुझे बचने की राह ॥ ७ ॥
पर जो होनी है सो होगी, चिन्ता से क्या होता है!
चिन्ता से सब आशा रोगी प्रिय जीवन को खोता है।

पिता-भवन से मेरा नाता मानों अब सब छूटेगा,
उचित न्याय मेरा हिय-ज्ञाता पति ही से अब टूटेगा ॥ ८ ॥
नृप रणधीरसिंह के द्वारे धूम-धाम है आज बड़ी;
भोली हेमलता मन मारे पिता-पास है विकल खड़ी।
बोल लाज-वश नहीं निकलता, दृष्टि भाव बतलाती है;
बाहर हिय में भरी विकलता आँसू बनकर आती है ॥ ९ ॥
मूक हृदय बेटी का पढ़कर समझाते हैं नृप रणधीर—
बेटी ! मेरी चिन्ता मत कर; हो मत मन में अधिक अधीर।
जैसे होगा दुखिया अपना जीवन सुखी बिताऊँगा;
पर यह जग है मुझको सपना, इसमें जी न लगाऊँगा ॥ १० ॥
बेटी ! होकर पति की प्यारी तू रहना सुख से पति संग;
पति के लिये बनी है नारी; है वह उसका आधा अङ्ग।
घर का काम-काज सब करना; सुनना सास ससुर की बात;
किसी भाँति भी मान न धरना; साहस से सहना उत्पात ॥ ११ ॥
नृप-कन्या फिर रानी होकर करना नहीं गर्व का लेश;
दया-भाव रखना दीनों पर; भूल न जाना मम उपदेश।
सुनकर तेरा सुखमय जीवन और जिऊँगा मैं कुछ वर्ष;
बीर पुत्र की तू माता बन दूना करना मेरा हर्ष ॥ १२ ॥
फिर ब्रजमोहनसिंह भूप से बोले सरल; वृद्ध नरनाथ;
बल, विद्या, गुण, विनय, रूप से किया आपने मुझे सनाथ।
तो भी मेरा एक सिखापन गाँठ बाँध मन में धरियो;
कीजो सदा धर्म से शासन, स्वत्व प्रजा के मत हरियो ॥ १३ ॥
ईश-भजन में अपना जीवन अब मैं शेष बिताऊँगा;
अपनी सभ्य प्रजा का शासन सौंप प्रजा को जाऊँगा।
बढ़ती हैं चिन्ताएँ मन में जबलौं तन में स्वासा है।
इसी काम से चौथे पन में मुझे शांति की आशा है ॥ १४ ॥

हेमलता पति-गृह में आकर सबसे मिलती-जुलती हैं,
तो भी पति से जी की जी भर कहे बिना नित घुलती हैं।
अपने बल-भर हिय की आगी उसने दी न प्रकट होने;
जब उसास से वह कुछ जागी रोकी छिपे आँसुओं ने ॥ १५ ॥
रंग-महल में एक दिवस जब पति से उसका हुआ मिलाप,
कथा गूढ़ अपने दुख की सब उनसे कहकर किया विलाप—
मेरे कारण आप देश में व्यर्थ कलंकित होवेंगे;
लख रानी के मुझे भेष में सुख की नींद न सोवेंगे ॥ १६ ॥
तो भी नहीं इष्ट सपने भी मुझे आपसे दूर निवास;
तजता है कोई अपना भी कहीं मान निन्दा का त्रास!
मैं दासी की दासी रहकर गेह-काज सब साधूँगी,
ऊँचा-नीचा सब कुछ सहकर पति के पद आराधूँगी ॥ १७ ॥
मुझको किसी और रानी से होगा नहीं भूलकर द्वेष;
अल्प प्रेम भी पा स्वामी से प्रिय होगा दासी का भेष।
मुझे आप के सुख में सुख है, चाहे मैं भोगूँ दुख आप;
लगता नहीं प्रीति में दुख है, जैसे शुद्ध हृदय में पाप ॥ १८ ॥
वही करें अब स्वतन्त्रता से जिसमें आप न पावें खेद;
तोभी मेरे वृद्ध पिता से कहे न कोई मेरा भेद।
मेरे तन, मन के मनमाने आप एकही स्वामी हैं;
मेरे लिये उचित जो जानें, उसमें मेरी हामी है ॥ १९ ॥
व्याकुल सुना विलाप प्रिया का व्रजमोहन ने सब चुपचाप
पर प्रभाव उसकी घटना का हुआ न कुछ भी उनको आप।
तो भी सब कहना रानी का सत्य उन्होंने मान लिया;
खेद बाँटकर उसके जी का व्याकुल मन कुछ शान्त किया ॥ २० ॥
फिर धीरज धर मधुर सुधा से बोले, भूप नम्र ये बैन;—
प्यारी! क्या नृप की कन्या से अधिक नहीं कोई सुखदैन?

क्या सिंहासन सदाचार से, मुकुट धर्म से भारी है ?
आर्य-रक्त क्या शुद्ध प्यार से कहीं अधिक सुखकारी है ॥ २१ ॥
सरल तुम्हारा यह भोला मन मणि है चिन्ता खोने में;
तिसपर पूर्ण चन्द्र सा आनन मधुर गंध है सोने में ।
तन मन की सुन्दरता पूरी मिलती नहीं साथ सम-भाव;
पर तुम ज्यों छवि में हो रूरी, त्योंही है तव मृदुल स्वभाव ॥२२॥
पाय सुवासित हेमलता सी हेमलता को हिय के बीच;
मुझे और रानी है दासी, ऊँचा कुल है मुझको नीच ।
राज-पाट, प्रभुता, तन, मन, धन, मेरा सभी तुम्हारा है;
तुमको पाय मुझे जग-बंधन अब मानो छुटकारा है ॥ २३ ॥
इतना कहकर गले लगाया राजा ने निज रानी को;
जग में सच्चा पन्थ दिखाया झूठे कुल-अभिमानी को ।
एक बरस जब बड़े मोद में एक मास सा बीत गया,
सुन्दर पुत्र खिलाय गोद में सुख दोनों को हुआ नया ॥ २४ ॥
हेमलता ब्रजमोहन जग में सुरपुर का सुख पाते हैं;
चलकर सदा प्रेम के मग में मन की शान्ति बढ़ाते हैं ।
यद्यपि दोनों सातों सुख से सुखियों को तरसाते हैं,
तोभी दीन प्रजा के दुख से सहज दुखी हो जाते हैं ॥ २५ ॥

(५)

बालक

माता-तन का सार, पिता का तू सर्वस है,
दोनों का संसार, वंश का विस्तृत यश है ।
माता-पितानुराग प्रकट तेरा यह तन है,
मूर्तिमान सौभाग्य, पुत्र, तू अद्भुत धन है ॥१॥
जब तू जग में आय, भूमि पर गिरकर रोया,
माँ ने हिये लगाय, कष्ट सब अपना खोया ।

सुन तेरा प्रिय रुदन, पिता का मन यों जागा,
हुई झोपड़ी भवन, मिला सबको मुँह-माँगा ॥२॥
प्रबल प्रेम में पगे, पिता-माँ तन के फल से,
बली समझने लगे आपको तेरे बल से,
भोला रूप निहार, हुये दोनों मन भोले,
मानों इष्ट विचार, हृदय ने निज पट खोले ॥३॥
अन्धकार मिट गया, हुआ चहुँ ओर उजेला,
बास बसा फिर नया, भरा ऊजड़ में मेला।
चिन्तायें दिनरात, जलाती थीं जो मन को,
सो अब होकर शान्त, पालती है शिशु-तन को ॥४॥
तेरा जीवन-भेद बुद्धि में नहीं समाता,
तो भी मान अभेद, मानता है मन नाता।
यह सम्बन्ध अटूट एक ही धर्म जगत में,
सच्चे सुख की लूट संग है सदा विपत में ॥५॥
माँ को जब टक लगा, निरखता तू पय पीते,
भरता ममता जगा पयोधर है तू रीते।
फिर अवाक मुसुकान, कुन्द की खिली कली-सी,
लगती सुधा समान मधुर है मा को जी-सी ॥६॥
तेरे सब व्यापार, खेलना, खाना, सोना,
भाषा, भाव, विचार, सभी है केवल रोना।
करे न इसका मान भले ही भाषा-ज्ञाता,
पर निज गिरा समान इसे गिनती है माता ॥७॥
एक वर्ण आकार-सहित पद जटिल बनाकर,
दरसाता है प्यार, क्रोध, इच्छा तू सब पर॥
फिर स्वर सप्त सुनाय हृदय सब का हरता है,
माता-मन सुख पाय भरा भी फिर भरता है ॥८॥

राजा-सम हठ कठिन कभी तेरी ठनती है,
पर यह बिगड़ी रहन एक पल में बनती है।
है पदार्थ वह कौन जिसे तू कर न बढ़ावे ?
नहीं धारता मौन, न जब लौं उसको पावे ॥९॥
कोमल कमल-समान निरख तेरा तन चंचल,
करते है छवि-पान मधुप मा के दृग पल पल।
चूम चूम शशि-बदन, पान कर रूप-सुधा को,
होकर भी अति मगन नया नित सुख है मा को ॥१०॥
तेरा सोना निरख और सोते मुसकाना,
होता है सुख अलख,पाय ज्यों छिपा खजाना।
यह सोना अनमोल अधिक सोने से धन है,
मुहरों से भी गोल, जगत में सच्चा धन है ॥११॥
तेरे सुख के लिये कष्ट सहती है माता,
तुझे लगाये हिए उसे दुख नहीं सताता।
खान, पान, व्यवहार, नींद, श्रम, सब कुछ मित है;
है नित यही विचार, पुत्र का किस में हित है ॥१२॥
तुझको तेरे मित्र, खिलौने हैं अति प्यारे,
मन से उनके चित्र, नहीं करता तू न्यारे।
उन्हे देखकर भूल, बढ़ाकर कर मिलता है,
अपना सब दुख भूल, फूल-सा तू खिलता है ॥१३॥
कभी कभी पय-पान, स्वप्न में तू करता है,
देकर माँ को ज्ञान, मोह उसका हरता है।
फिर उदास मुख बना, नींद में तू रोता है,
दशा देख दुख घना, दीन माँ को होता है ॥१४॥
विद्या, कला, प्रवास, सभी कुछ माँ को तू है;
तूही उसकी आस, सदा सर्वत्र हितू है।

पट, भूषण, छवि, साज, रूप, वय तूही सब है;
तूही राज-समाज, पुत्र, तूही उत्सव है ॥१५॥
सत्य सनातन-धर्म, पिता-माता को सुत है।
पालन है शुभ कर्म, पढ़ाना मंगल-युत है।
सदाचार उपदेश, तीर्थ का पुण्य अकथ है,
देस निरोग, सुवेश, मुक्ति का निश्चित पथ है ॥१६॥
जिनके धोये वसन न बिगड़े शिशु-पद-रज से,
चूमे कोमल कर न जिन्होंने खिले जलज से ;
थके न जो बकवाद, बोलकर बालक-भाषा,
उनका विभव प्रमाद, वृथा है शुभगति-आशा ॥१७॥

(६)

बेटी की विदा

प्यारी बहिन, सौंपती हूँ मैं अपना तुम्हें खजाना ;
है इस पर अधिकार तुम्हारे बेटे का मनमाना।
रक्त मांस हड्डी, तन मेरा है यह बेटी प्यारी ;
करो इसे स्वीकार, हुई यह अब सब भाँति तुम्हारी ॥ १ ॥
पूजे कई देवता हमने तब है इसको पाया ;
प्राण समान पालकर इसको इतना बड़ा बनाया।
आत्मा ही यह आज हमारी हमसे बिछुड़ रही है ;
समझाती हूँ जी को तो भी धरता धीर नहीं है ॥ २ ॥
बहिन ढिठाई माता की तुम मन में नेक न धरियो ;
इस कोमल बिरवा की रक्षा बड़े चाव से करियो।
है यह नम्र मेमने से भी, भीरु मृगी से बढ़कर ;
कड़ी बात या चितवन से यह कँप जाती है थर थर ॥ ३ ॥
है गँवार यह भोली, इसने नहीं शिष्टता जानी ;
तिस पर भी गुरुजन की आज्ञा बड़े प्रेम से मानी।

साँचे में तुम इसे ढालियो, कभी न यह तड़केगी ;
बहिन सिखाने से चतुराई बेटी सीख सकेगी ॥ ४ ॥
यह गुड़िया, यह लक्ष्मी अपनी, जीवन-मूल दुलारी,
हृदय थामकर करती हूँ मैं अब आँखों से न्यारी ।
माता-नेह सोच तुम मन में दुख मेरा अनुमानो ;
ममता छिपती नहीं छिपाये, बहिन सत्य यह जानो ॥ ५ ॥
इसका रूप निहार दिव्य मैं पल पल सुख पाती थी ;
गान-समान सुरीली बोली इसकी मन भाती थी ।
बहिन तुम्हें भी ये सब बातें जान पड़ेंगी आगे ;
अपने नैन रखोगी इस पर जब तुम अनुरागे ॥ ६ ॥
इसकी मंद हँसी से मेरा मन अति सुख पाता था ;
कठिन घाव भी जिससे दुख का अच्छा हो जाता था ।
इसे उदास देख आँखों में भर आता था पानी ;
छिपी नहीं है, बहिन, किसी से माता-प्रेम कहानी ॥ ७ ॥
बड़ी लालसा भी निज मन की इसने नहीं बताई ;
कर संकोच कठिन पीड़ा भी अपनी सदा छिपाई ।
तोभी मैं सब लख लेती थी इसके बिना कहे ही ;
योंही तुम इसकी सब बातें लखियो, बहिन सनेही ॥ ८ ॥
अपना मांस-पिंड देती हूँ मैं तन से कर न्यारा ;
है यह जीवन मेरे जी का, आँखों का है तारा ।
इस अनाथ बच्चे का पालन माता सम तुम कीजो ;
मेरी इस बलहीन दशा में बहिन, बाँह गह लीजो ॥ ९ ॥
करो बहिन, स्वीकार दयाकर मेरी इतनी बिनती ;
बच्चों में अपने तुम करियो इस बेटी की गिनती ।
दीजे बहिन, भरोसा मुझको हाथ हाथ में देकर,
बेटी-सम पालेंगी इसको हम माता-सम सेकर ॥१०॥

मेरी ये आँखें पीती थीं नित जो रूप मनोहर ;
क्या उसके दर्शन का मुझको फिर न मिलेगा अवसर ।
जिस बोली से धीरे धीरे इसे बुलाती थी मैं,
क्या वह भी अब मूक रहेगी रख जी की जी ही में ॥११॥
हा मेरी अनमोल लाड़ली ! प्राणाधार दुलारी !
क्या तू मुझे नहीं समझेगी अब अपनी महतारी ?
तुझे नई माता मिलती है, मैं तुम को खोती हूँ ;
यही सोच सुख में भी तेरे, बेटी, मैं रोती हूँ ॥१२॥
हाय ! आज से हुआ हमारा यह घर भरा अँधेरा,
होकर निपट निरास न क्यों अब हृदय फटेगा मेरा !
अब मेरे इस सूने घर को उजला कौन करेगी !
कौन मधुर बातों से मेरा रीता हृदय भरेगी ॥१३॥
कौन सुरीली बीन बजाकर मधुर गीत गावेगी !
घर में कौन लड़कियाँ छोटी न्योत न्योत लावेगी !
सखियों के सँग कौन खायगी, खेलेगी झूलेगी !
किसको सुन रामायण पढ़ते यह छाती फूलेगी ॥१४॥
हा बेटी ! हा गुड़िया मेरी ! हा मेरी सुकुमारी !
तेरे बिना हृदय यह मेरा पावेगा दुख भारी ।
केवल देव दयामय जो दुख लख सकता है जनका ;
वही धीर दे दूर करेगा संकट मेरे मन का ॥१५॥
जाकर वहाँ दूर, हे बेटी, मुझे भूल मत जाना ;
कभी कभी इस दुखिया की भी सुध निज मन में लाना ;
रो मत, बेटी ! जा अपने घर संग नई माता के ;
लीजे बहिन, इसे अब, देती हूँ मैं सीस नवा के ॥१६॥

मिश्रबंधु
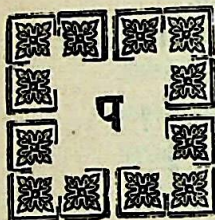
पण्डित गणेशविहारी मिश्र, माननीय पंडित श्यामविहारी मिश्र और रायबहादुर पंडित शुकदेवविहारी मिश्र हिन्दी-संसार में "मिश्रबन्धु" के नाम से प्रसिद्ध हैं। मिश्रबन्धु सहोदर बन्धु हैं। साहित्य का जो कुछ निर्माण ये करते हैं, उसमें तीनों भाई सम्मिलित रहते हैं। इनके ग्रन्थों में से कोई यह निर्णय नहीं कर सकता कि कौन सी रचना किसकी है। यहाँ तक कि कभी-कभी एक एक दोहा, सवैया और कवित्त की रचना भी सब मिलकर करते हैं। इसीसे यह सोचकर कि जब इनकी सम्पूर्ण साहित्य-रचना मिश्रित है, तो हमी इनके जीवन-चरित को अलग अलग लिखने का अपराध क्यों करें? सब की जीवनी एक साथ लिखी जा रही है।

मिश्रबन्धु कहने से यद्यपि मिश्रत्रय का ही बोध होता है, किन्तु ये चार भाई थे। बड़े भाई पंडित शिवविहारी लाल का जन्म सं० १९१७ में हुआ था। वे वकालत करते थे। कवि भी थे। किन्तु अब उनका देहान्त हो चुका है। मिश्रबन्धु नाम से तीन भाई ही अमर हैं।

मिश्रबन्धु कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। इनका गोत्र कात्यायन है। पहले ये पत्योंजा के द्विवेदी कहलाते थे। पर इनके पूर्वज पंडित राममिश्र को उनकी विद्वत्ता के कारण काशी के पंडितों ने मिश्र की पदवी दी। तभी से इनके वंश के लोग मिश्र कहलाने लगे। मुहूर्त-चिन्तामणि के प्रख्यात लेखक चिन्तामणि मिश्र इनके पूर्वज थे। इनसे सात पीढ़ी पहले के पितामह पंडित देवदत्तजी भगवन्तनगर (ज़िला हरदोई) में आकर बसे थे। उन्होंने एक महल बनवाया था। इसीसे अबतक उनके वंशधर कान्यकुब्जों में महल वाले कहलाते हैं। मिश्रबन्धुओं के बाबा पंडित बालगोविन्द मिश्र के बड़े भाई

पंडित मुखलालजी अपनी ससुराल इटौंजा (ज़िला लखनऊ) में आ बसे थे। पंडित मुखलालजी के इकलौते पुत्र का देहान्त हो जाने पर वे अपने भाई पंडित बालगोविन्दजी के पुत्र पंडित बालदत्तजी को पुत्रवत् प्यार करने लगे। इसीसे बालदत्तजी को भी उनके साथ इटौंजा जाना पड़ा। पंडित बालदत्तजी का जन्म सं० १८९१ में हुआ और वे १८९८ में इटौंजा आये। पंडित बालदत्त मिश्र प्रसिद्ध महाजन, ज़मींदार और कवि थे। उन्होंने बाल्यावस्था में हिन्दी और संस्कृत पढ़ी, और व्यापार-पटुता से बहुत धन और ज़मींदारी प्राप्त की। उनका स्वर्गवास सं० १९५६ में, लखनऊ में हुआ।

मिश्रबन्धुओं का बाल्यकाल इटौंजा में ही बीता। दोनों कनिष्ठ भ्राता खेल-कूद में खूब भाग लेते थे। दोनों भाई शतरंज, ताश, गंजीफा, चौसर और सूजापाटी के खेल में विशेष रुचि रखते थे। ये कभी-कभी इटौंजा के राजा इन्द्र विक्रमसिंह के यहाँ तक शतरंज खेलने जाया करते थे। ९,१० वर्ष की ही अवस्था में ये शतरंज के अच्छे-अच्छे खिलाड़ियों को मात कर देते थे। पंडित श्यामविहारी मिश्र चौसर के खेल में अधिक प्रवीण हैं और और पंडित शुकदेवविहारी ताश में। दोनों भाई गोली भी अच्छी खेलते थे और बन्दूक से उड़ती चिड़ियाँ और भागता मृग तक मार देते थे। धनुष बाण और गुल्ला गुलेल का भी अभ्यास था। तैरना बड़े भाई अच्छा जानते हैं, शेष दोनों भाई कम। बड़े होने पर टेनिस, क्रिकेट, बिलियार्ड, पिंगपांग, बैडमिन्टन आदि में भी दोनों कनिष्ठ भ्राताओं को कुछ कुछ अभ्यास हुआ। व्यायाम में चलने का इनको विशेष अभ्यास है।

हिन्दी कविता की ओर इन सब की रुचि बचपन से ही है। इनकी माता को तुलसीकृत रामायण, कवितावली तथा अन्यान्य भक्तों के बहुत से पद कंठस्थ थे। वे उन्हें सबेरे के समय में पढ़ा करती थीं। उन्हें सुनते सुनते इन सब को हिन्दी-कविता से अनुराग हो चला।

पंडित गणेशबिहारी मिश्र का जन्म माघ कृ० ४, सं० १९२२ में

हुआ। बाल्यावस्था में इनको हिन्दी, संस्कृत और फ़ारसी की शिक्षा मिली। ये बंगला, गुजराती आदि भाषायें भी जानते हैं तथा अंग्रेज़ी भी समझ लेते हैं। सं० १९४६ में अपने पूज्य पिताजी की अस्वस्थता के कारण इन्होंने गृहस्थी सँभालने का भार अपने ऊपर लिया। तब से ये अपना अधिकांश समय गृह-प्रबन्ध ही में व्यतीत करते हैं।

इनके दो विवाह हुये थे। पहली स्त्री का देहान्त हो जाने पर सं० १९४८ में इनका दूसरा विवाह हुआ। सं० १९६५ में दूसरी पत्नी का भी देहान्त हो गया।। दोनों स्त्रियों से इनके एक एक पुत्र हैं। बड़े पुत्र पंडित राजकिशोर मिश्र अमेरिका से इंजिनियरी का काम सीखकर आये हैं और आजकल बम्बई में खटाऊ मकनजी मिल में १०००) मासिक पर काम करते हैं। दूसरे पुत्र का नाम पंडित प्रतापनारायण है। ये भी बड़े भाई के पास काम सीखकर अब १२५) मासिक पर नौकर हैं। इनके एक पुत्र राजप्रताप है।

मिश्रजी लखनऊ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के २०-२२ वर्ष से मेम्बर थे। आजकल वाइस चेयरमैन हैं। ये बड़े विद्यारसिक हैं। पढ़ने का इन्हें व्यसन है।

पंडित श्यामविहारी मिश्र का जन्म भादों बदी ४, सं० १९३० में इटौंजे में हुआ। सात वर्ष की अवस्था में इन्हें पढ़ना आरंभ कराया गया। पहले उर्दू की शिक्षा दी गई। हिन्दी इन्होंने अपने साथियों की संगति से सीख ली। धीरे-धीरे उसमें इन्होंने यहाँ तक उन्नति कर ली कि ये हिन्दी के अच्छे कवि और लेखक हो गये। १५-१६ वर्ष की अवस्था से ही ये हिन्दी-कविता लिखने लग गये थे। बारह वर्ष की अवस्था होने पर इन्होंने अँग्रेज़ी पढ़ना आरंभ किया। सं० १९४८ में इंट्रेंस और सं० १९५२ में बी० ए० की परीक्षा इन्होंने पास की। इस परीक्षा में इनका नम्बर अवध में पहला आया और अँग्रेज़ी में आनर्स प्राप्त हुये। इसके लिये इन्हें दो स्वर्णपदक मिले और इनका नाम कालेज के हाल में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया। सं १९५३ में इन्होंने एक ही वर्ष में एम० ए० परीक्षा पास की और

उसमें भी बहुत ऊँचा नम्बर आया। १९५४ में ये डिप्टी कलक्टर हुये और १९६३ में डिप्टी सुपरिंटेंडेंट आफ़ पुलिस। दो बार ये अस्थायी कलक्टर भी रहे। सं० १९६७ में ये छत्रपुर में दीवान होकर चले गये। छत्रपुर में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। छत्रपुर में सं० १९७१ तक थे। इसके बाद आबकारी के पर्सनल असिस्टेन्ट कमिश्नर हुये। एक वर्ष गोंडा के डिप्टी-कमिश्नर रहे। तीन बार क़ायम मुक़ाम सुपरिंटेंडेंट पुलीस भी रह चुके हैं। आजकल को-आपरेटिव सोसाइटीज़ के डिप्टी रजिस्ट्रार हैं और १५७५) मासिक वेतन पाते हैं। इस पद पर १००) हरसाल वेतन-वृद्धि की भी व्यवस्था है।

सरकारी नौकरी में इनको युक्तप्रान्त के कई ज़िलों में रहना पड़ा। उनमें से अलीगढ़, बनारस, गोरखपुर, इटावा, हरदोई, सीतापुर, बरेली, बुलंदशहर, इलाहाबाद, गोंडा, जौनपुर और लखनऊ मुख्य हैं। इस समय युक्तप्रांत के २५ ज़िलों में इनका दौरा होता है। जब ये इटावे में डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट पुलीस थे, उस समय ख़लील नाम के एक जालसाज़ ने राजद्रोह सम्बन्धी कुछ बातें एक कागज़ पर लिखकर, इनके तथा लगभग ५० अन्य देशी अफ़सरों और रईसों के जाली हस्ताक्षर बनाकर, इन सब को विपत्ति में डालना चाहा। गवर्नमेंट की ओर से चार अंग्रेज़ जाँच करने आये। इन्होंने बड़ी दृढ़ता से उस काग़ज़ को जाली बताया। अन्त में ख़लील पकड़ा गया और उसे चौदह वर्ष के कारागार की सज़ा मिली।

इनका विवाह ११ वर्ष की अवस्था में हुआ। इनके जेष्ठ पुत्र काशी प्रकाश का जन्म १९५६ में हुआ। १९६४ में उसका शरीरांत भी हो गया। इस पुत्र के वियोग से मिश्र जी को बहुत ही शोक हुआ। दूसरे पुत्र आदित्यप्रकाश का जन्म १९६१ में हुआ। तीसरे पुत्र का नाम आवाल-प्रकाश है।

सं० १९५६ में सरस्वती पत्रिका निकली। तभी से ये गद्य लेख लिखने लगे। इनका पहला गद्य-लेख हमीर-हठ की समालोचना विषयक था, जो सरस्वती के प्रथम भाग में छपा है।

पंडित शुकदेवविहारी मिश्र का जन्म सं० १९३५ में इटौंजा में हुआ। बाल्यावस्था में इन्होंने भी उर्दू ही पढ़ना प्रारंभ किया। सं० १९४६ में ये लखनऊ जाकर अँग्रेज़ी पढ़ने लगे। इन्होंने मिडिल अव्वल दर्जे में पास किया और वज़ीफ़ा पाया। अँग्रेज़ी में ये Distinguished (प्रख्यात) हुये थे। सं० १९५५ में स्कूल फ़ाइनल परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की और विश्व-विद्यालय में इनका तीसरा नम्बर रहा। इस बार भी वज़ीफ़ा मिला। एफ० ए० में भी ये प्रथम श्रेणी में पास हुये और विश्वविद्यालय में तीसरा नम्बर रहा। फिर वज़ीफ़ा मिला। बीमार हो जाने के कारण बी० ए० में दूसरी श्रेणी में पास हुये। सं० १९५७ में इन्होंने बी० ए० पास किया और एक ही वर्ष बाद सं० १९५८ में हाईकोर्ट वकालत की परीक्षा पास की। केनिङ्ग कालेज की भीत पर इनका भी नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा है। इन्होंने पहले पहल कन्नौज में वकालत शुरू की। पर दोही तीन महीने में वहाँ से उठकर लखनऊ चले आये। सं० १९६४ में ये मुंसिफ होकर बिलग्राम गये। ढाई वर्ष बाद सीतापुर में मुन्सिफ़ी पर तबदील होकर गये। सीतापुर से सं० १९७१ में छत्रपुर के दीवान होकर चले गये। छत्रपुर में छः वर्ष तक रहे। छत्रपुर से लौटने पर सं० १९७७ में सब जज होकर रायबरेली चले गये। वहाँ १५ महीने ही काम करने पाये थे कि महाराज ने १०००) मासिक पर इनको फिर दीवान के पद पर बुला लिया। इस समय भी ये उसी पद पर सुशोभित हैं। सन् १९२७ के प्रारम्भ में सरकार ने इनको रायबहादुर बनाया।

तीनों भाइयों ने दूर दूर तक यात्रायें की हैं। पंडित गणेश-बिहारी पश्चिम ओर उदयपुर तक और पूर्व ओर कलकत्ते तक गये हैं। पण्डित श्यामबिहारी बम्बई, इन्दौर, ग्वालियर, दिल्ली, अलवर, भूपाल, पटना, गया, बर्द्धवान, बुद्धगया, चन्द्रनगर, कलकत्ता, अम्बाला, लुधियाना, जलंधर, अमृतसर, लाहौर, रावलपिण्डी, तक्षशिला, पेशावर, जमरूद, खैबर घाटी के उस पार लैंडी

कोटाल, कश्मीर, मरी, शिमला, कुरुक्षेत्र आदि स्थानों की यात्रा कर चुके हैं। कश्मीर की यात्रा में तीनों भाई साथ थे। तीनों भाई साँची और भेलसा भी देख चुके हैं और मसूरी और नैनीताल भी समय समय पर जाते रहे हैं। सं० १९६० और सं० १९६८ के दिल्ली दरबार में भी मिश्रबन्धु गये थे।

तीनों भाई बड़े मधुरभाषी, मिलनसार और शुद्ध हृदय के हैं। ये अपने मित्रों से सदा मित्रता बनाये रखने की चेष्टा करते रहते हैं। तीनों भाई एक ही सम्मिलित कुटुम्ब में रहते हैं और इनमें बड़ा मेल है। तीनों भाइयों के धार्मिक और सामाजिक विचार बहुत स्वतन्त्र हैं। ये विलायत यात्रा और सहभोज के पक्षपाती हैं। इसीसे इनके कुछ कुटुम्बियों और सम्बन्धियों ने इन से सम्बन्ध त्याग दिया है। फलित ज्योतिष को ये बिलकुल नहीं मानते। पण्डित श्यामबिहारीजी डिप्टी कलक्टरी पर जब पहले पहल जाने लगे थे, तब दिशाशूल में ही गये थे। मिश्रबन्धुओं ने अपनी स्वतन्त्र प्रकृति का प्रभाव साहित्य के नियमों पर भी डाला है। यतिभङ्ग आदि दोष ये तभी मानते हैं, जब वह कानों को खटके। पण्डित शुकदेवबिहारी जाति-भेद भी नहीं मानते। पर लोक-व्यवहार में ये ब्राह्मणों पर पूरी श्रद्धा रखते हैं।

पण्डित गणेशबिहारी संध्यातर्पण तथा गृहदेवता की पूजा किया करते हैं। पं० श्यामबिहारी पार्थिवलिंग नित्यप्रति पूजते हैं और तर्पणादि भी करते हैं। पं० शुकदेवबिहारी पूजा पर जाते तो हैं, पर केवल दो मिनट में ही उठ आते हैं। कुछ दिन से एक गोस्वामी जी के उपदेश से ये जप का अभ्यास बढ़ा रहे हैं। तीनों भाइयों का ईश्वर पर पूरा विश्वास रहता है।

तीनों भाई जब घर पर रहते हैं तब सोने और काम करने के अतिरिक्त साथ ही साथ फिरते और बैठते हैं। इसीसे जो इनमें से किसी एक का मित्र होता है, वह तीनों का हो जाता है।

मिश्रबन्धुओं ने कभी किसी कालिज या स्कूल में हिन्दी या संस्कृत नहीं पढ़ी। पूर्व जन्म के संस्कार और संगति से बाल्यावस्था से ही इनकी रुचि हिन्दी की ओर हो चली।

इनके बहनोई विशाल कवि ने, जो प्रायः इन्हीं के पास रहा करते थे, इनकी रुचि को हिन्दी-कविता की ओर प्रोत्साहित किया। समय-समय पर अन्य सम्बन्धियों से भी इन्हें सहारा मिला और ये स्वयं रचना करने लगे। पद्य-रचना इन्होंने अपने पूज्य पिता और पं० युगलकिशोर से जानी थी। पहला ग्रंथ "लवकुश-चरित्र" इन्होंने सं० १९५५ में, अलीगढ़ में रचा। पहला गद्य-लेख सं० १९५८ में लिखा। बाबू श्यामसुन्दरदास की प्रेरणा से इन्होंने सरस्वती के प्रथम वर्ष में तीन लेख लिखे जो साहित्यिक जगत् में प्रशंसित समझे गये और इनकी ख्याति बढ़ चली। इसके पश्चात् ये समय-समय पर सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखते रहे। अब भी लिखा करते हैं। इनके लेख सारगर्भित होते हैं और ध्यान से पढ़े जाते हैं।

मिश्रबन्धुओं ने अबतक जितने ग्रंथ रचे और सम्पादित किये हैं, उनकी सूची नीचे दी जाती है—

हिन्दी-नवरत्न, मिश्रबन्धु-विनोद तीन भाग, नेत्रोन्मीलन (नाटक), पूर्व भारत (नाटक), वीरमणि (उपन्यास), आत्म-शिक्षण, भारतवर्ष का इतिहास दो भाग, भारत-विनय (पद्य), बूँदी-वारीश (पद्य), पुष्पाञ्जलि दो भाग (गद्य-पद्य लेखों का संग्रह), भूषण-ग्रंथावली, देव-ग्रंथावली, सूर-सुधा, जापान का इतिहास, रूस का इतिहास, हिन्दूइज्म (अंग्रेज़ी) व्यय इत्यादि।

हिन्दी-नवरत्न और मिश्रबन्धु-विनोद लिखकर मिश्रबन्धु ने हिन्दी-साहित्य की अमूल्य सेवा की है। हिन्दी-नवरत्न में तुलसी, सूर, देव, बिहारी, भूषण, केशव, मतिराम, चंदबरदायी, हरिश्चन्द्र और कबीर की तुलनात्मक आलोचना है। अपने ढंग का हिन्दी में यह पहला ग्रंथ है। मिश्रबन्धु-विनोद इनका सब से बड़ा ग्रंथ है। इसमें लगभग

४००० कवियों और १२००० से अधिक पुस्तकों का उल्लेख है। यह ग्रंथ बड़े परिश्रम से तैयार हुआ है। रेवेरेंड ग्रीव्ज़ ने अपनी एक अंग्रेज़ी पुस्तक में उपर्युक्त दोनों ग्रंथों के कारण मिश्रबन्धु को हरिश्चन्द्र के बाद हिन्दी-साहित्य में सर्वोच्च स्थान दिया है।

इन दो ग्रंथों के बाद मिश्रबन्धु के जिस ग्रंथ को महत्व दिया जाता है, वह है भारतवर्ष का इतिहास। इसके दो खंड निकल चुके हैं। तीसरा खंड अभी तैयार नहीं हुआ है। पहले खंड में विक्रम-पूर्व ६००० वर्ष से लेकर वि० पू० ६०० वर्ष तक का इतिहास है। दूसरे खंड में ६०० वि० पू० से मुसलमान-काल के प्रारम्भ तक का वर्णन है। तीसरे खंड में मुसलमान-काल से लेकर अबतक का इतिहास लिखा जायगा। हिन्दी में इतिहास-ग्रंथों की बड़ी कमी है। मिश्रबन्धु ने यह ग्रंथ लिखकर उस कमी की पूर्ति में बड़ी सहायता पहुँचाई है। मिश्रबन्धु-विनोद और भारतवर्ष का इतिहास हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा में कोर्स हैं।

सं० १९६६ से १९७७ तक पं० श्यामविहारीजी ने काशी-नागरी-प्रचारिणी द्वारा संचालित हिन्दी-हस्तलिखित ग्रंथों की खोज के निरीक्षक का काम बड़ी लगन से किया। इनके बाद एक वर्ष तक पं० शुकदेव विहारीजी ने यही काम किया। १०-१२ वर्ष के समय की तीन रिपोर्टें निकल चुकी हैं।

पंडित श्यामविहारीजी प्रान्तीय टेक्स्टबुक कमिटी के सन् १९११ से २१ तक सदस्य रहे हैं। और अब बोर्ड आफ़ हाई स्कूल एण्ड इन्टर मीडियट एजुकेशन के वरनाकुलर्स कमिटी आफ़ कोर्सेज़ तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय की कोर्ट के मेम्बर हैं। इनमें ये सदा हिन्दी के हित का प्रयत्न किया करते हैं। ये लंडन की रायल एशियाटिक सोसाइटी के भी मेम्बर हैं। छतपुरराज में इन्होंने उर्दू के स्थान पर हिन्दी जारी कराई। ये बहुत समय तक काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के सभापति रहे। पंडित शुकदेवविहारी मिश्र अब उक्त सभा के उपसभापति हैं।

मिश्रबंधु ने हिन्दी की आदरणीय और अनुकरणीय सेवा की है। ये तीनों भाई बड़े अध्ययनशील हैं। पढ़कर केवल ज्ञान-वर्धन ही नहीं करते बल्कि वितरण भी करते हैं। प्रतिवर्ष कोई न कोई ग्रंथ लिखते रहते हैं। ये कभी अपनी समालोचनाओं का उत्तर नहीं देते। कहते हैं कि जितना समय उत्तर देने में लगेगा, उतने समय में एक नई पुस्तक लिखी जायगी। ये न धन के लोभ से, न यश के लोभ से हिन्दी की सेवा करते हैं, केवल निःस्वार्थ भाव से हिन्दी की उन्नति में लगे रहते हैं।

तीनों बंधु मिलनसार, साहित्य-रसिक, निष्कपट मित्र, परिश्रमी, गंभीर, सदा प्रसन्नचित्त और प्रेमपूर्ण शास्त्रचर्चा करने में निपुण हैं।

यहाँ मिश्रबंधुओं की कविता के नमूने उद्धृत किये जाते हैं :—

(१)

चारु धरम को सदा प्रान सों अधिक विचारौ।
प्रान तजन सों अधिक डरहु जब धरम न धारौ॥
करौ बचन प्रतिपाल जऊ निज सरबस हारौ।
कौनिहु विधि जनि झूठ बचन कहुँ भूलि उचारौ॥
पुनि धेनु वेद अरु विप्र को करहु मान सुत प्रान सम।
इनके पाले सब लोक हित सधैं सहित पावन धरम॥१॥
करौ भरोसो सदा बाहुबल को पनधारी।
एक तेग को गुनौ जीविका साधन भारी॥
जब लौं कर में रहै तेग हिम्मति जनि हारौ।
सरवस हू चलि गये न आपुहि निबल विचारौ॥
नित भूमि वीरपतिनी रही यहै मरम समुझहु सुवन।
जग राखि बीरता लाज तुव रन महि मैं मरदहु दुवन॥२॥
एक निबल जनि हनौ वार सबलन पर घालौ।
सरनागत को सदा प्रान के सम प्रतिपालौ॥

नहीं वीरता साथ क्रूरता रंचहु धारौ।
क्रोध छोड़ि गुन धरम समर में सस्त्र प्रहारौ॥
पुनि प्रवल शत्रु सों अभिरि कै नासहु जनि बहुमूल्य तन।
कहुँ टरि बचाय कहुँ जुगुति सों करो कुसलता सहित रन॥३॥
धधकत अनल विलोकि सलभ सम जनि तनु जारौ।
यह मूरखता गुनौ वीरता नाहिं बिचारौ॥
उचित समै जनि प्रान छोड़िबे सों मुख मोड़ो।
पै नाहक तजि प्रान जनम-भूमिहि जनि छोड़ो॥
यहि जनम भूमि को मातु सम गुनो प्रीति भाजन परम।
सुत याको हित साधन सुनो एक परम पावन धरम॥४॥
सब देसिन को सदा भ्रातगन सम सतकारौ।
सब ही को सम गुनौ जाति अरु पाँति बिसारौ॥
जौ बाँभन गुन धरै ताहि बाँभन अनुमानौ।
ताही ये हित किये देस मंगल थिर जानौ॥
करि मान एक गुन को सुवन अधम लोक चालन तजौ।
जनि औरन को कछु करत लखि अन्ध सरिस सोई भजौ॥५॥
उचित गुनो जो चाल ताहि सन्तत सिर धारौ।
जनि समाज डर कहूँ रंच आचरन बिगारौ॥
दीन दुखी के सदा शूर बनि आड़े आवो।
दया करन में जाति-पाँति को भाव भुलावो॥
विपदा हू में जनि बिचलि सिथिलित करौ विचार वर।
जो थिर वर सम्मति पर रहै वहै बड़ो है वीर नर॥६॥
राज न सम्पति गुनौ राज गुरु भार विचारौ।
सुख साधन गुनि राज सुवन जनि धरम बिसारौ॥
आपुहि सेवक मात्र प्रजागन को अनुमानौ।
परजा को हित परम धरम नृप को पहिचानौ॥

जो परजा सों कर ले खरच निज हित में अनुचित करै ।
विस्वासघात को पाप लहि घोर नरक में सो परै ॥७॥
सदा कान दे सुनहु प्रजा सम्मति गुनकारी ।
ताको पालन गुनौ धरम राजा को भारी ॥
हठ करि विद्या दान अवस परजा कहँ देहू ।
सब गुन गन में सुनहु सुवन गुरुतम गुन एहू ॥
पुनि करहु खरच सोई भरै जासौ दुखिया को उदर ।
कै धन उत्पादक शक्ति वर होय प्रजा की प्रबल तर ॥८॥
करौ आलसी पुरुष राज में मान बिहीना ।
बिनु श्रम कोई कहूँ होन पावै जनि पीना ॥
सदा श्रमी को देस रतन गुनि मान बढ़ावो ।
व्यापारहि उतसाह देइ सन्तत अपनावो ॥
पुनि सकल प्रजागन को सदा करौ मान सब भाँति सम ।
नहिं भिन्न भिन्न परजान में प्रीति भाव छिन होय कम ॥९॥
नीच न काहुहि गुनौ करौ सब को सनमाना ।
प्रति मनुष्य के गुनौ सात अधिकार महाना ॥
जीवमात्र पै करौ दया सन्तत गुनकारी ।
आरज तन को चारु धरम समुझौ यह भारी ॥
सुत संपति अरु विपति में सदा एकरस ह्वै रहहु ।
है यह महानता को धरम याहि औसि चित सौं गहहु ॥१०॥
भारी बिपदा परेहु भूलि सुत जनि घबरावौ ।
नहीं धरम सौं तबहुँ रंच बिस्वास हटावौ ॥
अन्यायी जनि गुनौ ईस कहँ न्यायी जानौ ॥
बिपदाहू को कछू भलौ कारन अनुमानौ ।
जो एक जन्म में नहिं लखौ न्याय होत नर सौं कहीं ।
तो और जनम को ध्यान करि करौ चित्त चंचल नहीं ॥११॥

सुख में फूलौ नहीं न दुख में बनौ दीन मन ।
रहि सब छिन गंभीर करौ कारज संपादन ॥
दृढ़ता धारन करौ परम भूषण यहि जानी ।
दृढ़ता विनु को पुरुष नीच पशु सो अनुमानी ॥
अति छोटेहु करमन पै सदा नर गन के राखहु नजरि ।
सच्चो सुभाव गुन अटल ये देत पुरुष को प्रगट करि ॥१२॥
जो कछु करिवो होय जौन छिन में मन माहीं ।
ताही छिन सो करौ निमिष अन्तर भल नाहीं ॥
गुनौ समै को मूल्य बहुत बातन सौं भारी ।
करौ समै अनुसार सकल कारज पनधारी ॥
यह सोचौ सदा दिनान्त में काल सफल कितनो भयो ।
केहि कारन बस कितनो सम आजु अकारथ ह्वै गयो ॥१३॥
होत अकारथ लखौ काल जिन लोगन संगा ।
भूलि न उनको करहु कबहुँ सतसंग अभंगा ॥
जितनो स्रम सहि सकै देह उतनो ही कीजै ।
काल सफलता लाग देह बल जनि हरि लीजै ॥
नित नियम सहित व्यायाम करि सदा सबल तन राखिये ।
ज़नि यह तन छनभंगुर समुझि भूलि पराक्रम नाखिये ॥१४॥
गुनि यह लोक सराय मानि मिथ्या जग नीको ।
मायामै संसार समुझि मति मानो फीको ॥
राख सरिस जग बिरचि ईस नहिं तुमहिं भ्रमावत ।
बाजीगर सम बैठि तमासे नहिं दिखरावत ॥
गुनि करम भूमि यहिँ सुत सदा करतव्यन पालन करौ ।
जग दृढ़ता सौं करि नाक सम धरम धारि आनँद भरौ ॥१५॥
भारी दोषन लखे क्रोध कबहूँ नहिं कीजै ।
धरि समता रहि शान्त दोष सम दंड करीज ॥

जो खुसामदी और मीत को अन्तर नीकौ।
निरखि जाँचि अरु जानि ताहि राखौ प्रिय जीकौ॥
पुनि बालक पालन में रहौ सदा विचच्छन सजग मति।
जो तुम्हरौ दूषन वै लखैं होय तासु फल दुखद अति॥१६॥
बालक भूषन जानि ताहि धारैं सिर सादर।
जीवन में ह्वै जाहिं तौन बालक दूपित नर॥
सदा बढ़ावो मान तरुनि गन को सुखदाई।
सुत सम तनया गुनै देश मंगल अधिकाई॥
नित ही संग्रह जसु को करहु स्वारथ भाव भुलाय करि।
परतिय रति लालच आदि सब विषय-वासना दूरि धरि॥१७॥
सीलहि दै गुरु मान करौ ताको सुत धारन।
नेह न तोरौ कबौं पाय कै सोऊ कारन॥
जोरन में नव नेह नाहिँ चंचलता आनौ।
जुरे नेह पै ताहि निबाहन ही अनुमानौ॥
पुनि राजकरमचारी चुनन में प्रवीनताई धरहु।
गुन सील देस कुल सोचि कै नियत कुसलता सों करहु॥१८॥
करौ शास्त्र अभ्यास कुसंगति सों सुत भागौ।
पंडित साधु उदार जसिन के सँग अनुरागौ॥
नहिँ प्रमाण करि श्रवण अन्ध सम ताकहँ मानौ।
ताको कारन खोजि बुद्धि-बल सों अनुमानौ॥
सिगरी बातन को ध्यान सों देखि सुमति बल जाँचिये।
यहिँ कालचक्र की चाल को रहि अति सजग सवाँचिये॥१९॥
उन्नति पथ पै जौन देस पुहुमी के राजैं।
जिनके प्रबल प्रताप निरखि बैरी डरि भाजैं॥
तिनकी उन्नति ओर ध्यान पूरन सुत देहू।
धरि के विमल विचार तासु कारन गुनि लेहू॥

पुनि देखि पतित देसन सविधि अवनति कारन ज्ञात करि।
दुरगुन बराय निज देस को करौ समुन्नत गुननि भरि ॥२०॥
मानुस गन की चाल ढाल पै ध्यान जमाओ।
देसिन के सतिभाव निरालस रहि अजमाओ॥
होनहार को ज्ञान जथामति संचित कीजै।
ताके सब प्रतिकार खोजिबे में मन दीजै॥
इन अरु ऐसी ही अन्य सब बातन पै नित ध्यान धरि।
सुत करौ राज अब जाय तुम परम सजगता सौं बिचरि ॥२१॥

(२)

ब्रह्मचर्य

ऋषियों ने व्रत ब्रह्मचर्य को नित सनमाना।
सकल व्रतों का इसे सदा सिरताज बखाना॥
चढ़ती है जो जोति बदन पर इस व्रत वर से।
मिलती है जो सकति भुजों को इस जसधर से॥
वह नहीं स्वप्न में भी कहीं और भाँति नर पा सकै।
बरु खाय हजारों औषधैं सब मंत्रो की दिसि तकै॥१॥
यह व्रत वर पच्चीस बरस तक जो नर पालै।
सिंह सरिस वह गजै सदा रोगों को घालै॥
लखौ जियो अरु सुनो चलो सत बरस अदीना।
विदित प्रार्थना है जु वेद में यह कालीना॥
वह जग में ऐसे मनुज की पूरन होती है सदा।
जो पहले कर व्रत पूर्न यह बरता है पतिनी तदा॥२॥
बाल ब्याह कर करै अंध जो भोग बिलासा।
कर विवाह बहु रमैं सदा जो मनसिज दासा॥
आतम हत्या सरिस पाप वे लहैं सदा हीं।
अरु उनके संतान महा निरबल हो जाहीं॥

जो निज तन तिय तन पुत्र तन तनया तन का बल हरै।
इस बूढ़े पितु की दीन रट वह कुपुत्र कब मन धरै ॥३॥

(३)

ईश्वर-बाद

है नहीं काज उत्पत्ति हेतु बिन और जगत है काज बड़ा।
यह विश्व रचयिता के होने का है प्रमान जग मान्य कड़ा ॥
यदि ईश्वर को भी काज गुनै तो जावै मति चकराय।
उसके रचने वाले का भी कुछ नहीं पता दरसाय ॥
बस एक ईस को अंतिम कर्ता ग्रहन सुमति भी करती है।
पर सकल जगत को अंतिम कारन कहने में सक धरती है ॥
हैं एक सूर्य के साथ घूमते अगिनित ग्रह दिन रात।
है भूमंडल भी उन ग्रहगन में एक परम लघु गात ॥
उस प्रति नक्षत्र लोक अपने में सूरज सरिस विचरता है।
अरु उसके भी सब ओर ग्रहों को मंडल निसिदिन फिरता है ॥
इन सब नक्षत्रों के गिनने में है कोई न समर्थ।
यों हैं ब्रह्माण्डों की गिनती का सदा सकल स्रम व्यर्थ ॥
उस ईश्वर के प्रति रोम कूप यों कोटि कोटि ब्रह्माण्ड बसैं।
अरु अगिनित ये सब लोक गगन में बस कर सुख से सदा लसैं ॥
ये अपनी अपनी चाल चलैं पर जावैं नहिं टकराय।
पड़ती है इनकी चालों में कर्त्ता की मति दरसाय ॥
इस प्रति सूरज के प्रति ग्रह को प्रति वस्तु अचंभा देती है।
कुछ कारन जाने पीछे नर की मति गति को हर लेती है ॥
नित काल और थल की गति जग को परम सरल दरसाय।
पर आदि अंत इनका भी सोचै नर बुधि गोता खाय ॥
हम जाने पत्ती कढ़ी बिटप से बिटप बीज से हुआ बड़ा।
अरु हुआ बीज भी एक बिटप से झंझट इतने बीच पड़ा ॥

यह पहला तरुवर हुआ कहाँ से क्यों उपजा किस भाँति ?
जिससे जग में चल पड़ी उसी विधि के बिरछां की पाँति ॥
पुहुमी से खींच बिटप की जड़ सुंदर पानी हर लेती है ।
मारुत से खींच कारबन पत्ती चारा तरु को देती है ॥
पर मिला खींचने का बल इनको किस प्रकार किस काल ।
अरु वह बल रहता है थिर पाकर किसकी शक्ति विशाल ॥
गुरुत्ताकरपन की सक्ति प्रबल जिससे जग ने महिमा पाई ।
यह किसने किस प्रकार दी इसको क्यों थिर है यह सुखदाई ।
नहिँ बन सकती है अकस्मात ही इतनी वस्तु बिसाल ।
इनका रचने वाला है कोई महा प्रबल गुन आल ॥
यदि सकल संसकृत वर्न सहस्त्रों बरस हिलाये निज जावैं ।
तो भी नहिं कालिदास बिनु वे रघुवंस विरचि कर दरसावैं ॥
इससे भी बढ़ कर नभ रचना का है ईश्वर बिन हाल ।
हठ औ कुतर्क बिन है अति दुरलभ नास्तिक पद बिकराल ॥
सब ईश्वर और अनीश्वर वादी मान बहुत कुछ लेते हैं ।
पर भोलेपन को अधिक अनीश्वरवादी आस्त्रै देते हैं ॥
नहिं बिना आँख के मीचे होता सिद्ध अनीश्वरबाद ।
कर ईश्वर पर विश्वास पुलत्र करो उसी की याद ॥

(४)

जो कछु या जग मैं दरसात सबै परमेसुर अंस उदार है ।
पंकज तारहु सों हरुवो गुरु हेमहु सों करता कर भार है ॥
तेजस चेतन जीवन मैं प्रभु अंस प्रसंस बिसेष सुढार है ।
यों गुनआल प्रताप भरो नर सोहत ईसुर को अवतार है ॥

(५)

नेति नेति ईसुर को बेद औ पुरान भाषैं,
ताके बल तेज को न अन्त दरसानो है ।

होत अवतार जो बिसेस ईस अंस भव,
ताहू को न बल अन्त जग मैं लखानो है।
तदपि अमोघ ईस बल की सकै न करि,
तुलना कछुक अवतार मन भानो है।
ईस को अनादर कियो न तिन करि जिन,
या विधि विचार अवतार सनमानो है॥

(६)

भूलि सब एकता उदारता बिसारि दीन्हीं,
भारत निवासिन कुगुन बगरायो है।
आतम सनेह अति बिकट बढ़ाय भ्रातु,
नेह तजि सठता अपूरब दिखायो है॥
हे प्रभु तिहारी आड़ हू मैं दगाबाजी धारि,
देव मन्दिरन रोजगार ठहरायो है।
कलि के कठिन दुख जालन के सालन सों,
पाहि पाहि नाथ कत बिलम लगायो है॥

(७)

रावरे बदन सों बताय उतपति निज,
बाँभनन पुन्य मिसि लूटिही मचायो है।
छाँड़ि करमन्यता बिसारि कामकाज सब,
केवल ठगी सों निज उदर चलायो है॥
लूटिबे को नाम पुरिखान को लै लाज तजि,
उनके गुनन मैं न चित्त बिरमायो है।
कलि के कठिन दुख जालन के सालन सों,
पाहि पाहि नाथ कत बिलम लगायो है॥

(८)

छुवाछूति दारुन कुलीनता को अंग मानि,
सूद को करम अति पावन प्रमान्यो है।
बालक बिदेस को पढ़न जात उनहूँ को,
काल अनमोल सो रसोईं मैं बिलान्यो है॥
धरम को नातो खानपान सों नरन गुनि,
भक्ति बिसवासन को तुच्छ अनुमान्यो है।
बूड़त है भारत बचाओ नाथ दुरगुन,
ग्राहन सों गज के समान बिल्लान्यो है॥

(९)

एक गजराज हेत छोड़ि कै गरुड़ धाये,
भारत की सुनत पुकार क्यों न जगदीस।
कैसौऊ कुचाली क्रूर कपटी कलंकी भयो,
रह्यो ना निरास तव सरन गहे ते ईस॥
भारत की बेर कत करी है कृपनताई,
आरत है, यद्यपि धुनत बार बार सीस।
या के दुरगुन गन ओर हेरि हेरि नाथ,
अधम उधारन की बानि क्यों करत खीस॥

(१०)

कब से मेरे कमरे में धीरे धीरे तुम आते थे।
जूता, स्लिपर, खड़ाऊँ जो कुछ मिला उठा ले जाते थे॥
भली भाँति चल सकते थे नहिं औ श्रम खूब उठाते थे।
मुझे ढूँढ़ते इन चीज़ों को देख बहुरि मुसकाते थे॥
कुरसी के पीछे छिप छिप कर "झाँ" कह होते खूब प्रसन्न।
मुझ से भी "झाँ" कहलाकर हो जाते महामोद सम्पन्न॥

सपने की सी यह बातें जब स्मरण हमें हो आती हैं।
थर थर गात कँपाय हृदै विचलाय नैन जल छाती हैं॥

× × ×

यों तो कानी लड़की को भी उसका बाप सराहै।
"मेरे पूत की आँख बड़ी" यह मसल प्रसिद्ध महा है॥
पर हम सत्य सत्य कहते हैं पढ़ने में पटु ऐसा।
कोई कभी कदाचित ही सुन पड़ता, यह था जैसा॥
काशी विद्यापीठ विदित है तेरा हुआ प्रकाश वहीं।
दीपमालिका की उजियाली अबतक भूली मुझे नहीं॥
तब भी बुद्धि "प्रकाशमान" क्यों पढ़ने में न होय तेरी।
होनी औशि चाहिये थी विद्या सुबुद्धि को तव चेरी॥

("हा! काशी प्रकाश" से)

(११)

बानिहू अरथके समान जे मिलेई रहैं
न्यारे न रहत कबों कौनहू दसान मैं।
बानिहू अरथ की सफलता लहन काज
बन्दत सदाही गौरि सिव सविधान मैं॥
जगत के मातु पितु है करि दया सों भरि
पालि के जहान जिन सुख सरसायो है।
डमरू बजाय फिरि मोद को बढ़ाय गील
व्याकरण दोउन प्रकटि दरसायो है॥१॥
कहाँ दिनकर कुल जगत विदित कहाँ
प्रतिभा अलप वारी मति मम रंक है।
केवट विहीन चहै केवल उडुप चढ़ि
तरन अपार मनु जलधि निसंक है॥

मन्द मति ऐसो तऊ कबि जस लेन चहौं
औसि जग हँसि है बिलोकि मो ढिठाई को ।
ऊँचे फल हेत जिमि बावन उठाय कर
केवल प्रकासत महान मूढ़ताई को ॥२॥
(रघुसम्भव से)

(१२)

सुबुधि करन संसै हरन, श्री पितु-चरन ललाम।
जिनके सुमिरन ते बसै, सदा सुमति उरधाम ॥

× × ×

ईस भाँति भाँतिन सों जीवन के जह रचे,
देखत मैं जौन चढ़ै अचरज भारी है।
कोऊ नभ डोलत धरा पै कोऊ बोलत,
कलोलत है कोऊ जल बीच सुखकारी है॥
थावर है कोऊ, कोऊ रेंगत, चलत कोऊ,
पगन सों, कोऊ उड़ै नभ को बिहारी है।
खात एक एकनि, सोहात एक औरनि,
महान उर प्रेम को बजार इत जारी है॥

× × ×

कोटि कोटि गजें ब्रहमंड रोम रोम जाके,
ऐसो ईस अचरज मनमैं भरत है।
एक ब्रहमंड को न पावत है पार नर,
यदपि महान चित चंचल करत है॥
तऊ सब जीवन के दुख सुख ओर ईस,
चिन्तवत मातु सो छिनौ न बिसरत है।
या विधि बिसम्भर की पावन उपाधि धरि,
तौन सब ठौर सब जाम बिचरत है॥

× × ×

यहि बिधि करत बिलाप सूरगन कहँ लखि भारी।
इन्द्रसिंह छतसाल बन्धु धीरज मन धारी॥
सूर मंडली माँझ कह्यो इमि बचन बिसाला।
अब तौ सुरपुर गयो जसी जाहिर छतसाला॥
रन-मंडल में इविधि मीचु सब सूर मनावैं।
मरे खाट पै कहूँ वीर पदवी नर पावैं॥
जोग जुगुति सों बिचरि कामना मुनिगन जारैं।
जीवन भरि दुख झेलि अन्त में जो पद धारैं॥
सोई पद रन माहिँ वीर गति लहि नृप पायो।
कत यहिँ मंगल काल सोक तुम्हरे चित छायो॥
दुख दारुण मैं कियो भूप नहिं कबहुँ बिषादा।
तुम अब पालन करौ तौनि पावनि मरजादा॥
सुत गन को अवतार पिता ही को अनुमानौ।
नहीं भिन्न छिन गुनौ शास्त्र सम्मति यह जानौ॥
दानी धरमी बीर सुवन भाऊ जेहिँ पायो।
सो कैसे मृत भयो भूप छतसाल सोहायो॥
जाके जस को देह भयो थापित जग माहीं।
अजर अमर ह्वै जौन सकै छिनहूँ टरि नाहीं॥
लहिहि सूरता सीख जगत जासों मन भायो।
सो कैसे मृत भयो भूप छतसाल सोहायो॥
वसुधा तल मैं रहे पूरि जाके बर गुन गन।
निरखे जासु प्रकास होत रबि तेज मलिन तन॥
जाको लहि संसरगु धवल बूँदी जस छायो।
सो कैसे मृत भयो भूप छतसाल सोहायो॥
बीर सबद मुख कढ़त ध्यान जाको झट आइहि।
नर भूपन गुनि जाहि जगत सन्तत अपनाइहि॥

जाके हित यहि राज केर जेहँ जस गायो।
सो कैसे मृत भयो भूप छतसाल सोहायो॥
भयो सूरता सीम जौन बर बीर समानो।
राज भगति को अचल नमूनो भो जग जानो॥
स्वामि धरम प्रतिपाल केर जेहि रूप दिखायो।
सो कैसे मृत भयो भूप छतसाल सोहायो॥

(बूँदी-वारीश से)

(१२)

तज कुलीनता छुवा-छूत सब को सम जानो।
भ्राताओं सम सदा सूद्र को भी सनमानो॥
सूद संकुचन करो मद्य का पान हटावो।
सकल किसानों को दखीलकारी दिलवावो॥
कर तरुनी पद उच्च उन्हैं सिच्छा सुभ दीजै।
मिलित कुटुम्बों में न निरादर तिय का कीजै॥
ठहरौनी तज दुखद चाल परदे की छोड़ौ।
सुत सम तनया भी न समझने से मुँह मोड़ौ॥
बाल ब्याह को तजौ हरौ बिधवा के संकट।
बहु बिबाह तज करौ प्रबल बिद्या उन्नति झट॥
बरधित कर ब्यापार स्वदेसी को चमकावो।
ब्यय संसोधन करौ सबै मत ब्यर्थ नसावो॥
बचे काल में करो चाव से पर उपकारा।
छोड़ कुदान बिधान पात्र का करौ बिचारा॥
हिन्दी उन्नत करो धरम को स्वच्छ बनावो।
दुराचार तज सत्य धरम पर चित्त लगावो॥
व्यासदेव ने बिरच अठारह बिसद पुराना।
पुन्य मूल उपकार पाप अपकार बखाना॥

बर माता अरु सुदृढ़ सील गुन हैं सुख सारे।
इनसे होते सुवन सदा त्रिभुवन उजियारे॥
यह दो प्रबल अभाव आज मम दूर हटावो।
माता सुत उपजाय लोक नेता प्रगटावो॥
दृढ़ता से सब दोष दूर कर सतगुन पालौ।
इस बूढ़े पितु के कलेस मिलकर सुत घालौ॥

(१४)

ईस मुझे दे काज कुशल सुत यह बूढ़ा नित करै पुकार।
जिनके हों सिद्धान्त अटल सतचरित सुदृढ़ विश्वास अपार॥
मन वच करम राष्ट्रसेवा हित उन्हें लखूँ हरदम तैयार।
स्वार्थ सकै कर अंध न जिनको पदवी सकै न दृढ़ता टार॥
जिनके रहैं बिचार सदा दृढ़ मन में बसै देस उपकार।
सतगुन गन पर भक्ति जिन्हैं हो मिथ्या शब्द न सकै उचार॥
उच्च पुरुष जो दम्भ द्वेष पाखंड बक्र गति के हों पार।
बिन ऐसी सन्तति के हूँ मैं सभी प्रकार घृणित औ स्वार॥

गिरिधर शर्मा

संवत् १९३८ विक्रम की ज्येष्ठ-शुक्ला अष्टमी को सिंह लग्न में पंडित गिरिधर शर्मा का जन्म झालरापाटन शहर में हुआ। इनके पिता का नाम भट्ट ब्रजेश्वरजी और माता का पन्नीबाई है। इनके पितामह भट्ट गणेशरामजी और प्रपितामह भट्ट बल्देवजी झालावाड़ के प्रतिष्ठित राजगुरु हो गये हैं। ये जाति के प्रश्नोरा नागर हैं। गोत्र भारद्वाज है। इन्होंने झालरापाटन, जयपुर और काशी में

शिक्षा पाई है। समय समय पर ये संस्कृत और हिन्दी के निम्नलिखित पत्रों में लेख लिखते रहे हैं—काव्य-कादम्बिनी, संस्कृत-चन्द्रिका, मञ्जु भाषिणी, संस्कृतरत्नाकर, काव्य-सुधाधर, हिन्दोस्तान, राजस्थान-समाचार, सरस्वती, मर्यादा, हिन्दी चित्रमयजगत्, मनोरञ्जन, श्रीवेंकटेश्वर, हिन्दी-समाचार, जैन-हितैषी इत्यादि। इन्होंने कई ग्रन्थों का अनुवाद भी किया है। जिनमें अर्थशास्त्र, व्यापार-शिक्षा, शुश्रूषा, कठिनाई में विद्याभ्यास, आरोग्य-दिग्दर्शन, जया-जयन्त, राई का पर्वत, सरस्वतीचन्द्र, सुकन्या, सावित्री, ऋतुविनोद, शुद्धाद्वैत-सिद्धान्त-रहस्य, चित्राङ्गदा, भीष्म-प्रतिज्ञा, कविता-कुसुम, भक्तामर, कल्याण-मन्दिर, बारह भावना, रत्नकरंड, विषापहार मुख्य हैं। इनमें कई छप चुके हैं। ये "विद्या-भास्कर" नाम के पत्र का भी सम्पादन कर चुके हैं, जो राजपूताना भर में पहला और एक ही पत्र था। इन्दौर में इन्होंने "मध्यभारत हिन्दी-साहित्य-समिति" की स्थापना में बड़ा प्रयत्न किया है और झालरापाटन में "राज-पूताना हिन्दी-साहित्य-सभा" स्थापन करने में उत्साहपूर्वक काम किया है। भरतपुर में "हिन्दी-साहित्य-समिति" की स्थापना की। कई राज्यों में नागरी लिपि का प्रवेश कराया। अब ये अपने जीवन का विशेष भाग हिन्दी के हितसाधन में बिता रहे हैं। ये एक उत्तम वक्ता और प्रभावशाली व्यक्ति हैं। संस्कृत, हिन्दी और गुजराती में भी कविता लिखते हैं। उर्दू, मराठी, बङ्गला और प्राकृत का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं। इन्होंने बम्बई, प्रयाग, दिल्ली, भरतपुर, लाहौर, मथुरा, फीरोजाबाद, जयपुर, इन्दौर, पन्ना आदि स्थानों में हजारों मनुष्यों के सन्मुख महासभाओं में व्याख्यान दिये हैं, और अपने काव्यों से सर्वसाधारण को आनन्दित कर दिया है। इनकी योग्यता और प्रतिभा पर मुग्ध होकर काशी के विद्वत्समाज ने "नवरत्न" की, काशी के भारतधर्म-महामण्डल ने "महोपदेशक" की, चतुःसम्प्रदाय श्रीवैष्णव महासभा ने "व्याख्यान-भास्कर" की उपाधियाँ प्रदान की हैं। आगे इनकी कविताओं के कुछ नमूने दिये जाते हैं:—

(१)

अंगरेज़ी जरमन फ्रेंच ग्रीक लैटिन त्यों,
रशियन जपानी चीनी प्राकृत प्रमानी हो ।
तामिल तैलंगी तूलू द्राविड़ी मराठी ब्राह्मी,
उड़िया बंगाली पाली गुजराती छानी हो ॥
जितनी अनार्य आर्य भाषा जग जाहिर हैं,
फ़ारसी ऐराबी तुर्की सब मन आनी हो ।
जनम वृथा है तोभी मेरे जान मानव को,
हिन्द में जनम पाके हिन्दी जो न जानी हो ॥

(२)

जाना नहीं अच्छा कभी जैनियों के मन्दिर में,
किसी भांति अच्छी नहीं कृष्ण की उपासना ।
शंभु का स्मरण किये होना जाना क्या है कहो,
रामनाम लेने से क्या सिद्ध होगी कामना ।
बुरे हैं मुसलमान हिन्दू बड़े काफ़िर हैं,
ऐसी हो परस्पर में बुरी जहाँ भावना ॥
प्रेम हो न आपस का एका फिर क्योंकर हो,
क्यों न भोगे हिन्दमाता नई नई यातना ॥

(३)

उदय न होगा भानु पूर्व छोड़ पश्चिम में,
आकर्षण शक्ति कहीं धरा की न जावेगी ।
हिलेगा न हिमालय चाहे जैसी हवा चले,
मणिमय दिये की न ज्योति बुझ जावेगी ॥
बहेगी न उल्टी गंगा झुकेंगे न वीर शिर,
प्रकृति स्वधर्म से न कभी चूक जावेगी ।

टरेंगे न ब्रह्मवाक्य भोगेंगे स्वराज्य हम,
संपदा यहाँ की यहीं पाछी लौट आवेगी ॥

(४)

हेरे भी मिलेंगे नहीं संकट के चिन्ह कहीं,
जायँगे कहाँ के कहाँ सारे विघ्न बाधा पीर।
बनेगा जगत भर तुम्हारी दया का पात्र,
देख के तुम्हारा मुख आँखों में भरेगा नीर ॥
रखकर माथे हाथ भाग्य के भरोसे पर,
बैठे मत रहो सुनो भारत निवासी वीर।
काम करो, काम करो, काम करो, काम करो,
काम करो, काम करो, काम करो, धरो धीर ॥

(५)

जाते हैं समुद्र बँध रहते न अद्रि आड़े,
अग्नि जल वायु आदि हुकुम उठाते हैं।
हुकुम उठाते हैं उमंग भरे धीर वीर,
होते धन धान्य शाह मस्तक नवाते हैं ॥
मस्तक नवाते हैं जगत के सकल लोग,
गिरिधर मूर्ति निज हिये में बिठाते हैं।
हिये में बिठाते हैं त्यों महिमा पराक्रम की,
पौरुष दिखाये क्या क्या काम हो न जाते हैं ॥

(६)

मेरा देश देश का मैं, देश मेरा जीव प्रान,
मेरा सन्मान मेरे देश की बड़ाई में।
जियूँगा स्वदेश हित, मरूँगा स्वदेश काज,
देश के लिये न कभी करूँगा बुराई मैं ॥

भीषण भयंकर प्रसंग में भी भूल के भी,
भूलूँगा न देश हित राम की दुहाई मैं।
जब लौं रहेगी साँस सर्वस भी लुटा दूँगा,
ईश को भी झुका लूँगा देश की भलाई मैं॥

(७)

चर्चा जहाँ देश की हो मेरी जीभ वहीं खुले,
और नहीं खुले कहीं खुदा की खुदाई में।
मेरे कान गान सुने साँचे देशभक्तन के,
और गान आवे कभी मेरे न सुनाई में॥
मेरे अंग रंग चढ़े एक देशप्रेम का ही,
और रंग भंग होके बूड़ जा तराई में।
मेरो धन मेरो तन मेरो मन मेरो जीव,
मेरो सब लगो प्रभो देश की भलाई में॥

(८)

वाके पास बुध एक तेरे पास नाना बुध,
वाको तेज दिन में तू सदा तेज धारी है।
वाके आसपास फिरे चक्कर लगाती भूमि,
भूमिदेव देव तुल्य तेरे दरबारी है॥
वहाँ एक मंगल है जलते अंगार ऐसो,
तेरे यहाँ मंगल समूह सुखकारी है।
भानुवंश भूषण भवानीसिंह भने 'रत्न',
तू है जग भान बड़ो मति ये "हमारी है"॥

(९)

प्याली पै प्याली पी पी खाली किया करौ पीपे,
नशा करौ आफू भंग चरस अकूती को।

घर को बिगारो रांर धारो घरवारिन सों,
करौ वारवनिता कौ मान पठा दूती को ॥
लोहा करिवे की जगह हो हा करो सीखो मत,
अस्त्र शस्त्र विद्या रणचातुरी निपूती को।
देश के कपूतौ राजपूतौ डूब मर जाओ,
नाम ना लजाओ वीर प्यारी रजपूती को ॥

(१०)

पुस्तक-प्रेम

मैं जो नया ग्रन्थ बिलोकता हूँ,
भाता मुझे सो नव मित्र सा है ॥
देखूँ उसे मैं नित बार बार,
मानो मिला मित्र मुझे पुराना ॥१॥
"ब्रह्मन् तजो पुस्तक-प्रेम आप,
देता अभी हूँ यह राज्य सारा।"
कहे मुझे यों यदि चक्रवर्ती,
"ऐसा न राजन् कहिये" कहूँ मैं ॥२॥
अखण्ड भण्डार भरा हुआ है,
सुवर्ण का जो मम गेह में ही।
बताइयें हे मम मित्रवर्य्यं,
क्यों लूँ किसी के फिर दान को मैं ? ॥३॥
गिने हुए सज्जन बृन्द का तो,
कभी कभी मैं करता सुसङ्ग।
परन्तु है पुस्तक मित्र ऐसा,
होता कभी जो मुझसे न न्यारा ॥४॥

इच्छा न मेरी कुछ भी बनूँ मैं,
कुबेर का भी जग में कुबेर।
इच्छा मुझे एक यही सदा है,
नये नये उत्तम ग्रन्थ देखूँ ॥५॥

रामदास गौड़

बाबू रामदास गौड़ का जन्म सं० १९३८ की मार्गशीर्ष अमावास्या को जौनपुर शहर में हुआ। आप जाति के कायस्थ हैं। वहाँ इनके पिता मुन्शी ललिताप्रसाद चर्च मिशन हाई स्कूल के सेकंड मास्टर थे। इनके प्रपितामह मुन्शी भवानीबख्श जी फ़ैज़ाबाद ज़िले के बिड़हर इलाक़े की ज़मींदारी छोड़कर सं० १८६७ वि० के लगभग काशीजी में आकर रहने लगे थे। इसलिये गौड़जी का वर्तमान निवासस्थान काशी है।

गौड़जी ने फ़ारसी, गणित और अँग्रेज़ी की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिताजी से पायी। इनकी माता और नानी नित्य नियमपूर्वक रामचरितमानस का पाठ किया करती थीं। इससे चारही पाँच वर्ष की अवस्था से इनको रामचरितमानस से प्रेम हो गया। दस वर्ष की अवस्था में इन्होंने एक संक्षिप्त रामायण लिखी, जिस में पाँच छः सौ छन्द हैं। यह पुस्तक बाल-कविता होने के कारण प्रकाशित करने योग्य नहीं है। इसके बाद इन्होंने स्वप्नादर्श की रचना की, जो अप्रकाशित है। इन्होंने जौनपुर हाई स्कूल से १९५३ वि० में एंट्रेंस, सेंट्रल कालेज से १९५८ वि० में एफ़० ए० और म्योर सेंट्रल कालेज से १९६० वि० में बी० ए० पास किया। बी० ए० की परीक्षा देने के बाद सेंट्रल हिन्दू कालेज में ये रसायन के सहकारी

अध्यापक नियुक्त हुए। परन्तु परीक्षाफल प्रकाशित होते ही काशी से प्रयाग चले आये और एल-एल० बी० क्लास में पढ़ने लगे। इसी समय इनके बड़े भाई का देहान्त मिर्ज़ापुर में हो गया, जिससे वकालत पढ़ना छूट गया। संवत् १९६१ से १९६३ तक ये कायस्थपाठशाला में रसायन के प्रोफ़ेसर और संवत् १९६३ से १९७५ तक म्योर सेंट्रल कालेज में रसायन के डिमान्स्ट्रेटर रहे। संवत १९६५ में अध्यापकी की दशा में रसायन में एम० ए० पास किया। १९७५ से हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्राच्य विभाग में रसायन के प्रोफ़ेसर तथा सेनेट और फ़ैकल्टीज़ आव आर्ट्स, सायंस और ओरियंटल लर्निंङ्ग (कला, वैज्ञानिक और प्राच्य-विद्या-शास्त्रि-मण्डल) के सदस्य थे। १९७७ में असहयोग आन्दोलन के कारण हिन्दू-विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़ दी। वहाँ से ये मिर्ज़ापुर चले आये, और वहाँ राष्ट्रीय विद्यालय में काम करने लगे। १२ दिसम्बर, १९२१ को प्रयाग में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के ५५ मेंम्बरों में ये भी गिरफ्तार किये गये। इनको १॥ वर्ष का कठिन कारावास और १००) का अर्थदंड दिया गया। आगरे और लखनऊ की जेलों में एक वर्ष से अधिक रहने के पश्चात् जनवरी १९२३ में सब के साथ सरकार ने इन को भी छोड़ दिया। तब से ये काशी में रहते हैं। कुछ समय तक वहाँ म्युनिसिपल बोर्ड के मेम्बर और उसकी पब्लिक वर्क्स कमिटी के सभापति भी थे। ये विज्ञान-परिषत् के आनरेरी फ़ेलो और हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के स्थायी सदस्य भी हैं।

दस वर्ष की अवस्था में संक्षिप्त रामायण और ग्यारह बारह वर्ष की अवस्था में स्वप्नादर्श की रचना इन्होंने की थी। इसके बाद की कविताएँ रसिक-वाटिका में छपती रहीं। १८-२० वर्ष की अवस्था की कविताएँ छत्तीसगढ़ मित्र में छपती थीं। उस समय इनका उपनाम 'रस' था अब "रघुपति" है। बी० ए० पास करने के बाद काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के लिए इन्होंने संवत् १९६२ तक के हिन्दी के ज्ञात ग्रन्थों की सूची

अंगरेज़ी में तैयार की थी जिसमें ग्रन्थ के निर्माणकाल और कवियों के संक्षिप्त वृत्त अनेक ग्रन्थों और रिपोर्टों से संकलित किये गये थे। यह ग्रन्थ भी अभी तक अप्रकाशित है।

कायस्थपाठशाला में काम करते हुए इन्होंने गौड़-हितकारी नामक उर्दू मासिक पत्र का सम्पादन करना आरंभ किया, जो विना मूल्य गौड़ कायस्थों के पास भेजा जाता था। जब ये म्योर कालेज में नौकरी करने लगे, तब यह पत्र औरों के नाम से सम्पादित होता था यद्यपि सब काम ये ही करते थे। इससे गौड़ों में इतनी जागृति हो गयी कि वे समय की आवश्यकताओं को समझने लगे। इसके सम्पादन-काल में गौड़ कायस्थों के इतिहास की सामग्री अच्छी मिल गयी। जिससे १९६७ वि० में इन्होंने 'तज़किरये सुचारवंशी' नामक गौड़ कायस्थों का इतिहास लिखा।

ये स्त्रीशिक्षा के बहुत बड़े पक्षपाती हैं। प्रयाग से निकलने वाली गृहलक्ष्मी में गृहप्रबन्ध, बालविहार, विज्ञानवती, नानी की कहानी, कपड़े रँगना, आत्माराम की कहानी इत्यादि क्रमानुसार निकलने वाले लेखों का आरम्भ इन्होंने ही किया था। The Great Illusion का हिन्दी अनुवाद 'भारीभ्रम' भी इन्होंने ही किया है।

इनका विचार है कि मानसिक, धार्मिक और सामाजिक संकीर्णता को दूर करने के लिए विज्ञान का प्रचार भारतवर्ष के कोने कोने में होना चाहिये। इसी उद्देश्य से इन्होंने प्रयाग में, 'विज्ञान-परिषत्' स्थापित करने का उद्योग किया। जिससे व्याख्यानों और पुस्तकों द्वारा विज्ञान का प्रचार होने लगा। १९७२ वि० से 'विज्ञान' नामक मासिक पत्र भी निकलने लगा, जिसके लिये बहुत परिश्रम करने के कारण छः ही महीने के बाद ये इतने बीमार हो गये कि छुट्टी लेकर इनको बाहर चला जाना पड़ा। उसमें प्रकाशित भुनगा पुराण, वायुमण्डल पर विजय, वैज्ञानिक अद्वैतवाद, रसायन, विज्ञानसूत्र आदि लेख इनकी विद्वत्ता सूचित करते हैं। वैज्ञानिक अद्वैतवाद इनकी बहुज्ञता का एक

सुन्दर प्रमाण है। विज्ञान-प्रवेशिका प्रथम भाग का अधिकांश इन्होंने ही लिखा है।

सम्मेलन से प्रकाशित हिन्दी-भाषासार प्रथम भाग का संग्रह और सम्पादन भी इन्होंने किया है। इनके सैकड़ों लेख 'अब्दुल्लाह' के नाम से भी निकले हैं। राष्ट्रीय विद्यालयों के लिये इन्होंने हिन्दी में सात पोथियाँ लिखीं, जो राष्ट्रीय विद्यालयों में प्रचलित हैं।

ये चाहते हैं कि राष्ट्रीय व्यवहार में सौर तिथियों का प्रयोग किया जाय। ज्ञानमण्डल से प्रकाशित सौर पञ्चाङ्ग और सौर डायरी का रूप इन्होंने ही स्थिर किया है। ये अपनी चिट्ठी-पत्री में सौर तिथियों का ही प्रयोग करते हैं।

ये हिन्दी-भाषा के मर्मज्ञ हैं। गद्य और पद्य दोनों के अच्छे लेखकों में से हैं। उर्दू, अंग्रेज़ी, संस्कृत और फ़ारसी के अच्छे विद्वान् हैं। बँगला, गुजराती, मराठी और प्राकृत की भी जानकारी रखते हैं। व्याख्यान देने में भी पटु हैं। दर्शन, विज्ञान, इतिहास, साहित्य सभी विषयों में भी दख़ल रखते हैं। वादविवाद करने में निपुण हैं। सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर गौड़जी जेल गये। सवा वर्ष के लगभग जेल में रहकर बाहर आने पर बनारस में म्युनिसिपल कमिश्नर और शिक्षा-समिति के सभापति चुने गये। शिक्षा-समिति की ओर से इन्होंने बनारस बोर्ड के स्कूलों में चरखे दिलवाये और अध्यापकों को स्वयं धुनना और कातना सिखाया। कुछ मतभेद के कारण इनको बोर्ड की मेम्बरी छोड़नी पड़ी। इसके बाद ये बिहार-विद्यापीठ में चले गये। वहाँ भी थोड़े ही दिन रहे। अब सभा-समाजों में जाने आने और व्याख्यान आदि से विरक्त होकर घर में ही रहते हैं और राम की मूर्ति स्थापित करके उसी की पूजा में निरत रहते हैं तथा भक्ति का आनन्द लूटते हैं। पहले ये पूरे वैज्ञानिक थे, पर अब भूत-प्रेत पर भी काफ़ी विश्वास हो चला है।

इनकी कविता के नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

(१)

कृष्णावतार

सुत ने वित्त हित बाप न समझा बन्द कराया ।
पति यमद्वार उतार जार कर बैठी जाया ॥
कञ्चन कामिनि हेत बन्धु हो गया कसाई ।
पाप छिपा, सन्तान मार, हिय दया न आई ॥१॥
डाकू चोर जुआर हुए मन्त्री, पद पाये ।
सारे कोप लबार छली के हाथों आये ॥
डूब गये व्यवहार घूस ने दृष्टि घुमाई ।
न्यायमूर्ति जल्लाद हुए कलि-नीति निभाई ॥२॥
फैल गये भर देश लफंगे और लुटेरे ।
चलने लगे कुचक्र कलहमय कुटिल घनेरे ॥
महा भीम दुर्भिक्ष लगा चुन चुन कर खाने ।
जग दुर्दैव दरिद्र विराजा खुले खजाने ॥३॥
खेत गये सब सूख सूम के हिय की धरती ।
यद्यपि डाले गोड़ न छोड़े ऊसर परती ॥
कहीं न बरसा मेंह खेह भागों ने खायी ।
कहीं हुई अतिवृष्टि सृष्टि सब खोद बहायी ॥४॥
कुछ भी कहीं कुधान्य कभी भूलों से होते ।
खाते उल्लू मूस घूस टिड्डीदल तोते ॥
फैले कितने रोग महामारी ने लूटे ।
मरे असङ्ख्यों लोग भाग भारत के फूटे ॥५॥
जितनी पैदावार भूमिकर उससे भारी ।
खेती की कुछ हौस बची थी, इसने मारी ॥
खिंचता था धन रत्न प्रजा होती थी रीती ।
सुख था मरना, कौन सुनै था उनकी बीती ॥६॥

अस्त्र शस्त्र सब छीन दीनजन शान्त कराया।
हुआ शत्रु बलहीन देख जी में जी आया॥
बैठाया आतङ्क निहत्थ प्रजा को भूना।
लाय बसाये दस्यु, देख गाँवों को सूना॥७॥
फैला अत्याचार प्रजा अधमरी बनायी।
नारि जाति अपमान किया, दुर्नीति चलायी॥
पर नरपति दे घूस धूर्त्त को धन बँटवाये।
सेना के बल धाक बढ़ायी यश फैलाये॥८॥
राजा कंस नृशंस लगा करने यों शासन।
करके बन्दी बाप आप बैठा सिंहासन॥
कर स्वतन्त्र अधिकार सभी पिटवायी डौंडी।
धूर्त्त चला जो जालपड़ी वह कभी न औंडी॥९॥
हुआ सत्य का लोप, अस्तमित ज्ञान दिवाकर।
गया मोह तम फैल, हुए स्वारथरत सब नर॥
धर्माधर्म-विवेक भगा विश्वास बिलाना।
श्रद्धा हिय से ओट हुई यश दूर पराना॥१०॥
साहस हुआ सभीत वीरता कुत्सित कायर।
आर्त्त हुआ परमार्थ, हुआ औदार्य दीनतर॥
फैला तर्क कुतर्क, हुए नृप स्वेच्छाचारी।
वादि-विषयरत पाप-परायण सब नर नारी॥११॥
छिपे सुजन नर साधु पड़े प्राणों के लाले।
दुष्ट हुए बलवान सभी अरमान निकाले॥
ऐसा देख अनर्थ प्रकृति थिरता थहरायी।
विकृत व्यवस्था विश्व हुआ धरती घबरायी॥१२॥
हुआ विकट संघर्ष उभय बल ने बल खाया।
घोर शक्ति उत्कर्ष हुआ पलटी जग काया॥

क्या हो रहा युगान्त? क्रान्ति से भ्रान्त हुए सब।
लख उत्कट दुर्दान्त दुकाल अशान्त हुए सब ॥१३॥
जितने बल के देव, विश्व के धारणहारे।
विकल हुए सब लौट केन्द्र की ओर निहारे॥
विद्युल्लता समान शक्तिसहसा सञ्चालन।
हुआ उसीका पूर्ण विश्व करता जो पालन ॥१४॥
हुई गिरा गम्भीर मेटने को सब बाधा।
कि नैराश्य-घनश्याम* अङ्क में प्रकटी राधा† ॥
सुनते थे सब देव ब्रह्म ने अर्थ बखाना॥
हुई आस दुख दूर हुए यह निश्चय माना ॥१५॥
यह बन्दीगृह धन्य, पुण्य का मन्दिर पावन।
सज्जन को विश्राम, सत्यव्रत को मनभावन॥
देख भयानक भीत, भीत होते हैं पापी।
कठिन कराल कपाट देख काँपै परितापी ॥१६॥
अन्धकार अति घोर, निशीथ घटामय काली।
पहरा चारों ओर चौकसी कड़ी निराली॥
लोहे की जञ्जीर द्वार में पैरों में थी।
अपनो में था बन्ध, मुक्ति कुछ गैरों में थी ॥१७॥
यन्त्रित चारोंओर न ऐसा भौन कहीं था।
हिये ज्ञान की जोत पौन का गौन नहीं था॥
बुद्धि जीव की भाँति अविद्या की बन्दी में।
बेड़ी दोनों पाँव कोसते दम्पति जी में ॥१८॥
वे ही थे वसुदेव देवकी धर्मपरायन।
करके जिनका ब्याह दिये सब भाँति रतन धन॥

---

* घनश्याम=कृष्ण तथा बादल। † राधा=गोपी तथा बिजली।

भगिनी छोटी जान, हजारों रथ कसवाये।
बड़ी धूम से साज, अनूप जलूस बनाये ॥१९॥
बना सारथी आप, चला पहुँचाने घरतक।
राजा कंस नृशंस सुनी इक गिरा भयानक ॥
भावी से भयभीत हाथमें खड्ग उठाया।
बीच पड़े वसुदेव, बचाय उसे समझाया ॥२०॥
"यद्पि आठईं बार जन्म लेगा तव बालक।
तब भी मैं प्रतिगर्भ तुम्हैं दूँगा निज बालक ॥
बैरी को पहचान खड्ग की धार पिलाना।
नारी पर वीरत्व नहीं तलवार चलाना" ॥२१॥
था भावी बलवान मीच सिर आय विराजी।
हुआ एक को छोड़ आठ पर मूरख राजी ॥
अगला लाभ निहार मूलको यथा लगाया।
हत्थाकी सम्पत्ति काल का ब्याज बढ़ाया ॥२२॥
पर न हुआ विश्वास उन्हें बन्दी में डाला।
कड़ी बेड़ियाँ पाँव, पड़ा तालोंपर ताला ॥
एक एक कर सात हुए नवजात हवाले।
राक्षस ने बध बाल लाल दामन कर डाले ॥२३॥
उधर आठवाँ शत्रु खास है आनेवाला।
कड़ी चौकसी रात हुई चिन्ता दोबाला ॥
इधर आठवाँ पुत्र वही आँखों का तारा।
आते ही वह नूर गोदसे होगा न्यारा ॥२४॥
यह चिन्ता यह शोक, आज जी को खाता है।
हाय, आज यह जन्म अमंगल दरसाता है ॥
उठता हिय में शूल कठिन पन किया पिता ने।
हुई भयानक भूल, लगा प्रारब्ध सताने ॥२५॥

ऐसी दुर्मति, हाय ! हुई किस अघके फलसे ?
था प्राणी का मोह, अज्ञता के या बल से ॥
यह समझे थे ढंग कोई तबतक निकलेगा ।
रोकेगा मनुजत्व न भाँजा जान बधेगा ॥ २६ ॥
पर निकला अति क्रूर निहत्थ हमें कर बन्दी ।
पन पर कर मजबूर पूत मारे छल छन्दी ॥
दे दें यदि हम प्राण न तौ भी बाल बचेगा ।
हते जायँगे लाल, किन्तु यह काल बचेगा ॥ २७ ॥
जगमें हैं क्या तात मात ऐसे भी पापी ।
प्राण बचा सन्तान बधावें जो परितापी ?
हाय ! राक्षसी वृत्ति अधम है हुई हमारी ।
जिसपर हमने रीझ पियारी सन्तति वारी ॥ २८ ॥
रहे इसी विधि सोच उभय बन्दी शोकाकुल ।
सहसा दमकी ज्योति तुरत सब तिमिर गया धुल ॥
लहरा उठा प्रकाश, मूल पावक पूषण का ।
देख पड़ा मुख पद्म खिला यदुकुल-भूषण का ॥ २९ ॥
चकाचौंध जब दूर हुई छवि मंजु विलोकी ।
मातपिता तत्काल हुए निश्चिन्त विशोकी ॥
उमड़े ब्रह्मानन्द सिन्धु में गोते खाये ।
रहे एकटक देख उभय सुधबुध बिसराये ॥ ३० ॥
"ले हमको झट नन्दगाँव की याता कीजे ।
धर जसुमतिके पास हमें, कन्या ले लीजे ॥
मार असुर, कुछ काल बिता, मथुरा आऊँगा ।
कंस-वंस विध्वंस तुम्हें फिर छुड़वाऊँगा" ॥ ३१ ॥
शिशु के हिले न ओठ, शब्द यद्यपि ये आये ।
हुए चकित वसुदेव, किन्तु झट गोद उठाये ॥

अहो महा आश्चर्य ! पाँवसे बेड़ी सरकी ।
खुले यंत्र, जंजीर गिरी उस कारागर की ॥ ३२ ॥
खुले पलकसे द्वार पाहरू सोते पाये ।
दृष्टिवेग वसुदेव चले सुत सूप छिपाये ॥
वैरी-आँसू-तार सरिस बरसै था पानी ।
पड़ा मूसलाधार बढ़ी कितनी हैरानी ॥ ३३ ॥
जमुनां हुई अथाह, सिन्धु सी लहरें आयीं ।
दायें सिंह दहाड़ रहा, बासुकि दिशि बायीं ॥
जो भवसागर पार करे सबको बिन खेवा ।
ले उसको सरि पार चले करने वसुदेवा ॥ ३४ ॥
टोकर रखते पाँव, नहीं टिकता न सम्हलता ।
ठोकर खाकर दूर कहीं हट रहा फिसलता ॥
धारा धक्के मार बहा कुछ ले जाती है ।
हिम्मत करके जोर राह पर फिर लाती है ॥ ३५ ॥
क्या अद्भुत व्यापार ! लिये सागर गागरमें ।
उसको नदी अथाह लगो डूबे सरि सरमें ॥
सिरपर लिये स्वराज विपद की नदी थहाता ।
जैसे भारत आज सुदिन तटकी दिशि जाता ॥ ३६ ॥
सिरपर उनकी छाँह सृष्टि लय जिसकी माया ।
कर हिय दृढ़ विश्वास, बढ़े भय धोय बहाया ॥
जमुनाजी ने गोद लिया दममें पहुँचाया ।
झटपट तटपर आय गाँव को पाँव बढ़ाया ॥ ३७ ॥
सोते जसुदा नन्द, सभी गोकुल सोता था ।
जो जागै था आज, रत्न अपना खोता था ॥
मणि ले ली, धर लाल, चोर सच्चा झट सरका ।
वही सूप सह बाल, वही मग कारागर का ॥ ३८ ॥

सुता देवकी गोद गयी पग बेड़ी डाली ।
लगे किवाड़े आप, रही फिर भी निशि काली ॥
गये सन्तरी जाग नींद से डर पछताये ।
रोना सुन भय भाग गयः संवाद सुनाये ॥ ३९ ॥
आगेका कुछ हाल कहें क्या जो कि अधम ने ।
मार बाल निर्दोष किया उस राक्षस यम ने ॥
गोकुल भी जासूस भेदिये असुर पठाये ।
विषसे मिसले जोड़ तोड़ कितनेहि लगाये ॥ ४० ॥
क्रमशः बढ़े गुविन्द चन्दकी कला सरीखे ।
ग्वालबाल के बीच पले पर थे अति तीखे ॥
सुनकर इनकी वृद्धि तेज उसका घटता था ।
हुए सयाने जान नित्य राक्षस लटता था ॥ ४१ ॥
सामदाम भय भेद कोई छल छन्द न छूटे ।
शत्रु न पाया फाँस, कपट के फन्द न छूटे ॥
मारे गये अनेक वीर रणधीर गुप्तचर ।
जिया आस बल आप बार बहु डरसे मन कर ॥ ४२ ॥
प्रतिभाशाली शत्रु, अनूपम भुजबलवाला ।
बड़ी बुद्धि लघु बस, कि आफत का परकाला ॥
देख मिले कुछ कंस पक्ष के, खल से फूटे ।
हुआ पाप का अन्त दुष्ट के डैने टूटे ॥ ४३ ॥
प्रभुने उसको मार भूमि का भार उतारा ।
बन्दीगृह को खोल, किया सबका छुटकारा ॥
उग्रसेन को फेर राज्य आसन बैठाला ।
राजपुरुष बन आप सुशासन काज सँभाला ॥ ४४ ॥
यादव कुल की राजसभा संगठन करायी ।
न्याय नीति फैलाय युद्ध की रीति सिखायी ॥

देख अखंड सुराज लगे जलने परितापी।
जरासन्ध बहु बार चढ़ा पर हारा पापी ॥४५॥
यादव-रक्षा हेत द्वारका पुरी बसायी।
जरासन्ध बधवाय शांति डौंड़ी फिरवायी॥
कौरव पाण्डव बीच सन्धि-उद्योग रचाया।
हुआ न राजी स्वार्थ, युद्ध का चक्र चलाया ॥४६॥
समझ युद्धफल पार्थहृदय दुर्बलता आयी।
सब सन्देह निवार राजविद्या सिखलायी॥
हुए स्वार्थ के यज्ञ हवन नरपति बहुतेरे।
सैनिक हुए समाप्त युद्ध में कहीं घनेरे ॥४७॥
पाय स्वार्थ पर नाश किये यादवकुल सारे।
पृथ्वी भार उतार आप निज लोक सिधारे॥
"जब जब होगा लोप धर्म का तब आऊँगा"।
आज्ञा की पन रोप "दुष्टवध करवाऊँगा" ॥४८॥
वही दशा है आज, कष्ट मे हम हैं आरत।
व्यापा जगत अधर्म, पड़ा विपदा में भारत॥
फैला है अन्याय, रही पिस प्रजा दुखारी।
ईति अग्नि भय रोग विवश छीजे नरनारी ॥४९॥
कब प्रगटोगे श्याम! दीन भारत हित प्यारे!
जायेंगे अन्याय स्वार्थ दानव कब मारे!
है वन्दी यह मातृभूमि कब मुक्त करोगे?
अपना प्यारा देश धर्म से युक्त करोगे? ॥५०॥

(२)

स्फुट दोहे

चाँद सूर आँखें खुली, काकी जोहत बाट।
का सुनिबे हित गगन के, उघरे करन कपाट ॥१॥

बह्यो जात दिसि बिदिसि जल, चाखि सरस रस कौन।
काके पावन परस हित, धाय रही है पौन ॥२॥
मद माती धरती फिरत, काके गंध पुनीत।
जग जग अंतरनाद मय, गावत काके गीत ॥३॥
सब जोतिन की जोति वह, सब सूरन को सूर।
सब दृश्यन को दृश्य वह, शब्द-प्राण भरपूर ॥४॥
सरद चंद सरि तट त्रिविधि, बहत पवन पिय अंक।
मेरो सुख जानै कहा, बिरही चिन्तित रंक ॥५॥
पसरी सारे ज्योति वह, अंधे तोहि न दिखाय।
सद्गुरु के उपदेश को, अंजन क्यों न अँजाय ॥६॥
हृदय हुआ है हृष्ट अति, देखि दया तव नाथ।
पाया तेरे चरण का, धूल सरिस जो साथ ॥७॥
छुटी तिन्हें न काम से, फँसे जो जग जंजाल।
मैं तोहीं सों फँसि रह्यों, बिसरि देस औ काल ॥८॥
सो रज-कन मैं परम लघु, सागर में न समाउँ।
सो सागर मैं जौन लघु, गागर में अँटि जाउँ ॥९॥
दृग में वह बल ना भयौ, जो छवि ही ह्वै जात।
छवि-समुद्र बूड़ौ रहै, सतत न तऊ अघात ॥१०॥
नहीं देश नहिं काल में, बस्तुहु मैं न समाउँ।
अचरज को अचरज महा, अखिल विश्व भरि जाउँ ॥११॥
रहत अकाल अदेश में, सदा अवस्तु विहार।
सब की आंखिन में बसौ, हान्यो खोजनहार ॥१२॥
चन्द सूर जल थल पवन, गगन सकल ब्रह्मण्ड।
निज माया मोहित महीं, बिनिहित अखिल अखण्ड ॥१३॥
आपु हिरानो आपु महँ, आपहि खोजत आप।
आपु परम आनन्दमय, आपु सोक संताप ॥१४॥

मैं ही छवि रिझवार मैं, मैं राधा मैं श्याम।
शब्द अर्थ जल बीचि मैं, सकल रूप सब नाम ॥१५॥

(३)

मोसम को त्रिकाल बड़भागी।
तजि साकेत सकेत हिये के भये राम अनुरागी॥
कहँा धवल पावन पयोधि जेहि सीकर सृष्टि समायी।
कहँा मोहतम मय हिय मेरो भरी महा मलिनाई॥
ना स्वागत हित पुन्य पाँवड़े "रघुपति" सकेउ बिछाई।
श्रद्धा भक्ति हृदय की साँची पूजहु नहिं बनि आई॥
पाप पहार गयेउ बहि पल में आरति आँसु गिराये।
दीनबन्धु सुनि गिरा दीन की सरनागत अपनाये॥
कलुष काटि हिय पावन कीन्हों अस कीन्हों विस्तार।
रोम रोम प्रति कोटि विस्व जेहि ताकर भयउ अगार॥
जाकी एक किरिन तें राजत विद्युत रवि ससि आगि।
तेहि प्रकास तम तोम निवारेउ दीन दास हित लागि॥
जिमि प्रभु मोहिँ राखि सरनागत अपत अघिहि अपनाये।
तिमि मेरो हिय सदा आपनो मन्दिर रखहु बनाये॥

(४)

नयन! तव कैतव कपट अपार।
रूपजाल तुमहीं उरझावत मन को बारंबार॥
रंजित रकत रूप रिपु को लखि लोभ ते होत निढार।
मोह को मन्दिर मद मतवारो मत्सर को आगार॥
गुन अवगुन रितु रैन न जोहत आभूषन न सिंगार।
लाज सँकोच निवार मार बस देखि परत गिरि नार॥
बिस्व बिमोहनि छबि बिलोकि अजहूँ न तज्यो संसार।
पाप पंक महँ मनहिँ फाँसि फिरि चाहत करन सिकार॥

इमि पछिताइ सूर दोउ नैनन फोरे तकुआ डार।
"रघुपति" अस उद्दंड अघिन कों और कहा सतकार॥

(५)

मिलिन्द-पादावली

कोई जानता है तुझको, रंग और बू में पिनहाँ।
मैं देखता हूँ तुझको हर जर्रः में दरख़शाँ॥
तू ही है जुस्तजू में आरिफ़ है तू है इरफ़ा।
मअ़नीका तू ही मअ़नी, हैरत है तुझसे हैरां॥
ऊँचा दिमाग़ से भी है दिल से तू है गहरा।
सूरज से तू बड़ा है और ज़र्रा से भी छोटा॥१॥
दुनिया है तेरे दम के जादू का इक तमाशा।
तेरे मुआजिज़े का इक हेच सा है लटका॥
हरएक को है देता भरभर के मै का प्याला।
कोइ मह्व रंग पर है कोइ घूँट भर के लेता॥
जामे जहाँनुमाँ यह तेरा ही आसमाँ है।
अबरू का तेरे नक़्शा बर्क और कहकशां है॥२॥
बुलबुल कहीं चमन में तुझको जो देख पाये।
भूले भी गुल की जानिब हरगिज़ रुजू न लाये॥
तेरी झलक बरहमन की आँख में जो आये।
छोड़े वो बुतपरस्ती औ क़शक़ा भूल जाये॥
मअ़नी है तू सखुन में और बर्गगुल में बू है।
तू जुस्तजू में ख़ुद है बेकार जुस्तजू है॥३॥

माधव शुक्ल

पण्डित माधव शुक्ल प्रयाग के निवासी हैं। इनके पिता का नाम पण्डित रामचन्द्र शुक्ल है। ये मालवीय श्रीगौड़ ब्राह्मण हैं। इनका जन्म सं० १९३८ में हुआ। इनके पूर्वज मालवा के निवासी थे। लगभग तीन सौ बरस हुए, जब वे मालवा से यहाँ आकर बसे।

पण्डित माधव शुक्ल ने प्रथमा परीक्षा तक संस्कृत और एन्ट्रेंस क्लास तक अंग्रेज़ी पढ़ी है। बँगला और गुजराती भाषा का भी इन्हें ज्ञान है। स्वर्गीय पण्डित बालकृष्ण भट्ट के पास ये प्रायः प्रतिदिन जाया करते थे। उन्हीं की सङ्गति से इन्हें समाचार-पत्रों में लेख लिखने का चसका लगा। पहले-पहल ये "हिन्दी-प्रदीप" में कविताएँ लिखते रहे। फिर "कर्मयोगी" और "अभ्युदय" में भी इनकी कविताएँ बराबर निकलती रहीं।

शुक्लजी को नाटक से बड़ा शौक है। ये पार्ट भी बहुत अच्छा करते हैं। प्रयाग में इन्होंने सबसे पहले "हिन्दी-नाट्य-समिति" स्थापित की; और लगभग पन्द्रह वर्ष तक बड़ी दिलचस्पी से उसका संचालन किया। कई वर्ष हुये, ये प्रयाग से कलकत्ते चले गये। वहाँ इनके जाने से हिन्दी-नाटक की चर्चा ज़ोर-शोर से होने लगी। इनके उद्योग से वहाँ "हिन्दीनाट्यपरिषद्" की स्थापना हुई।

शुक्लजी की पद्यरचना बड़ी ओजस्विनी होती है। नवयुवकों को वह बहुत पसन्द है। अबतक इन्होंने छोटी बड़ी कुल पाँच पुस्तकें रची हैं। उनके नाम ये हैं:—भारतगीतांजलि, महाभारत नाटक, स्वराज्य-गायन, सामाजिक चित्र-दर्पण, राष्ट्रीय तरङ्ग। कलकत्ते में शुक्लजी इलाहाबाद बैंक में काम करते थे। अब इन्होंने वह कार्य छोड़ दिया और स्वतन्त्र रूप से अपने "माधव प्रिंटिङ्ग वर्क्स" का संचालन करते हैं।

सन् १९२२ में असहयोग आन्दोलन में ये चार बार जेल हो आये। इस समय इनके दो पुत्र और एक कन्या है।

शुक्लजी की पद्य-रचना के कुछ नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं :—

(१)

जिनके शुभ्र स्वच्छ हिय-पट पर जग विकार का लगा न दाग।
भरा हुआ है अटल जिन्होंमें केवल मातृदेवि-अनुराग॥
जिनकी मृदु मुसुकानि सरलता विकसित गालों की लाली।
देख देख सुन्दर फूलों को रचता है जग का माली॥
बँधी हुई मुट्ठी को जिनने अबतक नहीं पसारा है।
जिनको हाथों से पैरों का अधिक अँगूठा प्यारा है॥
भावी भारत-गौरव-गढ़ की सुदृढ़ नींव के जो पत्थर।
आर्य-देश की अटल इमारत का बनना जिन पर निर्भर॥
उन्हीं अनूठे कानों में यह मेरी स्वरमय आत्मपुकार।
पहुँचे आशलता की जड़ में जिसमें होय शक्ति संचार॥

(२)

कहौं का अपने हिय की भूल।
जाको जानत रह्यों महासुख सो अति दुख को मूल।
समुझत जिनको हितू आपनो सो निकसो प्रतिकूल॥
कहौं का अपने हिय की भूल।
देव मानि पूज्यो बहुविधि जेहि दै अक्षत फल फूल।
अधम पिशाच चोर निकस्यो मम हिय बिच हन्यो त्रिशूल॥
कहौं का अपने हिय की भूल।
अबहुँ बिचारि देख मन मूरख मत बन बैठ मक़ूल।
'माधव' जग नहिं कोउ काहू को केवल पौरुष मूल॥
कहौं का अपने हिय की भूल।

(३)

ये दिल में आता है उठ खड़े हों समय हमें अब जगा रहा है।
बिला हुये तार भी लहू में वो तारबर्क़ी लगा रहा है॥
ये दिल में०।

जहाँ अँधेरा था मुद्दतों से न देख सकता कोई किसी को।
उसी जिगर में छिपा हुआ कुछ न जाने क्या जगमगा रहा है॥
ये दिल में०।

सनातनी में न कोई है वल न है समाजी में कोई कर्तब।
इसाई मुसलिम बिचारे क्या हैं ये बात वो है जो लापता है॥
ये दिल में०।

कभी भी मायूस हो न "माधो" ज़माना ये इनक़िलाब का है।
उठाना सब को है काम इसका जो अपनी हस्ती मिटा रहा है॥
ये दिल में०।

(४)

कलियुगी साधु

है नहीं जिनको ज़रा भी ध्यान अपने देश का।
जिनके दिल कुछ भी असर होता नहीं उपदेश का॥
एक अक्षर भी पढ़े लिक्खे नहीं होते हैं जो।
आजकल घरबार तजकर साधु बन जाते हैं वो॥
रँग लिये कपड़े कमंडल भी लिया एक हाथ में।
बाँध लंगोटी जटा सिर भस्म सारे गात में॥
कनफटा कानों में खप्पर हाथ चिमटा भी बड़ा।
राह चलते टनटनाता एक घंटा भी पड़ा॥
बंबमाते बैल से जिस दर पै ये जाकर अड़े।
कुछ न कुछ लेकर हटेंगे जग मरे पत्थर पड़े॥

हाय ! बावन लाख ऐसे मुफ़्तख़ोरे आज हैं।
जिनके घर दर गाँव गोरू घोड़े हाथी राज हैं॥
खान हैं पापों के बेपरवाह हैं क़ानून के।
हिन्द के रक्षक हैं या प्यासे हमारे ख़ून के॥

(५)

सोहर

जुग जुग जीवें तोरे ललना, झुलावें रानी पलना,
जगत सुख पावइँ हो।
बज नित अनँद बधैया, जियैं पाँचौ भैया,
हमन कहँ मानइँ हो॥
धन धन कुन्ती तोरी कोख, सराहैं सब लोक,
सुमन बरसावइँ हो।
दिन दिन फूल रानी फूलें, दुआरे हाथी झूलें,
सुगुन जग गावइँ हो॥

(महाभारत नाटक)

गयाप्रसाद शुक्ल

(सनेही—त्रिशूल)
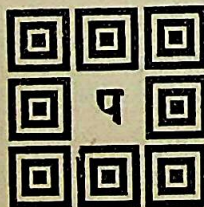
पण्डित गयाप्रसाद शुक्ल का जन्म श्रावण शुक्ल १३, संवत् १९४० वि० में हुआ था। ये शुक्ल कुलोत्तम कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। युक्तप्रान्त में उन्नाव ज़िले के अन्तर्गत क़स्बा हड़हा इनकी जन्मभूमि और निवासस्थान है। इनके पिता पण्डित अवसेरी लाल शुक्ल ग्राम के प्रभावशाली और प्रतिष्ठित व्यक्तियों में थे। बाल्यावस्था में ही इन को पितृ-वियोग का दुःख

उठाना पड़ा। इसलिए इनका पालन-पोषण इनके चचेरे भाई पण्डित लालप्रसाद शुक्ल ने बड़ी सावधानी और स्नेह से किया।

इन की प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम की ही पाठशाला में हुई। प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी और उर्दू में शीघ्र ही समाप्त करके छात्रवृत्ति पाकर ये वर्नाक्युलर फ़ाइनल की शिक्षा प्राप्त करने पुरवा टौनस्कूल गये। वहाँ से इन्होंने सन् १८९७ ई० में वर्नाक्युलर फ़ाइनल परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इस परीक्षा में इनकी प्रथम भाषा उर्दू थी। कविता की अभिरुचि, जो इनमें स्वाभाविक ही थी, वहीं से प्रबल हुई। उस समय वहाँ के हेडमास्टर पण्डित सदासुख मिश्र बड़े कविता-प्रेमी थे।

फ़ाइनल परीक्षा पास करके ये गाँव ही में फ़ारसी का अध्ययन करने लगे। सौभाग्य-वश इसी बीच हिन्दी तथा फ़ारसी के मर्मज्ञ तथा कवि लाला गिरधारीलालजी श्रीवास्तव्य पेंशन पाकर अपने जन्मस्थान हड़हा को आये। उनके परिचय और सम्पर्क से इनकी कविताभिरुचि अत्यन्त प्रबल हो उठी। और फिर यह उन्हीं से हिन्दी-काव्य का मनन करने लगे। साहित्य की शिक्षा सनेहीजी ने उन्हीं से प्राप्त की।

इसी बीच उर्दू के प्रसिद्ध कवि श्री० मुन्शी रामसहायजी "तमन्ना" शिक्षा-विभाग उन्नाव के डिप्टी-इन्सपेक्टर से भेंट हुई। उन्होंने आग्रह-पूर्वक अनुरोध किया कि ये अवश्य अध्यापकी करें; क्योंकि इस विभाग में पढ़ने पढ़ाने का अच्छा अवसर और विशेष सुविधा रहती है। अतएव इन्होंने १५, १६ वर्ष की ही अवस्था में अध्यापकी कर ली। और 'तमन्ना' जी की ही कृपा से ये शीघ्र ही नार्मल स्कूल लखनऊ में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजे गये। वहाँ ये एक योग्यतम विद्यार्थी थे और सभा उत्सव आदि में अपनी मधुर कविता से लोगों को मुग्ध करते थे। इनके इन अपूर्व गुणों से अध्यापकगण अत्यन्त सन्तुष्ट रहते थे। उस समय इन्हें उर्दू-कविता में नार्मल स्कूल के फ़ारसी मुदर्रिस मौ० सय्यद इब्राहीम हुसेन "नाज़िम" से इसलाह लेने का अवसर प्राप्त हुआ।

वहाँ से आने के कुछ मास के पश्चात् ही ये सफीपुर में फाइनल स्कूल के सेकंड मास्टर नियुक्त हुए। वहाँ के उर्दू के मशायरे में ये सदा भाग लेते थे। उन्नाव में फाइनल स्कूल खुलने पर ये उन्नाव चले आये। और यहीं पर अपने कृपालु "तमन्ना" साहब से अधिक सम्पर्क होने के कारण उर्दू में भी खूब कहने लगे। इस समय ये "रसिक मित्र" रसिक-रहस्य "काव्य-सुधानिधि" और "साहित्य-सरोवर" आदि कविता-सम्बन्धी मासिक पत्रों में प्राचीन शैली की कविता करते रहे।

'प्रताप' निकलने पर इन्होंने एक अत्यन्त करुणापूर्ण और बड़ी कविता "कृषक-क्रन्दन" नाम की प्रकाशनार्थ भेजी। उसे लोगों ने बहुत ही पसन्द किया और प्रताप-सम्पादक ने भी खूब दाद दी। तभी से ये खड़ी बोली में सामयिक कविताएँ लिखने लगे। प्रताप में प्रकाशित इनकी कविताओं ने सरस्वती-सम्पादक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का ध्यान आकर्षित किया। द्विवेदीजी ने इन्हें 'सरस्वती' में कुछ लिखनें का आदेश दिया और इन्होंने सब से पहले अगस्त सन् १९१४ की 'सरस्वती' में "दहेज की कुप्रथा" नामक एक कविता लिखी, जिसे लोगों ने बहुत ही पसन्द किया। तब से द्विवेदीजी की उत्तेजना और प्रोत्साहन से इन्होंने कई कविताएँ सरस्वती में बड़े मार्के की लिखीं। द्विवेदीजी की ही कृपा से इनकी भाषा और भी परिमार्जित और विशुद्ध होने लगी।

हिन्दी के वयोवृद्ध प्रसिद्ध कवि श्रीयुत पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्मा जी ने एक बार "कंश-बध" नामक कविता 'रसिक-मित्र' में पढ़कर 'रसिक-मित्र' में बधाई छपवाई थी और बधाई में ही सम्पादक महाशय को लिखा था कि "सनेही जी भारत-रत्न, कवीन्द्र, साहित्य-दिवाकर और भारत-सर्वस्व आदि सब से अच्छा लिखते हैं। आपने इन्हें प्रथम स्थान न देकर बड़ा अन्याय किया है।"

सन् १९१६ ई० में ये बागरमऊ के स्कूल में काम करते थे। वहाँ के ताल्लुकेदार रायबहादुर चौधरी महेन्द्रसिंह आनरेरी मजिस्ट्रेट व

मुंसिफ़ से, जो कि कविता के प्रेमी और बड़े ही मर्मज्ञ थे, परिचय हुआ और परस्पर इतना प्रेम बढ़ा कि बिना सनेहीजी के उन्हें चैन ही न पड़ता था। कई बार इन्होंने समस्याओं पर ज़बानी और तत्क्षण ही उत्तमोत्तम पूर्तियाँ करके चौधरी साहब का मन मुग्ध कर दिया। निदान एक बार चौधरी साहब ने एक बड़ा दरबार करके इन्हें स्वर्णपदक और द्रव्यादि देकर सम्मानित किया और अपनी वक्तृता में कहा कि "आज मुझे बड़ी शान्ति मिली। क्योंकि इसके लिए मेरा दिल मुझे एक अर्से से मजबूर कर रहा था"। एक बार एक उर्दू-कविता सुनकर उन्होंने कहा—"उर्दू में हमारे सनेही हमारे चकबस्त हैं।"

कुछ दिनों तक ये उन्नाव ट्रेनिङ्ग स्कूल के हेडमास्टर थे। आजकल सरकारी नौकरी से असहयोग करके कानपुर में रहते हैं और साहित्य-सेवा करते हैं।

त्रिशूल भी इन्हीं का उपनाम है। सरकारी नौकरी के दिनों में त्रिशूल के नाम से इन्होंने बहुत सी ललित कविताएँ उर्दू में लिखी हैं। जिनको लोगों ने बहुत पसंद किया।

इनका ध्यान पुस्तक-रचना की ओर बहुत कम आकृष्ट हुआ है। इनके कितने ही शिष्य हैं जो काव्य-रचना में समर्थ हैं।

अब तक इनकी रचित पुस्तकें ये हैं—(१) प्रेम पच्चीसी, (२) कुसुमाञ्जलि (३) कृषक-क्रन्दन प्रकाशित और मानस तरङ्ग तथा करुण-भारती अप्रकाशित।

ये स्वभाव के अत्यन्त सरल, सहिष्णु तथा प्रेमी हैं। इनकी कविता भावपूर्ण और हृदय-ग्राहिणी होती है। करुणरस इनको बहुत प्रिय है। इनकी कविता की भाषा परिमार्जित और बोलचाल की होती है। यहाँ इनकी कुछ कविताएँ नमूने के तौर पर उद्धृत की जाती हैं :—

(१)

भक्त की अभिलाषा

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ,
तू है महासागर अगम मैं एक धारा क्षुद्र हूँ।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूँद समान हूँ,
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ ॥ १ ॥
तू है सुखद ऋतुराज तो मैं एक छोटा फूल हूँ,
तू है अगर दक्षिण पवन तो मैं कुसुम की धूल हूँ।
तू है सरोवर अमल तो मैं एक उसका मीन हूँ;
तू है पिता तो पुत्र मैं तव अङ्क में आसीन हूँ ॥ २ ॥
तू अगर सर्वाधार है तो एक मैं आधेय हूँ,
आश्रय मुझे है एक तेरा, श्रेय या आश्रेय हूँ।
तू है अगर सर्वेश तो मैं एक तेरा दास हूँ,
तुझको नहीं मैं भूलता हूँ, दूर हूँ या पास हूँ ॥ ३ ॥
तू है पतितपावन प्रकट तो मैं पतित मशहूर हूँ,
छल से तुझे यदि है घृणा, तो मैं कपट से दूर हूँ।
है भक्ति की यदि भूख तुझको, तो मुझे तव भक्ति है,
अति प्रेम है तेरे पदों में, प्रेम है आसक्ति है ॥ ४ ॥
तू है दया का सिन्धु तो मैं भी, दया का पात्र हूँ,
करुणेश तू है, चाहता मैं नाथ करुणा-पात्र हूँ।
तू दीनबन्धु प्रसिद्ध है, मैं दीन से भी दीन हूँ,
तू नाथ ! नाथ अनाथ का, असहाय मैं प्रभु-हीन हूँ ॥ ५ ॥
तव चरण अशरण-शरण हैं, मुझको शरण की चाह है,
तू शीतकर है दग्ध को मेरे हृदय में दाह है।
तू है शरद राकाशशी, मम चित्त चारु चकोर है
तव ओर तजकर देखता वह, और की कब ओर है ॥ ६ ॥

हृदयेश अब तेरे लिए, है हृदय व्याकुल हो रहा,
आ आ इधर आ शीघ्र आ, यह शोर यह गुल हो रहा।
यह चित्त चातक है तृषित, कर शान्त करुणा वारि से
घनश्याम तेरी रट लगी आठो पहर है अब इसे॥ ७॥
तू जानता मन की दशा, रखता न तुझसे बीच हूँ,
जो कुछ कि हूँ तेरा किया हूँ उच्च हूँ या नीच हूँ।
अपना मुझे अपना समझ तपना न अब मुझको पड़े,
तजकर तुझे यह दास जाकर द्वार अब किसके अड़े॥ ८॥
तू है दिवाकर तो कमल मैं, जलद तू मैं मोर हूँ,
सब भावनायें छोड़कर अब कर रहा यह शोर हूँ।
मुझमें समाजा इस तरह तन प्राण का जो तौर है,
जिसमें न फिर कोई कहे मैं और हूँ तू और है॥ ९॥

(२)

वह बेपरवाह बने तो बने हमको इसकी परवाह का है।
वह प्रीति का तोड़ना जानते हैं ढँग जाना हमारा निवाह का है॥
कुछ नाज़ जफ़ा पर हैं उनको तो भरोसा हमें बड़ा आह का है।
उन्हें मान है चन्द्र से आनन पै अभिमान हमें भी तो चाह का है॥

(३)

दाह रही दिल में दिन द्वैक बुझी फिर आपै कराह नहीं अब।
मानि कै रावरे रूरे चरित्र गुन्यो हिय में कि निबाह नहीं अब॥
चाहक चारु मिले तुमको चित माँहि हमारे भी चाह नहीं अब।
जो तुम में न सनेह रहा हमको भी नहीं परवाह रही अब॥

(४)

रावन से बावन बिलाने हैं बचे न एक चाल नहिं काल से किसी की चल पाई है। कौरव कुटिल कुल कुल के कठोर भये कृष्णजी सों कंस की न दाल गल पाई है॥ हाय की हवा सों जल गये हैं जवन जूथ हासिल

हुक्म प न लागे पल पाई है। या ते वल पाय फल पाय लेहु जीवन को दीन कलपाय कहो कौने कल पाई हैं ॥

(५)

लड़कपन

चित्त के चाव, चोचले मन के,
वह बिगड़ना घड़ी घड़ी बन के।
चैन था, नाम था न चिन्ता का,
थे दिवस और ही लड़कपन के ॥ १ ॥

झूठ जाना कभी न छल जाना,
पाप का पुण्य का न फल जाना।
प्रेम वह खेल से खिलौनों से,
चन्द्र तक के लिए मचल जाना ॥ २ ॥

चन्द्र था और और ही तारे,
सूर्य्य भी और थे प्रभा धारे।
भूमि के ठाठ कुछ निराले थे,
धूलि-कण थे बहुत हमें प्यारे ॥ ३ ॥

सब सखा शुद्ध चित्त वाले थे,
प्रौढ विश्वास प्रेम पाले थे।
अब कहाँ रह गईं बहारें वे,
उन दिनों रङ्ग ही निराले थे ॥ ४ ॥

सूर्य्य के साथ ही निकल जाना,
दिन चढ़े घूम-घाम घर आना।
काम था काम से न धन्धे से,
काम था सिर्फ खेलना खाना ॥ ५ ॥

फिर मिला इस तरह नया जीवन,
पुस्तकों में पड़ा लगाना मन।

मिल चले जब कि मित्र सहपाठी,
बन गया एक बाग़ बीहड़ वन ॥६॥
भार यद्यपि कठिन उठाना था,
किन्तु उद्योग ठीक ठाना था।
हौसिले से भरा हुआ मन था,
और दिन और ही ज़माना था ॥७॥
अब दशा वह कहाँ रही मन की,
फ़िक्र है धर्म्म, धाम, तन, धन की।
एक घूँसा लगा गई दिल पर,
याद जब आ गई लड़कपन की ॥८॥

(६)

सत्य

(१)

सत्य सृष्टि का सार सत्य निर्बल का बल है;
सत्य सत्य है सत्य नित्य है अचल अटल है।
जीवन सर में सरस मित्रवर यही कमल है;
मोद मधुर मकरन्द सुयश सौरभ निर्मल है॥
मन मलिन्द मुनि वृन्द के मचल मचल इस पर गये।
प्राण गयें तो इसी पर न्योछावर होकर गये॥

(२)

अटल सत्य का प्रेम भरे जिस नर के मन में;
पाये जो आनन्द आत्मबल के दर्शन में।
पशुबल समझे तुच्छ खङ्ग भूषण गर्दन में;
सनके भी जो नहीं गोलियों की सन सन में।
जीवन में बस प्रेम ही जिसका प्राणाधार हो।
सत्य गले का हार हो इतना उस पर प्यार हो॥

(३)

इस पथ में बस वही वीर पहुँचा मंज़िल पर;
डाल न सकती शक्ति मोहिनी जिसके दिल पर।
उस से भिड़कर कौन भाल फोड़ेगा सिल पर,
खेड़े में जो अड़ा या कि वह रौलट बिल पर॥
समझो सम्मुख ही धरा जो कुछ उस का ध्येय है।
विश्व-विजयिनी शक्ति यह परम अभेद्य अजेय है॥

(४)

सहकर सिर पर भार मौन हीं रहना होगा;
आये दिन की कड़ी मुसीबत सहना होगा।
रङ्गमहल भी जेल आहनी गहना होगा;
किन्तु न मुख से कभी हन्त हा! कहना होगा।
डरना होगा ईश से और दुखी की हाय से।
भिड़ना होगा ठोंककर खम अनीति अन्याय से॥

(५)

तुम होगे सुकरात ज़हर के प्याले होंगे;
हाथों में हथकड़ी पदों में छाले होंगे।
ईसा से तुम और जान के लाले होंगे,
होगे तुम निश्चेष्ट डस रहे काले होंगे।
होना मत व्याकुल कहीं इस भवजनित विषाद से।
अपने आग्रह पर अटल रहना बस प्रह्लाद से॥

(६)

होंगे शीतल तुम्हें आग के भी अङ्गारे;
मर न सकोगे कभी मौत के भी तुम मारे।
क्या गम है, गर छूट जायँगे साथी सारे;
बहलावेंगे चित्त चन्द्र चमकीले तारे।

दुख में भी सुख शान्ति का नव अनुभव हो जायगा।
प्रेम-सलिल से द्वेष का सारा मल धो जायगा॥

(७)

धीरज देगी तुम्हें मिलवर मीराबाई;
प्रेम-पयोनिधि थाह भक्ति से जिसने पाई।
रही सत्य पर डटी प्रेम से बाज़ न आई;
कृष्ण-रङ्ग में रङ्गी कीर्ति उज्ज्वल फैलाई।
आई भी उस की टली वह विष प्याला पी गई।
मरी उसीकी गोद में जिस को पाकर जी गई॥

(८)

सत्य रूप हे नाथ! तुम्हारी शरण रहूँगा;
जो व्रत है ले लिया लिये आमरण रहूँगा;
ग्रहण किये मैं सदा आपके चरण रहूँगा;
भीत किसी से और न हे भयहरण रहूँगा।
पहली मंजिल मौत है प्रेम-पन्थ है दूर का।
सुनता हूँ मंत्र था यही सूली पर मन्सूर का॥

रूपनारायण पाण्डेय

(कमलाकर)

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय का जन्म लखनऊ के रानी-कटरे में संवत् १९४१, आश्विन शुक्ल १२, को हुआ। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण गेगासों के पाण्डेय (षट्कुल) हैं। इनके पिता का नाम पं० शिवराम पाण्डेय था। जब ये एक ही वर्ष के थे, उसी समय उनका देहान्त हो गया था। इस अवस्था में, इनके पितामह पं० राधाकान्त पाण्डेय ने

अपने आश्रय एवं प्रेम से इनका लालन-पालन किया ।

इनका विद्यारम्भ पहले-पहल घर ही पर कराया गया । पहले संस्कृत की शिक्षा दी जाती रही । फिर इन्होंने कैनिङ्ग कालेज से प्रथमा परीक्षा पास करके मध्यमा का कोर्स पढ़ना शुरू किया । इसी अवसर में बाबा का भी देहान्त हो गया आर गृहस्थी का सारा भार इन्हीं पर आ गिरा । उसे सम्हालने में पढ़ाई से हाथ खींचकर इन्हें नौकरी का सहारा लेना पड़ा । किन्तु विद्याभ्यास बराबर जारी रहा और वही क्रम अब भी जारी है । धर्म-भ्रष्ट होने के भय से, बाबा ने इन्हें अंग्रेज़ी की विशेष शिक्षा नहीं दिलाई; पर अपने परिश्रम से इन्होंने बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।

स्कूल में इनका विद्याध्ययन बहुत ही थोड़ा हुआ था । इन्होंने जो कुछ योग्यता प्राप्त की है वह इनके निज के परिश्रम तथा पुस्तकावलोकन का ही फल है । स्कूल में इन्होंने संस्कृत सिद्धान्त-कौमुदी (समग्र), रघुवंश, मेघदूत, किरातार्जुनीय, माघ, तर्कसंग्रह, मुक्तावली, श्रुतबोध, साहित्य-दर्पण आदि का अध्ययन किया है । 'वर्ण-परिचय' देखकर इन्होंने बँगला भाषा एक सप्ताह में सीखी है । मराठी, गुजराती और उर्दू का भी साधारण ज्ञान स्वयं सीखकर प्राप्त किया है ।

बचपन से ही इनको साहित्य से रुचि है । जब १५ वर्ष के थे, तभी से इन्होंने कुछ न कुछ लिखना आरम्भ कर दिया था । इस समय तक इनके द्वारा रचित और अनुवादित ग्रन्थों की संख्या साठ-सत्तर तक पहुँच चुकी है ।

पहले कुछ दिनों तक बाबू कालीप्रसन्न सिंह सबजज के यहाँ रहकर ये "कृत्तिवास रामायण" का पद्यानुवाद करते रहे । फिर सात वर्ष तक 'नागरी-प्रचारक मासिक पत्र' का सम्पादन किया । तीन वर्ष तक भारतधर्म-महामण्डल की मुख-पत्रिका 'निगमागम-चन्द्रिका' का सम्पादन किया । इसके पश्चात् दो वर्ष तक 'इन्दु' मासिक-पत्र के सम्पादकीय विभाग में काम किया । वहाँ इन्हें "इन्दु रौप्य पदक" मिला । फिर एक वर्ष इंडियन

प्रेस में रहे। दो वर्ष तक 'कान्यकुब्ज' मासिक-पत्र का सम्पादन किया। अबतक इनके लिखे हुये लगभग २०० गद्य-लेख और १०० पद्य सामयिक पत्रों में निकल चुके हैं।

पांडेयजी बड़े विद्याव्यसनी, सुशील और मिलनसार हैं। अब तक इनका जीवन एकमात्र साहित्य-चर्चा ही में बीत रहा है। इनके गद्य-पद्य दोनों प्रकार के लेख सरस और सुपाठ्य होते हैं। आजकल ये हिन्दी की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका माधुरी के सम्पादक हैं। इनकी कुशल लेखनी और सम्पादन-पटुता से उसने हिन्दी में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है।

इनके द्वारा रचित और अनुवादित ग्रन्थों की सूची नीचे दी जाती है:—

१—श्रीमद्भागवत का समग्र अविकल अनुवाद (शुकोक्ति सुधा-सागर), २—आँख की किरकिरी, ३—शान्तिकुटीर, ४—चौबे का चिट्ठा, ५—दुर्गादास, ६—उस पार, ७—शाहजहाँ, ८—नूरजहाँ, ९—सीता, १०—पाषाणी, ११—सूम के घर धूम, १२—भारत-रमणी, १३—बंकिम निबन्धावली, १४—ताराबाई, १५—ज्ञान और कर्म, १६—विद्यासागर, १७—बाल कालिदास, १८—बालशिक्षा, १९—तारा, २०—राजा रानी, २१—घर बाहर, २२—भूप्रदक्षिण, २३—गल्प-गुच्छ, (५ भाग), २४—समाज, २५—शिक्षा, २६—महाभारत सम्पूर्ण का हिन्दी-अनुवाद, २७—रमा, २८—पतित पति, २९—शूर-शिरोमणि, ३०—हरीसिंह नलवह, ३१—गुप्तरहस्य, ३२—खाँजहाँ, ३३—मूर्ख-मंडली, ३४—मंजरी, ३५—कृष्णकुमारी, ३६—बंकिमचन्द्र, ३७—अज्ञातवास, ३८—बहता हुआ फूल, ३९—पोष्यपुत्र, ४०—चंद्रप्रभ-चरित्र, ४१—पृथ्वीराज, ४२—प्रफुल्ल, ४३—शिवाजी, ४४—वीरपूजा, ४५—नारीनीति, ४६—आचार-प्रबन्ध, ४७—घरजमाई, ४८—स्वतंत्रता देवी, ४९—नीति-रत्नमाला, ५०—भगवती-शतक, ५१—शिव-शतक, ५२—रंभा-शुक-संवाद (पद्यानुवाद), ५३—पत्र-पुष्प, ५४—दुरंगी

दुनिया, ५५—गोरा, ५६—बुद्ध-चरित्र, ५७—खोई हुई निधि, ५८—गृहलक्ष्मी ५९—विजया, ६०—अबला का बल (मौलिक अप्रकाशित) ६१—कर्त्तव्यपालन (मौलिक अप्रकाशित)। इनकी कुछ फुटकर कविताओं का संग्रह "पराग" नाम से अलग प्रकाशित हुआ है।

पांडेयजी की कविता के नमूने यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :—

(१)

दलित कुसुम

(१)

अहह ! अधम आँधी, आ गई तू कहाँ से ?
प्रलय घन-घटा सी छा गई तू कहाँ से ?
पर-दुख-सुख तू ने, हा ! न देखा न भाला।
कुसुम अधखिला ही, हाय ! यों तोड़ डाला ॥

(२)

तड़प तड़प माली अश्रु-धारा बहाता।
मलिन मलिनिया का दुःख देखा न जाता ॥
निठुर ! फल मिला क्या व्यर्थ पीड़ा दिये से।
इस नवलतिका की गोद सूनी किये से ॥

(३)

यह कुसुम अभी तो डालियों में धरा था।
अगणित अभिलाषा और आशा-भरा था ॥
दलित कर इसे तू काल, क्या पा गया रे !
कण भर तुझ में क्या हा ! नहीं है दया रे !!

(४)

सहृदय जन के जो कण्ठ का हार होता।
मुदित मधुकरी का जीवनाधार होता॥
वह कुसुम रंगीला धूल में जा पड़ा है।
नियति ! नियम तेरा भी बड़ा ही कड़ा है॥

(२)

वन-विहंगम

वन-बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत-कपोती कहीं।
दिनरात न एक को दूसरा छोड़ता, ऐसे हिले-मिले दोनों वहीं॥
बढ़ने लगा नित्य नया नया नेह, नई नई कामना होती रहीं।
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं॥ १॥
रहता था कबूतर मुग्ध सदा अनुराग के राग में मस्त हुआ।
करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ॥
जब जो कुछ चाहा कबूतरी ने, उतना वह वैसे समस्त हुआ।
इस भाँति परस्पर पक्षियों में भी, प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ॥ २॥
सुविशाल नभों में उड़े फिरते, अवलोकते प्राकृत चित्तछटा।
कहीं शस्य से श्यामल खेत खड़े, जिन्हें देख घटा का भी मान घटा॥
कहीं कोसों उजाड़ में झाड़ पड़े, कहीं आड़ में कोई पहाड़ सटा।
कहीं कुञ्ज लता के वितान तने, सब फूलों का सौरभ था सिमटा॥ ३॥
झरने झरने की कहीं झनकार फुहार का हार विचित्र ही था॥
हरियाली निराली, न माली लगा, फिर भी सब ढंग पवित्र ही था॥
ऋषियों का तपोवन था, सुरभी का जहाँ पर सिंह भी मित्र ही था।
बस, जानलो, सात्त्विक सुन्दरता, सुख संयत शान्ति का चित्र ही था॥ ४॥
कहीं झील-किनारे बड़े बड़े ग्राम, गृहस्थ-निवास बने हुये थे।
खपरैलों में कद्दू, करैलों की बेल के खूब तनाव तने हुये थे॥

जल शीतल, अन्न जहाँ पर पाकर, पक्षी घरों में घने हुये थे।
सब ओर स्वदेश-स्वजाति-समाज-भलाई के ठान ठने हुये थे॥ ५॥
इस भाँति निहारते लोक की लीला प्रसन्न वे पक्षी फिरें घर को।
उन्हें देखते दूर ही से, मुख खोल के बच्चे चलें चढ़ बाहर को॥
दुलराने, खिलाने, पिलाने से था अवकाश उन्हें न घड़ी भर को।
कुछ ध्यान ही था न कबूतर को कहीं काल चढ़ा रहा है शर को॥ ६॥
दिन एक बड़ा ही मनोहर था छवि छाई वसन्त की कानन में।
सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी जड़ चेतन के तन में मन में॥
निकले थे कपोत-कपोती कहीं पड़े झुंड में घूम रहे वन में।
पहुँचा यहाँ घोंसले पास शिकारी शिकार की ताक में निर्जन में॥ ७॥
उस निर्दय ने उसी पेड़ के पास बिछा दिया जाल को कौशल से।
वहाँ देख के अन्न के दाने पड़े चले बच्चे अभिज्ञ जो थे छल से॥
नहीं जानते थे, कि यहीं पर है कहीं दुष्ट भिड़ा पड़ा भूतल से।
बस, फाँस के बाँस के बन्धन में कर देगा हलाल हमें बल से॥ ८॥
जब बच्चे फँसे उस जाल में जा तब वे घबड़ा उठे बन्धन में।
इतने में कबूतरी आई वहाँ दशा देख के व्याकुल हो मन में॥
कहने लगी, "हाय हुआ यह क्या! सुत मेरे हलाल हुये बन में।
अब जाल में जाके मिलूँ इनसे सुख ही क्या रहा इस जीवन में" ॥ ९॥
उस जाल में जाके बहेलिये के ममता से कबूतरी आप गिरी।
इतने में कपोत भी आया वहाँ उस घोंसले में थी विपत्ति निरी॥
लखते ही अँधेरा सा आगे हुआ घटना की घटा वह घोर घिरी।
नयनों से अचानक बूँद गिरे चेहरे पर शोक की स्याही फिरी॥१०॥
तब दीन कपोत बड़े दुख से कहने लगा—"हा! अति कष्ट हुआ।
निबलों ही को दैव भी मारता है ये प्रवाद यहाँ पर स्पष्ट हुआ॥
सब सूना किया, चली छोड़ प्रिया सब ही विधि जीवन नष्ट हुआ।
इस भाँति अभागा अतृप्त ही मैं सुख भोग के स्वर्ग से भ्रष्ट आ॥११

कल-कूजन-केलि-कल्लोल में लिप्त हो बच्चे मुझे जो सुखी करते।
जब देखते दूर से आता मुझे किलकारियाँ मोद से जो भरते॥
समुहाय के, धाय के आय के पास उठाय के पंख नहीं ॰ दरे।
वही हाय! हुये असहाय अहो! इस नीच के हाथ से हैं मरते॥१२॥

गृह-लक्ष्मी नहीं जो जगाये रहा करती थी सदा सुखकल्पना को।
शिशु भी तो नहीं, जो उन्हीं के लिये सहता इस दारुण वेदना को।
वह सामने ही परिवार पड़ा पड़ा भोग रहा यमयातना को॥
अब मैं ही वृथा इस जीवन को, रख कैसे सहूँगा विडम्बना को॥१३॥

यहाँ सोचता था यों कपोत वहाँ चिड़ीमार ने मार निशाना लिया।
गिर लोट गया धरती पर पक्षी बहेंलिये ने मनमाना किया॥
पल में कुल का कुल काल कराल ने भूत भविष्य में भेज दिया।
क्षणभंगुर जीवन की गति का यह एक निदर्शन है बढ़िया॥१४॥

हरएक मनुष्य फँसा जो ममत्व में तत्व महत्व को भूलता है।
उसके शिर पै खुला खड्ग सदा बँधा धागे में धार से झूलता है॥
वह जाने विना विधि की गति को अपनी ही गढ़न्त में फूलता है।
पर अन्त को ऐसे अचानक अन्तक अस्त्र अवश्य ही हूलता है॥१५॥

पर जो मन भोग के साथ ही योग के काम पवित्र किया करता।
परिवार से प्यार भी पूर्ण रखे, पर-पीर परन्तु सदा हरता॥
निज भाव न भूल के, भाषा न भूल के, विघ्न व्यथा को नहीं डरता।
कृतकृत्य हुआ हँसते हँसते, वह सोच सँकोच बिना मरता॥१६॥

प्रिय पाठक! आप तो विज्ञ ही हैं, फिर आप को क्या उपदेश करें।
शिर पै शर ताने बहेलिया काल खड़ा हुआ है यह ध्यान धरें॥
दशा अन्त को होनी कपोत की ऐसी परन्तु न आप ज़रा भी डरें।
निज धर्म के कर्म सदव करें कुछ चिन्ह यहाँ पर छोड़ मरें॥१७॥

(३)

बुद्धि विवेक की जोति बुझी ममता मद मोह घटा घनी घेरी।
है न सहारो, अनेकन हैं ठग पाप के पन्नग की रहें फेरी॥
त्यों अभिमान को कूप इतै उतै कामना रूप सिलान की ढेरी।
तू चलु मूढ़ सँभारि अरे मन राह न जानी है रैन अँधेरी॥

(४)

आनन स्वकीया को निहार्‌यो सपने हू नहीं,
परि परकीया में कमायो है अजस क्यों ?
गनिका के भेद पै अपार खेद पायो सदा,
जानत सिंगार-रचना को सरबस क्यों ?
हावभाव भूलो नहीं तब तो अजान अब,
कठिन समस्या हेरि होत है अलस क्यों ?
देश की भलाई भला आई न जो तोहि मन,
नाहक बिताई कविताई में बयस क्यों ?

(५)

सकल बिगारे काज परि कै सिँगार माहिं,
वीर न बन्यो रे कबौं धर्म दया दान त।
तन जो विभत्स मलपूरित अशुद्ध ताहि,
अद्‌भुत रूप दरसायो तू बखान ते॥
रौद्ररूप काल की भयानक अवाई तऊ,
शान्त ना भयो है, कहौ निज अनुमान ते।
हास्य मोहिं आवै लखि तेरी गति ऐरे मन,
करुना न चाहै अजौं करुनानिधान तें॥

(६)

शारद विशारद विशारद को पारद,
विरंचि हरि नारद अधीन कहियत है।

पंडित भुजा में वर वीना है प्रवीनाजू के,
एक कर अभय वरादि गहियत है ॥
चहियत पद अवलंब अंब तेरे पाय,
हरष-कदंब ना विलम्ब सहियत है।
हरन हजार दुख सुख के करन,
चारुचरन सरन में सदा ही रहियत है ॥

(७)

सेंहुड़ बबूर को लगावैं जो जतन करि,
काटत चमेली चंपा चंदन जुहिन को।
हिंसा करि हंसा और कोकिला कलापिन की,
आदर समेत पालैं वायस मलिन को ॥
गधे गजराज को समान मान होत जहाँ,
एक से कपूर औ कपास लागैं जिनको।
हमैं "कमलाकर" न देश दिखरावै वह,
दूर सों हमारे हैं प्रणाम कोटि तिनको ॥

(८)

आश्वासन

(१)

वे उठते भी हैं अवश्य ही जो गिरते हैं।
दुर्दिन के ही बाद सुदिन सब के फिरते हैं ॥
देखे दारुण दुःख वही नर फिर सुख पावे।
अवनति के उपरान्त घड़ी उन्नति की आवे ॥
रवि रात बीतने पर प्रकट होते प्रातः समय में।
बस यही सोचकर आप भी धीरज रखिए हृदय में ॥

(२)

होता प्रथम बसन्त ग्रीष्म ऋतु फिर आती है ।
चले पसीना अंग आग सी लग जाती है ॥
पत्ते फल या फूल बिना जल जल जाते हैं ।
पशु-पक्षी भी घोर घाम से घबराते हैं ॥
फिर शीघ्र देखते देखते हरी भरी होती मही ।
आजाती वर्षांऋतु भली सुख देती तत्काल ही ॥

(३)

कवियों का सर्वस्व, स्वर्ग की शोभा भारी ।
शिव के भी सिर चढ़ा और आकाश-विहारी ॥
अमृत सहोदर चंद्र, कला जब घटने लगती ।
तब होता है क्षीण और श्री लटने लगती ॥
वह किन्तु शीघ्र ही पूर्ण हो, होता है फिर अभ्युदय ।
है ठीक नियम यह प्रकृति का, परिवर्तन हो हर समय ॥

(४)

इतने बड़े अनंत तेज की राशि दिवाकर ।
तपते तीनों लोक बीच, पूजित हो घर घर ॥
किन्तु समय पर राहु उन्हें ग्रस लेता जाकर ।
कुछ कर सकते नहीं हजारों यद्यपि हैं कर ॥
वह पहले होते अस्त या ग्रस्त समस्त प्रभारहित ।
फिर होते मुक्त प्रकाश से युक्त पूर्व में अभ्युदित ॥

(५)

जीव मरण के बाद जन्म पाता है देखो ।
कृष्ण पक्ष के बाद शुक्ल आता है देखो ॥
चलती है हेमन्त हवा जब ज़ोर दिखाती ।
तब होता पतझाड़ न पत्ती रहने पाती ॥

फिर वही वृक्ष होते हरे नवपल्लव शोभित सभी ।
बस, इसी तरह होंगे सुखी उन्नति-युत हम भी कभी ॥

रामचन्द्र शुक्ल

पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का जन्म सं० १९४१ आश्विन की पूर्णिमा को गाँव अगोना (पो०कलवारी, ज़िला बस्ती) में हुआ। ये गर्गगोत्री सरयूपारी ब्राह्मण हैं। छः वर्ष की अवस्था में राठ (जि० हमीरपुर) में, जहाँ इनके पिता पंडित चंद्रबली शुक्ल सुपरवाइज़र क़ानूनगो थे, इनका अक्षरारंभ कराया गया। वहाँ के हिन्दी-उर्दू स्कूल में दोही वर्षों में ये चौथे दरजे में पहुँच गए। सन् १८९२ में इनके पिता की नियुक्ति सदर क़ानूनगो के पद पर मिर्ज़ापुर में हुई। वे परिवार को राठ में ही छोड़कर स्थान आदि ठीक करने के लिए मिर्ज़ापुर गये। इधर इनकी माता बीस दिन के एक बच्चे, इनके सब से छोटे भाई कृष्णचन्द्र को, छोड़कर परलोक सिधारीं। इनके पिता १३, १४ घंटे बाद पहुँचे। वहाँ से वे सब को लेकर मिर्ज़ापुर चले आये।

मिर्ज़ापुर ही में पंडित रामचन्द्र शुक्ल के जीवन का अधिक भाग व्यतीत हुआ। वहाँ जुबिली स्कूल में ये ९ वर्ष की अवस्था में भरती होकर उर्दू के साथ अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। इनका विवाह १२ वर्ष की अवस्था में ही काशी-निवासी पंडित रामफल पांडे ज्योतिषी की कन्या से हुआ। १४॥ वर्ष की अवस्था में इन्होंने मिडल पास किया। अपने दरजे में ये हमेशा प्रथम रहते थे। इनके पड़ोस में संस्कृत-साहित्य के एक विद्वान् पंडित विन्ध्येश्वरी-प्रसाद रहते थे। वे कभी कभी अपने शिष्यों को लेकर पर्वत की ओर निकल जाते थे और वहाँ बड़े मधुरस्वर से श्लोक-पाठ किया करते थे। रामचंद्रजी

को प्राकृतिक दृश्यों से बालकपन से ही प्रेम है। ये भी उनके साथ चले जाया करते थे। उनके सत्संग से इनकी प्रवृत्ति संस्कृत सीखने की ओर हुई। और उन्हीं दिनों बाबू काशीप्रसादजी जायसवाल की संगति से हिन्दी की ओर इनका अनुराग और बढ़ चला। एक बार ये काशी गये। वहाँ इनका परिचय पंडित केदारनाथजी पाठक से हुआ। पाठकजी की कृपा से इन्हें हिन्दी और बँगला की पुस्तकें पढ़ने को मिलने लगीं। १९०१ के आरंभ में इन्होंने लन्दन मिशन से एंट्रेंस पास किया।

पुस्तक पढ़ने का इन्हें बड़ा व्यसन है। एंट्रेंस पास करने के बाद एफ० ए० में पढ़ने के लिये प्रयाग की कायस्थ पाठशाला में इन्होंने नाम लिखाया। पर गृह-विवाद के कारण थोड़े ही दिनों में इन्हें कालिज छोड़कर बस्ती (अगोना) चला जाना पड़ा। कुछ दिन घर रहने के बाद क़ानून पढ़ने के लिये ये फिर प्रयाग आये। दो वर्ष तक पढ़कर ये फिर मिर्ज़ापुर चले गये। वहाँ कुछ दिन के बाद मिशन स्कूल में मास्टर हो गये। १९०६ में वकालत का इम्तहान दिया, पर पास न हुये। १९०८ तक ये मिशन स्कूल ही में रहे। इसके उपरांत-काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा का हिन्दी-कोश आरंभ हुआ और ये उसके सहायक संपादक के रूप में बुलाए गए। नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका का भी संपादन इन्होंने ८, ९ वर्षों तक किया। आजकल काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक हैं। इनके दो पुत्र और तीन कन्यायें हैं। ज्येष्ठ पुत्र पंडित केशवचन्द्र शुक्ल, बी० ए० एल-एल० बी० हाल में डिप्टी कलक्टर नियुक्त हुये हैं। छोटे पुत्र गोकुलचंद्र शुक्ल, एम० ए० और क़ानून पढ़ते हैं।

तेरह वर्ष की अवस्था में खिलवाड़ की तरह पर इन्होंने एक "हास्य-विनोद" नाम का नाटक लिखा, जिसे एक महाशय ने हँसते-हँसते फाड़ डाला। "संयोगता स्वयंवर" और "दीप-निर्वाण" को देख इन्हें पृथ्वीराज नाटक लिखने की इच्छा हुई और उसके दो अंक इन्होंने लिख भी डाले। इनके अतिरिक्त अपने सहपाठी लड़कों की निन्दा में भी ये कवित्त और

दोहे इत्यादि जोड़ते थे। १६ वर्ष की अवस्था में इन्होंने "मनोहर छया" नाम की एक कविता लिखी जो सरस्वती में प्रकाशित हुई। फिर तो इनके बहुत से लेख और कविताएँ सरस्वती, समालोचक आदि पत्रों में निकलीं। १९०२ में हिन्दी-लेखकों में बहुत सी कुप्रथाओं (जैसे अनुवाद को स्वरचित ग्रंथ बतलाना) के विरुद्ध इन्होंने प्रयाग के Indian People नामक अँगरेज़ी पत्र में एक लेखमाला निकाली थी, जिसके कारण हिन्दी-संवादपत्रों में बहुत दिनों तक बड़ा कोलाहल रहा। ये समय समय पर गुप्त वा प्रकट रूप में हिन्दी के संबन्ध में अँगरेज़ी पत्रों में भी लेख लिखा करते हैं? "माडर्न रिव्यू" नामक प्रसिद्ध अँगरेज़ी मासिकपत्र में कुछ दिनों तक ये हिन्दी-पुस्तकों की आलोचना भी करते रहे। नागरी-प्रचारिणी-सभा का एक संक्षिप्त इतिहास भी ५० पृष्ठों का अँगरेज़ी में लिखा है। सन् १९१७ में श्रीयुत चिन्तामणि के नागरी संबन्धी प्रस्ताव पर प्रांतीय काउन्सिल के मुसलमान सदस्यों ने जो विरोध किया, उसके उत्तर में इन्होंने एक बहुत बड़ा और युक्तिपूर्ण लेख Hindi and the Mussalmans 'लीडर' में लिखा। असहयोग की धूम के ज़माने में बाँकीपुर के Express नामक अँगरेज़ी पत्र में इन्होंने Non-co-operation and the non-mercantile classes के नाम से एक बहुत लंबा लेख लिखा जो तीन संख्याओं में निकला है।

इनके लेखों में बिल्कुल इनके निज के विचार रहते हैं। इनके निबन्ध अधिकतर दुरूह और जटिल होते हैं। इससे साधारण हिन्दी-पाठकों का चाहे उनसे मनोरञ्जन न हो, पर हिन्दी की उच्च शिक्षा के लिए वे बड़े काम के हैं। साहित्य विषय पर "कविता क्या है?" 'भारतेन्दु की समीक्षा', 'उपन्यास', 'भाषा का विस्तार' आदि इनके निबन्ध बहुत सारगर्भित हैं। 'शिशिर-पथिक', 'बसन्त', 'बसन्त-पथिक', 'भारत-बसन्त', 'दुर्गावती', तुलसीदास, प्रकृति-प्रबोध, हृदय का मधुर भार, आदि कविताएँ अत्यन्त रुचिर भावों से पूर्ण हैं। मनोविकारों पर इनकी लेखमाला

में सर्वत्र स्वतंत्र, मौलिक और गूढ़ दार्शनिक भाव भरे हुए हैं। इनकी लेखशैली गम्भीर, व्यवस्थित और निराली है। तुलसी, सूर और जायसी की बड़ी गूढ़ और गम्भीर समीक्षायें लिखकर इन्होंने हिन्दी में ऊँचे दरजे की समालोचना का सूत्रपात्र किया है।

फुटकर निबंधों और कविताओं के अतिरिक्त इनकी लिखी और अनुवाद की हुई पुस्तकें ये हैं—

(१) कल्पना का आनन्द (एडिसन के Essay on the Imagination का अनुवाद)

(२) मेगास्थनीज़ का भारतवर्षीय विवरण (अँगरेज़ी का अनुवाद)

(३) राज्यप्रबन्ध-शिक्षा (सर टी० माधवराव के Minor Hints का अनुवाद)

(४) बा० राधाकृष्णदास का जीवनचरित

(५) प्रवाहगामिनी माला (काव्य,असमाप्त)

(६) प्राचीन पारस का संक्षिप्त इतिहास (अनुसंधानपूर्ण)

(७) आदर्श जीवन

(८) विश्वप्रपंच (हेकल के Riddle of the universe का अनुवाद। इसमें १५५ पृष्ठों की दर्शन-विज्ञान के तत्वों से पूर्ण भूमिका देखने योग्य है)।

(९) शशांक—राखालदास वन्दोपाध्याय के प्रसिद्ध उपन्यास का अनुवाद। पिछले गुप्त सम्राटों के सम्बन्ध में अबतक ज्ञात सारी बातों को भूमिका में देने के अतिरिक्त मूल पुस्तक की आख्यायिका में भी बड़े कौशल से फेरफार किया है।

(१०) बुद्धचरित—Light of Asia के आधार पर आठ सर्गों का एक सुरस काव्य। 'काव्य-भाषा' पर एक बहुत बड़ा निबन्ध भी भूमिका के साथ है, जिसमें खड़ी, ब्रज और अवधी तीनों बोलियों का तारतम्य दिखाते हुए बहुत सूक्ष्म और पांडित्यपूर्ण विवेचन किया गया

है। बुद्धचरित विविध छंदों में लिखा गया है। कविता बड़ी मधुर है।

(११) गोस्वामी तुलसीदास (आलोचना)

(१२) मलिक मुहम्मद जायसी ,,

(१३) महाकवि सूरदास जी ,,

कठिन प्राचीन ग्रंथों के सम्पादन की ओर भी इनका पूरा ध्यान रहता है। इन्होंने सूरदास के 'भ्रमरगीत' और केशवदास के 'वीरसिंहदेव चरित' का टीका-टिप्पणी के साथ सम्पादन किया है। नागरी-प्रचारिणी-सभा से निकलनेवाली 'तुलसी-ग्रंथावली' के तीन सम्पादकों में से एक ये भी हैं। उक्त ग्रंथावली में गम्भीर आलोचना-पूर्ण भूमिका इन्हीं की लिखी है। आपने 'जायसी-ग्रंथावली' का सम्पादन प्रचुर टीका-टिप्पणी के साथ बड़े विशद रूप में किया है। जिसके साथ २५५ पृष्ठों की बड़ी ही विस्तृत, गूढ़ और पांडित्यपूर्ण समीक्षा है। सूर की आलोचना भी इसी प्रकार की है। काव्य के सिद्धान्तों पर ये एक बहुत बड़ी और स्वतन्त्र पुस्तक लिख रहे हैं।

शुक्लजी करुणरस लिखने में तो सिद्धहस्त हैं हीं, इनके प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन भी बड़े ही मार्मिक और मनोहर होते हैं। उनसे इनके प्रकृति के सूक्ष्म-निरीक्षण का परिचय मिलता है।

यहाँ शुक्लजी की कविता के नमूने दिये जाते हैं—

(१)

शिशिर-पथिक

विकल पीड़ित पीय-पयान तें
चहुँ रह्यो नलिनी-दल घेरि जो।
भुजन भेंटि तिन्हैं अनुराग सों
गमन-उद्यत भानु लखात हैं॥ १॥
तजि तुरन्त चले मुहँ फेरि कै
शिशिर-शीत-सशंकित मेदिनी।

विहग आरत बन पुकारते
रहि गए, पर नेकु सुन्यो नहीं ॥ २ ॥
तनि गए सित ओस-वितान हू,
अनिल-झार-बहार धरा परी ।
लुकन लोग लगे घर बीच हैं
विवर भीतर कीट पतंग से ॥ ३ ॥
युग भुजा उर बीच समेटि कैं,
लखहु आवत गैयन फेरि कैं ।
कँपत कम्बल बीच अहीर हैं;
भरमि भूलि गईं सब तान हैं ॥ ४ ॥
तम चहूँ दिशि कारिख फेरि कै
प्रकृति-रूप कियो धुँधलो सबै ।
रहि गए अब शीत-प्रताप तें
निपट निर्जन घाटऽरु बाटहू ॥ ५ ॥
पर चलो वह आवत है लखो
विकट कौन हठी हठ ठानि कै ।
चुप रहैं तब लौं जब लौं कोऊ
सुजन पूछनहार मिले नहीं ॥ ६ ॥
शिथिल गात पन्यो, गति मन्द है,
चहुँ निहारत धाम विराम को ।
उठत धूम लख्यो कछु दूर पै
करत श्वान जहाँ रव भूँकि कै ॥ ७ ॥
कँपत आय भयो छिन में खड़ो
दृढ़ कपाट लगो इक द्वार पै ।
सुनि पन्यो "तुम कौन ?" कह्यो तबै
"पथिक दीन दया एक चाहतो" ॥ ८ ॥

खुलि गए झट द्वार धड़ाक तें
  धुनि परी मधुरी यह कान में—
"निकसि आय बसौ यहि गेह में
  पथिक ! वेगि सँकोच विहाय कै" ॥ ९ ॥
पग धन्यो तब भीतर भौन के
  अतिथि आवन आयसु पाय कै।
कठिन-शीत-प्रताप-विघातिनी
  अनल-दीर्घ-शिखा जहँ फेंकती ॥ १० ॥
चपल दीठि चहूँ दिसि घूमि कै
  पथिक की पहुँची इक कोन में,
वय-पराजित जीवनजंग में
  दिन गिनै नर एक परो जहाँ ॥ ११ ॥
सिर-समीप सुता मन मारि कै
  पितहिँ सेवति सील सनेह सौं,
तहँ खड़ी नत-गात कृशाङ्गिनी
  लसति वारि-विहीन मृणाल सी ॥ १२ ॥
लखि फिरी दिसि आवनहार के,
  विमल आसन इङ्गित सों दयो।
अतिथि बैठि असीस दयो तबै
  "फलवती सिगरी तव आस हो" ॥ १३ ॥
मृदु हँसी करुणारस सों मिली
  तरुणि आनन ऊपर धारि कै।
कहति "हाय, पथी ! सुनु बावरे,
  उकठि बेलि कहाँ फल लावई ? ॥ १४ ॥
गति लखी बिधि की जब बाम मैं
  जगत के सुख सों मुख मोरि कै।

सरुचि पालन पितृ-निदेश औ
अतिथि-सेवन को व्रत लै लियो" ॥ १५ ॥
अब कहौ परिचै तुम आपनो,
इत चले कितते, कित जावगे ?
बिचलि कै चित के किहि वेग सों
पग धर्‍यो पथ-तीर अधीर ह्वै ? ॥ १६ ॥
सलिल सों नित सींचति आस के
सतत राखति जो तन बेलि है,
पथिक ! बैठि अरे ! तुव बाट को
युवति जोवति है कतहूँ कोऊ ? ॥ १७ ॥
नयन कोउ निरन्तर धावते
तुमहिँ हेरन को पथ-बीच में ?
श्रवण-द्वार कोऊ रहते खुले
कहुँ अरे ! तुव आहट लेन को ? ॥ १८ ॥
कहु कहूँ तोहि आवत जानि कै
निकटता तव मोद-प्रदायिनी ।
प्रथम पावन हेतुहि होत है
चरण लोचन बीच बदाबदी ॥ १९ ॥
करि दया श्रम जो सुख देत है
सुमन-मंजुल जाल बिछाय कै ।
कठिन काल निरंकुश निर्दयी
छिनहिँ छीनत ताहि निवारि कै ?" ॥ २० ॥
दबि गयो इन प्रश्नन-भार सों
पथिक छीन मलीन थको भयो ।
अचल मूर्त्ति बन्यो, पल एक लौं
सब क्रिया तन की, मन की रुकी ॥ २१ ॥

बदन शक्तिविहीन विलोकि कै
नयन नीरन उत्तर दे दियो—
"तव यथार्थ सब अनुमान है,
अति अलौकिक देवि, दयामयी !" ॥ २२ ॥
अचल दीठि पसारि निहारते
पथिक को अपनी दिशि देखि कै।
कहन यों पुनि आपहि सों लगी
अति पवित्र दया-व्रत-धारिणी ॥ २३ ॥
"कुशलता यहि में नहिं है कछू
अरु न विस्मय की कछु बात है।
दिवस खेइ रहे दुख ओर जो
गति लखैं मग में उलटी सबै" ॥ २४ ॥
उभय मौन रहे कछु काल लौं ;
पथिक ऊपर दीठि उठाय क।
इक उसास भरी गहरी जबै
छुटि परी मुख तें वचनावली ॥ २५ ॥
"अवनि ऊपर देश विदेश में
दिवस घूमत ही सिगरे गये।
मिसिर, काबुल, चीन, हिरात की
पगन धूरि रही लपटाय है ॥ २६ ॥
पर-दशा-दिशि-मानस-योगिनी
लखि परी इकली भुव बीच तू।
परखि पूछन साँच सुनाय हैं
हम गईं तन ऊपर बीति जो ॥ २७ ॥
मन परै दुख की जब वा घरी
पलटि जीवन जो जग में दियो।

चतुर मेजर मन्लहि मानि कै
करि दियो सपनो अपनो सबै ॥ २८ ॥
हित-सनेह-सने मृदु बोल सों
जब लियो इन कानन फेरि मैं।
स्वजन और स्वदेश-स्वरूप को
करि दियो इन आँखिन ओट हा ! ॥ २९ ॥
अब परै सुनि बोल यही हमैं
'धरहु, मारहु, सीस उतारहू'।
दिवस रैन रहै सिर पै खरी
अति कराल छुरी अफ़गान की ॥ ३० ॥
चलि रहे चित आस बँधाय कै
अवसि ही मम भामिनि भोरि को।
अपर-लोक-प्रयाण-प्रयास तें
मम समागम-संशय रोकि हैं ॥ ३१ ॥
इत कहूँ इक मन्मथ गाँव है
जहँ घनी बसती बिधुवंश की।
तहँ रहे इक 'विक्रमसिंह' जो
सुवन तासु यही 'रणवीर' है" ॥ ३२ ॥
कढ़त ही इन बैनन के तहाँ
मचि गयो कछु औरहि रङ्ग ही।
बदन अञ्चल बीच छपावती
मुरि परी गिरि भू पर भामिनी ॥ ३३ ॥
असम साहस वृद्ध कियो तबै
उठि धर्‍यो महि पै पग खाट तें।
"पुनि कहौ" कहि बारहि बार ही
पथिक को फिरि फेरि निहारतो ॥ ३४ ॥

आशा त्यागी बहु दिनन की नेकु ही में पुरावै ।
लीला ऐसी जगत-प्रभु की, भेद को कौन पावै ?
देखो, नारी सुव्रत-फल को बीच ही माहिँ पायो ।
भूलो प्यारो भटकि पथ तें प्रेम के, फेरि आयो ॥ ३५ ॥

(२)

रंग-भवन में रात्रि

सोवतीँ सँभार विनु सोभा सरसाय, गात आधे खुले गोरे सुकुमार मृदु ओपधर । चीकने चिकुर कहूँ बँधे हैं कुसुमदाम, कारे सटकारे कहूँ लहरत लंक पर । सोवैँ थकि हास औ विलास सों पसारि पायँ, जैसे कलकंठ रसगीत गाय दिन भर । पंख बीच नाए सिर आपनो लखाति तौ लौं जौ लौं न प्रभात आय खोलन कहत स्वर ॥

कंचन की दीवट पै दीपक सुगंध भरे जगमग होत भौन भीतर उजास करि । आभा रंग रंग की दिखाय रहीँ तासोँ मिलि किरन मयंक की झरोखन सों ढरि ढरि । जामेँ है नवेलिन की निखरी निकाई अंग अंगन की, बसन गए हैं कहूँ नेकु टरि । उठत उरोज हैँ उसासन सोँ बार बार, सरकि परे हैं हाथ नीचे कहूँ ढीले परि ॥

देखि परैँ साँवरे सलोने, कहूँ गोरे मुख, भ्रुकुटी विशाल वंक, बरुनी बिछी हैं श्याम । अधखुले अधर दिखात दन्तकोर कछु, चुनि धरे मोती मानौ रचिबे के हेतु दाम । कोमल कलाई गोल, छोटे पायँ पैँजनी हैँ, देति झनकार जहाँ हिलै कहूँ कोऊ बाम । स्वप्न टूटि जात वाको जामेँ सो रही है पाय कुँवर रिझाय उपहार कछु अभिराम ॥

(बुद्धचरित)

(३)

तपश्चर्य्या

या ठौर श्रीभगवान बसि काटत कराल निदाघ को ।
जलधार-मय घनघोर पावस, कठिन जाड़ा माघ को ।

सब लोक हित धरि मलिन बसन कषाय कोमल गात पै।
माँगे मिलति जो भीख पलटि पसारि पावत पात पै॥
व्रत नियम औ उपवास नाना करत धारत ध्यान हैं।
लावत अखंड समाधि आसन मारि मूर्त्ति समान हैं।
चढ़ि जानु ऊपर कूदि कबहूँ धाय जाति गिलाय हैं।
कन चुनत ढीठ कपोत कर ढिग कबहुँ कंठ हिलाय हैं॥
यों विजन बन के बीच बसि प्रभु ध्यान धरि सोचत सदा।
प्रारब्ध की गति अटपटी औ मनुज की सब आपदा।
परिणाम जीवन के जतन को, कर्म की बढ़ती लड़ी।
आगम निगम सिद्धान्त सब औ पशुन की पीड़ा बड़ी॥
वा शून्य को सब भेद जहँ सों कढ़त सब दरसात हैं।
पुनि भेद वा तम को जहाँ सब अंत में चलि जात हैं।
या भाँति दोउ अव्यक्त बिच यह व्यक्त जीवन ढरत है।
ज्यों मेघ तें लैं मेघ लौं नभ इन्द्रधनु लखि परत है॥
नीहार सों औ घाम सों जुरि जासु तन बनि जात है।
जो बिबिध रंग दिखाय कै पुनि ून्य बीच बिलात है।
पुखराज, मरकत नीलमणि मानिक छटा छहराय कै।
जो छीन छन छन होत अंत समात है कहुँ जाय कै॥

(बुद्धचरित)

(४)

सिद्धार्थ के मन पर बाह्य जगत् का प्रभाव

बोलि उठ्यो सिद्धार्थ "अहो ! बनकुसुम मनोहर !
जोहत कोमल खिले मुखन जो उदित प्रभाकर,
ज्योति पाय हरषाय श्वास-सौरभ संचारत,
रजत, स्वर्ण, अरुणाभ नवल परिधान सँवारत,

तुम में ते कोउ जीवन नहिं माटी करि डारत,
नहिं अपनो हठि रूप मनोहर कोउ बिगारत।
एहो ताल! विशाल भाल जो रह्यो उठाई,
चाहत भेदन वियत् पियत सो पवन अघाई—
शीतल नीरधि नील अंक जो आवति परसति,
मंजु मलयगिरि गंधभार भरि मंद मंद गति।
जानत ऐसो भेद कौन जासों, हे प्रिय द्रुम!
अंकुर तें फलकाल ताइँ हौ रहत तुष्ट तुम?
पंख सरीखे पातन सों मर्मर ध्वनि काढ़त,
अट्टहास सों हँसत हँसत तुम जग में बाढ़त।
तरु डारन पै विहरन-हारे, हे बिहंगगन!—
शुक, सारिका, कपोत, शिखी, पिक, चातक, खंजन—
तिरस्कार निज जीवन को नहिं तुमहु करत हौ,
अधिक सुखन की आस मारि तन मन न मरत हौ।"

(बुद्धचरित)

(५)

उपदेश

अप्रमेय को न शब्द बाँधि कै बताइए।
जो अथाह ताहि यों न बुद्धि सों थहाइए।
ताहि पूछि औ बताय लोग भूल ही करैं।
सो प्रसंग लाय व्यर्थ वाद माहिं ते परैं॥
अंधकार आदि में रह्यो पुराण यों कहै।
वा महानिशा अखंड बीच ब्रह्म ही रहै।
फेर में न ब्रह्म के, न आदि के रहौ, अरे!
चर्मचक्षु को अगम्य और बुद्धि के परे॥
देखि आँखिन सों न सकिहै कोउ काहु प्रकार।
औ न मन दौराय पैहै भेद खोजनहार।

उठत जैहैं चले पट पै पट, न ह्वैहै अंत।
मिलत जैहैं परे पट पै पट अपार अनंत॥
चलत तारे रहत पूछन जात यह सब नाहिं।
लेहु एतो जानि बस—हैं चलत या जग माहिं।
सदा जीवन मरण, सुख दुख, शोक और उछाह।
कार्य्य-कारण की लरी औ कालचक्र-प्रवाह॥
और यह भवधार जो अविराम चलति लखाति।
दूर उद्गम सों सरित चलि सिन्धु दिशि ज्यों जाति।
एक पाछे एक उठति तरंग तार लगाय।
एक हैं सब, एक सी पै परति नाहिं लखाय॥
तरणि-कर लहि सोइ लुप्त तरंग पुनि कहुँ जाय।
धुँवा से घन की घटा ह्वै गगन में घहराय।
आर्द्र ह्वै नगशृंग पै पुनि परति धारासार।
सोइ धार तरंग पुनि—नहिं थमत यह व्यापार॥
जानिवो एतो बहुत भू-स्वर्ग आदिक धाम।
सकल माया-दृश्य हैं; सब रूप हैं परिणाम।
रहत घूमत चक्र यह श्रम-दुःख-पूर्ण अपार।
थामि याको सकत कोऊ नाहिं काहु प्रकार॥
बंदना जनि करौ, ह्वै हैं कछु न वा तम माहिं।
शून्य सों कछु याचना जनि करौ, सुनिहैं नाहिं।
मरौ जनि पचि और हू मन ताप आप बढ़ाय।
क्लेश नाना भाँति के दै व्यर्थ तनहि तपाय॥
ब्रह्म-लोक तें परे सनातन शक्ति विराजति।
जो या जग में 'धर्म' नाम सों आवति बाजति।
आदि अन्त नहिं जासु, नियम हैं जाके अविचल।
सत्त्वोन्मुख जो करति सर्ग-गति संचित करि फल॥

परस तासु प्रफुल्ल पाटल माहिँ परत लखाय।
सुघर कर सों तासु सरसिज-दल कढ़त छवि पाय।
पैठि माटी बीच बीजन में बगरि चुपचाप।
नवल वसन वसन्त को सो विनति आपहि आप॥

कला ताकी करति है घनपुञ्ज रंजित जाय।
चंद्रिकन पै मोर की दुति ताहि की दरसाय।
नखत ग्रह में सोइ; ताही को करै उपचार।
दमकि दामिनि, बहि पवन औ मेघ दै जलधार॥

नाहिँ कुंठित होति कैसहु करन में व्यवहार।
होत जो कछु जहाँ सो सब तासु रुचि अनुसार।
भरति जननि-उरोज में जो मधुर छीर रसाल।
धरति सोई व्याल-दशनन बीच गरल कराल॥

गगन-मंडप बीच सोई ग्रह नछल सजाय।
बाँधि गति, सुर ताल पै निज रही नाच नचाय।
सोइ गहरे खात में भूगर्भ भीतर जाय।
स्वर्ण, मानिक, नीलमणि की राशि धरत छपाय॥

शक्ति की अवहेलना जो करै ताकी भूल।
विमुख खोवत, लहत सो जो चलत है अनुकूल।
निहित पुण्यहिं सों निकासति शांति सुख आनंद।
छपे पापहि सों प्रगट सो करति है दुख द्वन्द॥

शक्ति तुम्हरे हाथ देवन सों कछू कम नाहिँ।
देव, नर, पशु आदि जेते जीव लोकन माहिँ।
कर्मवश सब रहत भरमत वहत यह भव-भार।
लहत सुख औ सहत दुख निज कर्म के अनुसार॥

(बुद्धचरित)

(६)

आमंत्रण

दृग के प्रतिरूप सरोज हमारे उन्हें जग ज्योति जगाती जहाँ ;
जल बीच कलंब-करंबित कूल से दूर छटा छहराती जहाँ ;
घन अंजनवर्ण खड़े तृणजाल की झाँई पड़ी दरसाती जहाँ ;
बिखरे बक के निखरे सित पंख बिलोक बकी बिक जाती जहाँ ;
द्रुम-अंकित, दूब-भरी, जलखंड-जड़ी धरती छवि छाती जहाँ ;
हर हीरक-हेम-मरक्त-प्रभा, ढल चन्द्रकला है चढ़ाती जहाँ ;
हँसती मृदु मूर्त्ति कलाधर की कुमुदों के कलाप खिलाती जहाँ ;
घन-चित्रित अंबर अंक धरे सुषमा सरसी सरसाती जहाँ ;
निधि खोल किसानों के धूल-सने श्रम का फल भूमि बिछाती जहाँ ;
चुन के, कुछ चोंच चला करके चिड़िया निज भाग बँटाती जहाँ ;
कगारों पर काँस की फैली हुई धवली अवली लहराती जहाँ ;
मिल गोपों की टोली कछार के बीच है गाती औ गाय चराती जहाँ ;
जननी धरणी निज अंक लिए बहु कीट पतंग खेलाती जहाँ ;
ममता से भरी हरी बाँह की छाँह पसार के नीड़ बसाती जहाँ ;
मृदु वाणी, मनोहर वर्ण अनेक लगा कर पंख उड़ाती जहाँ ;
उजली कँकरीली तटी में धँसी तनु धार लटी बल खाती जहाँ ;
दलराशि उठी खरे आतप में हिल चंचल चौंध मचाती जहाँ ;
उस एक हरे रँग में हलकी गहरी लहरी पड़ जाती जहाँ ;
कल कबु'रता नभ की प्रतिबिंबित खंजन में मन भाती जहाँ ;
कविता वह ! हाथ उठाए हुए, चलिए कविवृन्द बुलाती वहाँ ।

(७)

हृदय का मधुर भार

भूरी-हरी घास आसपास फूली सरसों है पीली पीली बिन्दियों का
चारोंओर है प्रसार। कुछ दूर विरल सघन फिर और आगे एकरंग

मिला चला गया पीत पारावर। गाढ़ी हरी श्यामता की तुङ्ग-राशि-रेखा घनी बाँधती है दक्षिण की ओर उसे घेरघार। जोड़ती है जिसे खुले नीले नभमण्डल से धुँधली सी नीली नगमाला उठी धुआँधार ॥१॥

लगती हैं चोटियाँ वे अति ही रहस्यमयी, पास ही में होगा बस वहीं कहीं देवलोक। बार बार दौड़ती है दृष्टि उस धुँधली सी छाया बीच ढूँढ़ने को अमर-विलास-ओक। ओट में अखाड़े वहीं होंगे वे पुरन्दर के, अप्सराएँ नाच रही होंगी जहाँ ताली ठोंक। सुनने को सुन्दर सङ्गीत वह मन्द मन्द बुद्धि की नहीं है अभी कहीं कोई रोक-टोक ॥२॥

अङ्कित नीलाभ रक्त और श्वेत सुमनों से मटर के फैले हुए घने हरे जाल में। करती हैं फलियाँ संकेत जहाँ मुड़ते हैं और अधिकार का न ज्ञान इस काल में। बैठते हैं प्रीति-भोज हेतु आस-पास सब पक्षियों के साथ इस भरी हुई थाल में। हाँक पर एक साथ पंखों ने सराटे भरे, हम मेंड़ पार हुए एक ही उछाल में ॥३॥

सूखती तलैया के चारों ओर चिपकी हुई लाल लाल काइयों की भूमि पार करते। गहरे पड़े गोपद के चिन्हों से अंकित जो, श्वेत बक जहाँ हरी दूब में विचरते। बैठ कुछ काल एक पास के मधूक तले मन में सन्नाटे का निराला सुर भरते। आए 'शरपत्र' के किनारे जहाँ रूखे खुले टीले कँकरीले हैं हेमन्त में निखरते ॥४॥

(८)

प्रकृति-प्रबोध

शक्ति सिन्धु के बीच भुवन को खेनेवाले;
गोचर गण्य स्वरूप काल को देनेवाले
विश्व-विभाजक के आगम-आभास मात्र पर
रहा कृष्ण अर्द्धाङ्ग काल का हट तिल तिल भर,
दृश्य-भेद हैं लीन जगत् के जिसमें सारे
चेतन वृत्ति समेट सृष्टि है जड़ता धारे

"हम हैं" यह भी भूल जीव हैं जिसमें जीते,
नहीं जानते, किन्तु पवन नाकों से पीते—
जीना कैसा ? इसे जिलाया जानो कहिए;
पीना कैसा ? इसे पिलाया जाना कहिए।
कर्म जिसे करते न जानते, है वह सोना
होकर भी हम नहीं जानते जिसमें होना।
कोई देख विराट रूप अपना घबराता;
गिरि, वन, सरि, पशु आदि सभी अपने में पाता।
सपना है क्या अपना रहना अपने भीतर,
चलना पैर पसार, देखना आँख मूँदकर ?
समतल से सब सरक कालिमा सिमटी जाकर
ऊँचों के पड़ पैर तले, नीचों के भीतर।
वर्ण-भेद की लीक लोक-लोचन ने डाली;
नीले नभ के अंचल की वह लटकी लाली,
जिससे लगी लहरती है वह जो हरियाली
चित पर चढ़ती देख उसे चहकी चटकाली।
सारी पशुता, नरता, खगता आदि अधूरी
जो अब तक थीं पड़ी कला से निकलीं पूरी।
चलना, उड़ना और रेंगना दिया दिखाई;
हँसना, रोना और रँभाना पड़ा सुनाई।
इतना उतना, ऐसा वैसा व्यक्त हुए अब;
खुले भेद तम भेद भुवन में ज्योति जगी जब।
कौवों ने चट छेड़ दिया यह पाठ पढ़ाना—
'भला बने या बुरा बने बकते ही जाना'।
कुकवि कुतर्की नित्य कान इनसे फुँकवाते,
तब अपना मुँह खोल दूसरों का सिर खाते।

मानव-मानस-मुकुर महा खुल पड़ा मही पर,
सदा अमलता में जिसकी पड़ती है आकर
परम भावमय के भावों की अंशच्छाया
उतनी जितनी में जीवन का जाल बिछाया।
देखा यह जो जगे भूत का जगना सोना,
ऐसा ही है घोर भूतनिद्रा का खोना।
यदि जाग्रति है सत्य, स्वप्न है उसकी छाया।
इन दोनों का साथ सदा से रहता आया।
यह दोरङ्गी छटा नित्य शाश्वत अभंग है,
सोना जगना दोनों जिसमें संग संग है।
तृण, कृमि, पशु, नर आदि इसी जाग्रति के क्रम हैं।
जगने में कुछ बढ़े हुए, कुछ उनसे कम हैं।
जगने के इस जटिल यत्न में बीज फूटता—
उठने के कुछ पहले उसका अंग टूटता।
खोल खेत में आँख वही अँखुवा कहलाता,
मिट्टी मुँह में डाल फूल अंगों न समाता।

सत्यनारायण
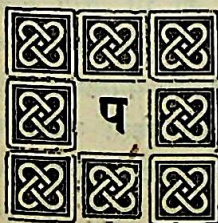
पण्डित सत्यनारायण कविरत्न का जन्म संवत् १९४१ माघ शुक्ला ३, चन्द्रवार को हुआ था। इनके पिता अलीगढ़ के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे। बचपन ही में मातापिता का वियोग हो जाने के कारण, इनकी मौसी ने इनका पालन-पोषण किया था। इनकी मौसी रियासतों में अध्यापन कार्य्य किया करती थीं और इन्हें बड़े लाड़-चाव से रखती थीं।

परन्तु बाल्यावस्था में ही यह छत्रछाया भी इन पर से उठ गई। तब से धाँधूपर (तहसील आगरा) के रघुनाथजी के मन्दिर के ब्रह्मचारी बाबा रघुवरदास जी ने इन्हें अपने यहाँ रखकर इनका भरण-पोषण किया और इन्हें पढ़ाया-लिखाया। इनकी मौसी इसी गद्दी की चेली थीं। इसी कारण इन्हें ब्रह्मचारीजी को सौंप गईं। मिढ़ाकुर (ज़िला आगरा) के तहसीली स्कूल से हिन्दी-मिडिल की परीक्षा पास करके सत्यनारायण जी अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। १९०८ ई० में इन्होंने एफ़० ए० परीक्षा दूसरी श्रेणी में पास की। सन् १९१० ई० में बी० ए० की भी परीक्षा दी, परन्तु उसमें उत्तीर्ण न हुये। इन दिनों यह सेण्ट-जान्स कालेज में पढ़ते थे। एक दिन प्रिन्सिपल (अब बिशप) डरेण्ट साहब ने कहा कि केवल परीक्षा पास कर लेना ही जीवन का मुख्य उद्देश्य नहीं है। इस बात को बहुतों ने सुना और एक कान से सुनकर दूसरे से बाहर निकाल दिया। पर सत्यनारायणजी पर इसका पूरा पूरा असर हुआ। यहाँ तक कि उसी वर्ष से इन्होंने कालेज जाना बन्द कर दिया।

कविता का शौक इन्हें पहले पहल मिढ़ाकुर की पाठशाला में लगा। अधिकतर गाँव में रहने के कारण पहले यह राजपूती होली और सवैयों, दोहों आदि की रचना किया करते थे। कभी ईश-प्रेम में विह्वल होकर जो कविता कर डाली, तो उसमें वही प्राचीन भाव, कुछ नवीनता के साथ, भर दिये। आगरे में प्रत्येक अवसर पर कविता रचकर सुनाना इनका कर्तव्य सा हो गया था। इनकी इच्छा न होती तो भी लोग इन्हें ज़बरदस्ती खींच ले जाते। ये विचारे इतने सीधेसादे और भोले थे कि जो कोई खींच ले जाता उसी के साथ हो लेते। कहीं वैद्य-सम्मेलन में खड़े हड़-बहेड़े और आँवले के गुण गा रहे हैं, तो कहीं किसी अपरिचित अध्यापक की विदाई पर अपनी प्रतिभा के फूल बखेर रहे हैं। किसी का दिल दुखाना तो मानो इन्होंने सीखा ही न था। चौबे न होकर भी आप "चतुर्वेदी" का सम्पादन बिना कुछ वेतन लिये करते थे। इनकी देहाती

सूरत देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता था कि ये अंग्रेज़ी का एक अक्षर भी जानते होंगे। निरभिमानी इतने थे कि एक रात इस नोट के लेखक के मकान पर टेसू के गीत गाने वाले गँवारों के साथ बेधड़क बैठकर आप भी उनके सुर में सुर मिलाकर और एक कानपर हाथ रख कर ज़ोर ज़ोर से तान अलापने लगे। कविता सुनाने का ढङ्ग इनका इतना अच्छा था कि अन्य भाषा-भाषी भी मन्त्र-मुग्ध से हो जाते थे— हिन्दी वालों का तो कहना ही क्या है। पाश्चात्य कवियों की कविता का भी पारायण यह बड़े प्रेम से करते थे।

यों तो छोटी-मोटी कितनी ही पुस्तकें इनकी निकलीं, पर देशभक्त होरेशस, उत्तर रामचरित नाटक तथा मालतीमाधव विशेष महत्व के रहे। रघुवंश के कुछ सर्गों का अनुवाद, भ्रमरदूत, हंसदूत आदि पुस्तकें इनकी अप्रकाशित पड़ी हैं। सुना है, इनकी छोटी मोटी रचनाओं का संग्रह भी छपने वाला है।

सत्यनारायण ब्रजभाषा के तो कवि थे ही, खड़ीबोली में भी कविता करते थे। इनकी राय थी कि खड़ी बोली में भी कविता हो सकती है और होनी भी चाहिये। साथ ही ब्रजभाषा का 'बायकाट' करना और उस 'मरती' को मारना एक बड़ा भारी पाप है, तुम उस पाप के सेहरे को अपने सिर क्यों बाँधा चाहते हो? ऐसा भी उन्होंने कई बार इस लेखक से कहा था। इनके व्याख्यान से प्रेम और माधुर्य बरसता था। इनकी हरएक बात में जातीयता की झलक रहती थी।

"मेरी शारदा-सदन" के अधिष्ठाता पण्डित मुकुन्दरामजी की बड़ी कन्या से सत्यनारायण का विवाह, कोई दो वर्ष हुये, हुआ था। उस दुखिया के सिवा और कोई सत्यनारायण का कुटुम्बी नहीं। हाँ, मित्र कई हैं। क़रीब क़रीब सभी आधुनिक लेखकों से इनका परिचय था। महाराज छत्रपुर, राजा कृष्णप्रसाद (हैदराबाद) तथा भारत-धर्म-महामण्डल आदि के द्वारा यह सम्मानित हुये थे।

एक दिन हँसी-हँसी में इस नोट के लेखक ने इनसे कहा—तुम सब के ऊपर कविता लिखते-फिरते हो, मेरी मृत्यु पर लिखोगे कि नहीं ; सच बताओ। इन्होंने प्रेम के साथ डपट कर कहा—बड़े बकवादी हो, पिटोगे अगर अब से कहा तो। खेद है, १६ अप्रैल १९१८ को सत्यनारायणजी चल बसे और आज मुझे यह नोट लिखना पड़ रहा है। कुछ लोगों की राय है कि इनके उठ जाने से हिन्दी-संसार का एक रत्न खो गया। सच है, पर हमारा क्या खो गया? यह हमीं जानते हैं।

बदरीनाथ भट्ट।

सत्यनारायणजी से इन्दौर में, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर मेरा परिचय हुआ था। सत्यनारायणजी इतने सीधे-सादे वेश में थे कि इस आडम्बर के ज़माने में इन्दौर के स्वयंसेवकों ने उन्हें पंडाल के भीतर घुसने में बाधा पहुँचाई थी।

सत्यनारायणजी का गृहस्थ-जीवन सुख से नहीं बीता। वे श्रीकृष्ण के भक्त और उनकी स्त्री आर्यसमाज की अनुयायिनी। पूर्व और पश्चिम में मेल कहाँ! उनके पदों में उनकी अंतर्पीड़ा साफ़ साफ़ झलक रही है।

यहाँ उनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं :—

(१)

भयो क्यों अनचाहत को संग।

सब जग के तुम दीपक मोहन, प्रेमी हमहु पतंग॥
लखि तव दीपति देह-शिखा में, निरत बिरह-लौ लागी।
खिंचति आप सों आप उतहिं यह, ऐसी प्रकृति अभागी॥
यदपि सनेह भरी तव बतियाँ, तउ अचरज की बात।
योग वियोग दोउन में इक सम, नित्य जरावत गात॥
जब जब लखत, तबहिं तब चरनन, वारत तन मन प्रान।
जासों अधिक कहा, तुम निरदय, चाहत प्रेम प्रमान॥

सतत चुरावत ऐसो निज तन, अन्तर तनिक न भावत।
निराकार ह्वै जात यहाँ लों, तउ जन कों तरसावत॥
यह स्वभाव को रोग तिहारो, हिय आकुल पुलकावै।
सत्य बतावहु, का इन बातनि, हाथ तिहारे आवै॥

(२)

माधव अब न अधिक तरसैये।

जैसी करत सदा सों आये, वुही दया दरसैये॥
मानि लेउ, हम क्रूर कुढंगी, कपटी कुटिल गँवार।
कैसे असरन-सरन कहा तुम, जन के तारनहार॥
तुम्हरे अछत तीन तेरह यह, देस दसा दरसावै।
पै तुमकों यहिं जनम धरे की, तनिकहु लाज न आवै॥
आरत तुमहिं पुकारत हम सब, सुनत न त्रिभुवन राई।
अँगुरी डारि कान में बैठे, धरि ऐसी निठुराई!!
अजहुँ प्रार्थना यही आप सों, अपनों बिरुद सँवारौ।
सत्य दीन दुखियन को विपता, आतुर आइ निवारौ॥

(३)

अब न सतावौ!

करुणाघन इन नयनन सों द्वै, बुँदिया तो टपकावौ॥
सारे जग सों अधिक कियो का, ऐसो हमने पाप।
नित नव दई निर्दई बनि जो, देत हमैं सन्ताप॥
साँची तुमहिं सुनावत जो हम, चौंकत सकल समाज।
अपनी जाँघ उघारे उघरत्ति, बस अपनी ही लाज॥
तुम आछे हम बुरे सही बस, हमरो ही अपराध।
करनो हो सो अजहूँ कीजै, लीजै पुण्य अगाध॥
होरी सी जातीय प्रेम की, फूँकि न धूरि उड़ावौ।
जुग कर जोरि यही सत माँगत, अलग न आर लगावौ॥

(४)

बस अब नहिं जाति सही ।
विपुल वेदना विविध भाँति जो, तन मन व्यापि रही ॥
कबलों सहें अवधि सहिबे की, कुछ तो निश्चित कीजै ।
दीनबन्धु यह दीन-दशा लखि, क्यों नहिं हृदय पसीजे ॥
बारन दुख-टारन तारन में, प्रभु तुम बार न लाये ।
फिर क्यों करुणा करत स्वजन पै, करुणानिधि अलसाये ॥
यदि जो कर्म-यातना भोगत, तुम्हरे हू अनुगामी ।
तौ करि कृपा बतायो चहियतु, तुम काहे के स्वामी ॥
अथवा विरद-बानि अपनी कछु, कै तुमने तजि दीनी ।
या कारण हम सब अनाथ की, नाथ न जो सुधि लीनी ॥
वेद वदत गावत पुरान सब, तुम त्रय ताप नसावत ।
शरणागत की पीर तनकहू, तुम्हें तीर सम लागत ॥
हमसे शरणापन्न दुखी को, जाने क्यों विसरायो ।
शरणागत-वत्सल सत योंहीं, कोरो नाम धरायो ॥

(५)

बसन्त

सौख्य सुधा सरसाइये, सुभग सुलभ रसवन्त ।
वर विनोद बरसाइये, बसुधा बिपिन बसन्त ॥ १ ॥
दस दिसि दुति दरसाइये, सजि सुरभित सुठि साज ।
जग प्रिय हिय हरसाइये, रहि रसाल ऋतुराज ॥ २ ॥
अमित अनारन अम्बन, अमल असोक अपार ।
बकुल कदम्ब कदम्बन, पुनि पलास परिवार ॥ ३ ॥
जहँ कोकिल कल बोलत, ठौर ठौर स्वच्छन्द ।
गुंजत षट्पद डोलत, पद पद पी मकरन्द ॥ ४ ॥

जयति मधुर मन मोहन, जयति प्रकृति शृङ्गार।
सुन्दर सब विधि सोहन, कीजिय विपुल विहार ॥ ५ ॥
नित नव निरमल निरखौ, रमि सुरम्यता कुंज।
पुनि पुनि प्रमुदित परखौ, पूरन प्रियता-पुञ्ज ॥ ६ ॥

मृदु मंजु रसाल मनोहर मंजरी मोरपखा सिर पैं लहरैं॥
अलबेलि नवेलिन बेलिनु में नवजीवन जोति छटा छहरैं॥
पिक भृङ्ग सुगुंज सोई मुरली सरसों सुभ पीतपटा फहरैं॥
रसवन्त विनोद अनंत भरे ब्रजराज बसन्त हिये विहरैं॥ ७ ॥

(६)

भ्रमर-दूत

श्री राधावर निज जन-बाधा सकल नसावन।
जाकौ ब्रज मनभावन जो ब्रज को मनभावन॥
रसिक-सिरोमनि मन हरन, निरमल नेह निकुञ्ज।
मोदभरन उर सुखकरन, अविचल आनँद-पुञ्ज॥
रँगीलो साँवरौ ॥ १ ॥

कंस मारि भूभार-उतारन खलदलतारन।
विस्तारन विज्ञान विमल श्रुति-सेतु-सँवारन॥
जन-मन-रंजन सोहना, गुन-आगर चितचोर।
भवभय-भंजन मोहना, नागर नन्दकिसोर॥
गयो जब द्वारिका ॥ २ ॥

बिलखाती, सनेह पुलकाती, जसुमति माई।
श्याम-विरह-अकुलाती, पाती कबहुँ न पाई॥
जिय प्रिय हरि-दरसन बिना, छिन छिन परम अधीर।
सोचति मोचति निसिदिना, निसरत नैननु नीर॥
विकल कल ना हिये ॥ ३ ॥

पावन सावन मास नई उनई घन पाँती ।
मुनि मन-भाई छई रसमई मञ्जुल काँती ॥
सोहत सुन्दर चहुँ सजल, सरिता पोखर ताल ।
लोल लोल तहँ अति अमल, दादुर बोल रसाल ॥
छटा चूई परै ॥४॥

अलबेली कहुँ बेलि द्रुमन सों लिपटि सुहाई ।
धोये धोये पातन की अनुपम कमनाई ॥
चातक शुक कोयल ललित, बोलत मधुरे बोल ।
कूकि कूकि केकी कलित, कुंजन करत कलोल ॥
निरखि घन की छटा ॥५॥

इन्द्रधनुष और इन्द्रबधूटिन की सुचि सोभा ।
को जग जनम्यो मनुज जासु मन निरखि न लोभा ॥
प्रिय पावन पावस लहरि, लहलहात चहुँओर ।
छाई छवि छिति पै छहरि, ताको ओर न छोर ॥
लसै मनसोहनी ॥६॥

कहूँ बालिका-पुंज कुंज लखि परियत पावन ।
सुख-सरसावन सरल सुहावन हिय हरसावन ॥
कोकिल-कंठ-लजावनी, मन भावनी अपार ।
भ्रातृ-प्रेम-सरसावनी, रागत मंजु मल्हार ॥
हिंडोलनि झूलतीं ॥७॥

बालवृन्द हरसत उर दरसत चहुँ चलि आवैं ।
मधुर मधुर मुसकाइ रहस बतियाँ बतरावैं ॥
तरुवर डार हलावहीं, 'धौरी' 'धूमरि' टेरि ।
सुन्दर राग अलापहीं, भौंरा चकई फेरि ॥
विविध क्रीड़ा करैं ॥८॥

लखि यह सुखमा-जाल लाल निज बिन नँदरानी ।
हरि सुधि उमड़ी घुमड़ी तन उर अति अकुलानी ॥
सुधि बुधि तजि माथौ पकरि, करि करि सोच अपार ।
दृगजल मिस मानहुँ निकरि, बही बिरह की धार ॥
कृष्ण रटना लगी ॥९॥

कृष्ण-विरह की वेलि नई ता उर हरियाई ।
सोचन अश्रु विमोचन दोउ दलबल अधिकाई ॥
पाइ प्रेम रस बढ़ि गई, तन तरु लिपटी धाइ ।
फैलि फूटि चहुँघा छई, बिथा न बरनी जाइ ॥
अकथ ताकी कथा ॥१०॥

कहति विकल मन महरि कहाँ हरि ढूँढ़न जाऊँ ।
कब गहि लालन ललकत मन गहि हृदय लगाऊँ ॥
सीरी कब छाती करौं, कब सुत दरसन पाउँ ।
कबै मोद निज मन भरौं, किहि कर धाइ पठाउँ ॥
सँदेसो श्याम पै ॥११॥

पढ़ी न अक्षर एक ज्ञान सपने ना पायो ।
दूध दही चारत में सवरो जनम गमायो ॥
मात पिता वैरी भये, शिक्षा दई न मोहि ।
सवरे दिन यों ही गये, कहा कहे तें होहि ॥
मनहिं मन में रही ॥१२॥

सुनी गरग सों अनुसूया की पुण्य कहानी ।
सीता सती पुनीता की सुठि कथा पुरानी ॥
विशद ब्रह्मविद्या पगी, मैत्रेयी तियरत्न ।
शास्त्रपारगी गारगी, मन्दालसा सयत्न ॥
पढ़ी सब की सब ॥१३॥

निज निज जनम धरन को फल उनने ही पायो।
अविचल अभिमत सकल भाँति सुन्दर अपनायो॥
उदाहरनि उज्जल दयो, जगकी तियनि अनूप।
पावन जस दस दिसि छयो, उनको सुकृति-सरूप॥
पाइ विद्या-बलै॥१४॥

नारी शिक्षा निरादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेश अवनति प्रचंड पातक अधिकारी॥
निरखि हाल मेरो प्रथम, लेउ समुझि सब कोइ।
विद्याबल लहि मति परम, अबला सबला होइ॥
लखौ अजमाइ कै॥१५॥

कौने भेजौं दूत पूत सों बिथा सुनावै।
बातन में बहलाइ जाइ ताकों यहँ लावै॥
त्याग मधुपुरी सों गयो, छाँड़ि सबन के साथ।
सात समुन्दर पै भयो, दूर द्वारिकानाथ॥
जाइगो को उहाँ॥१६॥

नास जाइ अक्रूर क्रूर तेरो बजमारे।
बातन में दै सबनि लै गयो प्रान हमारे॥
क्यों न दिखावत लाइ कोउ, सूरति ललित ललाम।
कहँ मूरति रमनीय दोउ, श्याम और बलराम॥
रही अकुलाइ मैं॥१७॥

अति उदास बिन आस सबै तन सुरति भुलानी।
पूत प्रेम सों भरी परम दरसन ललचानी॥
बिलपति कलपति अति जबै, लखि जननी निज श्याम।
भगत भगत आये तबै, भाये मन अभिराम॥
भ्रमर के रूप में॥१८॥

ठिठक्यो अटक्यो भ्रमर देखि जसुमति महरानी ।
निज दुख सों अति दुखी ताहि मन में अनुमानी ॥
तिहि दिसि चितवत चकित चित, सजल जुगुल भरि नैन ।
हरि वियोग कातर अमित, आरत गद्‌गद बैन ॥
कहन तासों लगी ॥१९॥

तेरो तन घनश्याम श्याम घनश्याम उतें सुनि ।
तेरी गुंजन सुरलि मधुप उत मधुर मुरलि धुनि ॥
पीत रेख तव कटि बसत, उत पीताम्बर चारु ।
विपिन विहारी दोउ लसत, एक रूप सिंगारु ॥
जुगुल रस के चखा ॥२०॥

याही कारन निज प्यारे ढिग तोहिं पठाऊँ ।
कहियो वासों बिथा सबै जो अबै सुनाऊँ ॥
जैयो षट्पद धाय के, करि निज कृपा विसेस ।
लैयो काज बनाय के, दै मो यह सन्देस ॥
सिदोसौ लौटियो ॥२१॥

जननी जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहु सों प्यारी ।
सो तजि सबरो मोह साँवरे तुमनि बिसारी ॥
का तुम्हरी गति मति भई, जो ऐसौ बरताव ।
किधौं नीति बदली नई, ताको पर्‌यो प्रभाव ॥
कुटिल विष को भर्‌यो ॥२२॥

माखन कर पौछन सो चिक्कन चारु सुहावत ।
निधुवन श्याम तमाल रह्यो जो हिय हरसावत ॥
लागत ताके लखन सों, मति चलि वाकी ओर ।
बात लगावत सखन सों, आवत नन्दकिशोर ॥
कितहुँ सों भाजिकें ॥२३॥

वुही कलिन्दी कूल कदम्बन के वन छाये।
बरन बरन के लता भवन मनहरन सुहाये॥
वुही कुन्द की कुञ्ज पे, परम प्रमोद समाज।
प मुकुन्द बिन बिस भये, सारे सुखमा साज॥
चित्त वाँही धज्यो॥२४॥

लगत पलास उदास शोक में अशोक भारी।
बारै बने रसाल माधवी लता दुखारी॥
तजि तजि निज प्रफुलित पनौ, बिरह बिथित अकुलात।
जड़हू ह्वै चेतन मनौ, दीन मलीन लखात॥
एक माधौ बिना॥२५॥

नित नूतन तृन डारि सघन बंसीवट छैयाँ।
फेरि फेरि कर कमल चराईं जो हरि गैयाँ॥
ते तित सुधि अतिही करत, सब तन रही झुराय।
नयन स्रवत जल नहिं चरत, व्याकुल उँदर अघाय॥
उठाये म्हौं फिरें॥२६॥

बचन हीन ये दीन गऊ दुख सों दिन बितवत॥
दरस लालसा लगी चकित चित इत उत चितवत॥
एक संग तिनकों तजत, अलि कहियो ए लाल!
क्यों न हीय निज तुम लजत, जग कहाय गोपाल॥
मोह ऐसो तज्यो॥२७॥

नील कमल दल श्याम जासु तन सुन्दर सोहै।
नीलाम्बर वसनाभिराम विद्युत मन मोहै॥
भ्रम में परि घनश्याम के, लखि घनश्याम अगार।
नाचि नाचि व्रजधाम के, कूकत मोर अपार॥
भरे आनन्द में॥२८॥

यहँ को नव नवनीत मिल्यो मिसरी अति उत्तम।
भला सके मिलि कहाँ सहर में सद याके सम॥
रहैं यही लालो अजहुँ, काढ़त यहि जब भोर।
भूखो रहत न होइ कहुँ, मेरो माखनचोर॥
बँध्यो निज टेव को॥२९॥

वा बिनु गो ग्वालनु को हित की बात सुझावै।
अस स्वतन्त्रता समता सहभ्रातता सिखावै॥
यद्यपि सकल बिधि ये सहत, दारुण अत्याचार।
प न कछू मुख सों कहत, कोरे बने गँवार॥
कोउ अगुआ नहीं॥३०॥

भये संकुचित हृदय भीरु अब ऐसे भय में।
काऊ को विश्वास न निज जातीय उदय में॥
लखियत कोउ रीति न भली, नहिं पूरब अनुराग।
अपनी अपनी ढापुली; अपनो अपनो राग॥
अलापैं जोर सों॥३१॥

नहिं देशीय भेष भावनु की आशा कोऊ।
लखियत जो व्रजभाषा जाति हिरानी सोऊ॥
आस्तिक बुधि बन्धनन से, बिगरीं सब मरजाद।
सब काऊ के हिय बसे, न्यारे न्यारे स्वाद॥
अनोखे ढङ्ग के॥३२॥

बेलिं नवेली अलबेली दोउ नत्र सुहावैं।
तिनके कोमल सरल भाव को सब जस गावैं॥
अब की गोपी मद भरी, अधर चलें इतराय।
चार दिना की छोहरी, गईं ऐसी गरवाय॥
जहाँ देखो तहाँ॥३३॥

गोबरधन कर कमल धारि जो इन्द्र लजायो।
तुम बिन सो तिह को बदलौ अब चहत चुकायो॥
नहिं बरसावत सघन अब, नियम पूरबक नीर।
जाकों गोकुल होत सब, दिन दिन परम अधीर॥
न्यार सपनो भयो॥३४॥

गोरी कों गोरे लागत जग अति ही प्यारे।
मों कारी कों कारे तुम नयननु के तारे।
उनको तो संसार है, मो दुखिया को कौन॥
कहिये कहा विचार है, जो तुम साधी मौन॥
बने अपस्वार्थी॥३५॥

पहले को सो अब न तिहारो यह वृन्दावन।
याके चारों ओर भये वहु विधि परिवर्तन॥
बने खेत चौरस नये, काढ़ि घने बन पुञ्ज।
देखन कों बस रहि गये, निधुबन सेवा कुञ्ज॥
कहाँ चरिहैं गऊ॥३६॥

पहली सी नहिं या यमुना हू में गहराई।
जल को थल अरु थल को जल अब परत लखाई॥
कालीदह कौ ठौर जहँ, चमकत उज्जल रेत।
काछी माली करत तहँ, अपने अपने खेत॥
घिरे झाऊनि सों॥३७॥

नित नव परत अकाल काल को चलत चक्र चहुँ।
जीवन को आनन्द न देख्यो जात यहाँ कहुँ॥
बढ्यो यथेच्छाचारकृत, जहँ देखो तहँ राज।
होत जात दुर्बल विकृत, दिन दिन आर्यसमाज॥
दिनन के फेर सों॥३८॥

जे तजि मातृभूमि सों ममता होत प्रवासी ।
तिन्हें बिदेसी तङ्ग करत दै विपदा खासी ॥
नहिं आये निरदय दई, आये गौरव जाय ।
साँप छछूँदर गति भई, मन ही मन अकुलाय ॥
रहे सब के सबै ॥३९॥

टिमटिमाति जातीय जोति जो दीप शिखा सी ।
लगत बाहिरी ब्यारि बुझन चाहत अबला सी ॥
शेष न रह्यो सनेह कौ, काहू हिय में लेस ।
कासों कहिये गेह कौ, देसहि में परदेस ॥
भयो अब जानिये ॥४०॥

(७)

गिरिजा सिन्धुजा-सम्बाद

सिन्धु-सुता इक दिना सिधाई, श्रीगिरिसुता दुवारे ।
विघ्न-विदारण मातु कहाँ ? यह, भाख्यो लागि किवारे ॥
कष्टनिवारन मङ्गल-करनी, जाके सब गुन गावैं ।
मेरे द्वार पास तिहि कारण, विघन रहन नहिं पावैं ॥
कहाँ भिखारी गयो यहाँ ते, करै जो तुव प्रतिपालो ।
होगी वहाँ जाय किन देखो, बलि पै पर्‌यो कसालो ॥
गरल-अहारी कहाँ ? बताओ, लेहुँ आप सों लेखो ।
बार बार का पूँछति मोकों, जाय पूतना देखो ॥
बहुरि पियारी मोहि बताओ, भुजग-नाह परवीनो ।
देखहु जाय शेष-शय्या पर, जहाँ शयन तिन कीनों ॥
कहाँ पशुपती मोहि दिखाओ, गोकुल डगर पधारो ।
शैलपती कहँ ? कर मैं धरैं, गोबरधनहिं निहारो ॥
सत्यनरायन हँसि के कमला, भीतर चरन पधारैं ।
अस आमोद प्रमोद दोऊ को, हमरे शोक निवारैं ॥

मन्नन द्विवेदी

पण्डित मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए०, एम० ए० एस० बी०, रापती नदी तटस्थ गजपुर गाँव, ज़िला गोरखपूर के प्रसिद्ध रईस, ज़मीन्दार और व्रजभाषा के अच्छे कवि पण्डित मातादीन द्विवेदी के ज्येष्ठ पुत्र थे। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण, कश्यपगोत्रीय, मंगलायल के दुबे थे। इनका जन्म सं० १९४२ में हुआ। सं० १९६५ में इन्होंने गवर्नमेंट कालेज बनारस से बी० ए० की परीक्षा पास की। जब ये अंग्रेज़ी के छठें दर्जे में पढ़ते थे, तभी से पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखने लग गये थे। कविता करने और लेख लिखने का शौक़ इनको बालकपन से ही था।

ये आज़मगढ़ ज़िले में तहसीलदार थे। काम से बहुत कम अवकाश मिलने पर भी कुछ न कुछ साहित्यसेवा किया करते थे। पण्डित मन्नन द्विवेदी बड़े मिलनसार, सरस हृदय, देशभक्त और हिन्दी के अच्छे लेखक थे। खेद है, सं० १९७८ में इनका देहान्त हो गया। इन्होंने ये पुस्तकें लिखी हैं:—

बन्धुविनय (पद्य), धनुषभंग (पद्य), रणजीतसिंह का जीवन-चरित, आर्य-ललना, गोरखपुर विभाग के कवि, भारतवर्ष के प्रसिद्ध पुरुष, प्रेम, रामलाल (उपन्यास), मुसलमानी राज का इतिहास दो भाग।

यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं:—

(१)

जन्म दिया माता सा जिसने, किया सदा लालन पालन।
जिसके मिट्टी जल से ही है, रचा गया हम सब का तन॥

गिरिवर गण रक्षा करते हैं, उच्च उठा के श्रृङ्ग महान।
जिसके लता द्रुमादिक करते, हमको अपनी छाया दान॥
माता केवल बाल-काल में, निज अङ्कम में धरती है।
हम अशक्त जब तलक तभी तक, पालन पोषण करती है॥
मातृ-भूमि करती है मेरा, लालन सदा मृत्यु पर्यन्त।
जिसके दया प्रवाहों का नहिं, होता सपने में भी अन्त॥
मर जाने पर कण देहों के, इसमें ही मिल जाते हैं।
हिन्दू जलते यवन इसाई, दफ़न इसी में पाते हैं॥
ऐसी मातृभूमि मेरी है, स्वर्गलोक से भी प्यारी।
जिसके पद कमलों पर मेरा, तन मन धन सब बलिहारी॥

(२)

चमेली

सुन्दरता की रूपराशि तुम, दयालुता की खान चमेली।
तुमसी कन्यायें भारत को, कब देगा भगवान चमेली॥१॥
चहक रहे खगवृन्द वनों में, अब न रही है रात चमेली।
अमल कमल कुसुमित होते हैं, देखो हुआ प्रभात चमेली॥२॥
प्रेममग्न प्रेमीजन देखो, करें प्रभाती गान चमेली।
जिसने तुमसा वृक्ष लगाया, कर माली का ध्यान चमेली॥३॥
जग यात्रा में सहने होंगे, कभी कभी दुख भार चमेली।
काट छाँट से मत घबराना, यह भी उसका प्यार चमेली॥४॥
छिन्न भिन्न डालों का होना, अपने ही हित जान चमेली।
हरे हरे पत्ते निकलैंगे, सुमनों के सामान चमेली॥५॥
भ्रमर भीर गुञ्जार करेगी, तुझसे हास विलास चमेली।
दिगदिगन्त सुरभित होवगा, पाकर सुखद सुबास चमेली॥६॥
अटल नियम को भूल न जाना, जग में सबका नाश चमेली।
अस्त अंशुमाली भी होता, घूम अखिल आकाश चमेली॥७॥

नहीं रहैगा मूल न शाखा, नहीं मनोहर फूल चमेली।
निराकार से मिलकर होना, प्रियतम-पद की धूल चमेली ॥८॥

(३)

चिन्ता

हरियाली निराली दिखाई पड़े,
शुभ शान्ति सभी थल छाई हुई।
पति संजुत सुन्दरी जा रही है,
श्रम चिन्तित ताप सताई हुई ॥ १ ॥
सरिता उमड़ी तट जोड़ी खड़ी,
अति प्रेम से हाथ मिलाये हुए।
सुकुमारी सनेह से सींचती है,
वह प्रीतम भार उठाये हुए ॥ २ ॥
दिन बीत गया निशि चन्द्र लसै,
नभ देख लो शोभती तारावली।
इस मोदमई वर यामिनी में,
यह कामिनी कन्त ले भौन चली ॥ ३ ॥
मदमाता निषाद, नहीं सुनता,
मझधार में नैया लगाये हुए।
हे कन्हैया! उतार दे पार हमें,
हम तीन घड़ी से हैं आये हुए ॥ ४ ॥

(४)

उद्बोधन

हिमालय सर हैं उठाये ऊपर, बगल में झरना झलक रहा है।
उधर शरद के हैं मेघ छाये, इधर फटिक जल छलक रहा है ॥१॥

इधर घना बन हराभरा है, उपल प तरुवर उगाया जिसने ।
अचम्भा इसमें है कौन प्यारे, पड़ा था भारत जगाया उसने ॥२॥
कभी हिमालय के शृङ्ग चढ़ना, कभी उतरते हैं श्रम से थक के ।
थकन मिटाता है मंजु झरना, बटोही छाये में बैठ थक के ॥३॥
कृशोदरी गन कहीं चली हैं, लिये हैं बोझा छुटी हैं वेनी ।
निकल के बहती हैं चन्द्रमुख से, पसीना बनकर छटा की श्रेनी ॥४॥
गगन समीपी हिमाद्रि शिखरों, घरों में जलती है दीपमाला ।
यही अमरपुर उधर हैं सुरगण, इधर रसीली हैं देवबाला ॥५॥
गिरीश भारत का द्वारपट है, सदा से है यह हमारा संगी ।
नृपति भगीरथ की पुण्यधारा, बगल में बहती हमारी गंगी ॥६॥
बता दे गंगा कहाँ गया है, प्रताप पौरुष विभव हमारा ?
कहाँ युधिष्ठिर, कहाँ है अर्जुन, कहाँ है भारत का कृष्ण प्यारा ॥७॥
सिखा दे ऐसा उपाय मोहन, रहैं न भाई पृथक हमारे ।
सिखा दे गीता की कर्मशिक्षा, बजा के बंशी सुना दे प्यारे ॥८॥
अँधेरा फैला है घर में माधो, हमारा दीपक जला दे प्यारे ।
दिवाला देखो हुआ हमारा, दिवाली फिर भी देखा दे प्यारे ॥९॥
हमारे भारत के नवनिहालो, प्रभुत्व वैभव विकाश धारे ।
सुहृद हमारे हमारे प्रियवर, हमारी माता के चख के तारे ॥१०॥
न अब भी आलस में पड़ के बैठो, दशो दिशा में प्रभा है छाई ।
उठो अँधेरा मिटा है प्यारे ! बहुत दिनों पर दिवाली आई ॥११॥

मैथिलीशरण गुप्त

बाबू मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सं० १९४३ में चिरगाँव, झाँसी में हुआ। इनके पिता का नाम सेठ श्री रामचरणजी था। वे भी कविता से बड़ा प्रेम रखते थे और स्वयं भी कवि थे। अब वे जीवित नहीं हैं। गुप्तजी पाँच भाई हैं। सब के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :—महारामदास, रामकिशोर, मैथिलीशरण, सियारामशरण और चारुशीलाशरण। गुप्तजी अभी तक सन्तान-रहित हैं।

वर्तमान हिन्दी-कवियों में बाबू मैथिलीशरणजी का नाम हिन्दी-संसार में सब से अधिक प्रसिद्ध है। इनकी रचना व्याकरण-सम्मत और विशुद्ध होती है। इनकी लिखी पुस्तकों में सब से प्रसिद्ध पुस्तक भारत-भारती है। इसका प्रचार भी बहुत है। इनकी लिखी हुई कुछ पुस्तकों के नाम ये हैं :—

भारत-भारती, जयद्रथवध, रङ्ग में भङ्ग, किसान, पद्यप्रबन्ध, शकुन्तला, विरहिणी व्रजाङ्गना, पत्रावली, वैतालिक, चन्द्रहास, तिलोत्तमा, पलासी का युद्ध, पंचवटी, मेघनाद वध, स्वदेश-संगीत, वन-वैभव, बकसंहार, सैरन्ध्री, वीराङ्गना।

उच्च श्रेणी के विद्यार्थियों और नवयुवकों में इनकी कविता ने हिन्दी के लिये बड़ा अनुराग उत्पन्न कर दिया है। ये संस्कृत भी जानते हैं और बँगला भाषा में भी काफ़ी दख़ल रखते हैं।

गुप्तजी बड़े सरस हृदय, मिलनसार, शुद्धप्रकृति और मिथ्याभिमान-रहित पुरुष हैं। इनकी कविता के नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं :—

(१)

मातृभूमि

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।

नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं,
बन्दीजन खगवृन्द, शेष-फन सिंहासन हैं।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की ;
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ॥ १ ॥
मृतक समान अशक्त विवश आँखों को मीचे,
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हमको नीचे।
करके जिसने कृपा हमें अवलम्ब दिया था,
लेकर अपने अतुल अङ्क में त्राण किया था।
जो जननी का भी सर्वदा थी पालन करती रही,
तू क्यों न हमारी पूज्य हो मातृभूमि, मातामही ! ॥ २ ॥
जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक सरक कर खड़े हुए हैं।
परमहंस-सम बाल्यकाल में सब सुख पाये,
जिसके कारण "धूल भरे हीरे" कहलाये।
हम खेले कूदे हर्षयुत जिसकी प्यारी गोद में,
हे मातृभूमि ! तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में ॥ ३ ॥
पालन-पोषण और जन्म का कारण तूही,
वक्षःस्थल पर हमें कर रही धारण तूही।
अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे,
बने हुए हैं अहो ! तुझी से तुझ पर सारे।
हे मातृभूमि ! जब हम कभी शरण न तेरी पायँगे,
बस तभी प्रलय के पेट में सभी लीन हो जायँगे ॥ ४ ॥

हमें जीवनाधार अन्न तूही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है।
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम-भाव से सदा हमारा।

हे मातृभूमि ! उपजें न जो तुझसे कृषि-अंकुर कभी,
तो तड़प तड़प कर जल मरें जठरानल में हम सभी ॥ ५ ॥
पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा ?
तेरी ही यह देह तुझी से बनी हुई है,
बस तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है।
फिर अन्त-समय तूही इसे अचल देख अपनायगी,
हे मातृभूमि ! यह अन्त में तुझ में ही मिल जायगी ॥ ६ ॥
जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता।
जिन स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
नहीं टूटता कभी जन्म भर जिनसे नाता।
उन सब में तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्व है।
हे मातृभूमि ! तेरे सदृश किसका महा महत्व है ॥ ७ ॥
निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है।
षट् ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत क्रम है,
हरियाली का फ़र्श नहीं मखमल से कम है।
शुचि सुधा सींचता रात में तुझ पर चन्द्र-प्रकाश है,
हे मातृभूमि ! दिन में तरणि करता तम का नाश है ॥ ८ ॥
सुरभित, सुन्दर, सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं,
भाँति भाँति के सरस सुधोपम फल मिलते हैं।
ओषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातु वर रत्नोंवाली।
जो आवश्यक होते हमें मिलते सभी पदार्थ हैं,
हे मातृभूमि ! वसुधा, धरा तेरे नाम यथार्थ हैं ॥ ९ ॥

दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी,
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी।
नदियाँ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी,
पुष्पों से तरुराजि कर रही पूजा तेरी।
मृदु मलय-वायु मानों तुझे चन्दन चारु चढ़ा रही,
हे मातृभूमि! किसका न तू सात्विक भाव बढ़ा रही॥ १०॥
क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है।
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुखहर्त्री है,
भयनिवारिणी, शान्तिकारिणी, सुखकर्त्री है।
हे शरणदायिनी देवि! तू करती सब का त्राण है,
हे मातृभूमि! सन्तान हम, तू जननी, तू प्राण है॥ ११॥
आते ही उपकार याद हे माता! तेरा,
हो जाता मन मुग्ध भक्तिभावों का प्रेरा।
तू पूजा के योग्य कीर्ति तेरी हम गावें,
मन तो होता तुझे उठाकर शीश चढ़ावें।
वह शक्ति कहाँ, हा! क्या करें, क्यों हमको लज्जा न हो?
हम मातृभूमि! केवल तुझे शीश झुका सकते अहो॥१२॥
कारण-वश जब शोक-दाह से हम रहते हैं,
तब तुझ पर ही लोट लोट कर दुख सहते हैं।
पाखण्डी भी धूल चढ़ाकर तनु में तेरी,
कहलाते हैं साधु नहीं लगती है देरी।
इस तेरी ही शुचि धूल में मातृभूमि! वह शक्ति है,
जो क्रूरों के भी चित्त में उपजा सकती भक्ति है॥१३॥
कोई व्यक्ति विशेष नहीं तेरा अपना है,
जो यह समझे हाय! देखता वह सपना है।

तुझको सारे जीव एक से ही प्यारे हैं,
कर्म्मों के फल मात्र यहाँ न्यारे न्यारे हैं।
हे मातृभूमि! तेरे निकट सब का सम सम्बन्ध है,
जो भेद मानता वह अहो! लोचनयुत भी अन्ध है॥१४॥
जिस पृथिवी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान! कभी हम रहें न न्यारे।
लोट लोटकर वहीं हृदय को शान्त करेंगे,
उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे।
उस मातृभूमि की धूल में जब पूरे सन जायँगे,
होकर भव-बन्धन-मुक्त हम आत्मरूप बन जायँगे॥१५॥

(२)

स्वर्ग-सहोदर

जितने गुणसागर नागर हैं,
कहते यह बात उजागर हैं।
अब यद्यपि दुर्बल आरत है,
पर भारत के सम भारत है॥ १ ॥
बसते बसुधा पर देश कई,
जिनकी सुषमा सविशेष नई।
पर है किसमें गुरुता इतनी,
भरपूर भरी इसमें जितनी॥ २ ॥
गुण गुम्फित हैं इसमें इतने,
पृथिवी पर हैं न कहीं जितने।
किसकी इतनी महिमा वर है?
इस पै सब विश्व निछावर है॥ ३ ॥
जन तीस करोड़ यहाँ गिन के,
कर साठ करोड़ हुये जिनके।

जगमें वह कार्य मिला किसको,
यह देश न साध सके जिसको ? ॥ ४ ॥
उपजे सब अन्न सदा जिसमें,
अचला अति विस्तृत है इसमें ।
जग में जितने प्रिय द्रव्य जहाँ,
समझो सबकी भवभूमि यहाँ ॥ ५ ॥
प्रिय दृश्य अपार निहार नये,
छवि वर्णन में कवि हार गये ।
उपमा इसकी न कहीं पर है,
धरणी-धर ईश-धरोहर है ॥ ६ ॥
जल-वायु महा हितकारक है,
रुज-हारक, स्वास्थ्य-प्रसारक है ।
द्युतिमन्त दिगन्त मनोरम है,
क्रम षड्ऋतु का अति उत्तम है ॥ ७ ॥
सुखकारक ऊपर श्याम-घटा,
दुखहारक भूपर शस्य-छटा ।
दिन में रवि लोक-प्रकाशक है,
निशि में शशि ताप विनाशक है ॥ ८ ॥
छबिमान कहीं पर खेत हरे,
बन-बाग कहीं फल-फूल भरे ।
गिरि तुङ्ग कहीं मन मोह रहे,
सब ठौर जलाशय सोह रहे ॥ ९ ॥
रतनाकर की रसना पहने,
बहु पुष्प-समूह बने गहने ।
परिधान किये तृण चीर हरा,
अति सुन्दर है यह दिव्य धरा ॥ १० ॥

बहु चम्पक, कुन्द, कदम्ब बड़े,
बकुलादि अनन्त अशोक खड़े।
कितने न इसे वर वृक्ष मिले,
अति चित्र-विचित्र प्रसून खिले ॥ ११ ॥

मृदु, बेर, मुखप्रिय, जम्बु फले,
कदली, शहतूत, अनार भले।
फलराज रसाल समान कहीं,
फल और मनोहर एक नहीं ॥ १२ ॥

कृषि केसर की भरपूर यहाँ,
मृग-गन्ध, कुसुम्भ, कपूर यहाँ।
समझो मधु का बस कोश इसे,
रस हैं इतने उपलब्ध किसे ? ॥ १३ ॥

अमृतोपम अद्‌भुत शक्तिमयी,
जिनकी सुगुण-श्रुति नित्य नई।
इसमें वहु औषधियाँ खिलतीं,
जल में, थल में, तल में मिलतीं ॥ १४ ॥

कृषि में इसने जग जीत लिया,
किसने इस सा व्यवसाय किया ?
सन, रेशम, ऊन, कपास अहो,
उपजा इतना किस ठौर कहो ॥ १५ ॥

अवनी-उर में बहु रत्न भरे,
कनकादिक धातु-समूह धरे।
वह कौन पदार्थ मनोरम है,
जिसका न यहाँ पर उद्‌गम है ? ॥ १६ ॥

कवि, पण्डित, वीर, उदार महा,
प्रकटे मुनि धीर अपार यहाँ।

लख के जिनकी गति के मग को,
गुरुज्ञान सदा मिलता जग को ॥१७॥
बहु भाँति बसे पुर-ग्राम घने,
अब भी नभ-चुम्बक धाम बने।
सब यद्यपि जीर्ण-विशीर्ण पड़े,
पर पूर्व-दशास्मृति-चिन्ह खड़े ॥१८॥
अब भी वन में मिल के चरते,
बहु गो-गण हैं मन को हरते।
इस सा उपकारक जीव नहीं,
पय-तुल्य न पेय पदार्थ कहीं ॥१९॥
मद-मत्त कहीं गज झूम रहे,
मुद मान कहीं मृग घूम रहे।
शुक, चातक, कोकिल बोल रहे,
कर नृत्य शिखी-गण डोल रहे ॥२०॥
शतपत्र कहींपर फूल रहे,
मधु-मुग्ध मधुव्रत भूल रहे।
कलहंस कहीं रव हैं करते,
जल-जीव प्रमोद भरे तरते ॥ २१ ॥
शुचि शीतल-मन्द सुगन्ध सनी,
फिरती पवन प्रिय नारि बनी।
हरती सब का श्रम सेवन में,
भरती सुख है तन में, मन में ॥ २२ ॥
जगतीतल में वह देश कहाँ,
निकले गिरि-गन्ध विशेष जहाँ ?
इसमें मलयाचल शोभन है,
जिसमें घन चन्दन का वन है ॥ २३ ॥

सिर है गिरिराज अहो ! इसका,
इस भाँति महत्व कहो किसका ?
तुहिनालय यद्यपि नाम पड़ा,
विभवालय है वह किन्तु बड़ा ॥ २४ ॥
वर विष्णुपदी बहती इसमें,
रवि की तनया रहती इसमें।
अघ-नाशक तीर्थ अनेक यहाँ,
मिलती मन को चिर-शान्ति जहाँ ॥ २५ ॥
क्षिति-मण्डल था जब अज्ञ सभी,
यह था अति उन्नत, सभ्य तभी।
बहु देश समुन्नत जो अब हैं,
शिशु-शिष्य इसी गुरु के सब हैं ॥ २६ ॥
शुचि शौर्य-कथा इतनी किसकी,
जग विश्रुत है जितनी इसकी ?
अमरों तक का यह मित्र रहा,
अति दिव्य चरित्र पवित्र रहा ॥ २७ ॥
ध्रुव धर्म्ममयी इसकी क्षमता,
रखती न कहीं अपनी समता।
गरिमा इसकी न कहाँ पर है,
किससे न लिया इसने कर है ? ॥ २८ ॥
श्रुति, शास्त्र, पुराण तथा स्मृतियाँ।
बहु अन्य सुधी-गण की कृतियाँ।
नय-नीति-नियन्त्रित तन्त्र बने,
सब ही विषयों पर ग्रन्थ घने ॥ २९ ॥
कविता, कल नाट्य, सुशिल्पकला,
इस भाँति बढ़ी किस ठौर भला ?

किस पै न रहा इसका कर है,
किस सद्गुण का न यहाँ घर है ? ॥ ३० ॥
सुखमूल सनातन धर्म रहा,
अनुकूल अलौकिक कर्म रहा।
वर वृत्त बढ़े इतने किसके ?
नर क्या, सुर भी वश थे इसके ॥ ३१ ॥
सुख का सब साधन है इसमें,
भरपूर भरा धन है इसमें।
पर हा ! अब योग्य रहे न हमीं,
इससे दुख की जड़ आन जमीं ॥ ३२ ॥
सुन के इसकी सब पूर्व-कथा,
उठती उर में अब घोर व्यथा।
इसमें इतना घृत क्षीर बहा,
जितना न कहीं पर नीर रहा ॥ ३३ ॥
अब दीनदयालु दया करिये,
सब भाँति दरिद्र-दशा हरिये।
भरिये फिर वैभव नित्य नया,
चिरकाल हुआ सुख छूट गया ॥ ३४ ॥
अवलम्ब न और कहीं इसको,
तजिये हरि, हाय ! नहीं इसको।
खलता दुख-दैन्य महोदर है,
यह भारत स्वर्ग-सहोदर है ॥ ३५ ॥

(३)

ग्राम्य जीवन

अहा ! ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सब का मन चाहे।
थोड़े में निर्वाह यहाँ है, ऐसी सुविधा और कहाँ है ? ॥

यहाँ शहर की बात नहीं है, अपनी अपनी बात नहीं है।
आडम्बर का नाम नहीं है, अनाचार का काम नहीं है॥
वे रईस सरदार नहीं हैं, वे मछुए बाज़ार नहीं हैं।
कुटिल कटाक्ष-बाण के द्वारा, जाता नहीं पथिकजन मारा॥
भोगों में वह भक्ति नहीं है, अधिक इन्द्रियासक्ति नहीं है।
आलस में अनुरक्ति नहीं है, रुपयों में ही शक्ति नहीं है॥
वह अदालती रोग नहीं है, अभियोगों का योग नहीं है।
मरे फ़ौजदारी की नानी, दीवाना करती दीवानी॥
यहाँ गँठकटे चोर नहीं हैं, तरह तरह के शोर नहीं हैं।
गुण्डों की न यहाँ बन आती, इ़ज्ज़त नहीं किसी की जाती॥
सीधे सादे भोले भाले, हैं ग्रामीण मनुष्य निराले।
एक दूसरे की ममता है, सब में प्रेममयी समता है॥
यद्यपि वे काले हैं तन से, पर अति ही उज्ज्वल हैं मन से।
अपना या ईश्वर का बल है, अन्तःकरण अतीव सरल है॥
प्रायः सब की सब विभूति है, पारस्परिक सहानुभूति है।
कुछ भी ईर्ष्या-द्वेष नहीं है, कहीं कपट का लेश नहीं है॥
सब कामों में हिस्से लेकर, पति को अति सहायता देकर।
प्राणों से भी अधिक प्यारियाँ, हैं अर्द्धाङ्गी ठीक नारियाँ॥
गुदने गुदे हुये हैं तन में, भरी सरलता है चितवन में।
थोड़े से गहने पहने हैं, क्या सब आपस में बहनें हैं॥
बात बात में अड़ने वाली, गहनों के हित लड़ने वाली।
दिखलाने वाली दुर्गतियाँ, हैं न यहाँ ऐसी श्रीमतियाँ॥
छोटे से मिट्टी के घर हैं, लिपे पुते हैं, स्वच्छ सुघर हैं।
गोपद-चिन्हित आँगन तट हैं, रक्खे एक ओर जल-घट हैं॥
खपरैलों पर बेलें छाई, फूली, फली, हरी, मन भाई।
काशीफल-कुष्माण्ड कहीं हैं, कहीं लौकियाँ लटक रहीं हैं॥

है जैसा गुण यहाँ हवा में, प्राप्त नहीं डाक्टरी दवा में।
सन्ध्या-समय गाँव के बाहर, होता नन्दन-विपिन निछावर॥
श्रमसहिष्णु सब जन होते हैं, आलस में न पड़े सोते हैं।
दिन दिन भर खेतों पर रहकर, करते रहते काम निरन्तर॥
अतिथि कहीं जब आ जाता है, वह आतिथ्य यहाँ पाता है।
ठहराया जाता है ऐसे, कोई सम्बन्धी हो जैसे॥
हुआ कभी कोई फ़रयादी, तो न उसे आती बरबादी।
देती याद उन्हें चौपालें, फिर क्यों वे घूँसें घर घालें?॥
जगती कहीं ज्ञान की ज्योती, शिक्षा की यदि कमी न होती।
तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते, पूर्ण शान्ति-रस में सन जाते॥

(४)

जयद्रथ-वध

उस काल पश्चिम ओर रवि की रह गई बस लालिमा,
होने लगी कुछ कुछ प्रगट सी यामिनी की कालिमा।
सब कोक-गण शोकित हुये विरहाग्नि से डरते हुये,
आने लगे निज निज गृहों को विहग रव करते हुये॥ १॥
यों अस्त होना देख रवि का पार्थ मानों हत हुये,
मुँदते कमल के साथ वे भी विमुद, गौरव-गत हुये।
लेकर उन्होंने श्वास ऊँचा वदन नीचा कर लिया,
संग्राम करना छोड़कर गाण्डीव रथ में रख दिया॥ २॥
'पूरी हुई होगी प्रतिज्ञा पार्थ की' इससे सुखी,
पर चिन्ह पाकर कुछ न उसके व्यग्र चिन्तायुत दुखी।
राजा युधिष्ठिर उस समय दोनों तरफ़ क्षोभित हुये,
प्रमुदित न विमुदित उससमयकेकुमुद-सम शोभित हुये॥ ३॥
इस ओर आना जान निशि का थे मुदित निशिचर बड़े,
उस ओर प्रमुदित शत्रुओं के हाथ मूँछों पर पड़े।

दुर्योधनादिक कौरवों के हर्ष का क्या पार था।
मानों उन्होंने पालिया त्रैलोक्य का अधिकार था॥ ४ ॥
बोला जयद्रथ से वचन कुरुराज तव सानन्द यों—
"हे वीर! रण में अब नहीं तुम घूमते स्वच्छन्द क्यों?
अब सूर्य के सम पार्थ को भी अस्त होते देख लो,
चल कर समस्त विपक्षियों को व्यस्त होते देख लो॥ ५ ॥
कहकर वचन कुरुराज ने यों हाथ उसका धर लिया,
कर्णादि के आगे तथा उसको खड़ा फिर कर दिया।
उस काल निर्मल मुकुर-सम उसका वदन दर्शित हुआ,
पाकर यथा अमरत्व वह निज हृदय में हर्षित हुआ॥ ६ ॥
खल शत्रु भी विश्वास जिनके सत्य का यों कर रहे,
निश्चिन्त, निर्भय, सामने ही मोद-नद में तर रहे।
है धन्य अर्जुन के चरित को, धन्य उनका धर्म है,
क्या और हो सकता अहो! इससे अधिक सत्कर्म है॥ ७ ॥
वाचक! विलोको तो ज़रा, है दृश्य क्या मार्मिक अहो?
देखा कहीं अन्यत्र भी क्या शील यों धार्मिक कहो?
कुछ देखकर ही मत रहो, सोचो विचारो चित्त में,
बस तत्व है अमरत्व का वर-वृत्तरूपी वित्त में॥ ८ ॥
यह देख लो, निज धर्म का सम्मान ऐसा चाहिये;
सोचो हृदय में सत्यता का ध्यान जैसा चाहिये।
सहृदय जिसे सुनकर द्रवित हों चरित वैसा चाहिये।
अति भव्य भावों का नमूना और कैसा चाहिये!॥ ९ ॥
क्या पाप की ही जीत होती, हारता है पुण्य ही?
इस दृश्य को अवलोककर तो जान पड़ता है यही।
धर्मार्थ दुःख सहे जिन्होंने पार्थ मरणासन्न हैं,
दुष्कर्म ही प्रिय हैं जिन्हें वे धार्तराष्ट्र प्रसन्न हैं!॥ १० ॥

परिणाम सोच न भीम सात्यकि रह सके क्षणभर खड़े,
हा कृष्ण! कह हरि के निकट बेहोश होकर गिर पड़े।
यों देखकर उनकी दशा दृग बन्द कर अरविन्द से—
कहने लगे अर्जुन वचन इस भाँति फिर गोविन्द से॥ ११ ॥
"रहते हुए तुम सा सहायक प्रण हुआ पूरा नहीं!
इससे मुझे है जान पड़ता भाग्यबल ही सब कहीं।
जलकर अनल में दूसरा प्रण पालता हूँ मैं अभी,
अच्युत! युधिष्ठिर आदि का अब भार है तुम पर सभी॥ १२ ॥
"सन्देश कह दीजो यही सब से विशेष विनय भरा—
खुद ही तुम्हारा जन धनञ्जय धर्म के हित है मरा।
तुम भी कभी निज प्राण रहते धर्म को मत छोड़ियो,
वैरी न जब तक नष्ट हों मत युद्ध से मुँह मोड़ियो॥ १३ ॥
"थे पाण्डु के सुत चार ही यह सोच धीरज धारियो,
हों जो तुम्हारे प्रण-नियम उनको कभी न विसारियो।
है इष्ट मुझको भी यही यदि पुण्य मैंने हों किये,
तो जन्म पाऊँ दूसरा मैं वैर-शोधन के लिये॥ १४ ॥
"कुछ कामना मुझको नहीं है इस दशा में स्वर्ग की,
इच्छा नहीं रखता अभी मैं अल्प भी अपवर्ग की।
हा! हा! कहाँ पूरी हुई मेरी अभी आराधना?
अभिमन्यु विषयक वैर की है शेष अब भी साधना॥ १५ ॥
"कहना किसी से और मुझको अब न कुछ सन्देश है,
पर शेष दो जन हैं अभी जिनका बड़ा ही क्लेश है।
कृष्णा सुभद्रा से कहूँ क्या? यह न होता ज्ञात है,
मैं सोचता हूँ किन्तु हा! मिलती न कोई बात है॥१६॥
"जैसे बने समझा बुझाकर, धैर्य सब को दीजियो;
कह दीजियो, मेरे लिये मत शोक कोई कीजियो।

अपराध जो मुझसे हुए हों वे क्षमा करके सभी,
कृपया मुझे तुम याद करियो स्वजन जान कभी कभी ॥ १७ ॥
"हा धर्म्मधीर अजात शत्रो ! आर्य्य भीम ! हरे ! हरे !
हा ! प्रिय नकुल ! सहदेव भ्रातः ! उत्तरे ! हा उत्तरे !
हा देवि कृष्णे ! हा सुभद्रे ! अब अधम अर्जुन चला ;
धिक है—क्षमा करना मुझे—मुझसे हुआ रिपु का भला ॥ १८ ॥
जैसा किया होगा प्रथम वैसा हुआ परिणाम है,
माधव ! विदा दो बस मुझे, अब बार बार प्रणाम है।
इस भाँति मरने के लिये यद्यपि नहीं तय्यार हूँ,
पर धर्म-बन्धन-बद्ध हूँ मैं क्या करूँ लाचार हूँ" ॥ १९ ॥
इस भाँति अर्जुन के वचन श्रीकृष्ण थे जब सुन रहे,
हँसकर जयद्रथ ने तभी ये विष-वचन उनसे कहे—
"गोविन्द ! अब क्या देर है ? प्रण का समय जाता टला,
शुभ कार्य जितना शीघ्र हो है नित्य उतनाहीं भला" ॥ २० ॥
सुनकर जयद्रथ का कथन हरि को हँसी कुछ आगई,
गम्भीर-श्यामल-मेघ में विद्युच्छटासी छागई।
कहते हुये यों—वह न उनका भूल सकता वेश है—
"हे पार्थ ! प्रण-पालन करो, देखो, अभी दिन शेष है" ॥ २१ ॥

(५)

उद्बोधन

हतभाग्य हिन्दू-जाति ! तेरा पूर्वदर्शन है कहाँ ?
वह शील, शुद्धाचार, वैभव देख, अब क्या है यहाँ ?
क्या जान पड़ती वह कथा अब स्वप्न की सी है नहीं ?
हम हों वही, पर पूर्व-दर्शन दृष्टि आते हैं कहीं ॥
बीती अनेक शताब्दियाँ पर हाय ! तू जागी नहीं ;
यह कुम्भकर्णी नींद तू ने तनिक भी त्यागी नहीं !

देखें कहीं पूर्वज हमारे स्वर्ग से आकर हमें—
आँसू बहावें शोक से, इस वेष में पाकर हमें !! ॥
अब भी समय है जागने का देख आँखें खोल के,
सब जग जगाता है तुझे, जगकर स्वयं जय बोल के।
निःशक्त यद्यपि हो चुकी है किन्तु तू न मरी अभी,
अब भी पुनर्जीवन-प्रदायक साज हैं सम्मुख सभी ॥
हम कौन थे, क्या हो गये हैं, जान लो इसका पता,
जो थे कभी गुरु है न उनमें शिष्य की भी योग्यता !
जो थे सभी के अग्रगामी आज पीछे भी नहीं,
है दीखती संसार में विपरीतता ऐसी कहीं ?
निज पूर्वजों के सद्गुणों का गर्व जो रखती नहीं,
वह जाति जीवित जातियों में रह नहीं सकती कहीं ॥
हम हिन्दुओं के सामने आदर्श जैसे प्राप्त हैं,
संसार में किस जाति को, किस ठौर वैसे प्राप्त हैं ?
यदि हम किसी भी कार्य को करते हुये असमर्थ हैं।
तो उस अखिल-कर्ता पिता के पुत्र ही हम व्यर्थ हैं ॥
अपनी प्रयोजन-पूर्ति क्या हम आप कर सकते नहीं ?
क्या तीस कोटि मनुष्य अपना ताप हर सकते नहीं ?
क्या हम सभी मानव नहीं किंवा हमारे कर नहीं ?
रो भी उठें हम तो बने क्या अन्य रत्नाकर नहीं ?
भागो अलग अविचार से, त्यागो कुसङ्ग कुरीति का,
आगे बढ़ो निर्भीकता से, काम है क्या भीति का ॥
चिन्ता न विघ्नों की करो, पाणिग्रहण कर नीति का—
सुर-तुल्य अजरामर बनो पीयूष पीकर प्रीति का ॥
संसार की समरस्थली में धीरता धारण करो,
चलते हुये निज इष्ट पथ में सङ्कटों से मत डरो।

जीते हुये भी मृतक-सम रहकर न केवल दिन भरो,
वर वीर बनकर आप अपनी विघ्न-बाधायें हरो॥
है ज्ञात क्या तुमको नहीं तुम लोग तीस करोड़ हो,
यदि ऐक्य हो तो फिर तुम्हारा कौन जग में जोड़ हो?
उत्साह-जल से सींचकर हित का अखाड़ा गोड़ दो,
गर्दन अमिल अधःपतन की ताल ठोंक मरोड़ दो॥
जो लोग पीछे थे तुम्हारे, बढ़ गये, हैं बढ़ रहे,
पीछे पड़े तुम दैव के सिर दोष अपना मढ़ रहे!
पर कर्म्म-तैल विना कभी विधि-दीप जल सकता नहीं,
है दैव क्या? साँचे विना कुछ आप ढल सकता नहीं॥
रक्खो परस्पर मेल मन से छोड़कर अविवेकता,
मन का मिलन ही मिलन है, होती उसी से एकता॥
सब वैर और विरोध का बल-बोध से वारण करो,
है भिन्नता में खिन्नता ही एकता धारण करो।
है एकता ही मुक्ति ईश्वर-जीव के सम्बन्ध में,
वर्णैकता ही अर्थ देती इस निकृष्ट निबन्ध में॥
है कार्य ऐसा कौन सा साधे न जिसको एकता?
देती नहीं अद्भुत अलौकिक शक्ति किसको एकता?
दो एक एकादश हुये, किसने नहीं देखे सुने?
हाँ, शून्य के भी योग से हैं अङ्क होते दशगुने॥
प्रत्येक जन प्रत्येक जन को बन्धु अपना जान लो;
सुख-दुःख अपने बन्धुओं का आप अपना मान लो।
अनुदारता-दर्शक हमारे दूर सब अविवेक हों।
जितने अधिक हों तन भले हैं, मन हमारे एक हों।
आचार में कुछ भेद हो पर प्रेम हो व्यवहार में,
देखें हमें फिर कौन सुख मिलता नहीं संसार में?

प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलीक है,
जैसी अवस्था हो जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है।
सर्वत्र एक अपूर्व युग का हो रहा सञ्चार है,
देखो, दिनोंदिन बढ़ रहा विज्ञान का विस्तार है।
अब तो उठो, क्या पड़ रहे हो व्यर्थ सोच विचार में ?
सुख दूर, जीना भी कठिन है श्रम बिना संसार में॥
पृथ्वी, पवन, नभ, जल, अनल सब लग रहे हैं काम में,
फिर क्यों तुम्हीं खोते समय हो व्यर्थ के विश्राम में ?
बीते हज़ारों वर्ष तुमको नींद में सोते हुये,
बैठे रहोगे और कब तक भाग्य को रोते हुये ? ॥
इस नींद में क्या क्या हुआ यह भी तुम्हें कुछ ज्ञात है ?
कितनी यहाँ लूटें हुईं कितना हुआ अपघात है !
होकर न टस से मस रहे तुम एक ही करवट लिये,
निज दुर्दशा के दृश्य सारे स्वप्न सम देखा किये॥
इस नींद में ही तो यवन आकर यहाँ आदृत हुये,
जागे न हा ! स्वातन्त्र्य खोकर अन्त में तुम धृत हुये।
इस नींद में हीं सब तुम्हारे पूर्व-गौरव हृत हुये,
अब और कब तक इस तरह सोते रहोगे मृत हुये ? ॥
उत्तप्त ऊष्मा के अनन्तर दीख पड़ती वृष्टि है,
बदली न किन्तु दशा तुम्हारी नित्य शनि की दृष्टि है !
है घूमता फिरता समय तुम किन्तु ज्यों के त्यों पड़े,
फिर भी अभी तक जी रहे हो, वीर हो निश्चय बड़े॥
सोचो विचारो तुम कहाँ हो, समय की गति है कहाँ,
वे दिन तुम्हारे आप ही क्या लौट आवेंगे यहाँ।
ज्यों ज्यों करेंगे देर हम वे और बढ़ते जायँगे,
यदि बढ़ गये वे और तो फिर हम न उनको पायँगे॥

बैठे रहोगे हाय ! कब तक और यों हीं तुम कहो ?
अपनी नहीं तो पूर्वजों की लाज तो रक्खो अहो !
भूलो न ऋषि सन्तान हो अब भी तुम्हें यदि ध्यान हो—
तो विश्व को फिर भी तुम्हारी शक्ति का कुछ ज्ञान हो ।
बन कर अहो ! फिर कर्मयोगी वीर बड़ भागी बनो ,
परमार्थ के पीछे जगत में स्वार्थ के त्यागी बनो ॥
होकर निराश कभी न बैठो, नित्य उद्योगी रहो ।
सब देश-हितकर कार्य में. अन्योन्य सहयोगी रहो ॥
धर्मार्थ के भोगी रहो बस कर्म के योगी रहो ।
रोगी रहो तो प्रेम रूपी रोग के रोगी रहो ॥
पुरुषत्व दिखलाओ पुरुष हो, बुद्धिबल से काम लो ,
तबतक न थककर तुम कभी अवकाश या विश्राम लो—
जबतक कि भारत पूर्व के पद पर न पुनरासीन हो; ।
फिर ज्ञान में, विज्ञान में जबतक न वह स्वाधीन हो ॥
निज धर्म का पालन करो, चारों फलों की प्राप्ति हो ,
दुख-दाह, आधि-व्याधि सब की एक साथ समाप्ति हो ।
ऊपर कि नीचे एक भी सुर है नहीं ऐसा कहीं—
सत्कर्म में रत देख तुमको जो सहायक हो नहीं ॥

(भारत-भारती से)

(६)

शकुन्तला की विदा

(१)

त्यागी थे मुनि कण्व उन्हें भी करुणा आई,
होती है बस सुता धरोहर, वस्तु पराई ।
होम-शिखा की परिक्रमा उससे करवाई,
और उन्होंने स्वस्ति-गिरा यों उसे सुनाई—

(२)

"तुझको पति के यहाँ मिले सब भाँति प्रतिष्ठा,
ज्यों ययाति के यहाँ हुई पूजित शर्मिष्ठा।
सार्वभौम पुरु पुत्र हुआ था उसके जैसे—
तेरे भी कुल-दीप दिव्य औरस हो वैसे॥

(३)

"गुरुओं की सम्मान-सहित शुश्रूषा करियो,
सखी-भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो।
करे यदपि अपमान मान मत कीजो पति से,
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से॥

(४)

"परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूलकर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद पाती हैं,
उलटी चलकर वंश-व्याधियाँ कहलाती हैं॥

(७)

जीवन का अस्तित्व

जीव हुई है तुझको भ्रान्ति;
शान्ति नहीं, यह तो है श्रान्ति।
अरे, किवाड़ खोल, उठ, कब से मैं हूँ तेरे लिए खड़ा;
सोच रहा है क्या मन ही मन मृतक-तुल्य तू पड़ा पड़ा।
बढ़ती ही जाती है क्लान्ति;
शान्ति नहीं, यह तो है श्रान्ति।
अपने आप घिरा बैठा है तू छोटे-से घेरे में;
नहीं ऊबता है क्या तेरा जी भी इस अन्धेरे में?

मची हुई है नीरव क्रान्ति;
शान्ति नहीं, यह तो है भ्रान्ति।
द्वार बन्द कर के भी तू है चैन नहीं पाता डर से;
तेरे भीतर चोर घुसा है उसको तो निकाल घर से।
चुरा रहा है वह कृति-कान्ति;
शान्ति नहीं, यह तो है भ्रान्ति।
जिस जीवन की रक्षा के हित है तू ने यह ढंग रचा,
होकर यों अवसन्न और जड़ वह पहले ही कहाँ बचा!
जीवन का अस्तित्व अशान्ति;
शान्ति नहीं, यह तो है भ्रान्ति।

(८)

स्वयमागत

तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं?
सब द्वारों पर भीड़ बड़ी है कैसे भीतर जाऊँ मैं?
द्वारपाल भय दिखलाते हैं,
कुछ ही जन जाने पाते हैं;
शेष सभी धक्के खाते हैं;
कैसे घुसने पाऊँ मैं?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं?
मुझ में सभी दैन्य दूषण हैं,
न तो वस्त्र हैं, न विभूषण हैं;
लज्जित किन्तु यहाँ पूषण हैं,
अपना क्या दिखलाऊँ मैं?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं?

मुझ में तेरा आकर्षण है,
किन्तु यहाँ घन सङ्घर्षण है,
इसीलिए दुर्द्धर धर्षण है,
क्योंकर तुझे बुलाऊँ मैं ?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?
तेरी विभव कल्पना कर के,
उसके वर्णन से मन भर के,
भूल रहे हैं जन बाहर के,
कैसे तुझे भुलाऊँ मैं ?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?
बीत चुकी है बेला सारी,
आई किन्तु न मेरी बारी;
करूँ कुटी की अब तैयारी,
वहीं बैठ पछताऊँ मैं ।
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?
कुटी खोल भीतर आता हूँ,
तो वैसा ही रह जाता हूँ,
तुझको यह कहते पाता हूँ—
"अतिथि ! कहो क्या लाऊँ मैं ?"
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?

(९)

आय का उपयोग

निकल रही है उर से आह ;
ताक रहे सब तेरी राह ।
चातक खड़ा चोंच खोले है, सम्पुट खोले सीप खड़ी ;
मैं अपना घट लिए खड़ा हूँ, अपनी अपनी हमें पड़ी ।

सब को है जीवन की चाह ;
ताक रहे सब तेरी राह ।
मैं कहता हूँ—'मैं प्यासा हूँ', चातक-'पी, पी'-रटता है ;
व्यंग्य मानता हूँ मैं उसको, हृदय क्षोभ से फटता है ।
पर क्या वह रखता है डाह ?
ताक रहे सब तेरी राह ।
मैं अपनी इच्छा कहता हूँ, पर वह तुझे बुलाता है ;
तुझ से अधिक उदार वही है, पर भ्रम यहाँ भुलाता है ।
किसको है किसकी परवाह !
ताक रहे सब तेरी राह ।
हम अपनी अपनी कहते हैं किन्तु सीप क्या कहती है ?
कुछ भी नहीं, खोलकर भी मुँह वह नीरव ही रहती है ?
उसके आशय की क्या थाह ?
ताक रहे सब तेरी राह ।
घनश्याम, फिर भी तू सब की इच्छा पूरी करता है ;
चातक-चञ्चु, सीप का सम्पुट, मेरा घट भी भरता है ।
सब पर तेरा दया-प्रवाह ;
ताक रहे सब तेरी राह ।
तेरे दया-दान का मैंने, चातक ने भी भोग किया ;
किन्तु सीप ने उसको लेकर क्या अपूर्व उपयोग किया !
बना दिया है मुक्ता वाह !
ताक रहे सब तेरी राह ।

(१०)

निरुद्देश निर्माण

प्यारे, तेरे कहने से जो यहाँ अचानक मैं आया ;
यह विचित्र संसार सामने उसी समय मैंने पाया ।

क्षणभंगुर होकर इसका सुख आकर्षक था बहुत बड़ा,
क्योंकि दुःख समुदाय उसे था घेरे चारों ओर खड़ा।
खट्ट-मिट्ठे रस का मोहक था यह मिट्टी का एक घड़ा,
कारीगरी देखकर इसकी मैं चकराया, चौंक पड़ा।
तेरे बिना किन्तु मेरा मन घटाटोप में घबराया;
प्यारे, तेरे कहने से जो यहाँ अचानक मैं आया॥
जाता कहाँ, मुझे भी इसके वैचित्र्यों ने आ घेरा;
सखे, हार कर एक ओर तब डाल दिया मैंने डेरा।
देख निभृत-सा बैठ गया मैं करता हुआ ध्यान तेरा;
खींच रहा था धरती पर कुछ रेखाएँ यह नख मेरा।
धीरे धीरे सभी ओर से आकर अन्धकार छाया;
प्यारे, तेरे कहने से जो यहाँ अचानक मैं आया॥
दिवस गया, कब सन्ध्या आई, दीप जले, कब रात हुई;
याद नहीं कुछ मुझे, न जाने कहाँ, कौन सी बात हुई।
वेला की यह सारी खेला बस, बिजली-सी ज्ञात हुई;
मुझे आत्म-विस्मृत करने को तेरी स्मृति हे तात! हुई।
आखिर यही प्रभात-पूर्व का पवन अपूर्व पुलक लाया;
प्यारे, तेरे कहने से जो यहाँ अचानक मैं आया॥
दीप्ति बढ़ी दीपों की सहसा, मैंने भी ली साँस, कहा,
सो जाने के लिए जगत का यह प्रकाश है जाग रहा!
किन्तु उसी बुझते प्रकाश में डूब उठा मैं और बहा,
निरुद्देश नख-रेखाओं में देखी तेरी मूर्ति अहा!
बतलादे ओ नटनागर! तू यह तेरी कैसी माया?
प्यारे, तेरे कहने से जो यहाँ अचानक मैं आया॥
रखता है कलकण्ठ सखे, तू इसका कोमल नाम कला,
निरुद्देश निर्म्माण न होगा तो क्या इसका काम भला?

पर इस निरुद्देश साँचे में तू क्यों अपने आप ढला ?
शङ्का-समाधान दोनों का यों ही चिर आलाप चला !
तू हँसता था खड़ा सामने, धन्य भाव वह मन भाया।
प्यारे, तेरे कहने से जो यहाँ अचानक मैं आया॥

लोचनप्रसाद पाण्डेय

छत्तीसगढ़ के बिलासपुर ज़िले में चिलोत्पला गङ्गा महानदी के किनारे बालपुर नाम का एक पल्ली-ग्राम है। पाण्डेयजी का जन्म इसी ग्राम में एक प्रतिष्ठित और प्राचीन सरयूपारीण ब्राह्मण-वंश में सं० १९४३ विक्रमाब्द के पौष शुक्ल १०, मङ्गलवार को हुआ। इनके पिता पं० चिन्तामणि पाण्डेय एक सच्चरित्र, विद्याप्रेमी और आदर्श गृहस्थ थे। उन्होंने अपने यहाँ हिन्दी का एक पुस्तकालय स्थापित किया था, जिसमें हिन्दी के उत्तमोत्तम काव्य-ग्रन्थों का संग्रह था। अपने ग्राम में हिन्दी की एक पाठशाला के स्थापन और उसके सञ्चालन द्वारा उन्होंने अज्ञानान्धकार में पड़े हुए ग्रामीणों में पहले-पहल शिक्षा का आलोक फैलाया था। पाण्डेयजी की माता श्रीमती देवहुती देवी अपने शील और सद्गुण के लिये अपने समाज में आदर्श समझी जाती हैं। इनके पितामह का नाम पं० शालिग्राम पाण्डेय और पितामही का नाम कुसुमदेवी था। पं० शालिग्राम परम सत्यनिष्ठ, धार्मिक एवं कर्त्तव्यपरायण थे और अपने अञ्चल में एक प्रसिद्ध "साधु-ब्राह्मण-अतिथि-सेवक" गिने जाते थे। सं० १९८२ में पांडेयजी के पिता-मह और पितामही दोनों का स्वर्गवास हो गया। माता अभी जीवित हैं।

पाण्डेयजी ने अपने पिताजी के द्वारा स्थापित स्थानीय पाठशाला में अक्षरारम्भ किया। वहाँ हिन्दी की शिक्षा समाप्त कर ये अंग्रेज़ी पढ़ने के लिये सम्बलपुर के गवर्नमेंट हाई स्कूल में भरती हुए। यहाँ से इन्होंने सन् १९०५ में कलकत्ता युनिवर्सिटी की प्रवेशिका परीक्षा द्वितीय श्रेणी में पास की। इसके बाद ये उच्च शिक्षा-प्राप्ति के लिए सेन्ट्रल हिन्दू कालेज बनारस में भरती हुये। पर कई कारणों से अल्प समय में ही इनको घर लौट आना पड़ा। घर पर इन्होंने उड़िया और बँगला भाषाएँ सीखीं, तथा कुछ संस्कृत का भी अभ्यास किया।

इन्होंने अपने मामा पूज्य पं० अनन्तराम (अनन्त कवि) तथा अपने अग्रज पं० पुरुषोत्तमप्रसादजी की सहायता एवं अनुरोध से सन् १९०४ से हिन्दी लिखना शुरू किया और तब से आजतक गद्य और पद्य की छोटी बड़ी कोई ३०।३५ पुस्तकें लिखीं। जिनमें "दो मित्र" "बाल-विनोद", "नीति-कविता", "बालिका-विनोद", "माधव-मञ्जरी" "मेवाड़-गाथा" "चरित-माला" "रघुवंश-सार" "पद्य-पुष्पाञ्जलि" "आनन्द की टोकनी" "कविता-कुसुम-माला" आदि मुख्य हैं।

उड़िया में कविता करने की इनमें विलक्षण योग्यता है। इस भाषा में इन्होंने 'कविता-कुसुम', 'महानदी', 'रोगी-रोदन' आदि कई कविता-पुस्तकें भी लिखी हैं। ये उत्कल-साहित्य-संसार में सुपरिचित हैं। बामण्डा राज्य (उड़ीसा) के साहित्य-मर्मज्ञ राजा साहब राजकवि राजा सच्चिदानन्द ने इनको 'काव्य-विनोद' की उपाधि से भूषित किया था। इनकी उड़िया "कविता-कुसुम" की समालोचना में एक सुप्रसिद्ध उत्कल-साहित्य-विशारद पं० नीलमणि शर्मा "विद्यारत्न" ने लिखा था कि यदि कवि की जातीय उपाधि "पाण्डेय" के स्थान पर "शर्म्मा" रख दी जाय, तो कोई भी पाठक यह नहीं जान सकेगा कि ये कविताएँ उत्कल-भिन्न अन्य भाषाभाषी की रचना हैं। इनके इस उड़िया "कविता-कुसुम" तथा "कविता-कुसुम-माला" की प्रशंसा सर ग्रियर्सन साहब जैसे विश्व-

विख्यात विद्वान् तक ने की है।

अँग्रेज़ी में भी इन्होंने Well Known men, Letters to my Brothers, The way to be Happy and Gay, Folk Tales of Chhattis-garh, तथा Radha Nath, the National Poet of Orrissa आदि कई पुस्तकें लिखी हैं।

सन् १९१४ के नवम्बर में इनके ज्येष्ठ पुत्र माधवप्रसाद का शरीरान्त हो गया। इस घटना से पाण्डेयजी का दिल टूट गया। बालक बड़ा होनहार था। उसके वियोग पर "हा! वत्स माधवप्रसाद" नामक एक शोक-कविता लिखी गई थी, जो अभी छपी नहीं।

पाण्डेयजी की पुस्तकों का अच्छा प्रचार है। कइयों के तो दो-दो तीन-तीन संस्करण हो चुके हैं। मध्यप्रदेश, युक्तप्रान्त तथा पञ्जाब की टेक्स्टबुक कमेटियों ने इनकी कई पुस्तकों को Prize and Library Books में स्वीकृत किया है। इनकी कविताएँ गुरुकुल काँगड़ी की तथा मध्यप्रदेश और पञ्जाब प्रान्त की हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों में संगृहीत की गई हैं।

पाण्डेयजी ने ८-१० वर्षों के परिश्रम से अपने प्रान्त के संस्कृत शिलालेखों और ताम्रशासनों का एक संग्रह "कोसल-प्रशस्ति-रत्नावली" के नाम से प्रस्तुत किया है। यह संग्रह तीन भागों में क्रमशः प्रकाशित होगा। संग्रह में महाकोसल के सोमवंशीय, हैहयवंशीय और नागवंशीय नरपतियों के शिलालेखों की प्रधानता है।

महाराज पृथ्वीदेव, रत्नदेव, प्रतापमल्लदेव (हैहय), चोड़गङ्गदेव तथा यौधेयगण के ताम्र और स्वर्ण-मुद्राओं का संग्रह इन्होंने बड़े परिश्रम से किया है। ये मुद्राएँ बालपुर ही में समय समय पर मिली हैं। कई चतुष्कोण मुद्राएँ बौद्धकालीन हैं।

सन् १९२१ में पाण्डेयजी मध्यप्रान्तीय चतुर्थ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति चुने गए थे। सम्मेलन का यह अधिवेशन जबलपुर में हुआ था। इनका भाषण ज्ञातव्य विषयों से पूर्ण था।

पाण्डेयजी ने अपने जन्म-प्रान्त छत्तीसगढ़ के प्राचीन साहित्य और प्राचीन गौरव-गाथा की खोज करने में बड़ा परिश्रम किया है। इसके पहले यह बहुत कम लोगों को मालूम था कि छत्तीसगढ़ में भी हिन्दी के अनेक बड़े बड़े कवि हो गये हैं।

इनके यत्न और उत्साहदान से अनेक नवयुवक हिन्दी के परम प्रेमी और सुलेखक बन गए हैं।

ये अपने ग्राम बालपुर में ही निवास करते हैं। चार पाँच गावों की ज़मींदारी है। ये ६ भाई हैं। बड़े भाई पं० पुरुषोत्तमप्रसाद पाण्डेय बिलासपुर के डिस्ट्रिक्ट कौंसिल के मेम्बर हैं। आप दरबारी भी हैं। तथा छोटे भाई मुकुटधर हिन्दी के एक उद्दीयमान कवि और लेखक हैं। इनके अन्यान्य अनुज भी साहित्यानुरागी हैं।

अनेक संस्थाओं ने पाण्डेयजी को उनकी निःस्वार्थ हिन्दी-सेवा तथा प्रबन्ध-रचना-पटुता के लिए रौप्य तथा स्वर्ण-पदक प्रदान किये हैं।

मध्यप्रदेश की सरकार ने सर ग्रियर्सन साहब द्वारा अनुवादित "छत्तीसगढ़ी व्याकरण" के संशोधन और परिवर्द्धन का काम पाण्डेयजी को सौंपा था। अब यह ग्रन्थ तैयार हो गया है, और गवर्नमेंट प्रेस नागपुर के पते से २) में मिलता है।

पाण्डेयजी की रचना उत्साहवर्द्धिनी, सरल और सरस होती है। हम यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं :—

(१)

मृगी-दुःख-मोचन

(१)

बन एक बड़ा ही मनोहर था, रमणीयता का शुचि आकर सा।
सुख शान्ति के साज से पूरा सजा, वह सोहता था कुसुमाकर सा॥

शुभ सात्विक भाव की लीलास्थली, कुछ प्राप्त उसे था अहो! वर सा।
रहती थी वहाँ मृग-दम्पति एक, विचार के कानन का घर सा॥

(२)

बन था वह पास तपोबनों के, करते तपसीगण वास जहाँ।
जिनके सहवास से होता समत्व के, साथ ममत्व विकास जहाँ।
जहाँ क्रोध विरोध का नाम न था, रहा बोध का वृत्ति-विलास जहाँ।
रहा क्षेम का शान्ति-समास जहाँ, रहा प्रेम का पूर्ण प्रकाश जहाँ॥

(३)

अति पूत परस्पर प्रेम रहा, बन के सब जन्तुओं के मन में।
वहाँ हिंसक हिंस्र का भाव न था, न अभाव था धर्म का जीवन में॥
विपिनौषधि मिष्ट वनस्पति की, रुचि थी सब को शुचि भोजन में।
समझो न स्वभाव-विरुद्ध इसे, क्या प्रभाव न है तप-साधन में॥

(४)

बन में शुक मोर कपोत कहीं, तरुओं पर प्रेम से डोलते थे।
निज लाड़लियों को रिझाते हुए, कभी नाचते थे कभी बोलते थे॥
पिक चातक मैंना मनोहर बोल से, शर्करा कर्ण में घोलते थे।
फिरते हुए साथ में बच्चे अहा! उनके बहुभाँति कलोलते थे॥

(५)

करि केहरि मुग्ध हुये मन में, बन में कहीं प्रेम से घूमते थे।
फल फूल फले खिले थे सब ओर, झुके तरु भूमि को चूमते थे॥
झरने झरते करते रव थे, कहीं खेत पके हुए झूमते थे।
वन शोभा मृगी-मृग वे लखते; चखते तृण यों सुख लूटते थे॥

(६)

कहीं गोचर भूमि में साँड़ सुडौल, भरे अभिमान सुहा रहे थे।
कहीं ढोरों को साथ में लेके अहीर, मनोहर बेणु बजा रहे थे।

कहीं वेणु के नाद से मुग्ध हुए, अहि बाहर खोहों से आ रहे थे।
ऋषियों के कुमार कहीं फिरते हुए, 'साम' के गायन गा रहे थे॥

(७)

चढ़ जाते पहाड़ों में जाके कभी, कभी झाड़ोंके नीचे फिरैं विचरैं।
कभी कोमल पत्तियाँ खाया करें, कभी मिष्ट हरी हरी घास चरैं।
सरिता-जल में प्रतिबिम्ब लखें, निज शुद्ध कहीं जलपान करैं।
कहीं मुग्ध हो निर्झर झर्झर से, तरु-कुंज में जा तप-ताप हरैं॥

(८)

रहती जहाँ शाल रसाल तमाल के, पादपों की अति छाया घनी।
चर के तृण आते थके वहाँ बैठते, थे मृग औ उसकी घरनी॥
पगुराते हुए दृग मूँदे हुये, वे मिटाते थकावट थे अपनी।
खुर से कभी कान खुजाते कहीं, सिर सींघ पै धारते थे टहनी॥

(९)

इस भाँति वे काल विताते रहे, सुख पाते रहे न उन्हें भय था।
कभी जाते चले मुनि-आश्रमों में, मिलता उन्हें प्रेम से आश्रय था॥
ऋषि-कन्यागणों के सुकोमल पाणि के, स्पर्श का हर्ष सुखालय था।
उनका शुभ सात्विक जीवन मित्र! पवित्र था और सुधामय था॥

(१०)

कुछ काल अनन्तर ईश कृपा-वश, प्राप्त हुई उन्हें सन्तति दो।
गही दम्पति-प्रेम-प्रशस्त की धार ने, एक को छोड़ नई गति दो॥
अब दो विधि के अनुराग जगे, पगे वे सुख में सुकृती अति हो।
इस जीवन का फल मानो मिला, खिला प्रेम-प्रसून सुसङ्गति हो॥

(११)

दिन एक लिये युग शावकों को, चरने को अकेली मृगी गई थी।
वह चारु बसन्त का काल रहा, वन शोभा निराली विभामई थी

शुचि शैशव चंचलता वशतः, मृगछौनों की लीला नई नई थी।
भरते बहु भाँति की चौकड़ियाँ, उनकी द्रुत दौड़ हुई कई थी॥

(१२)

वह तीनों जने निज नित्य के स्थान से, दूर अनेक चले गये थे।
बन था वह नूतन ही उनको, सब दृश्य वहाँ के नये नये थे॥
तटनी-तटकी छबि न्यारी ही थी, लता-कुंज के ठाट भले ठये थे।
बहती थी सुगन्धित वायु अहा! तृण कोमल खूब वहाँ छये थे॥

(१३)

चरने लगे वे सुख साथ वहाँ, भय की न उन्हें कुछ भावना थी।
यहाँ होगा बहेलिया पास कहीं, इसकी न उन्हें कभी कल्पना थी॥
पर दैव-विधान विचित्र बड़ा, उसकी कुछ और ही योजना थी।
पहुँचा वहाँ व्याध कराल महा, जिसको कि अहेर की चिंतना थी॥

(१४)

लख बच्चों के साथ मृगी को वहाँ, झट घेर उन्हें चहुँओर लिया।
उनके बिना जाने बिछा दिये जाल यों, पार्श्व का मारग रोक दिया॥
लगा आगढी पीछे हुआ फिर आगे, लिये धनुबाण कठोर हिया।
उस व्याध ने छोड़ दिये फिर श्वान, धरो धरो का रव घोर किया॥

(१५)

सहसा इस घोर विपत्ति में हो, कर्तव्य-विमूढ़ मृगी अकुलानी।
नव मास के गर्भ के भार से थी, वह योंही स्वभाव ही से अलसानी॥
फिर साथ में थे मृदुशावक दो, सुकुमारता की जिनकी न थी सानी।
चहुँओर को देखती बोली वहाँ, वह कातर हो यह आरत बानी॥

(१६)

दिशा उत्तर दक्षिण में लगे जाल, फँसे उस ओर भगे जो कभी।
यह दावा कराल है पूर्व की ओर, गये उस ओर हों भस्म अभी॥

करता हुआ शोर शिकारी खड़ा, पथ पश्चिम ओर के रोक सभी।
हम वन्दी हुये चहुँओर से हा! मिटता क्या कपाल का लेखन भी॥

(१७)

तृण कोमल पत्तियाँ शाक बनस्पतियाँ बन में फिरते चरते।
पर-पीड़न हिंसा तथा अपकार, कदापि किसी की नहीं करते॥
हम भीरु स्वभाव ही से हैं हरे! न कठोरता, भीषणता धरते।
छल-छिद्र-विहीन हैं भोले निरे, फिर भी हैं यहाँ हम यों मरते॥

(१८)

रहती मैं अकेली तो क्या भय था, मुझे सोच न था तनु का अपने।
पर साथ में लाड़ले जीवन-मूर, ये छौने दुलारे हैं दोनों जने॥
फिर गर्भ में वालक है सुकुमार, इसी से मुझे दुख होते घने।
हम चारों का अन्त यों होगा हरे! यह जाना न था मन में हमने॥

(१९)

अब क्या करूँ दीन के बन्धु हरे! किसका मुझे बाकी भरोसा रहा।
पथ है चहुँओर से मेरा घिरा, गिरा चाहता काल का वज्र महा॥
यह पावक वेग से उग्र हुआ, इसी ओर बढ़ा चला आता रहा।
जिसकी खर ज्वाल से नन्हें अहो, इन छौनों का है तनु जाता दहा॥

(२०)

अरि श्वान ये तीर से आते चले, इसी ओर को हैं अब खैर नहीं।
बढ़ता हुआ व्याध भी आ रहा है, बस अन्त है तीर जो छोड़ा कहीं॥
करते हम यों न विलाप प्रभो! मृग प्यारा हमारा जो होता यहीं।
कहते हुए यों रुक कंठ गया, चुप हो मृगी हो गई स्तब्ध वहीं॥

(२१)

करुणा वरुणालय श्रीहरि की, इतने में हुई कुछ ऐसी दया।
घन-घोष के साथ गिरी बिजली, जिससे कि शिकारी अचेत भया॥

सब श्वान भगे वन के गजों से, वह जाल समूह भी तोड़ा गया।
बरसा जल मूसलधार बुझी, बन दावा मिला उन्हें जन्म नया॥

(२२)

जिनपैं हरि तुष्ट हैं तो अरि दुष्ट, करैं क्या? भ्रमैं गिरि में नग में।
रिपु की असि शूल कराल मृणाल सी, कोमल हो उनके पग में॥
बिछते मृदु फूल अहो! पल में, दुख कण्टक छाये हुए मग में।
जब रक्षक राम खड़े अपने, तब भक्षक कौन यहाँ जग में॥

(२३)

यहाँ तीनों हुये अति विस्मित से, लखि श्रीहरि की यह लीला अहा!
अति मूक हुये से कृतज्ञता से, घर जा रहे थे गहे मोद महा॥
वहाँ देख विलम्ब को व्यग्र हुआ, मृग ढूँढ़ने को इन्हें आता रहा।
सुख सीमा नहीं थी मिले जब चारों, मृगी के सुनेत्र से आँसू बहा॥

(२४)

निज आँसू भरे नयनों से बताकर, वृत्त अहो निज यन्त्रणा का।
मृगी ने मृग से सब हाल कहा, उस व्याध की गुप्त कुमन्त्रणा का॥
फिर वृत्त कहा जगदीश दयानिधि, के पदों में निज प्रार्थना का।
उनकी दया का उनकी कृपा का, उनकी दुख-भंजन-साधना का॥

(२५)

मधुसूदन माधव की दया से, हम रोग की ज्वाला मिटाते रहें।
भवबन्धन में हम बद्ध न हों, करि कर्म से धर्म कराते रहें॥
दुख श्वान से आकुल प्राण न हों, हम स्वास्थ्य सुधा नित पाते रहें।
कलिकाल शिकारी के लक्ष्य न हों, यश श्रीहरि का नित गाते रहें॥

(२)

आत्मत्याग

वीरभूमि मेवाड़ आर्य-गौरव-लीलास्थल।
अतुल जहाँ के शौर्य, जाति-अभिमान, वीर्य, बल॥

है सतीत्व सद्धर्म का, जो पवित्र आगार।
गाता जिसका सुयश है, नित सारा संसार॥
अमित आनन्द में ॥१॥

शुचि स्वदेश वात्सल्य, सत्य-प्रियता, सहिष्णुता।
आत्मत्याग, श्रमशक्ति, समर-दृढ़ता, रण-पटुता॥
विमल धीरता, वीरता, स्वाधीनता, अखण्ड।
करती है जिस भूमि की, उज्वल भारत खण्ड॥
अखिल भूलोक में ॥२॥

हैं आदर्श अनूप जहाँ की सुयश कहानी।
पाती जिससे सहज अमरता कवि की वाणी॥
शुभ्र कीर्ति मेवाड़ की, कर सगर्व कुछ गान।
आज लेखनी! अमरता, कर ले तू भी पान॥
जन्म सार्थक बना ॥३॥

एक समय सानन्द राज्य का शासन करते।
निर्भय रख गो-विप्र प्रजागण के मन हरते॥
वीर-भूमि मेवाड़ में, सज्जन, सत्य-प्रतिज्ञ।
राजसिंह राणा प्रवर, थे भूपति वर विज्ञ॥
शान्ति सुख से महा ॥४॥

भीमसिंह जयसिंह नाम के बली धुरन्धर।
राजसिंह के पुत्र गुणी थे दो अति सुन्दर॥
यमल भ्रात थे वे उभय, पितृभक्त सुखसार।
भीमसिंह पर ज्येष्ठ थे, जन्म-काल-अनुसार॥
अतः कुलपूज्य थे ॥५॥

धर्मनीति अनुसार राज्य-पद के अधिकारी।
भीमसिंह थे स्वयं पिता के आज्ञाकारी॥

ज्येष्ठ पुत्र ही को सदा, निज पैतृक व्यवहार।
राजकाज इन सकल में, मिलता है अधिकार॥
न्याय की दृष्टि से॥६॥

भीमसिंह से किन्तु, किसी कारण-वश नृपवर।
रहते थे अति खिन्न चित्त में स्वीय निरन्तर॥
पाप मूल कुविचारमय, दुष्ट द्वेप की दृष्टि।
करती कब किस ठौर में, है न भिन्नता वृष्टि॥
कहो हे पाठको! ॥ ७ ॥

इसी भाव से भूप-हृदय थी इच्छा भारी।
लघु-सुत को दे राज्य बनाना उसे सुखारी॥
न्यायी भी अवसर पड़े, न्यायान्याय बिसार।
फँस जाते अन्याय में, पक्षपात उर धार॥
अन्ध बन मोह से॥ ८ ॥

नृप ने अपने हृदय बीच यह नहीं बिचारा।
एक दिवस यह घोर कलह का होगा द्वारा॥
भाई भाई से कहीं, हितू न अन्य प्रधान।
प्रीति गई तब भ्रात सम, शत्रु न कोई आन॥
सदा की रीति यह॥ ९ ॥

रानी कमलकुमारी ने यह बात सुनी जब।
ऊँच नीच बहु भाँति सुझाया राणा को तब॥
देख महा अन्याय भी, कहें न कुछ जो लोग।
क्या न दुष्ट प्रत्यक्ष वे, देते उसमें योग॥
धर्म के न्याय से॥ १० ॥

अस्तु; नृपति ने पक्षपात की बात बिसारी।
करने लगे तथैव सोच निज कृति पर भारी॥

सहसा करते कार्य जो, बनकर के अज्ञान।
है केवल उनका सदा, पश्चात्ताप निदान॥
सत्य यह मानिये॥ ११॥

अन्य दिवस भय, लाज, दुःख से अमित सताया।
भीमसिंह को सम्मुख राणा ने बुलवाया॥
चला भृत्य प्रमुदित हिये, नृप आज्ञा अनुसार।
उलझा विविध विचार में, लाने राजकुमार॥
तीर के वेग से॥ १२॥

भीमसिंह अवलोक दूत को स्मित-आनन में।
करने लगे विचार अनेकों अपने मन में॥
"हरे हरे कैसी हुई, नई बात यह आज।
पड़ा भूप का कौन सा, ऐसा मुझसे काज॥
बुलाया जो मुझे॥१३॥

दे जयसिंह को राज्य-भार सब क्या राणा ने।
मुझे बुलाया आज अनुज का दास बनाने॥
नहीं नहीं मुझको कभी, है न सह्य अपमान।
इष्ट नहीं है दासता, भले जाय यह प्राण॥
सहित शुचि मान के॥ १४॥

पराधीन हैं, उन्हें जन्म भर दुख है नाना।
प्राप्त कहाँ स्वातन्त्र्य-सौख्य उनको मनमाना॥
जब तक है मम हृदय में, स्वतन्त्रता की भक्ति।
जब तक है युग हस्त में, खड्गग्रहण की शक्ति॥
न हूँगा दास मैं॥ १५॥

मर जाऊँ या विजय-पताका अचल उड़ाऊँ।
है धिक् जो रण बीच शत्रु को पीठ दिखाऊँ॥

एक बार यमराज से, भी यथार्थ वर वीर।
लड़ने से रण में कभी, होते नहीं अधीर॥
बात फिर कौन यह॥ १६॥

इसी भाँति बहुकाल पड़े अति शङ्कालय में।
भभक उठी क्रोधाग्नि विषम युवराज-हृदय में॥
नयन युगल विकराल मुख, वाल-भानु सम लाल।
विकट रूप धारे प्रकट, यथा निकलती ज्वाल॥
अङ्ग प्रत्यङ्ग से॥ १७॥

कहा भृत्य से वचन उन्होंने फिर भय खो के।
हृदय-क्षेत्र में विमल बीज वीरोचित बो के॥
जाऊँगा न कदापि मैं, अब राणा के पास।
व्यर्थ कराने के लिये, अपना ही उपहास॥
खबर यह जा सुना"॥ १८॥

हुई शान्त क्रोधाग्नि अन्त में जब कुछ क्षण में।
भीमसिंह ने तनिक विचारा अपने मन में॥
जाने में है हानि क्या, ग्लानि, तथा भय लाज।
चल देखूँ तो क्या मुझे, कहते हैं नृप-राज॥
भला वह भी सुनूँ॥ १९॥

यही सोचकर भीमसिंह मन में रिस लाये।
राजसिंह नृपराज निकट तत्क्षण ही आये॥
किन्तु हुए विस्मित महा, देख दशा कुछ अन्य।
बैठे हैं राणा प्रवर, चिन्तित चित्त अनन्य॥
शीश नीचा किये॥ २०॥

दशा देख यह भीमसिंह ने अचरज माना।
तथा गूढ़ वृत्तान्त भूप के मन का जाना॥

अस्तु, हो गया अन्त में, बोध उन्हें भरपूर।
शान्ति हुई सब भ्रान्ति की, क्रोध ज्वाल हो दूर॥
हृदय आगार से॥ २१॥

जब राणा ने भीमसिंह को देखा सम्मुख।
कहा "वत्स प्रिय भीमसिंह"! कर नीचे को मुख॥
सुनकर यह करुणा भरी, भूपति वंर की बात।
भीमसिंह अति चकित हो, बोले कम्पित गात॥
"पिता जी! हाँ, कहो"॥ २२॥

मधुर बात कर श्रवण पुत्र की अचरज सानी।
कही नृपति ने पुनः सँभल कर के वर वाणी॥
"प्यारे सुत! धिक् है मुझे, मैंने तुमसे हाय।
मोह-जड़ित चित भ्रमित हो, किया बड़ा अन्याय॥
स्वीय अविचार से॥ २३॥

सुनते ही निज पिता-वचन सब संशयमोचन।
हुये अश्रुमय भीमसिंह के दोनों लोचन॥
किया उन्होंने चित्त में, अपने यह अनुमान।
अब राणा के हृदय का, मिटा पूर्व-अज्ञान॥
दया से ईश की॥ २४॥

राणा ने फिर कहा "पुत्र! अब रहो अचिन्तित।
करो न पश्चात्ताप हुई होनी उसके हित॥
भीमसिंह! सच मान लो, राज्यासन अधिकार।
देऊँगा कल मैं तुम्हें, न्याय नीति अनुसार॥
छोड़ सब भिन्नता॥ २५॥

"एक बात पर बड़ी कठिन आ पड़ी यहाँ है।
प्रकट भयङ्कर खड़ी कलह की जड़ी यहाँ है॥

जयसिंह का जिस वस्तु पर, है न लेश अधिकार।
समझ रहा है वह उसे, स्वीय गले का हार॥
हाय! मम भूल से॥ २६॥

यदि निराश हो जाय आज वह एकाएकी।
खड़ा करेगा विघ्न विषम बनकर अविवेकी॥
दोनों दल के समर से, अगणित बिना प्रमाण।
तुरत व्यर्थ ही जाँयगे, कितनों ही के प्राण॥
इसी अज्ञान से॥ २७॥

"शूलप्राय यह बात हृदय में मम गड़ती है॥
नहीं एक भी युक्ति सूझ मुझको पड़ती है॥
एक जने के हित निहत्त, हों यदि लाखों, हाय।
कहो कहो यह है न क्या, वत्स! घोर अन्याय॥
धर्म की रीति से" ॥ २८॥

सुनी बात यह भीमसिंह ने नृप मति जानी।
तथा चित्त में नृपति-न्याय-निष्ठा अनुमानी॥
चरण निकट रख खड्ग निज, आँखों में भर नीर।
पितृ-प्रेम लख मुग्ध हो बोला यों वह वीर॥
अमृत साना हुआ॥ २९॥

"चिरञ्जीव जयसिंह अनुज मेरा अति प्यारा।
सुख दुख में आधार सदा सर्वस सहारा॥
दे सकता उसके लिये, मैं हूँ अपने प्राण।
तुच्छ राजपद दान फिर, है क्या बात महान॥
उचित सम्मान से॥ ३०॥

"यद्यपि कुमति-प्रलिप्त लोभ-वश होकर अन्धा।
उसने मेरे लिये रचा है गोरखधन्धा॥

एक प्राण, दो देह से, थे हम दोनों भ्रात।
आज भिन्नता का हुआ, भीषण वज्राघात॥
कपट के व्योम से॥ ३१॥

दुनिया में हे तात! जिन्दगी है दो दिन की।
हुई भलाई कहाँ लड़ाई से किन किन की॥
करता है जयसिंह क्यों, व्यर्थ कलह का काम।
मातृ-प्रेम से रिक्त है, क्या उसका हृद्धाम॥
धर्म जो तज रहा॥ ३२॥

"भक्ति-युक्त जयसिंह माँग ले कपट बिसारे।
देता हूँ मैं शीश, प्रेम से उसे उतारे॥
पर जो वह अन्याय से, त्यागेगा कुल रीति।
ग्रहण करूँगा मैं अहो! पाण्डव-गण की नीति॥
न्याय की भीति से॥ ३३॥

दिया आपने राज्य हर्षपूर्वक लेता हूँ।
जयसिंह को फिर वही मुदित हो मैं देता हूँ॥
कथन आप यह लीजिये, सत्य सत्य ही मान।
होगा कभी न अन्यथा, मम प्रण विकट महान॥
अचल है सर्वथा॥ ३४॥

त्याग राज्य चिर-ब्रह्मचर्य्य-व्रत में रत हो के।
हरी भीष्म ने व्यथा पिता की शङ्का खो के॥
तज कर निज तारुण्य को, पुरु ने धन्य समर्थ!
लिया जरा को मोद में, पूज्य पिता के अर्थ॥
जान कर्तव्य निज ॥३५॥

"रामचन्द्र ने स्वयं पिता की आज्ञा मानी।
लिया गहन बनवास तुच्छ सुख-सम्पति जानी॥

जो न पिता-आज्ञा करूँ, पालन किसी प्रकार।
तो मुझको धिक्कार है, वार वार शतवार ॥
जन्म मम व्यर्थ है ॥३६॥

"यदि रहने से यहाँ कदाचित् मेरे मन में।
राज्य-लोभ हो जाय कहीं सहसा कु क्षण में ॥
इस कारण यह लीजिये, तज कर मैं घर द्वार।
छोड़े देता हूँ अभी, मातृभूमि मेवार ॥
जन्म भर के लिये" ॥३७॥

इतना कहकर भीमसिंह निज प्रण-पालन-हित।
शान्त-भाव से भक्ति-युक्त हो अति प्रमुदित चित ॥
कर प्रणाम नृपराज को, धारे हिये उमङ्ग।
छोड़ राज्य वह चल पड़े, कुछ अनुचर के सङ्ग ॥
कहीं बाहर अहा! ॥३८॥

बाहर जाते हुए फेर मुँह भीमसिंह ने।
मातृभूमि को निरख नयन भरलाये अपने ॥
कही बात जो उन्होंने, उस अवसर पर मित्र!
श्रवण योग्य वह सर्वथा, है स्मरणीय पवित्र ॥
सुधा सींची हुई! ॥३९॥

"धर्मबद्ध हो जननि! आज तुझको तजता हूँ।
निश्चिन्तित हो दिव्य दीनता मैं भजता हूँ ॥
किन्तु मृत्यु-पर्य्यन्त भी, मा! मेरे ये प्राण।
रक्खेंगे गौरवसहित, मातृभूमि का ध्यान ॥
अमित अभिमान से ॥४०॥

"स्वाधीनता अखण्ड विमल बल विक्रम तेरे।
"जावेंगे अन्यत्र हृदय से कभी न मेरे ॥

"अस्तु, विनय अन्तिम यही, तुझसे अम्ब ! सभक्ति ।
"दे निज प्रति सन्तान को, आत्मत्याग की शक्ति ॥
धैर्य दृढ़ता-सनी !!" ॥४१॥

बीता जब कुछ काल, भीमसिंह के सब साथी ।
आये अपने देश लौट, ले घोड़े हाथी ॥
भीमसिंह पर लौट कर, आये नहिं हा हन्त !
आया तो आया मरण-समाचार ही अन्त ॥
लौट उस वीर का ॥४२॥

धन्य धन्य हे भीमसिंह ! प्रण के अनुरागी ।
सज्जन, सत्य-प्रतिज्ञ, विज्ञ, त्यागी बड़भागी !
धन्य आपका प्रण तथा, आत्म-त्याग आदर्श ।
धन्य धर्म-दृढ़ता तथा, भ्रातृ-प्रेम-उत्कर्ष ॥
धन्य तव वीरता ॥४३॥

भीमसिंह से बन्धु चार छै हों यदि, प्रियवर !
छा जावै सुख-शान्ति देश में तब तो घर घर ॥
देख, नव्य भारत ! जरा, भ्रातृ-प्रेम का चित्र ।
ले कुछ शिक्षा ग्रहण कर, यह सद्गीत पवित्र ॥
गान कर मोद से ॥४४॥

भीमसिंह हैं धन्य ! आपके शुचि स्वदेश को !
धन्य आपके विमल हृदय के बल अशेष को !
धन्य आपके भवन को, धन्य आपकी अम्ब !
जुग जुग जग में रहेगा, यह तव कीर्ति कदम्ब ॥
अमर तव नाम है ॥४५॥

जग में लाखों मनुज जन्म लेते मरते हैं ।
तनु-पोषण के लिये विविध लीला करते हैं ॥

पशु-सम जन्म मनुष्य का, हो जाता है व्यर्थ।
जो रहते हैं अन्ध बन, निज सुख साधन-अर्थ॥
अर्थ के दास हो ॥४६॥

धर्म-धार में धैर्य-सहित नर जो बहते हैं।
चिरजीवी हो वही जगत में नित रहते हैं॥
होते हैं जो रत सतत, बन्धु-कुशलता-हेतु।
अमर वही हैं नर-प्रवर, सौख्य-सेतु कुलकेतु॥
मर्त्य इस लोक में॥ ४७॥

स्थिर हो जग में कौन सदा रहता है भाई।
फिरती कहाँ न कहो मृत्यु की दुखद दुहाई॥
क्षण क्षण भङ्गुरता विषम, दिखा रही है सृष्टि।
देख, करो हे भाइयो! खोल हृदय की दृष्टि॥
ग्रहण उपदेश कुछ॥ ४८॥

दुर्लभ है नर-देह इसे मत वृथा गँवाओ।
पा साधन का धाम विषय में मत लिपटाओ॥
जब कर सकते किसी का, तुम न लेश उपकार।
करते हो क्यों मूढ़ बन, तो पर का अपकार॥
स्वार्थ से लिप्त हो॥ ४९॥

भंगुर है यह देह चार दिन का है जीवन।
करो न कलह-कलङ्क-पङ्क से अङ्ग विलेपन॥
त्यागो विष सम भाइयो! फूट, द्वेष, छल क्रोध।
रहो प्रेम से सुखसहित, तजकर बन्धु-विरोध॥
सदा फूलो फलो!!॥ ५०॥

(३)

रावण ने कर बन्धु विरोध लखो निज सम्पति जान गँवाई।
बालि ने व्यर्थ सुकण्ठ को कष्ट दे खोई स्वजीवन राज बड़ाई॥

भूल से भी न कभी करिये निज भाइयों से इस हेतु लड़ाई।
काम हैं आते विपत्ति के काल में गाँठ का कञ्चन पीठ का भाई॥

(४)

कालकौतुक

सुमन विटप वल्ली काल की क्रूरता से।
झुलस जब रही थीं ग्रीष्म की उग्रता से॥
उस कुसमय में हा! भाग्य-आकाश तेरा।
अयि नव लतिके! था घोर आपत्ति-घेरा॥ १॥
अब-तब बुझता था जीवनालोक तेरा।
यह लख उर होता दुःख से दग्ध मेरा॥
निज सलिल-सुधा से नेत्र ने सींच आहा!
शुचितर तुझ से था प्रेम पूरा निबाहा॥ २॥
जगतपति दया के सिन्धु ने भी दया की।
कुछ अयि लतिके! थी जिन्दगी और बाकी॥
अहह मिट गईं त्यों सर्वथा आपदाएँ।
सकल मम हुईं भी दूर चिन्ता-कथाएँ॥ ३॥
सघन घन घटा आ ब्योम के बीच छाईं।
मुदित चित पपीहों ने पुकारें मचाईं॥
शुचि रस बरसा आ देव ने कर्म्म साधा।
कुछ रह न गई थी ग्रीष्म की भीष्म बाधा॥ ४॥
यह हृदय कलापी शीश ऊँचा उठाके।
मुदित फिर लगा था नाचने गीत गाके॥
प्रियजन यदि बाधामुक्त होवैं किसी के।
द्विगुणित उसके हां क्या नहीं मोद जीके॥ ५॥
पर यह मुद मेरा दैव को हा! न भाया।
दुख फिर इतने ही में नया एक आया॥

रुज भय युत तेरी हो गई दिव्य काया।
अलख अगम होती ईश की गूढ़ माया॥ ६॥
नित हृदय लगा के कीट सारे निवारे।
तव सुख हित मैंने सौख्य सारे बिसारे॥
विकलित चित तेरे पास मैं नित्य आता।
तुझ पर निज सेवा की सुधा था बहाता॥ ७॥
अयि नव लतिके! यों प्राण तेरे बचाये।
श्रमफल निज मैंने सर्वथा सर्व पाये॥
अब कुशल सदा है ईश की भी दया है।
दुख-समय व्यथा का बीत सारा गया है॥ ८॥
शरद ऋतु सलोनी आ गई आज आहा!
प्रकृति सज रही और ही साज आहा!
कृशतनु अब तेरा हो गया पुष्ट कैसा!
मम मन इससे है बल्लरी! तुष्ट कैसा!! ॥९॥
मृदु किशलय शाखा पत्र बल्ली विभा में।
तुझ सदृश न कोई आज है बाटिका में॥
नव कुसुम कली की मंजुता छा रही है।
निकट विमल वेला सौख्य की आ रही है॥१०॥
अयि नव लतिका! ऐ स्नेह-सम्पत्ति मेरी!
अब विकसित होगी मंजरी मंजु तेरी!
यह निरख न मेरे हर्ष का है ठिकाना।
नियति, समय ऐसा तू सभी को दिखाना॥११॥
तव नव कलिका की मुग्ध हो चाहना से।
अनुपम कितने ही नेत्र हैं आज प्यासे॥
सरस छवि सुधा को बल्कि वे खूब पी पी।
अब मम मुद मोती से भरें हीय-सीपी॥१२॥

मधुपगण तुझे ये आज घेरे हुए हैं।
शुभचरित अभी से ख्यात तेरे हुये हैं॥
वितरित करने को वायु आमोद तेरा।
चपल बन रहा है प्रेम-औत्सुक्य प्रेरा॥१३॥

मधु-सुरभि धरा में व्याप्त होगी ललामा।
अनुचर तव होगी आ स्वयं कीर्ति वामा॥
तुझ सम सुकृती है कौन ए स्नेहशीले!
श्रमफल सबको दें ईश ऐसे रसीले॥१४॥

यह कह अब माली हर्ष से फूलता था।
शुचि मृदु मधु पी पी आपको भूलता था॥
उपवन नव आशा कामना का लगाता।
कनक-भवन ऊँचा शून्य में था उठाता॥१५॥

अघटित इतने में वायु का एक झोंका।
जग जटिल खिलाड़ी काल के कौतुकों का॥
यम सम पहुँचा आ, हो गया सर्व स्वाहा।
किस पर विधिने है नेह न्यारा निबाहा॥१६॥

पवन विविध तूने पादपों को जिलाया।
सुरभि-सनित फूलों को अनेकों खिलाया॥
पर शठ! इस डाली को न तूने हिलाया।
इस कुसुम-कली को धूल में आ मिलाया॥१७॥

अनुपम किसने यों खेल तेरा बिगाड़ा?
यह भवन बसा हा! क्यों गया है उजाड़ा?
सुख पर किसने आ शोक शूलास्त्र गाड़ा?
सुद तरु किसने यों मूल से है उखाड़ा?॥१८॥

नव नव अभिलाषा और आशा घनेरी।
बहु विधि सुख इच्छा कामना हाय! तेरी॥

बस, पल भर ही में क्या हुई मिल माली !
उस विभुवर की है सर्व लीला निराली ॥१९॥
सतत सुख पली जो आर्द्र चिन्ता वड़ी है।
जिस पर यह पीड़ा बज्र सी आ पड़ी है ॥
सुहृदय अब उसे तू धैर्य कैसे धरावे।
दिन उस गृहलक्ष्मी से किसी के न आवे ॥२०॥
मलय-पवन झोंका ले रहा मत्तता से।
मधुप फिर रहे हैं देख उन्मत्तता से ॥
तरु तरु विहगों का गान भी हो रहा है।
अहह पर अकेला आज तू हो रहा है ॥२१॥
शुचि सुमन खिले हैं, कोकिला कूकती है।
इस अवसर को क्या सारिका चूकती है ॥
प्रकृति हृदय-हीना उत्सवों में लगी है।
पर तव उर में हा! शोक ज्वाला जगी है ॥२२॥
कमल-कुल-छटा है लोचन-प्राण हारी।
जिन पर करते हैं भृङ्ग गुञ्जार प्यारी ॥
मधु-मय बहतीं है माधव-प्रीति धारा।
कब बन सकते हैं ये तुझे शान्ति-द्वारा ॥२३॥
विधिवत चलता है देख संसार सारा।
स्थकित कब हुई है लोक में कर्म-धारा ॥
दुख रुज भय बाधा विश्व में हैं सदा से।
कब जग रुकता है एक की आपदा से? ॥२४॥
अब मुदित कभी भी प्राण होंगे न तेरे।
दुख-घन तुझको आ काल के तुल्य घेरे ॥
अमित हृदयदाही शोक का घाव होता।
कवि अधिक कहे क्या, है वही आप रोता ॥२५॥

आज्ञाएँ कामनाएँ विपुल हृदय की लालसाएँ ललामा।
धूलों में जा मिली हैं तुझ पर विधि की दृष्टि है वन्धु ! वामा ॥
इच्छाएँ भावनाएँ सकल रह गईं हाय ! तेरी अधूरी।
कांक्षाएँ कल्पनाएँ नव तव उर की हो सकीं हा ! न पूरी ॥२६॥

(५)

कृषक

भोले भाले कृषक देश के अद्भुत बल हैं।
राजमुकुट के रत्न कृषक के श्रम के फल हैं॥
कृषक देश के प्राण कृषक खेती की कल हैं।
राजदण्ड से अधिक मान के भाजन हल हैं॥
हल की पूजा दिव्य देश गौरव-सम्बल है।
हल की पूजा सभ्य जाति का व्रत निर्मल है॥
हल की पूजा देश-शान्ति का नियम अचल है।
हल की पूजा भुक्ति मुक्ति का मार्ग विमल है॥
समर भूमि में स्वार्थ-सिन्धु का शोणित जल है।
वीर नाश लख जहाँ भूमि होती चंचल है॥
क्षेत्र-समर में किन्तु कर्म-धारा निर्मल है।
इस वसुधा की क्षुधा जहाँ मिटती पल पल है॥
तप करते हैं कृषक खेत शुभ हवनस्थल है।
हल श्रुवा आहुती देह के शुचि श्रम-जल है॥

(६)

प्रश्नोत्तर

(श्रीमद्भागवत से)

प्रश्न—विभुकर, कहिये पण्डित किसका नाम है ?
उत्तर—बन्ध मोक्ष का ज्ञान जिसे अभिराम है ॥ १ ॥

प्र०—हे यदुनन्दन ! लोग मूर्ख कहते किसे ?
उ०—अहं भाव ही निज देहादिक में जिसे ॥ २ ॥
प्र०—सुखकर पन्थ दयापूर्वक कहिए अहो !
उ०—वेद-कथित विधि से जीवन निर्वाह हो ॥ ३ ॥
प्र०—उत्पथ अथवा अनुचित पथ किसको कहें ।
उ०—व्यर्थ चित्त-विक्षेप शान्ति को जो दहे ॥ ४ ॥
प्र०—स्वर्ग नाम है किसका हे यादव ! हरे !
उ०—उदय सत्व गुण का जब तम-नाशन करे ॥ ५ ॥
प्र०—हे मधुसूदन 'नर्क' मुझे बतलाइए ।
उ०—तम-गुण में जीवों को रत जब पाइए ॥ ६ ॥

(७)

ताजमहल

पत्नि-प्रेम का प्रभा-पुञ्ज-प्रासाद ।
हे भारत के विस्मयकर आह्लाद !
लखकर तेरा रूप अनूप विशाल ।
हुआ अतीव विचित्र हृदय का हाल ॥
स्थपति-शिल्प-सौन्दर्य-सुरुचि का सद्म ।
प्रेम-पूर्ण पत्नीप्रियता का पद्म ॥
भूतल का प्रस्तर खनि-मणि-भण्डार ,
नारी-कुल के आदर का आगार ॥
विस्मय के रत्नाकर का आदर्श ।
पत्नीव्रती नृपति के हिय का हर्ष ।
'शाहजहाँ' के शासन का उत्कर्ष ।
जय जय जय तत्कालिक भारतवर्ष ॥
ताज-महल ! तू महलों का सिरताज ।
सप्ताश्चर्यों का तू है नृपराज ॥

(८)

ग्राम गौरव

कपट कलह ईर्षा पाप पाखण्ड युक्त।
व्यसन विषय से हो सर्वथा ही विमुक्त॥
सदन शुचि-सुधा के, शान्ति-सारल्य-धाम।
नित चित किसके ये मोहते हैं न ग्राम॥ १॥
विषमय न यहाँ है स्वार्थ का घाव घोर।
श्रुति-कटु न यहाँ है शान्ति का शत्रु शोर॥
वन, गिरि, झरने हैं शान्तिदायी विचित्र।
अति सुखद सदा है ग्राम का वास मित्र॥ २॥
सरल हृदय होते ग्रामवासी किसान।
श्रमरत श्रमजीवी सच्चरित्र-प्रधान॥
सुखयुत रहते वे अल्प में तुष्टि मान।
लघु धन-महिमा में सद्गुणों में महान॥ ३॥

लक्ष्मीधर बाजपेयी
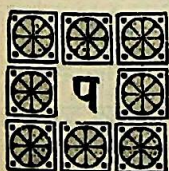
पण्डित लक्ष्मीधर बाजपेयी का जन्म चै० शु० दशमी, सं० १९४४ में कानपुर ज़िले के मैथा (मायस्थ) नामक ग्राम में, जहाँ काशी के प्रसिद्ध स्वामी भास्करानन्दजी की जन्मभूमि भी है, हुआ। बाजपेयीजी की अवस्था जब चार ही पाँच वर्ष की थी, इनके पिता और पितामह ने इनको संस्कृत के नीति और धर्म्म के श्लोक कंठाग्र कराना प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार साहित्य और कविता के प्रेम का अंकुर बचपन से ही इनके हृदय में अंकुरित हो उठा। पाठशाला की शिक्षा

इन्होंने केवल चौदह वर्ष की अवस्था तक प्राप्त की। इनका विवाह बारह वर्ष की ही अवस्था में पिता माता और दादा ने कर दिया। कुछ काल बाद माता-पिता तथा दादा का देहान्त हो जाने के कारण इनकी गार्हस्थ्य-दशा खराब हो गई। अतएव स्कूल की पढ़ाई बन्द हो गई; और छोटे भाई, बहन, तथा अन्य कुटुम्बियों के पालन-पोषण के लिए इनको पंद्रह वर्ष की छोटी अवस्था में ही अध्यापक का कार्य्य स्वीकार करना पड़ा। साहित्य और कविता का प्रेम, जो बचपन से ही अंकुरित हो उठा था, बराबर बढ़ता ही गया। बहुत से अर्वाचीन और प्राचीन कवियों की कविता तथा पुस्तकें और समाचार-पत्र पढ़ते-पढ़ते इनके मन में भी कविता करने और लेख लिखने की धुन समाई। सन् १९०५ ई० में, १७ वर्ष की अवस्था में, पत्र-व्यवहार-द्वारा हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और देशभक्त पं० माधवराव सप्रेजी से सौभाग्यवश इनका परिचय हो गया। सप्रेजी ने उस समय नागपुर से हिन्दी-ग्रंन्थमाला नामक एक मासिक पत्र निकाला था। उसी की सहायाता के लिए उन्होंने इनको बुला लिया। सप्रेजी के समान अनुभवी और विद्वान् साहित्यसेवी के साथ बाजपेयीजी को साहित्यसेवा का अच्छा अवसर मिला। तभी से इनकी कविताएँ और लेख भारतमित्र, वेङ्कटेश्वर समाचार, कान्यकुब्ज, सरस्वती, कमला इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं में निकलने लगे। सरस्वती-सम्पादक पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने भी इनकी साहित्य-सेवा को प्रोत्साहित किया। सन् १९०७ में सप्रेजी ने हिन्दी-केसरी पत्र निकाला। बाजपेयीजी भी उसके सहायक सम्पादकों में थे। सप्रेजी की गिरफ्तारी और उस पत्र से उनका सम्बन्ध छूट जाने के बाद इन्होंने हिन्दी-केसरी के सम्पादन का भार भी ग्रहण किया। हिन्दी-केसरी में भी समय समय पर इनकी राष्ट्रीय कविताएँ निकलती रहीं। लग-भग दो वर्ष चलकर सन् १९०८ में ही, सरकार के प्रकोप के कारण, हिन्दी-केसरी बन्द हो गया; और बाजपेयीजी सप्रेजी के साथ मध्यप्रदेश से रामपुर नगर में रहने लगे। वहाँ दो तीन वर्ष रहकर इन्होंने सप्रेजी के

साथ दासबोध, रामदास-चरित्र, शालोपयोगी भारतवर्ष, इत्यादि ग्रन्थ लिखे। साथ ही मेघदूत का समश्लोकी और समवृत्त हिन्दी-अनुवाद भी किया। इस बीच धार्म्मिक और आध्यात्मिक विषयों से भी आपको विशेष रुचि उत्पन्न हो गई। सन् १९११ में सप्रेजी तथा इनके प्रोत्साहन से चित्रशाला प्रेस के मालिकों ने हिन्दी में 'चित्रमय जगत्' नामक मासिक पत्र निकाला। ये उसके सम्पादक होकर पूना चले गये और लगभग तीन वर्ष तक बड़ी योग्यता से उस पत्र का सम्पादन किया। इसके बाद आर्य्य-प्रतिनिधि-सभा, संयुक्तप्रान्त के आग्रह से ये आगरा चले आये और इन्होंने "आर्य्य-मित्र" का सम्पादन तीन वर्ष तक किया। उसी समय इन्होंने अपनी "तरुण भारत-ग्रन्थावली" नामक सीरीज़ निकाली। सन् १९१६ में सभा के अधिकारियों से मतभेद हो जाने के कारण ये फिर पूना लौट गये; और दो वर्ष फिर इन्होंने 'चित्रमय जगत्' का सम्पादन किया। महात्मा गांधी ने दक्षिणी अफ्रिका से लौटकर हिन्दी-प्रचार का आन्दोलन किया। इस आन्दोलन से पूर्ण सहानुभूति रखते हुए वाजपेयीजी ने सन् १९१७ में, पूना में हिन्दी की कई पाठशालाएँ स्थापित की थीं। इनके ही प्रयत्न तथा प्रेरणा से लोकमान्य तिलक के मराठी 'केसरी' नामक समाचार-पत्र में हिन्दी के लिए एक कालम खुल गया था, जो बहुत दिनों तक चलता रहा। इसके बाद सन् १९१८ से ये प्रयाग में आकर स्वतन्त्र रूप से साहित्य-सेवा करते हुए अपनी तरुण भारत-ग्रन्थावली का संचालन कर रहे हैं। इस ग्रन्थावली के द्वारा ये हिन्दी में इतिहास, जीवन-चरित्र और सदाचार के ग्रन्थों के प्रकाशन का अनुमोदनीय कार्य्य कर रहे हैं। वाजपेयीजी सार्व्वजनिक और देशभक्ति के कार्य्यों में सहयोग देने को सदा तैयार रहते हैं। महात्मा गान्धी के असहयोग-आन्दोलन में भी इन्होंने अच्छा भाग लिया था। सम्मेलन के प्रारम्भिक काल से ही ये उसके सहायकों में रहे हैं; और प्रबन्ध-मन्त्री, प्रचार मंत्री आदि पदों पर कई वर्ष तक कार्य्य किया है; और

अब साहित्य-मन्त्री के पद पर कार्य्य कर रहे हैं। अनेक कार्यों में व्यग्र रहने के कारण इधर कुछ दिनों से इनकी कविता कम प्रकाशित होती है। ग्रन्थलेखन का कार्य बराबर करते रहते हैं। बड़े बड़े मासिक-पत्रों में भी गद्य लेख दिया करते हैं। इन की धर्म्मपत्नी भी बड़ी देशभक्त और विदुषी हैं। वाजपेयीजी को सार्वजनिक सेवा के लिए सदैव उत्साहित रखती हैं। सच पूछिए तो इसी कारण वाजपेयीजी सार्व्वजनिक कार्य्यों में इतना भाग ले सके हैं; और लेते रहते हैं। इनके इस समय दो कन्याएँ और एक पुत्र हैं।

वाजपेयीजी के कुछ ग्रन्थों का ऊपर उल्लेख हो चुका है। उनके अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रन्थ इन्होंने और भी लिखे हैं जिनमें कुछ प्रकाशित हो चुके हैं, और कुछ अप्रकाशित हैं।

१ भारतीय युद्ध, २ स्वामी विवेकानन्द का पत्रव्यवहार, ३ हिन्दू जाति का ह्रास, ४ मेज़िनी, ५ ग्यारीबाल्डी, ६ स्वा० विवेकानन्द के व्याख्यान, ७ छत्रपति शिवाजी ८ कात्यायनी और मैत्रेयी, ९ एब्राहम लिंकन, १० स्वामी नित्यानन्द, ११ सुख और शान्ति, १२ युवकसुधार, १३ सदाचार और नीति, १४ स्वदेशाभिमान, १५ विवेकानन्द नाटक, १६ बज्राघात, १७ चाणक्य और चन्द्रगुप्त, १८ उषःकाल, १९ वीर राजपूत, २० गार्हस्थ्य शास्त्र, २१ जापान का इतिहास, २२ कैसर का जीवन-चरित्र, २३ म० गांधी के निजी पत्र, २४ हिन्दी मेघदूत, २५ दासबोध, २६ धर्म्म-शिक्षा इत्यादि।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं:—

(१)

शरद

नील नीरद नाहिँ दीसत इन्द्र-धनु नहिँ भाय।
मन्द गति सरितान की भइ सुठि सोई दरसाय॥ १॥

व्योम शोभा बढ़ति निशि में नखत-अवली पाय ।
मनु सितारन-जड़ित माया-नील-पट सरसाय ॥ २ ॥
विमल सरवर लसत कहुँ कहुँ जल अगाध लखाय ।
ललित पीत सुशालि की मृदु महँक सौंधि सुहाय ॥ ३ ॥
विविध रँग के खिले सरसिज कुमुदिनी लहराय ।
भ्रमरगण गुञ्जरहिँ मानहुँ प्रकृति-यश को गाय ॥ ४ ॥
मोर मद सों मत्त ह्वै अब शोर नाहिँ मचाय ।
नृत्य-रत कहुँ नाहिँ दीसत उपबननि में जाय ॥ ५ ॥
हंस कलरव करत अब वर विमल सरितन-तीर ।
सारसन की सुभग जोड़ी कहुँ किलोलत नीर ॥ ६ ॥
शुक चक्रवाक लखाहि कहुँ कहुँ खंजननि की भीर ।
स्वेत पंछी उड़त नभ-पथ मनहुँ उजरो चीर ॥ ७ ॥
कंज-रज सों सौरभित सुचि बहत मन्द समीर ।
हरत हिय सन्ताप कों अरु करि निरोग शरीर ॥ ८ ॥
पाय सुखमय समय यह हे देश-सेवा-वीर !
करहु भारत को सुखी सब हरहु वाकी पीर ॥ ९ ॥

(२)

ग्रीष्म का अन्तिम गुलाब

ग्रीष्म-काल के अन्त समय की, यह कलिका है अति प्यारी ।
विकसी हुई अकेली शोभा, पाती इसकी छबि न्यारी ।
कलियाँ और खिली थीं जो सब, थीं इसकी सखियाँ सारी ।
सो सब कुम्हला गईं देखिये, सूनी है उनकी क्यारी ।
"सुख दुख दोनों एक साथ ही, आते हैं बारी बारी ।
इन कलिकाओं से सूचित है, विधि-विपाक यह संसारी ।

(२)

वियोगी चन्द्र

(उषःकाल के समय चन्द्र की ओर देखकर)

सखे चन्द्र ! तुम अधोवदन बैठे क्यों ऐसे ?
उदासीन यह हुआ फूल सा मुखड़ा कैसे ?
कहो मित्र ! किसके वियोग से शोकाकुल हो ?
जिससे इतने तेजोहत हो औ व्याकुल हो ॥
सुता तारकापति के गृह को विदा हुई हैं;
दुखी हुए तुम; क्योंकि अभी वे जुदा हुई हैं !
कन्याजन तो सदा मित्र ! दूजे का धन है;
उदासीन क्यों किया व्यर्थ ही इतना मन है ?
जुदा हुई अथवा तुमसे कौमुदी तुम्हारी ;
जिससे यह है हुई तुम्हारी हालत सारी ?
नहीं नहीं प्रेमातिरेक से हुए भ्रान्त हो ।
दशा विचारो अपनी कुछ तो अभी शान्त हो ।
देखो तो ये सूर्य सामने आये मिलने;
लज्जा से ही मित्र ! चाँदनी लगी छिपकने ।
होती लज्जाशील देवियाँ हैं स्वभाव से,
शोभा इनकी यही, नहीं कुछ हाव-भाव से ।
दुःख दूर कर करो 'मित्र' का स्वागत सुख से ।
करके कुछ सत्कार मधुर बोलो श्रीमुख से ।
दुःख तुम्हारा देख कुमुदिनी सकुची देखो ।
अपनी ही सी दशा मित्र ! तुम सबकी लेखो ।
सुख सँयोग से दुख वियोग से स्वाभाविक है ।
अनुभव करता इसे सदा प्रेमी भाविक है ॥

(४)

सज्जनों का स्वभाव

दिनकर कमलों को स्वच्छ देता सुहास।
शशि कुमुदगणों को रम्य देता विकास।
जलद बरसते हैं भूमि में अम्बु-धारा।
सुजन बिन कहे ही साधते कार्य सारा ॥१॥
विकल अति क्षुधा से देख के पुत्र प्यारा,
जननि-हृदय से है छूटती दुग्धधारा।
लखकर कुदशा त्यों दीन दुःखी जनों की;
सहज प्रकट होती है दया सज्जनों की ॥२॥
लहर-रहित होता है पयोधि प्रशान्त।
सहृदय रहते त्यों धीर गम्भीर शान्त ॥
सुख दुख भय चिन्ता आदि से हो अलिप्त—
स्थिरमति रहते हैं साधु ही आत्म-तृप्त ॥३॥
सब नद नदियों का नीर धारा-प्रवाही—
बहकर मिलता है सिन्धु में सर्वदा ही;
तदपि न तजता है आत्म-मर्याद सिंधु।
सुविपुल सुख में भी गर्व लाते न साधु ॥४॥
यदि सब सरिताएँ ग्रीष्म में शुष्क हों भी,
वह उदधि रहेगा पूर्ण ही मित्र, तो भी।
धन सुख प्रभुता का सर्वथा हो अभाव,
पर सम रहता है सज्जनों का स्वभाव ॥५॥

(५)

षोडशोपचार पूजा।

व्यापक है जो विश्व में, जगदाधार पवित्र।
उसका आवाहन कहाँ, किया जाय हे मित्र! ॥१॥

जड़जङ्गम सब जगत को, जिसका ही आधार।
आसन उसको दें कहाँ, सूझे नहीं विचार ॥२॥
स्वच्छ निरञ्जन निरामय, है जो सभी प्रकार।
कहो उसे क्यों चाहिए, अर्घ्यपाद्य की धार ॥३॥
जो स्वाभाविक शुद्ध है, जो निर्मल भगवान।
स्नान और आचमन का, क्यों चाहिए विधान ?॥४॥
भरा हुआ है उदर में, जिसके यह ब्रह्माण्ड।
फिर क्यों आवश्यक उसे, तुच्छ वस्त्र का खण्ड ?॥५॥
जाना जा सकता नहीं, जिसका कुछ आकार।
पहनावें कैसे उसे, यज्ञसूत्र का हार ?॥६॥
सुन्दरता का हेतु जो, जो जीवन-आधार।
कहो उसे क्यों चाहिए, अलङ्कार उपहार ?॥७॥
जिसे नहीं है वासना, जो सब विधि निर्लेप।
पुष्पवास क्यों चाहिए, क्यों चन्दन का लेप ?॥८॥
जो विश्वम्भर तृप्त है, परिपूरण सब काल।
हैं उसके किस काम के, नैवेद्यों के थाल ?॥९॥
जो स्वामी त्रैलोक्य की, सम्पति का है एक।
उसे दक्षिणा की भला, कहो कौन है टेक ?॥१०॥
नहीं जान पड़ता कहीं, जिसका पारावार।
कैसे करें प्रदक्षिणा, उस अनन्त की यार ?॥११॥
अद्वय जो सर्वेश है, नहीं स्वरूप न नाम।
नहीं समझ पड़ता करें, कैसे उसे प्रणाम ?॥१२॥
जिसका गुण गाते हुए, वेद हुए हैं मौन।
उसका कीर्तन जगत में, कर सकता है कौन ?॥१३॥
पाते हैं रवि, शशि, अनल, जिससे प्रखर प्रकाश।
कहो उसी को कहाँ से, लावें दीप-उजास ?॥१४॥

भीतर बाहर पूर्ण है, जिसका रूप अनूप।
करें विसर्जन हम कहाँ, उसका वही स्वरूप ? ॥१५॥
पूजा के ये देखिये, हैं षोड़श उपचार।
प्यारे पाठक ! कीजिए, इनका खूब विचार ॥१६॥

(६)

अलका-वर्णन (मेघदूत से)

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं स चित्राः।
सङ्गीताय प्रहतमुरजाःस्निग्धगम्भीरघोषम् ॥
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः।
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥
तेरे साथी सुरधनु तड़ित् हैं वहाँ चित्र नारी।
उन्में गान ध्वनि मुरज की गर्जे तेरी सुप्यारी।
वे ऊँचे त्वत्सम, मणिमयी भूमि, तू नीर-धारी,
तेरे ही से सदन अलका के लसें कामचारी !
हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं।
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ॥
चूडापाशे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीषं।
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥
हाथों में श्री कमल अलकों में कली कुन्द की है;
पाण्डु-श्री है बदन पर जो लोध्र रेणू लगी है।
वेणी में हैं कुरवक गुँथे, कर्ण में हैं शिरीष,
स्त्री साजे हैं तहँ तव दिये नीप से माँग-केश।
यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पाः
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्याः ॥

केकोत्कंठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापाः
नित्यज्योत्स्ना प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ॥

फूले वृक्षों पर अलि जहाँ नित्य गुञ्जारते हैं;
हंसश्रेणीयुत सर सदा कंज भी फूलते हैं।
नाचें नित्योत्सुक भवन के चारु प्यारे कलापी
सायंकाल प्रतिदिन जहाँ चन्द्रिका है सुहाती ॥

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै—
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात्।
नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति—
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति ॥

आनन्दाश्रू तजकर जहाँ अन्य अश्रू नहीं है;
नाहीं कामज्वर तज व्यथा साध्य जो भोग से है।
कोई मान प्रिय तज नहीं है वियोग-प्रयोग;
यक्षों को है तरुण वय को छोड़ ना और योग।

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि—
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
सङ्क्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥

सेती हैं जो सुरसरि-मरुत् सीर औ नीरधारी,
लेती हैं जो सुरतरु तले छाँह संतापहारी।
ऐसी कन्या लखकर जिन्हें देव होते अधीर,
खेलें खोजें कनक-रज में मुष्टि से गुप्त हीर ॥

शिवाधार पांडेय

पण्डित शिवाधार पांडेय का जन्म शिवरात्रि सं० १९४४, तदनुसार, ९ फ़रवरी १८८८ को श्रीमान् पं० शिवदत्त जी पांडेय के यहाँ बुलन्दशहर में हुआ। इनका निवासस्थान पुराना फीलखाना बाज़ार कानपुर है।

ये कान्यकुब्ज, पटियारी के पांडेय हैं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अलीगढ़ के ज़िला स्कूल में हुई। सन् १९०१ में इन्होंने फ़रुंख़ाबाद के ज़िला स्कूल से एन्ट्रेंस की परीक्षा पास की। इसके पश्चात् ये कानपुर के मिशन कालेज में भरती हुये। वहीं से १९०५ में इन्होंने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। १९०७ में इन्होंने म्योर कालेज, प्रयाग से एम० ए० पास किया। १९०८ में ये एल-एल० बी० भी हो गये।

एम० ए०, एल-एल० बी० हो जाने पर पांडेयजी ने दो वर्ष से कुछ अधिक कानपुर में और एक वर्ष तक प्रयाग की हाईकोर्ट में वकालत की। १९११ में, कुछ महीने प्रयाग के समाचार पत्रों (लीडर, अभ्युदय आदि) से भी इनका सम्बन्ध रहा। १९१२ में म्योर कालेज में इनको अँगरेज़ी के प्रोफ़ेसर का पद मिल गया। आजकल इलाहाबाद युनिवर्सिटी में रीडर हैं।

पांडेयजी का जीवन बड़ा सादा और स्वभाव अत्यन्त मृदु तथा सरल है। दिखलावे के इन दिनों में, अँगरेज़ी साहित्य के इतने बड़े विद्वान् होते हुए, इनकी नम्रता तथा विनयशीलता बहुत ही सराहनीय है।

पांडेयजी का अँगरेज़ी साहित्य पर तो अच्छा अधिकार है ही, हिन्दी-साहित्य के भी ये अच्छे मर्मज्ञ हैं। अभी तक इनकी लिखी हुई केवल दो पुस्तिकाएँ "समर्पण" और "पदार्पण" प्रकाशित हुई हैं।

अपनी कविता में बहुत ही सीधे सादे शब्दों का प्रयोग करके ये उसे बड़ी ही हृदयहारिणी बना देते हैं। यहाँ इनकी रचना का कुछ चमत्कार हम पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं :—

(१)

बेला चमेली

बेला चमेली, दोनों सहेली,
बगिया में लागीं विलास करन।
दोनो गोरी गोरी, वयस की दोनों थोरी,
हिलमिल लागीं हुलास करन॥
नीबू नरङ्गी, सेब जङ्गी जङ्गी,
आये अलौकिक अनार।
आलूबुखारे, आम प्यारे प्यारे,
लग गये क़तारों दरबार॥
चकई औ चकवा, चटक चतकवा,
चहकैं चहूँ दिसि अपार।
कुहू कुहू बोलैं, कोकिला कलोलैं,
मोर करैं शोर बेशुमार॥
आई अनन्दिनि, छल धरे चन्दिनि,
छाई चहूँ दिसि अपार।
काले काले भँवर, झलैं चारु चँवर,
तितलियाँ डुलावैं बयार॥
मोटी मोटी मूलीं, हिँडोलों में झूलीं,
भाँटे झुलावें वार बार।
आली मतवाली, कलेजे की काली,
गाजरैं गवावैं मलार॥

जामुन दुरङ्गी, साजैं सरङ्गी,
लीचियाँ बजावैं बैठी ताल।
घुय्याँ तरोई, ककड़ियाँ कोई कोई,
घूमैं घनी ले ले थाल॥

चंद की चपाती, चुवैं चुहचुहाती,
कहीं पका पिरथी का पोस।
बादलों की बूदैं, कोई खोलैं मूँदैं,
कोई उड़ावैं ही ओस॥

बेला चमेली, गावैं सहेली,
तान चली फैल आसमान।
फूल सारे जुट गये, लट्टू हुये लुट गये,
छूट गया कोयलों का मान॥

आये गुलाबी, आये महताबी,
आये गुललाला गुलाब।
गेंदा दमक उठी, चम्पा चहक उठी,
फूल उठा फूल आफ़ताब॥

केतकी चटक चली, मालती मटक चली,
सूख गई सेवती की शान।
बचपन से खेली, संगिनी सहेली,
भूल गईं आपन बिरान॥

बेला गुलाब मई, सोहै सुरख़ाब मई,
खिल उठा अखिल अकास।
चंचल चमेली, बकुल गलमेली,
हूल उठा सारा हुलास॥
बदरी करौंदे, सारे सीधे औंधे,

खड़े हुये बाँधे कतार।
फूले फूले फालसा, खिन्नियाँ मदालसा,
थेई थेई थिरकैं अपार॥
केला नासपाती, बन ठन बराती,
नाचैं शराबियों की तौर।
आलू रतालू, ले ले के ख्यालू,
खावैं अलग चुप्प चोर॥
गाजरों की टोली, भाँटों से ठठोली,
कर कर नाचैं सनाथ।
मूलियाँ सहम गईं, झूलने में थम गईं,
जम गईं, सलगमों के साथ॥
इतने में पहली, सुन्दर सुनहली,
चुपके किरन आई पास।
कोई पिछड़ गये, कोई पेड़ों चढ़ गये,
भाग गईं भाजियाँ उदास॥
कलियाँ चटक गईं, चिड़ियाँ सटक गईं,
फैल गया पिरथी प्रकास॥
नैन मेरे खुल गये, स्वप्न सारे घुल गये,
भूला न हिरदय हुलास॥
अजौं जाकी आस।

(२)

माची लुकालुकी या जग जंगम आवैं विहंगम जावें हजारौं।
कोऊ दुराव करैं परि पापन कोऊ दुरैं चढ़ि पुण्य पहारौं॥
कैसे कोऊ बरनै बपुरो विधनाहू दुराय रह्यो मुख चारौं।
मोकों निहारै लुको तू तो लोकन या तन मैं दुरि तोकों निहारौं॥

(३)

हृदय-दुलारी

हृदय-दुलारी ! किसकी हो प्यारी

जिसका हो हृदय अपार।

सकल जगत को जो नित भूलै—प्रणय-तपस्या कर कर फूलै ।

ताही के हिरदय का हार ॥

हृदय दुलारी ! किसकी कुमारी

जिसका हो हृदय उदार ।

अखिल चराचर को जो चाहै—तृण तृण को सुख दुख अवगाहै ।

ताही के लेहौं अवतार ॥

(४)

जमुन-जल

जल तेरो जमुने ! आजौ सोई जल !

साँवरे बरन भरो बाँसुरी सुरन भरो ।

रास महारास के हुलास हिये हहरो ॥

अमर कलोल करै मन मेरे कल कल ।

तप के प्रसाद तू ही ब्रज विहरनहारी ।

विष्णुहू के बाहन से तू ही करै रखवारी ॥

तैंनेहीं उबारे कलि काली से अखिल खल ।

सूर्य की सुता तूही यम की स्वसा तूही ।

कलि में कालिन्दी श्रीकृष्ण की प्रिया तूही ॥

सरग सिधारैं सीधे सबरे तोरेई बल ।

अवनि न पुनि आवैं भुवन भुवन धावैं ।

दया सों तिहारी दोऊ हाथ दोऊ लोक पावैं ॥

सेवा करैं तोरी सदा तजि कै कपट छल ।

सुख के सदन जाऊँ प्रभु के पदन पाऊँ।
सदा मैं तिहारे तीर तेरोई सुयश गाऊँ॥
परम प्रसाद पाऊँ यही मैं तो पल पल।

(५)

उत्तरा-मिलन

वीर हो बली हो सुविदित विजयी हो तुम
अस्त्रन में पंडित अखण्डित अमोघ शर।
भूरि महाभाग भागिनेय भगवान के हो
अगजग में जाहिर पिता के पुनि जैसे सुत।
भरतकुल-भूषण विभूषण वसुधा के सुठि
जननी जिय जीवन सजीवन हो मोरे प्रिय!
वीर दुहिता हूँ वीरवंश की सुता हूँ प्रभु
वीर की बधू हूँ वसुधा व्यापी जिनको यश।
संगर को तुमको सिधारत सन्नाह धरे
कैसे कहे उत्तरा न जाओ नाथ! रण-पथ?
चलन लगैंगी पल भर में तलवारैं चल
भिड़न लगैंगे भरि भरि कै भुज भारी भट।
दोऊ दल उमहत महान मुठभेड़ ह्वै है
सागर सों सागर अभेरैं ज्यों मत्तजल।
भाँति भाँति फिरिहैं अवर्त्त महा बार बार
ज्यों ज्यों क्रुद्ध करिहैं महान युद्ध महारथ।
कारी अँधियारी कई कोसन कलेसवारी
भारी रणमण्डल उमण्डिहैं मतंग घट
मानो घोर सोर भरे हलका हिलोरन के
इक पै इक धाइ हैं दिगन्त लौं रोषमय।

वा छन वा वीरन के कठिन कसौटी छन
कैसे मैं बरनौं तिहारो वीर ! बाहुबल ?
कुलिशप्रहारन सी तुम्हरी शरधारन सों
गिरन लगैंगे अरिगन के अनगिनती नर ।
दारुण रण उठिहैं अपार महा हाहाकार
मानो कहूँ कालिका कलोलै रण छन भर ।
ऐसो कोलाहल कठोर उठिहै कौरवदल
इत उत जब धाइहैं उतंग कर्णिकार ध्वज ।
लखि लखि तत्र सत्वर सशंक सैन्यनाश निज
कसि कसि कै कंचन कठोर करत्राण कर
हँसि हँसि कै हिय में अवश्य हेरि कछु कछु
बधिग्रै को तव दल सुदीरघ संधानि शर
वायुवेग चपल चलावत चल शोण हय
रथपथ रोकैंगे आय आपै प्रभु आचारज ।
गोल गोल सुन्दर अमोल सुण्डा दण्डन सी
कैसे मैं सुमिरौं तिहारी नाथ ! बाहुन बल ?
निश्चय रणचण्डी अखण्डित रण तृप्त ह्वै हैं
अस्त्र शस्त्र अर्चित अचर्चित समर रस ।
निश्चय आचारज प्रसन्न ह्वै असीस दैहैं
"जुग जुग जग जीवो सुभटवर सुशिष्यसुत ।"
भभक उठैंगी सप्त रसना पराक्रम की
लखि लखि रणद्वारन को लोथन सों लथपथ ।
चूर चूर ह्वै है विचिल सबै शत्रुव्यूह
रोषमत्त रोदन करैगो कुरुनाथ शठ ।
मूर्छि मूर्छि गिरिहैं अनेक महावीर मार्ग
घूमि घूमि पाइहैं न कोऊ तव अश्वन-पथ ।

दै दै दुर्वादन प्रचारैगो कौरवेश
चीरि चीरि गल्लन चिघारैगो वस्त्रहर ।
हेरि हेरि मारिहौ अपार अरि घेरि घेरि
चारों दिसि नाचिहैं अपूर्व कर्णिकार ध्वज ।
गर्व भरो गर्जि है शरासन रौहिणेयदत्त
धीर वीर धारा बाँधि धाइ हैं इधर उधर ।
ऐसो युद्ध माचिहौ महान चक्रव्यूह मध्य
आर्यपुत्र अवसि पसारिहौ अमर जस ।
कौन कौन कीरति तिहारी छिति छाइ जैहै
हौं हूँ पिय ! सुनिहौं अघाइहौं न जीवन भर ।

रोम रोम जननी तुम्हैं हू नव जन्म दैहै
गर्जि गर्जि हँसिहैं टँकोरैं गाण्डीवधारी
साधु साधु श्रीमुख उचारैंगे चक्रधर ।
पाण्डव-कुल-मुकुट महामणि हौ महाराज !
एक छत्र भारत अधीश्वर पुनि ह्वै हौ प्रभु ।

तासों यदि संगर तिहारो अद्वितीय रहै
यामें नाथ ! मोकों न नेकों आज अचरज ।
धर्म कर्म अवसि सहाय यही काल ह्वै है
सत्यपक्ष पाइ है असत्य पै अवश्य जय ।

जीति जीति आइहौ सुकीरति पिय लूटि लूटि
भुजबल जग पाइहौ सु दलिमलि सब रिपुदल ।
हौ हू तव चरणन पलोटन प्रिय आस भरी
पेखि पेखि आरती उतारिहौं अनन्त मुख ।
रोके यह रुकत नहीं अब बहु नैनन जल
नाथजू ! न मानियो कछू हू तुम औरौ मन ।

जानौ सुखसरिता हिलोर तट लाँव चली
कोमल अवला को पिय ! बोलो कित्तनो सो जिय ?

वार वार बिनऊँ विनायक ! कर जोर जोर
दाहिनें विराजौ मम पति के तुम भ्राता युत ।
ऐसी सिंहवाहिनी सहाय करै सिगरी विधि
भ्रातन को मेरे तिहारे बल तृप्ति होय
कोसन लौं कौरव तिहारे नाथ ! कोसै शर ।

धन्य रही कैकयी कि मोहि लियो कोशलेश
धन्य अजौं रुक्मिणी जनार्दन जिन कीन्हे वश ।
आयसु यदि पाती दिखलाती देव ! सङ्गर मुख
सङ्गिनी तिहारी सब भाँतिन हूँ जल थल ।
जाओ प्रिय मेरे ! महान घमासान करो
पाण्डवगण रहिहैं सहाय सबै सन्निकट ।

रणमुख सों आइहौ किये जब जयलक्ष्मी वश
देस देस छाइहै दुहाई देव ! दिसि दिसि
लोक लोक माचिहैं कलोल महा कोलाहल ।
एक बेर झटिति कृपा को अब दीजै रस
देर ना करूँगी पिय ! रावरे समरमख ।
अवहीं पति देवता ! अनन्दन की आयु हैगी
जाओ रणदेवता समस्त कल्याण करें
शंखचक्रधारी त्रिपुरारी की रहो शरण ।

जाओ पिय पद पद निहारिहौं गवाच्छन सों
तुम्हरो रणअंगण उतंग कर्णिकार ध्वज ।
छन छन इन श्रवनन तव छाइहैं टंकोरैं पिय
सहसन में सुनिहौ अवश्य तव आवत रथ ।

दौरि दौरि आरती उतारिहौं अनन्दमई
सेइहौं तिहारे पिय ! पूजिहौं पियारे पद ।
जाओ देव ! तुमको न रोकिहौं दयामय अब
लौटत पिय ! लूटिहौं तुम्हीं सों या जय को फल
पत्नी हूँ आपकी महीपति महाव्रत !

(६)

कविता गायत्री

(क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम्पथस्तत्कवयो वदन्ति)

कविता ताकों कहैं हृदय पृथिवी जब हालै ।
गहन गहन बन गुहा गगन ज्यों गेंद उछालै ॥
कविता ताको कहैं हृदय रमनी जब रूठै ।
मधुर मधुर जग कोऊ नवल मुरली धुनि तूठै ॥
कविता सो सत्कल्पना, दे सपनध्या प्रात ।
कविता जिय को जागरन, भुवन भुवन की रात ॥
मिहिरमिलित ससि सिला सिखर हिमवत सी बिहरैं ।
प्रलय-समुद की बृहद हिलोरैं दुर्मद लहरैं ॥
मुख मुकुन्द के लसै ललित रेखा गोरोचन ।
किधौं राम को हृदय किधौं सीता के लोचन ॥
बलि बलि कला अखण्ड की, कियो अमर उजियार ।
जगै दिवानिसि कल्पना, जगत जगावनहार ॥

माखनलाल चतुर्वेदी

पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म सं० १९४५ में चैत्र शुक्ल ११ को हुआ। ये गौड़ ब्राह्मण हैं। इनके पिता का नाम पण्डित नन्दलाल चतुर्वेदी था। इनके पूर्वज रानोली ज़िला जयपुर से आकर बाबई ज़िला होशंगाबाद में बस गये थे। इनका जन्म बाबई में ही हुआ। गाँव के मदरसे में शिक्षा समाप्त करके इन्होंने नार्मल पास किया और पहले-पहल खँडवा में सन् १९०४ में अध्यापक हुये। अंग्रेज़ी इन्होंने स्वतन्त्र रूप से खँडवा में ही सीखी। अंग्रेज़ी में भी इनको व्यावहारिक ज्ञान काफ़ी है।

पण्डित माधवराव सप्रे के साथ मिलकर पहले इन्होंने कर्मवीर नामक साप्ताहिक पत्र निकाला। ये कुछ दिनों तक उसके सम्पादक रहे। सन् १९२१ में असहयोग-आन्दोलन के समय इन्हें ८ महीने के लिये जेल जाना पड़ा। जेल से निकलने पर ये फिर राजनीतिक आन्दोलन में लग गये। मध्यप्रदेश की जनता इनका बड़ा सम्मान करती है। ये बड़े निर्भीक और स्पष्टवादी वक्ता हैं। बीच में कुछ दिनों तक कर्मवीर बन्द हो गया था। उसे इन्होंने फिर खँडवा से निकाला। ये ही उसके सम्पादक भी हैं।

चतुर्वेदीजी बचपन से ही कविता रचने लगे थे। "एक भारतीय आत्मा" के नाम से इनकी कविताएँ पत्रों में प्रकाशित होती हैं। हिन्दी के ये एक राष्ट्रीय कवि हैं। इनकी रचना में शुद्ध देशभक्ति और आत्मत्याग का बड़ा प्रभावशाली वर्णन रहता है। सं० १९७१ में इनकी स्त्री का देहान्त हो गया। इसका इनके मन पर बहुत मार्मिक प्रभाव पड़ा।

ये बड़े मितभाषी, सरस हृदय, सच्चे देशभक्त, प्रेम के मर्मज्ञ और त्यागी व्यक्ति हैं।

इनकी कविता के नमूने आगे दिये जाते हैं :—

(१)

मेरा उपास्य

"लो आया"—उस दिन जब मैंने सन्ध्या-वन्दन बन्द किया,
क्षीण किया सर्वस्व कार्य्य के उज्ज्वल क्रम को मन्द किया।
द्वार बन्द होने ही को थे,—वायु-वेग बलशाली था,
पापी हृदय कहाँ ? रसना में रटने को बनमाली था।
अर्द्ध रात्रि, विद्युत-प्रकाश, घन गर्जन करता घिर आया,
लो जो बीते सहूँ—कहूँ क्या,—कौन कहेगा—"लो आया"॥
"लो आया"—छप्पर टूटा है वातायन दीवारें हैं,
पल पल में विह्वल होता हूँ, कैसी निर्दय मारें हैं।
मैं गिर गया, कहा—क्या तू भी भूल गया ममता माया;
सुनता था दुखिया पाला है—तू कहता है—"लो आया"॥
"लो आया"—हा ! वज्र-वृष्टि है, निर्बल ! सहले किसी प्रकार,
मेरी दीन पुकार, धन्य है उचित तुम्हारी निर्दय ! मार;
आराधना, प्रार्थना, पूजा, प्रेमाञ्जली, विलाप, कलाप;
"तेरा हूँ, तेरे चरणों में हूँ"—पर कहाँ पसीजे आप !
सहता गया—जिगर के टुकड़ों का बल,—पाया, हाँ, पाया;
आशा थी—वह अब कहता है-अब कहता है—"लो आया"॥
"लो आया"—हा हन्त ! त्यागकर दुखिया ने हुँकार किया,
सब सहने जीवित रहने के लिये हृदय तय्यार किया।
साथ दिया प्यारे अंगों ने, लो कुछ शीश उठा पाया,
जलते ही पर शीतल बूँदें ! बिजली ने पथ चमकाया !
पर यह क्या ? झोंकों पर झोंके—उहँ, बस बढ़ कुछ झुँझलाया,
थर्राया अकुलाया—हाँ सब कुछ दिखला लो, "लो आया"॥

हाथ पाँव हिल पड़े, हुआ हाँ सन्ध्यावन्दन बन्द हुआ,
ईंटे पत्थर रचता हूँ—स्वाधीन हुआ ! स्वच्छन्द हुआ।
टूटी, फूटी, कुटी,—पधारो !—नहीं,—यहाँ मेरे आवें,
मेरी, मेरी, मेरी, कह प्यारे चरणों से चमकावें।
दीन, दुखी, दुर्बल, सबलों का विजयीदल कुछ कर पाया;
नभ फट पड़ा—उजेला छाया,—गूँज उठा—लो, "लो आया" ॥

(२)

भारतीय विद्यार्थी

समय जगाता है, हम सब को झटपट जग जाना ही होगा,
देख विश्व-सिद्धान्त कार्य्य में निर्भय लग जाना ही होगा।
दृढ़ करके मस्तिष्क मनस्वी बनकर वीर कहाना होगा,
पूर्ण ज्ञान-सर्वेश-चरण पर, जीवन-पुष्प चढ़ाना होगा।
यह स्वार्थी संसार एक दिन बने हमीं से जब परमार्थी,
तब हम कहीं कहा सकते हैं, सच्चे भारतीय विद्यार्थी ॥१॥
समय एक पल भी न हमें, अब भाई व्यर्थ विताना होगा,
शक्ति बढ़ा गौरव-गिरीश पर चढ़कर शौर्य्य दिखाना होगा।
सम्पति का उपयोग हमें अनुकूल बुद्धि से करना होगा,
बढ़ते हुये मार्ग में हमको नहीं कभी भी डरना होगा।
इस कर्तव्य-भूमि पर, तृण सम, प्रण पर प्राण गमाने होंगे,
वीरों ही के पद-चिन्हों पर, अपने पैर जमाने होंगे ॥२॥
देख देख भारत को उनके है बहती आँसू की धारा,
मानो यह बन गया उन्हीं से सृष्टि-मेखला-सागर खारा।
पर अब अपनी ओर देख मन उनका धीरज धर पाया है,
यह संसार सदा नवयुवकों ही का दम भरता आया है।
'हम पर है सब भार'—बन्धु ! यह बात ध्यान से टले न देखो,
विश्वासी वे आर्य्य स्वर्ग में कर कमलों को मलें न देखो ॥३॥

ब्रह्मचर्य्य-व्रत भीष्मपितामह को आगे रख धार रहे हों,
वीर तेज में अर्जुन बनकर, दुर्जन दल को मार रहे हों।
सांदेपन में हो सुतीक्ष्ण पागल से प्रण को पाल रहे हों,
न्याय-नीति में विदुर सरीखे तीखे वाक्य निकाल रहे हों।
कर्म-क्षेत्र हमको मिल जावे, हों बस इसी बात के प्रार्थी,
ऋषियों की सन्तान वही हैं, अद्भुत भारतीय विद्यार्थी ॥४॥
सीख रहे हों पश्चिम से जो धर्मस्थल में मरने के गुण,
नैतिक छान-बीन की दृढ़ता मर्मस्थल में धरने के गुण।
हृदय, हाथ, मस्तिष्क मिला कर, कर्मस्थल जय करने के गुण,
अपनी कार्य्यशक्ति से दुनियाँ भर के मन वश करने के गुण।
वे ही हैं माता के रक्षक, वे ही हैं सच्चे शिक्षार्थी,
वे ही हैं लक्ष्यों के लक्षक, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥५॥
भारतीय शालाओं के गुण विश्वविदित करनेवाले हों,
भारतीय शिक्षा का सूरज शीघ्र उदित करनेवाले हों।
भारतीय सागर को बढ़कर नित्य मुदित करनेवाले हों।
भारतीय-निन्दक-समूह अविलम्ब क्षुभित करनेवाले हों।
परिवर्तन कर देने वाले देवि भारती के आज्ञार्थी,
निस्सन्देह कहा सकते हैं ऐसे भारतीय विद्यार्थी ॥६॥
आज जगत की राज-पुस्तिका में भारत का नाम नहीं है !
वर्तमान आविष्कारों में, हाय ! हमारा काम नहीं है !
रोता है सब देश, देश में दानों को भी दाम नहीं है !
कहते हैं सब लोग, यहाँ के लोगों में कुछ राम नहीं है ॥
'नाम नहीं है ! काम नहीं है ! दाम नहीं है ! राम नहीं है !
तो बस इन्हें प्राप्त करने तक हमको भी आराम नहीं है ॥७॥
घर घर में जगदीशचन्द्र वसु होना काम हमारा ही है,
बनकर कृषक, गर्व से कृषि को बोना काम हमारा ही है।

शिल्प बढ़ाकर ताजमहल फिर रचकर के दिखलाने होंगे,
व्यापारी बन, देश देश में अपने पोत घुमाने होंगे।
रेल तार आकाश-यान ये हम क्या कभी बना न सकेंगे?
शुद्ध स्वदेशी पीताम्बर क्या माधव को पहिना न सकेंगे ॥८॥
पहिले बाल भरत हो सिंहों के भी दाँत दबाना होगा,
पुनः भरत हो, बन्धु-प्रेम पर अपनी भेंट चढ़ाना होगा।
तभी भरत हो, देह-भान तज, विश्वरूप बन जाना होगा,
फिर भारत के पुत्र भरत कहलाकर गौरव पाना होगा।
जब तक नहीं भरत-कुल-दूषण भूषण हो, होंगे प्रेमार्थी,
तब तक कैसे कहा सकेंगे—'विजयी भारतीय विद्यार्थी' ॥९॥
भारतमाता! अपने इन पुत्रों को पहिले का सा बल दे,
हे भारती! दयाकर क्षण में सब की दुर्बलता तू दल दे।
भारत की सच्ची आत्मायें आगे बढ़ें, उन्हें क्यों भय हो?
भारतवासी मिलकर गावें—'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो।'
यह सुनकर जगतीतल कह दे, 'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो''
प्रतिध्वनि में जगदीश्वर कह दें, भारतवर्ष तुम्हारी जय हो' ॥१०॥
जीवन-रण में वीर! पधारो मार्ग तुम्हारा मंगलमय हो,
गिरि पर चढ़ना, गिरकर बढ़ना, तुम से सब विघ्नों को भय हो।
नेम निभाओ, प्रेम बढ़ाओ, शीश चढ़ा भारत उद्धारो,
देवों से भी कहला लो यह—'विजयी भारतवर्ष पधारो।'
भारत के सौभाग्य-विधाता, भारत माता के आज्ञार्थी,
भारत-विजयं-क्षेत्र में जाओ प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥११॥

(३)

भारत के भावी विद्वान्

आज कई वीरों के रहते हुआ न उन्नत हिन्दुस्तान,
बना सका कोई गुण, विद्या, बल में उसे न गौरव-वान ॥

तो भी धीरज धरो, डरो मत, मेरे आज्ञाकारी प्राण।
देखो, कुछ कर दिखलावेंगे, भारत के भावी विद्वान॥१॥
जिनको बाल समझकर माता दूध पिलाती सुधा-समान।
जिनको पाल हुई है जगतीतल में वह आनन्द-निधान॥
जिनको लाल लाल कह उसने भुला दिया सुख-दुख का ध्यान।
जानों उन्हें राष्ट्र की सम्पत् भारत के भावी विद्वान॥२॥
हैं किस दुख से दुखी? विचारो, उनका हरो शीघ्र सन्ताप।
क्यों दुर्बल हैं? क्यों रोते हैं? क्यों भूले हैं मधुरालाप?
माताओ! समझाओ उनको, देकर तन मन जीवन दान,
देखो! दुखी न होने पावें भारत के भावी विद्वान॥३॥
आर्य्य-कीर्ति के स्तम्भ, सौख्य के सेतु, महत्ता के अवतार,
कठिन समय में, आशा के बस एकमात्र सच्चे आधार॥
यही तुम्हारा कष्ट हरेंगे यही बनेंगे शक्ति-निधान।
पिता! प्राण दे पालो ये हैं भारत के भावी विद्वान॥४॥
आओ इनकी शिक्षा के हित, उथल-पुथल कर दें संसार,
इन्हें बनावें कला-कुशल, नय-निपुण, वीर धीमान उदार।
डरें न प्रण पर मरें करें कर्तव्य बनावें दृढ़ सन्तान,
भारतीय हैं वही, बनावें भारत के भावी विद्वान॥५॥
अब तो पिता निकम्मे होकर शिक्षा का कर सकें न यत्न।
राज्य, देश, कोई न परखता, भरत-वसुमती के ये रत्न॥
क्योंकर वह उन्नत होवेगा, खोवेगा अपना अज्ञान।
कई करोड़ मूर्ख हैं, हा! जिस भारत के भावी विद्वान्॥६॥
"अन्न नहीं है, फ़ीस नहीं है, पुस्तक है न सहायक हाय!
जी में आता है, पढ़ लिख लें, पर इसका है नहीं उपाय।
"कोई हमें पढ़ाओ भाई! हुए हमारे व्याकुल प्राण";
हा! हा! यों रोते फिरते हैं भारत के भावी विद्वान॥७॥

बूट चाहिये, सूट चाहिये कालर हैट और नेक्टाय,
केन चाहिये चेन चाहिये घड़ी सहित फिर डेली चाय।
देखो इस पर लिखा न होवे, कहीं "मेड इन हिन्दुस्तान,"
क्योंकि हमीं तो हैं, इस बूढ़े भारत के भावी विद्वान ॥८॥

"शुभ्र वस्त्र हैं, बुद्धि शस्त्र है, पढ़ते हैं वन में निश्शंक,
बढ़ा रही है बल वैभव को, प्यारी मातृभूमि की अङ्क ॥
ब्रह्मचर्य्य रख सरस्वती पर दान करेंगे तन, मन, प्राण"।
ये हैं, निस्सन्देह हमारे, भारत के भावी विद्वान ॥९॥

किनको होगा जन्मभूमि के कष्टों का पूरा अनुमान ?
भाषा, भाव, भेष, भोजन में, भारतीयता का अभिमान।
कौन हमारा दुःख हरेंगे, हमें करेंगे गौरववान ?
यह सुन सच्चे हृदय कहेंगे, भारत के भावी विद्वान ॥१०॥

शिल्प गया वाणिज्य गया शुभ शिक्षा का है मान नहीं,
कृषि भी डूबी हुयें दरिद्री पर इसका कुछ ज्ञान नहीं !
हाय ! आज हम भोग रहे हैं झिड़की, घृणा और अपमान,
कैसे ये दुख दूर करेंगे भारत के भावी विद्वान ॥११॥

प्रलय-कारिणी युवक-शक्ति की क्या सुन पाये बात नहीं ?
भीष्म-प्रतिज्ञा, लव-कुश-कौशल, पार्थ-पुत्र-बल ज्ञात नहीं ?
भूलो मत, लिख लो निस्संशय, इसे हृदय में पक्की मान।
"भारत का सब दुःख हरेंगे, भारत के भावी विद्वान" ॥१२॥

सूरज ! सावधान हो जाओ, मातृभूमि ! तुम धरलो धीर।
पश्चिम ! तू भी शीघ्र सम्हल ले, नीति बदल बन जा गम्भीर ॥
कर्मक्षेत्र में आते हैं अब, करने को जननी का त्राण।
कई करोड़ दुखों से व्याकुल भारत के भावी विद्वान ॥१३॥

(४)

देश में ऐसे बालक हों

विश्व में सब बहनों के लाल, रहे स्वातन्त्र्य-हिंडोले झूल।
स्वर्ग से वे देखो सानन्द, चढ़ाये जाते उन पर फूल॥
अभागिनि हूँ मैं ही भगवान, उड़ाई जाती मुझ पर धूल।
चढ़ाये जाते मुझ पर वज्र, गड़ाये जाते मुझको शूल॥
दोष-दुख-दुर्जन-घालक और, विश्वरथ के संचालक हों।
दुखी हूँ, दो हे दीनानाथ, देश में ऐसे बालक हों॥१॥
कसक क्यों रहे कर्म में कभी, क्रूरतर होना हो तो होयँ।
ठसक क्यों रहे धर्म में नित्य, साधना सेवा जग में बोयँ॥
देवताओं में हों निष्काम, मानवों के मन के हों श्याम।
दानवों का दल देखे अड़ा, वहाँ हों रण-कर्कश श्रीराम॥
भीरुता भागे झट भय खाय, कार्य्य से काँपे सब संसार।
मोद से कहें सुनो जी विश्व, राष्ट्र की वीणा की झङ्कार॥२॥
शक्ति हो, हो न कभी हे दैव, दुर्बलों के दलने की चाह।
ध्यान हो, कर देगी संहार, सृष्टि का यह दुखियों की आह॥
नीचतम नीति न हो स्वीकार, कपट की रहे न मारामार।
रहें यों बोदे कायर नहीं, सहें जो ठोकर अत्याचार॥
हृदय-मण्डल पर लेता रहे, सदा स्वातन्त्र्य-समुद्र तरङ्ग।
प्राण तक दे देने को नित्य, चित्त में उठती रहे उमङ्ग॥३॥
करें कुछ विजली का सञ्चार, नसों में भूतकाल के चित्र।
न बिगड़े वर्तमान का हाय, कर्ममय सुन्दर दृश्य विचित्र॥
बने क्यों कोई बूढ़ा सिंह, भविष्यत का यों ठीकेदार।
बनावें युवक आप भवितव्य, सँभालें भारत का सब भार॥
समय के सन्देशे के वेद, सुनाई पड़ें, बढ़ावें रोष—
सजावें कोष, हटावें दोष, मिटावें तोष, जगावें जोश॥४॥

महात्मापन का होवे नाश, दमकता हो समानता तत्व।
देश के अङ्ग न मारे जायँ, प्राप्त हो पूरा पूरा स्वत्व॥
करेगा क्या सूखा स्वाध्याय, तपस्या के हों सूखे भाव।
न हो कुछ दाव, न हो दुर्भाव, रहे "सब कुछ" देने का चाव॥
शीश पर वह देखो दुर्दैव, साधकर खड़ा तीक्ष्णतर वाण।
"अरे चल! साधेंगे कर्तव्य, तुझे लेना हो ले ले प्राण" ॥५॥
सुनावें तो विजली के वाक्य, शीश भूपालों के झुक जाँय॥
सृष्टि कट्ट मरने से बच जाय, शस्त्र चाण्डालों के रुक जाँय॥
पाप के पण्डे पावें दण्ड, दम्भ से दुनियाँ भर डर जाय।
भगीरथ मन की विनती मान, स्फूर्ति की गङ्गा कुछ कर जाय॥
प्रेम के पालक हों या न हों, प्रणों के पूरे पालक हों।
भारती ने यों रोकर कहा, "देश में ऐसे बालक हों" ॥६॥

(५)

आराधना

विश्वदेव! यह देख तुम्हारी दुर्गम चालें,
किससे क्या क्या कहैं? कहाँ तक आँसू ढालें?
जी होता है,—तुम्हें सम्हालें देखें भालें;—
'सुनो सुनो'—क्या सुनैं? भुजायें स्वयं उठा लें।
'लो' 'सुनो'—"सफलता आ रही, है किन्तु मृत्यु के साथ है।
बस, उठो, कर्म करने लगो, जीत तुम्हारे हाथ है॥

(६)

परम पुण्य का पुञ्ज टूटने वाला ही है,
स्वत्व-सुधा का भाण्ड फूटने वाला ही है।
सुखद स्वर्ग के द्वार सदा को खुलते ही हैं,
हम तुम विधि की वीर-तुला पर तुलते ही हैं॥

बस, सुनते ही, सन्देश यह, हम लगे साधने साधना।
शिव के समेत करने लगे, श्री शक्ति-चरण आराधना॥

(७)

हृदय

वीर सा गम्भीर सा यह है खड़ा
धीर होकर यह अड़ा मैदान में।
देखता हूँ मैं जिसे तन-दान में
जन-दान में सानन्द जीवन-दान में॥
हट रहा जो दम्भ आदर प्यार से
बढ़ रहा जो आप अपनों के लिये॥
डट रहा है जो प्रहारों के लिये
विश्व की भरपूर मारों के लिये॥
देवताओं को यहाँ पर बलि करो
दानवों का छोड़ दो सब दुःख-भय।
"कौन है" ?—यह है महान मनुष्यता
और है संसार का सच्चा 'हृदय'॥ १॥
क्यों पड़ी परतन्त्रता की बेड़ियाँ ?
दासता की हाय ! हथकड़ियाँ पड़ीं॥
क्यों क्षुद्रता की छाप छाती पर छपी ?
कण्ठ पर जंजीर की लड़ियाँ पड़ीं।
दास्य भावों के हलाहल से हरे !
मर रहा प्यारा हमारा देश क्यों ?
यह पिशाची उच्च शिक्षा सर्पिणी
कर रही वर वीरता निःशेष क्यों ?
वह सुनो ! आकाशवाणी हो रही
"नाश पाता जायगा तब तक विजय"

वीर?—"ना" धार्मिक?—"नहीं" सत्कवि? "नहीं"
देश में पैदा न हो जब तक 'हृदय' ॥ २ ॥
देश में बलवान भी भरपूर हैं
और पुस्तक-कीट भी थोड़े नहीं।
हैं यहाँ धार्मिक ढले टकसाल के
पर किसी ने भी हृदय जोड़े नहीं॥
ठोकरें खाती मनों की शक्तियाँ
राम-मूर्ति बने ख़ुशामद कर रहे।
पूजते हैं—देवता द्रवते नहीं;
दीन, दब्बू बन करोड़ों मर रहे॥
"हे हरे! रक्षा करो"—यह मत कहो
चाहते हो इस दशा पर जो विजय,
तो उठो ढूँढ़ो छुपा होगा कहीं
राष्ट्र का बलि 'देश का ऊँचा हृदय' ॥ ३ ॥
फूल से कोमल, छबीला रत्न से
वज्र से दृढ़ शुचि सुगन्धी यज्ञ से।
अग्नि से जाज्वल्य हिम से शीत भी,
सूर्य्य से देदीप्यमान मनोज्ञ से॥
वायु से पतला पहाड़ों से बड़ा
भूमि से बढ़कर क्षमा की मूर्ति है।
कर्म का औतार रूप शरीर जो
श्वास क्या संसार की वह स्फूर्ति है॥
मन महोदधि है वचन पीयूष हैं
परम निर्दय है बड़ा भारी सदय;
कौन है? है देश का जीवन यही
और है वह, जो कहाता है हृदय ॥ ४ ॥

सृष्टि पर अति कष्ट जब होते रहे
विश्व में फैली भयानक भ्रान्तियाँ।
दंड अत्याचार बढ़ते ही गये
कट गये लाखों, मिटी विश्रान्तियाँ॥
गद्दियाँ टूटीं असुर मारे गये—
किस तरह? होकर करोड़ों क्रान्तियाँ।
तब कहीं हैं पा सकीं मातामही
मृदुल जीवन में मनोहर शान्तियाँ॥
बज उठीं संसार भर की तालियाँ
गालियाँ पलटीं—हुई ध्वनि जयति जय॥
पर हुआ यह कब? जहाँ दीखा अहो!
विश्व का प्यारा कहीं कोई 'हृदय' ॥५॥

जयशङ्करप्रसाद

बाबू जयशङ्करप्रसाद का जन्म माघ शुक्ल १०, सं० १९४६ में काशी में हुआ। इनके पिता का नाम बाबू देवीप्रसादजी सुँघनी साहु था, जो काशी के गण्यमान्य रईसों में थे, दान-वीरता में सुप्रसिद्ध और स्वजाति के मुकुट-स्वरूप थे। जिनकी सहायता से बहुसंख्यक विद्यार्थियों को संस्कृत के पंडित और विद्वान् होने का अवसर मिला।

योग्य पिता के योग्य पुत्र होने के कारण जयशंकरप्रसादजी बाल्यावस्था से ही बड़े होनहार थे। पहले पहल इन्हें घर पर ही संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा दिलाई गई। फिर ये क्वींस कालेजियट स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ने

के लिये भर्ती किये गये। बारह वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने मिडल पास किया। किन्तु इन्हीं दिनों इनके पिता का स्वर्गवास हो गया, इससे इन्हें स्कूल छोड़ना पड़ा। इनके बड़े भाई शंभुरत्नजी ने घर पर ही पंडित, मास्टर, मौलवी रखकर इनको संस्कृत, अंग्रेज़ी और उर्दू फ़ारसी पढ़ाने की व्यवस्था कर दी। इससे अल्पकाल में ही इन्होंने उपर्युक्त तीनों विषयों में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। इनकी सत्रह वर्ष की अवस्था में इनके बड़े भाई का भी देहान्त हो गया। इससे गृहस्थी, ज़मींदारी, दूकान और कारख़ाने का एक बड़ा बोझ इनके कंधे पर आ पड़ा। इन्होंने बड़ी योग्यता से उसे सँभाला। लोकोपकार, दीन-हीन जनों की सहायता, वाणिज्य-व्यवसाय आदि का कार्य जैसा इनके पिताजी के समय से चला आ रहा था, इन्होंने उसे वैसा ही क़ायम रक्खा। स्वजाति में इनको वैसा ही सम्मान मिला जैसा इनके पिताजी और बड़े भाई का था। कार्य का इतना भार ऊपर रखते हुये भी इन्होंने साहित्य सेवा में कोई कमी नहीं आने दी।

कविता की ओर इनकी रुचि बालकपन से ही थी। सात-आठ वर्ष की अवस्था से ही ये चटपटी तुकबंदियाँ करने लगे थे। अब ये केवल प्रसिद्ध कवि ही नहीं, सिद्ध-हस्त कहानी लेखक और प्रसिद्ध नाटककार भी हैं। इन्होंने ही हिन्दी में सर्व प्रथम छायावाद और भिन्नतुकान्त (Blank Verse) का श्रीगणेश किया था। भाव और मौलिकता इनकी लेखनी की विशेषता है।

इनका जीवन कवित्वमय है। ये बड़े ही प्रसन्नचित्त और मिलनसार मनुष्य हैं। बड़े अध्ययनशील हैं। अब तक के इनके प्रकाशित ग्रंथों की सूची यह है :—१—कानन-कुसुम (१११ फुटकर कविताओं का संग्रह), २—प्रेमपथिक (भिन्नतुकान्त काव्य), ३—महाराणा का महत्व (भिन्नतुकान्त काव्य), ४—सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (ऐतिहासिक), ५—छाया (११ गल्पों का गुच्छा), ६—उर्वशी (चम्पू),

७—राज्यश्री (नाटिका), ८—करुणालय (गीतिनाट्क), ९—प्रायश्चित्त (नाटक), १०—कल्याणी-परिणय (रूपक), ११—विशाख (ऐतिहासिक नाटक), १२—झरना (काव्यमाला), १३—अजात शत्रु (बौद्ध कालिक नाटक) १४—जन्मेजय का नाग-यज्ञ (नाटक), १५—आँसू (भावपूर्ण काव्य), १६—प्रतिध्वनि (छोटी कहानियों का संग्रह)। कङ्काल (उपन्यास), नवपल्लव (कहानियाँ), कामना (नाटक), स्कन्दगुप्त (नाटक) ये चार पुस्तकें शीघ्र ही छपनेवाली हैं। इनके सिवा सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में लेख और कविताएँ निकलती ही रहती हैं। हिन्दी के प्रायः सभी सुलेखक, सुकवि और सम्पादक इनकी कविता की मौलिकता, भाषा और भाव की सराहना करते हैं। ये हिन्दी और ब्रजभाषा दोनों में सरस कविता रचने में पटु हैं। यहाँ इनकी रचना के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं:—

(१)

पाइ आँच दुख की उठत जब आह सब धीरज नसाय तब कैसे थिर होइये। पावत न और ठौर तुम्हरी सरन छोड़ रहे मुख मोड़ तुम काके सौंह रोइये॥ छाइ रही आह तिहुँलोकन में मेरे जान, तेरी करुना ते ताहि कैसे करि गोइये। हिलि उठै हिय, जहाँ आसन तुम्हारो, तऊ तुम ना हिलत ऐसे अचल न होइये॥

(२)

विमल इन्दु की विशाल किरनें प्रकाश तेरा बता रही हैं।
अनादि तेरी अनन्त माया जगत को लीला दिखा रही हैं॥
प्रसार तेरी दया का कितना यह देखना हो तो देखे सागर।
तेरी प्रशंसा का राग प्यारे तरङ्ग-मालायें गा रही हैं॥
तुम्हारा स्मित हो जिसे निरखना वो देख सकता है चन्द्रिका को।
तुम्हारे हँसने की धुन में नदियाँ निनाद करती ही जा रही हैं॥

(३)

प्रायः लोग कहा करते हैं रात भयानक होती है।
घोर कर्म भीमा रजनी के आश्रय में सब होते हैं॥
किन्तु नहीं, दुर्जन का मन उससे अँधियारा होता है।
जहाँ सरल के लिये अनेक अनिष्ट विचारे जाते हैं॥
जिसकी संकीर्णता निरखकर स्वयं अँधेरा घबरावे।
उस खल हृदय से कहीं अच्छी होती है भव में रजनी॥
जहाँ दुखी प्रेमी निराश सब मीठी निद्रा में सोते।
आशा स्वप्न कभी भी तो तारा सा झिलमिल करता है॥
चिर विछोहियों को क्रीड़ावश होकर निद्रा बीच कभी।
कुहुक कामिनी मिला दिया करती है, इतना क्या कम है॥

(४)

भूलि भूलि जात पद कमल तिहारो, कहो ऐसी नीच मूढ़ मति कीन्हीं है हमारी क्यों? धाय के धँसत काम क्रोध सिंधु संगम में मन की हमारे ऐसी गति निरधारी क्यों? झूठे जग लोगन में दौरिके लगत नेह साँचे सच्चिदानँद में प्रेम ना सुधारी क्यों? बिकल बिलोकत न हिय पीर मोचत हो एहो दीनबन्धु, दीनबन्धुता बिसारी क्यों?

(५)

आँसू

(१)

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई।

(२)

बस गई एक बसती है, स्मृतियों की इसी हृदय में;
नक्षत्र-लोक फैला है, जैसे इस नील-निलय में।

(३)

ये सब स्फुलिङ्ग हैं मेरी, उस ज्वालामयी जलन के,
कुछ शेष चिन्ह हैं केवल, मेरे उस महा मिलन के।

(४)

अभिलाषाओं की करवट, फिर सुप्त व्यथा का जगना,
सुख का सपना हो जाना, भींगी पलकों का लगना।

(५)

जल उठा स्नेह दीपक-सा, नवनीत हृदय था मेरा;
अब शेष धूम-रेखा से, चित्रित कर रहा अँधेरा।

(६)

इस विकल वेदना को ले, किसने सुख को ललकारा;
वह एक अबोध अकिञ्चन, बेसुध चैतन्य हमारा!

(७)

छलना थी तब भी मेरा, उसमें विश्वास घना था;
उस माया की छाया में, कुछ सच्चा स्वयं बना था।

(८)

तुम रूप-रूप थे केवल, या हृदय भी रहा तुमको?
जड़ता की सब माया थी, चैतन्य समझ कर हमको।

(९)

लहरों में प्यास भरी थी, थे भँवर पात्र भी खाली,
मानस का सब रस पीकर, लुड़का दी तुम ने प्याली।

(१०)

चेतना लहर न उठेगी, जीवन-समुद्र थिर होगा,
सन्ध्या हो सर्ग-प्रलय थी, विच्छेद मिलन फिर होगा।

(६)

पतझड़-समीर

(चतुदश पदी)

चल, वसंत-बाला-अंचल से किस घातक सौरभ में मस्त;
आतीं मलयानिल की लहरें जब दिनकर होता है अस्त।
मधुकर से कर संधि विचर कर उषा नदी के तट—उस पार;
चूसा रस पत्ती पत्ती से, फूलों का दे लोभ अपार।
लगे रहे जो अभी डाल से बने आवरण फूलों के;
अवयव थे, शृङ्गार रहे, जो बनमाला के झूलों से।
आशा देकर गले लगाया, रुके न वे फिर रोके से;
उन्हें हिलाया, बहँकाया भी, किधर उड़ाया झोंके से।
कुम्हलाए, सूखे, ऐंठे, फिर गिरे अलग हो वृन्तों से;
वे निरीह मर्माहत होकर, कुसुमाकर से कुन्तों से।
नवपल्लव का सृजन! तुच्छ है, किया वात से वध जब क्रूर;
कौन फूल सा हँसना देखे, वे अतीत से भी अब दूर।
लिखा हुआ उनकी नस नस में इस निर्दयता का इतिहास;
तू अब 'आह' बनी घूमेगी, उनके अवशेषों के पास।

(७)

निवेदन

तेरा प्रेम-हलाहल प्यारे, अब तो सुख से पीते हैं।
विरह-सुधा से बचे हुए हैं, मरने को हम जीते हैं॥
दौड़, दौड़ कर थका हुआ है, पड़कर प्रेम-पिपासा में।
हृदय खूब ही भटक चुका है; मृग-मरीचिका-आशा में॥
मेरे मरुमय-जीवन के हे, सुधा-स्रोत दिखला जाओ।
अपनी आँखों के आँसू से, इसको भी नहला जाओ॥

डरो नहीं, जो तुमको मेरा, उपालम्भ सुनना होगा ।
केवल एक तुम्हारा चुम्बन, इस मुख को 'चुप' कर देगा ॥

(८)

मेघों के प्रति

क्या अलका की विकल विरहिणी की पलकों का ले अवलम्ब;
सुखी सो रहे थे इतने दिन ! कैसे ? हे नीरद ! निकुरम्ब ।
बरस पड़े क्यों आज अचानक, सरसिज-कानन का संकोच ।
अरे, जलद में भी यह ज्वाला ! झुके हुए क्यों ? किसका सोच ?॥
किस निष्ठुर ठंडे हृत्तल में जमे रहे तुम बर्फ़-समान ।
पिघल रहे किसकी गर्मी से हे करुणा के जीवन प्रान ! ॥
चपला की व्याकुलता लेकर, चातक का ले करुण-विलाप ।
तारा आँसू पोंछ गगन के रोते हो किस दुख से आप ? ॥
किस मानस-निधि में न बुझा था बड़वानल जिससे बन भाप ।
प्रेम प्रभाकर-कर से चढ़कर इस अनन्त का करते माप ॥
क्यों जुगनू का दीप जला है पथ में पुष्प और आलोक ।
किस समाधि पर बरसे आँसू किसका है यह शीतल शोक ? ॥
थके प्रवासी बनजारों से लौटे किस मन्थर गति से ।
किस अतीत की प्रणय-पिपासा जगती चपला सी स्मृति से ? ॥

(९)

अव्यवस्थित

विश्व के नीरव निर्जन में,
जब करता हूँ केवल, चंचल
मानस को कुछ शान्त,
होती है कुछ ऐसी हलचल
तब होता है भ्रान्त ;

भटकता है भ्रम के वन में
विश्व के कुसुमित कानन में।
जब लेता हूँ आभारी हो
बल्लरियों से दान,
कलियों की माला बन जाती
अलियों का हो गान;
विकलता बढ़ती हिमकन में,
विश्वपति तेरे आँगन में।
जब करता हूँ कभी प्रार्थना
कर संकलित विचार,
तभी कामना के कंकण की
हो जाती झनकार;
चमत्कृत होता हूँ मन में
विश्व के नीरव निर्जन में।

(१०)

फुटकर

(१)

पुलकि उठे हैं रोम रोम खड़े स्वागत को,
जागत हैं नैन-बरुनी पै छवि छाओ तो।
मूरत्ति तिहारी उर अन्तर खड़ी है, तुम्हें—
देखिबे के हेतु ताहि मुख दरसाओ तो॥
भरिकै उछाह सों उठे हैं भुज भेंटिबे को
मेटिबे को ताप क्यों 'प्रसाद' तरसाओ तो।
हिय हरखाओ प्रेम-रस बरसाओ आओ
बेगि प्रानप्यारे! नेक कण्ठ सों लगाओ तो॥

(२)

उसी स्मृति सौरभ में मृग-मन मस्त रहे
यही है हमारी अभिलाषा सुन लीजिये।
शीतल हृदय सदा होता रहे आँसुओं में
छिपिये उसी में मत बाहर हो भींजिये॥
हो जो अवकाश तुम्हे ध्यान कभी आवे मेरा
अहो प्राणप्यारे! तो कठोरता न कीजिये।
क्रोध से, विषाद से, दया या पूर्व प्रीति ही से
किसी भी वहाने से तो याद किया कीजिये॥

(३)

आवे इठलात जलजात पात के से विन्दु,
कैधों खुली सीपी माहिं मुक्ता दरस है।
कढ़ी कंज कोपतें कलोलिनी के सीकर से,
प्रात हिमकन से न सीतल परस है।
देखे दुख दूनो उमगत अति आनँद सों,
जान्यो नहीं जाय याहि कौन सो हरष है।
तातो, तातो, कढि रूखे मन को हरित करे,
ऐरे मेरे आँसू ये पियूष से सरस है॥

(११)

प्रेम पथिक से

पथिक प्रेम की राह अनोखी भूल भूल कर चलना है।
घनी छाँह है जो ऊपर तो नीचे काँटे बिछे हुए॥
प्रेम-यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा।
तब तुम प्रियतम स्वर्ग-विहारी होने का फल पाओगे॥
इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं॥

गोपालशरण सिंह

वाँ राज्य में नईगढ़ी का इलाक़ा बहुत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित है। सोलंकियों के आने के पहले ही सेंगरों ने इस प्रान्त में कई बड़े बड़े राज्य स्थापित कर लिये थे। समय के फेर से उनमें कई राज्यों का लोप हो गया है और जो शेष हैं वे अब मामूली ठिकाने रह गये हैं। परन्तु नईगढ़ी का इलाक़ा ज्यों का त्यों बना है।

ठाकुर गोपालशरण सिंह सेंगर वंश के भूषण हैं। इनके पिता का नाम लाल जगत् बहादुर सिंह था। वे बड़े ही दयालु और धर्मनिष्ठ थे। संस्कृत के अच्छे विद्वान् और विद्या-व्यसनी थे। उन्होंने एक संस्कृत पाठशाला खोल रक्खी थी, जिसमें विद्यार्थियों को शिक्षा ही मुफ्त नहीं दी जाती थी, बल्कि भोजन और वस्त्र भी मिलता था। इनके पितामह पुराने चाल-ढाल के बड़े शूरमा क्षत्रिय थे। उनकी रणक्रीड़ा की अनेक किम्वदन्तियाँ सुनी जाती हैं; जिनसे पता चलता है कि वे वास्तव में शूर पुरुष थे।

पौष शुक्ला प्रतिपदा, संवत् १९४८ को ठाकुर गोपालशरण सिंह का जन्म हुआ। "होनहार बिरवान के, होत चीकने पात", इस कहावत के अनुसार बाल्यकाल ही से इनमें नैसर्गिक प्रतिभा थी। शैशवावस्था के पश्चात् पिताजी के निरीक्षण में इनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। हिन्दी की साधारण योग्यता हो जाने पर इनको संस्कृत का अभ्यास कराया गया। अल्पकाल ही में इन्होंने संस्कृत भाषा में अच्छी योग्यता प्राप्त करली और १३ वर्ष की अवस्था में अंग्रेजी पढ़ना आरम्भ किया। इसी वर्ष इन के पिताजी का देहान्त हुआ। १५ वर्ष की अवस्था में ये दरबार हाई स्कूल, रीवाँ में प्रविष्ट हुए और १९१० में ये मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। छात्रावस्था में इन पर अध्यापकों की विशेष कृपा रहती थी और ये अपनी कक्षा में

उत्तम विद्यार्थी गिने जाते थे।

इन्ट्रेन्स की परीक्षा पास कर चुकने पर ये विश्वविद्यालय की उच्च परीक्षाओं के लिये तैयार हुए और प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में इन्होंने प्रवेश किया। परन्तु कई कारण ऐसे पड़े कि इनको दुःख के साथ कालेज छोड़ना पड़ा। पर ज्ञान-पिपासा शान्त न हुई। घर पर ही अभ्यास करके इन्होंने बड़ी योग्यता प्राप्त कर ली है।

ये रीवाँ राज्यान्तर्गत प्रथम कक्षा के सुप्रतिष्ठित इलाकेदारों में हैं। चमर-छड़ी आदि राज-चिन्हों से ये विभूपित हैं और महाराज इन्हें ताज़ीम दिया करते हैं। ये ही आजकल इलाके के स्वामी हैं। इन के सुप्रबन्ध से इलाके की प्रजा विशेप सुखी है। बेदखली और नज़राना वग़ैरह का तो यहाँ नाम तक नहीं है। वसूली लगान की भी कार्रवाई इस प्रकार की जाती है जिससे प्रजा को कष्ट न हो। ग़रीब से ग़रीब प्रजा की भी ठाकुर साहब के पास पहुँच और सुनवाई हो जाती है और सब के दुख दूर करने की यथेष्ट चेष्टा की जाती है। फलतः इलाके की सारी प्रजा ठाकुर साहब के प्रति विशेष भक्ति-भाव रखती है और इनके न्याय-दया-युक्त शासन की प्रशंसा करती है।

ठाकुर साहब का परिवार बहुत बड़ा किन्तु सुखी और सन्तुष्ट है। इन के चार सहोदर भाई हैं, जिनकी शिक्षा का इन्होंने समुचित प्रबन्ध कर दिया था। दो भाई शिक्षा प्राप्त करके राज्य के दो उच्च पदों पर नियुक्त हो चुके हैं और बहुत अच्छी तरह काम कर रहे हैं। सब से छोटे भाई प्रयाग में रह कर अब भी अध्ययन कर रहे हैं। ठाकुर साहब के पाँच पुत्र और दो कन्याएँ हैं। सब से बड़े कुमार चिरञ्जीव सोमेश्वरप्रसाद सिंह इस साल एस० एल० सी० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं और इसी वर्ष उन का विवाह श्रीमान् राजा कुशलपाल सिंह साहब की सौभाग्यवती पुत्री से हुआ है। जब कुमार साहब की अवस्था १४-१५ वर्ष की थी, तभी वे हिन्दी में कविता लिखने लगे थे। उन की दो तीन रचनाएँ कवि-कौमुदी में

प्रकाशित भी हुई थीं। कौमुदी-कुञ्ज में भी उनकी कविता प्रकाशित है। ठाकुर साहब बड़े सरस हृदय व्यक्ति हैं। बड़े प्रसन्न चित्त, मिलनसार और सुशील हैं। मुझको आज नौ दश वर्षों से इनकी मित्रता का सौभाग्य प्राप्त है।

बाल्य-काल से ही इन को कविता से प्रेम है। जब इन की अवस्था १०, ११ वर्ष की थी, तभी ये हिन्दी के प्राचीन कवियों की रचनाएँ चाव से पढ़ा करते थे। संस्कृत में भी इन की अभिरुचि काव्यों की ही ओर थी। थोड़ी उम्र से ही ये संस्कृत के रघुवंश और शिशुपाल-वध इत्यादि काव्यों का अध्ययन करने लगे थे। यद्यपि काव्यानुराग इन में पहले ही से विद्यमान था, परन्तु पढ़ाई में लगे रहने के कारण १८ वर्ष की उम्र तक कविता लिखने की ओर इनका ध्यान नहीं रहा। इन के रचना-काल का आरम्भ सन् १९११ से हुआ, जब ये अपनी शिक्षा समाप्त करके घर पर रहने लगे थे। एक आध साल तक इन्होंने ब्रज-भाषा में स्फुट रचनाएँ की। सन् १९१२ से फिर बोलचाल की भाषा में कविताएँ लिखना आरम्भ किया, जो सरस्वती में प्रकाशित होती रहीं। इन की प्रारम्भिक रचनाओं में कवित्व की मात्रा पर्याप्त देखकर पंडित महावीर-प्रसाद द्विवेदी इनको कविता लिखते रहने के लिए बराबर प्रोत्साहित करते रहे।

सन् १९१६ तक ठाकुर साहब बराबर सरस्वती में कविता लिखते रहे। उसके बाद, जब इलाके का प्रबन्ध इन के हाथ आ गया, तब इनका समय उसी में लगने लगा। इससे रचना-कार्य ५, ६ वर्ष तक स्थगित रहा। परन्तु सन् १९२३ से इन्होंने फिर से कविता लिखनी शुरू की और तब से बराबर प्रतिमास इन की दो एक कविताएँ सरस्वती में प्रकाशित होती हैं। सरस्वती के अतिरिक्त माधुरी एवं अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी ये समय समय पर कविताएँ लिखा करते हैं। थोड़े ही समय में इन की रचनाओं की हिन्दी-संसार में धूम हो गई। सरस और सरल होने के

कारण इन की कविताएँ विशेष लोक-प्रिय हो गई हैं।

इन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि बोलचालकी भाषा में भी वैसी ही मधुर रचना हो सकती है जैसी व्रज-भाषा में हो चुकी है। कानपुर के अखिल-भारतीय कवि-सम्मेलन के सभापति बाबू जगन्नाथप्रसादजी "भानु" ने अपने भाषण में स्वीकार किया है कि ठाकुर साहब की रचनाएँ मधुरता में व्रज-भाषा की कविताओं की स्पर्द्धा करती हैं। और भी कितने ही बड़े बड़े विद्वानों ने इन की रचनाओं की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भाद्र०, १९८१ की सरस्वती में ठाकुर साहब के विषय में एक लेख लिखा था। जिसमें वे लिखते हैं—"ठाकुर गोपालशरण सिंह कविता की दृष्टि से भी राजा हैं और लौकिक विभूति की दृष्टि से भी। आप बड़े विद्या-व्यसनी, बड़े उदार चरित और हिन्दी के बहुत बड़े प्रेमी हैं। यद्यपि आपसे मिलने का सौभाग्य हमें कभी नहीं प्राप्त हुआ। तथापि पत्र-द्वारा प्रकट हुये आपके सौजन्य, औदार्य और शिष्टतापूर्ण व्यवहार पर हम मुग्ध हैं।"

सं० १९८२ में, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ होने वाले अखिल-भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन, वृन्दावन के सभापति ये ही निर्वाचित हुए थे।

यहाँ ठाकुर साहब की कुछ चुनी हुई कविताएँ दी जाती हैं—

(१)

हृदय की वेदना

नित हृदय जलाती अग्नि सी वेदनायें,
मुझ पर अब सारी आ पड़ी हैं बलायें।
सब तरफ़ मुझे है दृष्टि आता अँधेरा,
निशिदिन रहता है खिन्नही चित्त मेरा ॥१॥
दिन दिन अब मेरी हो रही क्षीण देह,
सुख-सदन न भाता है मुझे नेक गेह।

मन अब लगता है हा ! कहीं भी न मेरा,
दृग-युग-गृह में है अश्रु-धारा बसेरा ॥२॥
अगणित जग में हैं वस्तुयें चित्तहारी,
पर तनिक न कोई भी मुझे मोदकारी।
हरदम मुझको है घोर चिन्ता सताती,
अहह तनिक निद्रा भूल के भी न आती ॥३॥
प्रकृति नित नई मञ्जु शोभा दिखाती,
निज रुचिर छटा से जी सभी का चुराती।
सब तरफ़ अनोखे दृश्य हैं दृष्टि आते,
पर तनिक मुझे वे क्यों नहीं हाय ! भाते ॥४॥
सुरभित बहता है मोददायी समीर,
पुलकित करता है जो सभी का शरीर।
मगर वह न थोड़ा भी मुझे है सुहाता
मधुर अमृत भी है दुःखियों को न भाता ॥५॥
हृदय हर रहे हैं फूल के फूल नाना,
मन खग-कुल का है मोहता मञ्जु गाना।
छवि गिरि वन बागों की न क्या चित्तहारी,
मगर न मुझको हैं नेक ये मोदकारी ॥६॥
दुखमय दिन मेरे ये कटें हाय ! कैसे ?
अब बिलकुल होते ज्ञात ये कल्प जैसे।
अति दुखद मुझे है यामिनी भी कराला,
वह द्रुपद-सुता के चीर सी है विशाला ॥७॥
यदपि सतत मैंने युक्तियाँ की अनेक,
तदपि अहह ! तूने शान्ति पाई न नेक।
उड़कर तुझको ले मैं कहाँ चित्त जाऊँ ?
दुखद जलन तेरी हाय ! कैसे मिटाऊँ ॥८॥

हृदय ! नित तुझे मैं खूब हूँ बोध देता,
दुख विफल निरा है क्यों न तू सोच लेता।
निज मति-धृति क्यों तू व्यर्थ ही खोरहा है ?
तनिक निरख तेरा हाल क्या हो रहा है ॥९॥
हृदय ! नयन मेरे नित्य अत्यन्त रोते,
अविरल जलधारा से तुझे खूब धोते।
पर शमित न होती नेक दुःखाग्नि तेरी,
जलकर अब होगा छार तू है न देरी ॥१०॥
अतिशय तुम भी क्यों होगये शुष्क प्राण ?
सह न तुम सके क्या आपदा-आर्त्ति-बाण !
तुम दृढ़ बन जाओ क्यों वृथा नित्य रोते,
विचलित दुख में हैं क्या कभी धीर होते ॥११॥
सतत हृदय में तू वेदना ! जन्म पाती,
रहकर उसमें ही पुष्ट हो खूब जाती।
पर अहह ! उसी को नित्य तू है जलाती,—
शिव शिव इतनी तू नीचता क्यों दिखाती ॥१२॥

(२)

ब्रज-वर्णन

(१)

आते जो यहाँ हैं ब्रज-भूमि की छटा वे देख,
नेक न अघाते होते मोद-मद-माते हैं।
जिस ओर जाते उस ओर मन भाये दृश्य,
लोचन लुभाते और चित्त को चुराते हैं।
पल भर को वे अपने को भूल जाते सदा,
सुखद अतीत-सुध-सिन्धु में समाते हैं।

जान पड़ता है उन्हें आज भी कन्हैया यहाँ,
मैया मैया टेरते हैं गैया को चराते हैं।

(२)

करते निवास छवि-धाम घनश्याम-भृङ्ग,
उर कलियों में सदा व्रज-नर-नारी की।
कण-कण में है यहाँ व्याप्त दृग-सुखकारी,
मञ्जु मनोहारी मूर्ति मञ्जुल मुरारी की।
जिसको नहीं है सुध आती अनायास यहाँ,
गोवर्धन देखकर गोवर्धन—धारी की ?
न्यारी तीन लोक से है प्यारी जन्म-भूमि यही,
जन-मन-हारी वृन्दा-विपिन-विहारी की।

(३)

अङ्कित व्रजेश की छटा है सब ठौर यहाँ,
लता-द्रुम वल्लियों में और फूल फूल में।
भूमि ही यहाँ की सब काल बतला सी रही,
ग्वाल-बाल सङ्ग वह लोटे इस धूल में।
कलकल-रूप में है वंशी-रव गूँज रहा,
जाके सुनो कलित कलिन्दजा के कूल में।
ग्राम ग्राम धाम धाम में हैं घनश्याम यहाँ,
किन्तु वे छिपे हैं मञ्जु मानस-दुकूल में।

(४)

गूँज रही आज भी सभी के श्रवणों में यहाँ,
रुचिर रसाल ध्वनि नूपुरों के जाल की।
भूल सकता है कोई व्रज में कभी क्या भला,
निपट निराली छटा चारु वनमाल की ?

समता मराल ने न नेक कभी कर पाई,
मञ्जु मन्द मन्द नन्द-नन्दन की चाल की।
रहती दृगों में छाई उर में समाई सदा,
कवि मन भाई बाल मदनगोपाल की।

(५)

अब भी मुकुन्द रहते हैं व्रज-भूमि ही में,
देखते यहाँ के दृश्य दृग फेर फेर के।
छिपे उर-कुञ्ज में हैं वृन्दावन-वासियों के,
थकते वृथा ही लोग उन्हें हेर हेर के।
चित्तवृत्तियाँ हैं सब गोपियाँ उन्हीं की बनी,
रहतीं उन्हीं के आसपास घेर घेर के।
आठोयाम सब लोग लेते हैं उन्हीं का नाम,
मानों हैं बुलाते "श्याम श्याम" टेर टेर के।

(६)

उमड़ रहा है प्रेम-पारावार मानस में,
व्रज-वनितायें कैसे बैठी रहें मान में?
किस भाँति आज व्रजराज से करें वे लाज,
रहता सदैव है समाया वह ध्यान में?
मन में बसी है मूर्ति उसी मन-मोहन की,
हिचकें भला वे कैसे रूप-रस-पान में?
मृदु मुरली की तान प्राण में है गूँज रही,
कैसे न सुनेंगी उसे अँगुली दे कान में?

(७)

जिसने विपत्तियों में व्रज को बचाया सदा,
दिव्य बल पौरुष दिखाया बालपन में।
मार क्रूर कंस को स्वदेश का छुड़ाया क्लेश,
सुयश-प्रकाश छिटकाया त्रिभुवन में।

सब को सदैव सिखलाया शुचि विश्व-प्रेम,
गीता को बनाया उपजाया ज्ञान मन में।
दुख को हटाया सुख-बेलि को बढ़ाया वह,
श्याम मनभाया है समाया वृन्दावन में।

(८)

वही मञ्जु मही वही कलित कलिन्दजा है,
ग्राम और धाम भी विशेष छवि-धाम हैं।
वही वृन्दावन है निकुञ्ज, द्रुम-पुञ्ज भी हैं,
ललित लतायें लोल लोचनाभिराम हैं।
वही गिरिराज गोपजन का समाज वही,
वही सब साज बाज आज भी ललाम हैं।
व्रज की छटा विलोक आता मन में है यही,
अब भी यहाँ ही शुभ नाम घनश्याम हैं।

(९)

देते हैं दिखाई सब दृश्य अभिराम यहाँ,
सुषमा सभी की सुध श्याम की दिलाती है।
फूली फली सुरभित रुचिर द्रुमालियों से,
सुरभि उन्हीं की दिव्य देह की ही आती है।
सुयश उन्हीं का शुक-सारिका सुनातीं सदा,
कूक कूक कोकिला उन्हीं का गुण गाती है।
हरीभरी दृग-सुखदाई मनभाई मञ्जु,
यह व्रज-मेदिनी उन्हीं की कहलाती है।

(१०)

सुखद सजीली सस्य-श्यामला यहाँ की भूमि,
श्याम के ही रङ्ग में रँगी है प्रेम-भाव से।

रज भी पुनीत हुई उनके चरण छूके,
शीश प चढ़ाते उसे भक्तजन चाव से।
पाप-पुञ्ज-नाशी उर-कमल-विकासी हुआ,
यमुना सलिल बस उनके प्रभाव से।
कर दिया पूरा उसे वर वृन्दावन ने ही,
जो थी कमी मेदिनी में स्वर्ग के अभाव से।

(३)

आँख की किरकिरी

(१)

आँख है बेचैन रहती हर घड़ी,
आँसुओं की है लगी रहती झड़ी।
यत्न कर कर थक गए निकली नहीं,
हाय! कैसी किरकिरी इसमें पड़ी?॥

(२)

आँख रो रोकर गई है फूल सी,
है गई उसकी चपलता भूल सी।
हाय! उसमें एक छोटी किरकिरी,
सालती है सर्वदा ही शूल सी॥

(३)

आँख में वह किरकिरी तो थी पड़ी,
वेदना फिर क्यों हृदय में है बड़ी?
क्या निगोड़ी किरकिरी वह दुखमयी,
आँख से जाकर कलेजे में गड़ी?॥

(४)

हारकर दृग से भगा मृग दीन है,
नीर में रहता छिपा ही मीन है।

किन्तु चिढ़कर दुष्ट खञ्जन आँख में,
डाल आया एक तिनका पीन है॥

(५)

रूप पर अभिमान करना भूल है,
वह कभी बनता बहुत दुख-मूल है।
रीझकर सौन्दर्य्य पर ही क्या नहीं?
आँख में आकर पड़ी यह धूल है।

(६)

वेदना तो है हृदय में छा रही,
आँख क्यों है अश्रु-धार वहा रही।
क्या हृदय की वेदना ही आँख में,
किरकिरी बनकर व्यथा उपजा रही।

(७)

आँख से ही आँख क्या थी लड़ गई?
टूटकर कोई बरौनी झड़ गई।
हाय! उड़कर क्या निगोड़ी बस वही,
इस अभागी आँख में है पड़ गई?।

(८)

यह न जाने कौन मुझसे कह गया,
सब मनोरथ आँसुओं में बह गया।
पर मनोरथ एक अब भी आँख में,
किरकिरी बनकर छिपा ही रह गया।

(९)

क्यों चपलता है दृगों की खो गई?
क्या उन्हीं के अश्रु-जल में धो गई?

या बदलकर रूप अपना अब वही,
किरकिरी इस आँख की है हो गई॥

(१०)

अब ज़रा मुझसे सुनो इसकी कथा,
क्यों विकल है आँख रहती सर्वथा।
है किसी की मूर्ति उसमें बस रही,
बस, इसी से हो रही उसको व्यथा॥

(४)

वह

(१)

रहती उसी की मञ्जु मूर्ति मन-मन्दिर में,
जगमग ज्योति जग रही मन भाई है।
लोचनों ने जल भर भर नहलाया उसे,
अश्रु-मोतियों की मृदु माला पहनाई है।
उर ने पवित्र प्रेम-आरती दिखाई उसे,
साँसों ने चलाया पंखा अति सुखदाई है।
चित्त-वृत्तियाँ हैं सब सेवा में उसी की लगी,
प्राणों में उसी की आज होती पहुनाई है।

(२)

उसके विचित्र छवि-जाल में विलोचन ये,
उलझ रहे हैं किस भाँति सुलझाऊँ मैं?
तन, मन, प्राण सब वश में उसी के हुए,
मैं हूँ परेशान किसे किसे समझाऊँ मैं?
अङ्कित हिये में चित्र उसका कुलिश से है,
होता नहीं ज्ञात कैसे उसको मिटाऊँ मैं?

रोम रोम में है सुध उसकी समाई हुई,
कहो किस भाँति भला उसे भूल जाऊँ मैं ?

(३)

मचल रहा है मन मत्त हो उसी के लिए,
यद्यपि उसी का सदा मन में निवास है।
रूप-सुधा-पान से न नेक भी हुई है कम,
प्रत्युत हुई है तीव्र कैसी यह प्यास है ?
ज्यों ज्यों यह चित्त चित्तचोर से हटाया जाता,
त्यों त्यों वह खिँचता उसी के और पास है।
चढ़ गया और प्रेम-पारा देखने से उसे,
बढ़ गया और देखने का अभिलाष है।

(४)

क्या न है बसेरा प्राण ही में प्राण-वल्लभ का,
फिर क्यों सदैव प्राण रहता अधीर है ?
क्यों न तृप्त होते पान करके विलोचन ये,
उसके स्वरूप की सुधा ही नेत्र-नीर है।
जानता नहीं क्या उर-कुञ्ज में छिपा है वह,
क्यों सदा पुकारता उसी को कण्ठ कीर है ?
एक क्षण भी है उसे भूलने न देती कभी,
धन्य धन्य धन्य मेरे मानस की पीर है॥

(५)

वह छबि

(१)

मञ्जुल मयङ्क में मयङ्कमुखी-आनन में,
वैसी निष्कलङ्क कान्ति देती न दिखाई है।

दृग झप जाते देख पाते हम कैसे उसे,
ऐसी प्रभा किसने प्रभाकर में पाई है।
न्यारी तीन लोक से है प्यारी सुखकारी भारी,
सारी मनोहारी छटा उसमें समाई है।
जिसको विलोक फीकी शरद-जुन्हाई होती,
वह मन-भाई छवि किसको न भाई है ? ॥

(२)

नित्य नई शोभा दिखलाती ललचाती वह,
किस में सलोनी सुघराई कहो ऐसी है ?
केतकी की कुन्द की कदम्ब की कथा है कौन,
कल्प-लतिका में कहाँ कान्ति उस जैसी है ?
रति में रमा में रमणीयता कहाँ है वैसी,
कनक-लता में कमनीयता न वैसी है।
छहर छहर छहराती है छबीली छटा,
आहा ! वह सुघर सजीली छवि कसी है ?

(३)

सुषमा उसी की अवलोक के सुधाकर में,
रूप-सुधा पीकर चकोर न अघाते हैं।
घन की घटा में नव निरख उसी की छटा,
मञ्जुल मयूर होते मोद-मद-माते हैं।
फूलों में उसी की शोभा देख के मिलिन्द-वृन्द,
फूले न समाते 'गुन गुन' गुण गाते हैं।
दीप्यमान दीपक में देख वही छवि बाँकी,
प्रेम से प्रफुल्लित पतङ्ग जल जाते हैं।

(४)

उसको विलोक दामिनी है छिप जाती शीघ्र,
अति मन-भावनी भी भामिनी लजाती है।

उसके समीप दीप-मालिका न भाती ज़रा,
मञ्जु मणि-मालिका भी नेक न सुहाती है।
निज हीनता है मोतियों से सही जाती नहीं,
उनकी इसी से छिद जाती क्या न छाती है।
वह छवि देख देख दृष्टि तृप्ति पाती नहीं,
मानों स्वयं प्रेम-वश उसमें समाती है॥

(५)

कञ्ज-कलिका में नहीं सुषमा मयङ्क की है,
कोमलता कञ्ज की मयङ्क ने न पाई है।
चम्पक-कली में न सुवर्ण की सुवर्णता है,
चम्पक की चारुता सुवर्ण में न आई है।
रत्न की रुचिरता में मणि की मनोज्ञता से,
एक दूसरे की आभा देती न दिखाई है।
सब की निकाई सुघराई मोददाई महा,
ललित लुनाई उस छवि में समाई है।

(६)

तेजधारियों में है कृशानु का भी मान बड़ा,
किन्तु भानु सबसे महान तेजवान है।
पादपों में पारिजात पर्वतों में हिमवान,
नदियों में जान्हवी मनोज्ञता की खान है।
मोर सा मनोहर न कोई खग रूपवान,
फूल कौन दूसरा गुलाब के समान है?
यद्यपि सभी हैं उपमान इन्हें मान चुके,
किन्तु उस छवि सा न कोई छबिमान है।

(७)

वन, उपवन में, सरोज में, सरोवर में,
सुमन सुमन में उसी की सुघराई है।
चम्पक चमेलियों में नवल नवेलियों में,
ललित लताओं में भी उसकी लुनाई है।
पाई जाती वही रङ्ग रङ्ग के विहङ्गमों में,
कान्ति-पुञ्ज कुञ्ज-कुञ्ज में वही समाई है।
जहाँ देखो वहाँ वही छवि दिखलाई देती,
उर में समाई तथा लोचनों में छाई है।

(६)

भाग्य-लक्ष्मी

(१)

सौभाग्य-श्री हमारी सुख-मूल मोददायी,
जब से गई यहाँ से फिर लौट कर न आई।

(२)

क्यों रुष्ट वह हुई थी क्या तुष्ट अब न होगी?
बीतीं अनेक सदियाँ खलती बहुत जुदाई।

(३)

बल से उसे किसी ने क्या हर लिया यहाँ से?
या मोह-वश हमीं से वह थी गई चिढ़ाई?

(४)

किम्वा किसी कुटिल ने छल से उसे फँसाया?
या मुग्ध हो किसी पर वह हो गई पराई?

(५)

निज सब सहेलियाँ भी वह साथ ले गई थी,
वह सुजनता हमारी श्रम-शीलता सचाई।

(६)

वह धीरता कहाँ है गम्भीरता कहाँ है ?
वह वीरता हमारी है वह कहाँ बड़ाई ?

(७)

क्या हो गईं कलायें कौशल सभी हमारे ?
किसने शताब्दियों की ली छीन सब कमाई ?

(८)

था ज्ञानवान हम सा कोई नहीं जगत में,
अज्ञान ने यहाँ है जड़ किस तरह जमाई ?

(९)

धन-धान्य-पूर्ण हरदम यह देश था हमारा,
यह दीनता यहाँ है किस भाँति आज छाई ?

(१०)

हम विश्व-प्रेम के थे सब काल ही पुजारी,
यह फूट अब कहाँ से आकर यहाँ समाई ?

(११)

ज्यों ही गई यहाँ से सुख-सद्म भाग्य-लक्ष्मी,
त्यों ही यहाँ समय ने थी लूट सी मचाई।

(१२)

आए समय समय पर फिर और भी लुटेरे,
कैसे कहें कि किसने क्या चीज़ कब चुराई !

(१३)

दुर्योग क्यों अड़ा है दुख-दैत्य क्यों खड़ा है ?
दुर्दैव से कभी से हम कर रहे लड़ाई।

(१४)

किन किन विपत्तियों का हम सामना करें अब ?
की एक साथ सब ने हम पर अहो ! चढ़ाई ।

(१५)

निज मातृ-भूमि की अब हम क्या दशा बतावें,
रोती बिलख बिलख कर दुख-दैन्य की सताई ।

(१६)

सब कुछ पलट गया है पलटे न दिन हमारे,
सौभाग्य पर हमारे किसने नज़र लगाई ?

(१७)

मन में न नेक बल है तन भी हुआ शिथिल है,
जीवन हुआ विफल है आकर घुसी बुराई ।

(१८)

मद मोह द्रोह सब में हैं अब यहाँ समाए,
हैं स्वार्थ सिर घुमाए देता न साथ भाई ।

(१९)

हम को भले बुरे का अब ज्ञान कुछ नहीं है,
शिशु हो गए सभी हम किस भाँति हो भलाई ।

(२०)

लड़ना अधर्म-द्वारा अब धर्म रह गया है,
बस व्यर्थ ही रुधिर की जाती नदी बहाई ।

(२१)

उद्धार की लगी है आशा सुधार ही से,
यह बात क्या अभी तक हम ने न जान पाई ।

(२२)

गृह-देवियाँ यहाँ हैं पातीं नहीं प्रतिष्ठा,
किस भाँति भाग्य-लक्ष्मी दे फिर यहाँ दिखाई ?

(२३)

यह हीनता हमारी क्या है छिपी किसी से ?
क्या कालिमा गगन की छिपती कभी छिपाई ?

(२४)

निज जन्म-भूमि की अब आकर दशा निहारें,
श्रीराम वह कहाँ हैं हैं वह कहाँ कन्हाई ?

(७)

विरही

(१)

कैसे भूल सकूँ तुझे तनिक भी, मैं भूल से भी भला ?
मेरे मानस-व्योम की रुचिर है, तू चन्द्रमा की कला।
तेरी मञ्जुल मूर्ति सौख्य-सुध सी, आती सदा ध्यान में,
पक्षी सी नित तू विहार करती, मेरे मनोद्यान में।

(२)

तेरी प्रीति सदैव ही अटल थी, कैसे गई तू चली ?
मेरे भाग्य समान वाम विधि से, तू भी गई क्या छली ?
चाहे निर्दय दुष्ट दैव हर ले, मेरे सुखों को सभी,
कोई किन्तु तुझे हटा न सकता, मेरे हिये से कभी।

(३)

प्यारी ! तू जब है नहीं रह गई, क्या है सहारा मुझे ?
होता ज्ञात महान्धकारमय है, संसार सारा मुझे।
धिक् धिक् प्राण तुम्हें यहाँ रह गए, प्राणेश्वरी के बिना,
है निर्वाह कभी न नीर-निधि में, होता तरी के बिना।

(४)

ज्यों तू दिव्य पवित्र स्वर्ग-सरिता , के तुल्य आई यहाँ,
त्यों तू ने अति ही पुनीत उस सी , सत्कीर्ति पाई यहाँ।
थी स्वर्गीय तुझे मिले गुण रहे , स्वर्गीय सारे यहाँ,
देवी सी विमल-प्रभा सतत ही , तू थी पसारे यहाँ।

(५)

थी जैसी सब भाँति तू गुणवती , वैसी रही सुन्दरी,
थी तू कोकिल-कण्ठिनी रसमयी , मानों रही किन्नरी।
तेरी दिव्य सुशीलता सुजनता , की कौमुदी थी खिली,
क्या कोई सुर-कामिनी त्रिदिव से , आके मुझे थी मिली ?

(६)

थी तू वारिज-लोचनी विधुमुखी , वामोरु विम्बाधरी,
थी फूली कमनीय कल्प-लतिका , के तुल्य तू सुन्दरी।
तेरी चाल मराल सी सुतनु ! मैं , हूँ भूल पाता नहीं,
तेरा साम्य कहीं त्रिलोक भर में , है दृष्टि आता नहीं।

(७)

है तेरा सब भाँति राज्य मन में , तू हो भले ही कहीं;
कैसे मैं यह मान लूँ अब भला , वामोरु ! तू है नहीं ?
प्यारी ! तू रहती सदैव मुझको , प्रत्यक्ष ही ध्यान में ,
होता ज्ञात नहीं कि प्राण तुझ में , हैं या कि तू प्राण में।

(८)

धोखे से विधि ने सयत्न मुझ से , चाहा तुझे छीनना ,
प्यारी ताड़ गई परन्तु उसकी , तू शीघ्र ही वञ्चना।
प्यारे सागर में सहर्ष सरिता , है लीन होती यथा ,
मेरे मानस-रूप मानसर में , तू भी समाई तथा।

(९)

क्यों तेरा विरही मुझे अब प्रिये !, संसार है मानता ?
तू मेरे मन-कुञ्ज में छिप रही, क्या है नहीं जानता ?
तेरी याद सदा मुझे मिलन सा, आनन्द है ला रही,
आठोयाम सुगन्धि सी सुमन में, है चित्त में छा रही।

(१०)

है तेरी छवि नित्य नेत्र-नभ में, विद्युत्प्रभा सी लसी,
तेरी मञ्जुल मूर्ति है हृदय में, तू ध्यान में है धँसी।
कानों में बस गूँजती सतत है, तेरे गुणों की कथा,
तू मेरे मन में बसी विरह की, कैसे मुझे हो व्यथा ?

(११)

कैसे हूँ विरही सदा सहचरी, मैं लेखता हूँ तुझे,
प्यारी ! मानस-चक्षु से सतत ही, मैं देखता हूँ तुझे।
तेरी ही सुध बार बार मुझ को, आती अनायास है,
हो के भी अति दूर जान पड़ती, तू सर्वदा पास है।

(१२)

जैसे वारिद का कभी न तजती, है साथ सौदामिनी,
वैसे हो सकती कदापि मुझ से, न्यारी न तू भामिनी।
होती है घन-अङ्क-मध्य चपला, प्रच्छन्न ज्यों सर्वदा,
त्यों मेरे मन-सद्म में छिप गई, तू मञ्जु मोद-प्रदा।

(१३)

मेरे मानस में सदा विचरती, तेरी निराली छटा,
आँखों में दिनरात नृत्य करती, तेरी निराली छटा।
तू है दूर परन्तु चित्त हरती, तेरी निराली छटा,
प्राणों में अनुराग-राग भरती, तेरी निराली छटा।

(१४)

कैसे क्लेश मुझे वियोग-घन की, दे आज काली घटा ?
है मेरे उर-देश में खचित सी, तेरी अनोखी छटा।
धाता ने तुझको हरा पर मुझे, तू आज भी है मिली,
है मेरे मन में सदैव रहती, तू वल्लरी सी खिली।

(१५)

प्यारी! तू मुझको कदापि कपटी, प्रेमी नहीं मानना,
वैसा ही मुझको पवित्र प्रणयी, तू आज भी जानना।
मेरी केवल देह है रह गई, सूखी लता सी यहाँ,
मेरे प्राण वहीं सदैव रहते, है प्राण-प्यारी जहाँ।

(१६)

तेरा चारु-चरित्र आत्म-बल है, देता मुझे आज भी,
तेरा चिन्तन विश्व-वारिनिधि में, खेता मुझे आज भी।
तेरे कीर्ति-कलाप से ध्रुव मुझे, उत्कर्ष है आज भी,
तेरा पावन प्रेम-पुञ्ज मुझ को, आदर्श है आज भी।

(१७)

है देवी अब भी मनोभवन की, तू प्रेम-सञ्चारिणी,
तू ही है अवलम्बिनी प्रणय की, मेरे मनोहारिणी।
तेरा स्थान कदापि ले न सकती, है दूसरी कामिनी,
तू ही हे गजगामिनी! हृदय की, है आज भी स्वामिनी।

(८)

उसकी छवि

(१)

उसके समान छविमान कुछ भी है नहीं,
कैसे कहूँ कैसी मञ्जु उसकी लुनाई है ?

परम मनोहर मनोज्ञ वस्तु जो है जहाँ,
सबका निचोड़ बस वह सुघराई है।
उषा प्रति दिवस प्रभात में प्रभाकर को,
लाकर उसी की प्रभा देती मनभाई है।
है लगी मयंक में कलंक की इसी से छाप,
चारु चन्द्रिका जो मुख-चन्द्र की चुराई है।

(२)

उसके रुचिर रूपरङ्ग की रसीली छवि,
देती दिखलाई सब ओर मनभाई है।
मुख की सुगन्धि सुकुमारता सरोज में है,
सुषमा शरद के शशाङ्क में समाई है।
छाई है गगन में दृगों की नीलिमा ललाम,
लाल मणियों में पद-पद्म की ललाई है।
अकथ अनूप मान निज उच्च शीश पर,
गात की गोराई हिमगिरि ने चढ़ाई है॥

(९)

चन्द्र खिलौना

(१)

देख पूर्ण चन्द्रमा को मचल गया है शिशु,
लूँगा मैं खिलौना यह मुझे अति भाया है।
माता ने अनेक भाँति उसे समझाया पर,
एक भी न माना और ऊधम मचाया है।
निज मुख चन्द्र का रुचिर प्रतिविम्ब तब,
दिखाकर दर्पण में उसे बहलाया है।

हँसकर कौतुक से बोली चारु चन्द्र-मुखी,
ले तू अब चन्द्र वह इसमें समाया है ॥

(९)

देख आरसी में परछाईं पूर्ण चन्द्रमा की,
शिशु ने समोद निज हाथ को बढ़ाया है।
उसी क्षण चन्द्र-वदनी के मुख-चन्द्र का भी,
देख पड़ा वहाँ प्रतिबिम्ब मनभाया है।
जान पड़ता है उन दोनों को विलोक कर,
एक ही समान उन्हें विधि ने बनाया है।
लूँ मैं किसे और किसे छोड़ूँ हीन मान कर,
इस असमंजस में वह घबराया है ॥

(१०)

नारी

दृग हैं विषाक्त वाण भौंहें हैं कमान वङ्क,
चपला निवास करती है चारु हास में।
काली घुँघुराली लोल तेरी लट नागिन सी,
चमक रही है मुख-चन्द्र के प्रकाश में।
रहता छिपा है विकराल तीव्र ताप सदा,
विरह व्यथित तेरे उर की उसास में।
क्यों न नर तुझसे सदैव भयभीत रहें,
छूटता न कोई पड़ तेरे प्रेम-पाश में ॥

(११)

वियोगिनी

सोह रहे ठौर-ठौर जलज जलाशयों में,
मोह रहे मन को निकुञ्ज-पुञ्ज न्यारे हैं।

फूल रहे कमनीय केतकी कदम्ब कुन्द ,
झूल रहे जिन पर भृङ्ग मोद-धारे हैं।
बोल रहे कोकिल हैं ललित लताओं पर ,
डोल रहे मोर मञ्जु पक्ष को उभारे हैं।
किन्तु प्राणप्यारे हृदय प्यारे ये तुम्हारे बिना ,
प्यारे हमें होकर भी लगते न प्यारें हैं ॥

(१२)

संयोग

हो रहते तुम नाथ जहाँ , रहता मन साथ सदैव वहीं है।
मञ्जुल मूर्ति बसी उरमें , वह नेक कभी टलती न कहीं है ॥
लोलुप लोचन को दिखती , वह चारु छटा सब काल यहीं है।
है वह योग मिला हमको , जिसमें दुख-मूल वियोग नहीं है ॥

(१३)

अज्ञान

पान मैं न खाती कभी तो भी ये अधर मेरे ,
लाल लाल होते जा रहे हैं क्यों प्रवाल-से ?।
बढ़ गए सत्य ही क्या मेरे ये विलोचन हैं ,
लगते न जानें क्यों वे मुझको विशाल-से ?।
ज़ोर ज़ोर मुझसे चला है क्यों न जाता अब ,
सीख-सी रही हूँ मन्द चाल मैं मराल से।
सजनी, भला क्यों मुझे यह गुड़ियों का खेल ,
खेलना न नेक भी है भाता कुछ काल से ? ॥

(१४)

स्मृति

भ्रात-प्रयाण-कथा सुन के , उसके मुख-पङ्कज का मुरझाना।
और ज़रा हँस के उसका , अपने मन का वह भाव छिपाना ॥

किन्तु अचानक ही उसके, वर लोचन में जल का भर आना।
सम्भव है न कभी मुझको, इस जीवन में वह दृश्य भुलाना॥

बदरीनाथ भट्ट

पण्डित बदरीनाथ भट्ट बी० ए० गोकुलपुरा आगरा निवासी पंडित रामेश्वर भट्ट के पुत्र हैं। पण्डित रामेश्वर भट्ट संस्कृत के विद्वान् और साहित्य के मर्मज्ञ पंडित थे। उनके प्रायः सभी पुत्र सुशिक्षित और साहित्यिक हैं।

पंडित बदरीनाथ भट्ट की अवस्था इस समय चौंतीस वर्ष के लगभग है। आजकल ये लखनऊ यूनिवर्सिटी में हिन्दी के लेक्चरर हैं इन्होंने हिन्दी-गद्य-पद्य में कई पुस्तकें लिखी हैं। ये नाटककार भी हैं।

यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं:—

(१)

यह स्वार्थ-तमका परदा अब तो उठा दे मोहन !
अब आत्मत्याग-रवि की आभा दिखा दे मोहन !
पूरब में फैल जावे शुभ देश-भक्ति लाली,
सुसमीर एकता की अब तो चला दे मोहन !
मृदु प्रेम की सुरभि को पहुँचा दे हर तरफ़ तू,
मन-पल्लवों में आशा-बूँदें बिछा दे मोहन !
सद्भाव पङ्कजों को अब तो ज़रा हँसा दे,
जातीयता-नलिनि का मुखड़ा खिला दे मोहन !
द्विज-वृन्द बन्दना कर तेरा सुयश सुनावें,
बैरी उलूक-गण को अब तो छका दे मोहन !

यह द्वेष का निशाचर हमको सता रहा है,
सत्कर्म-शर से इसकी गर्दन उड़ा दे मोहन !
आलस्य-चोर भी है पीछे पड़ा हमारे,
कर्त्तव्य-दण्ड से तू उसको डरा दे मोहन !
अज्ञान-स्वप्न में है दुख-दैत्य ने सताया,
सुख की लगा के चटकी हमको जगा दे मोहन !
चेतें, मिले, खड़े हों, स्वत्वों को अपने चीन्हें,
मुरली की तान मीठी ऐसी सुना दे मोहन !

(२)

सूरदास

सूर को अन्धा कौन कहे ?

करे लोक को जो आलोकित अन्धा वही रहे ? ॥ १ ॥
क्या प्रभु ने प्रत्यक्ष दिखाया दीप तले तम-रूप ? ।
नहीं, घोर तम में दिखलाया दीपक दिव्य अनूप ॥ २ ॥
दिये बिहारी चकाचौंध से सब के नेत्र बिगाड़,
अन्तर्दृष्टि किन्तु दी तुमको सभी हटाई आड़ ॥ ३ ॥
नेत्र-रहित हो उस अथाह की पाई तुमने थाह,
नेत्र-सहित हम थके भटकते नहीं सूझती राह ॥४॥
गही कृष्ण ने बाँह तुम्हारी हुई न अड़चन नेक,
तुम्हें कृष्ण ही थी सब दुनिया थे तुम दोनों एक ॥५॥
जिस अदृश्य ने अन्धकूप से खींच किया दुख दूर,
कैद उसी को किया हृदय में हो तुम सचमुच सूर ॥६॥
कहीं न देखा सुना गया था सूर-श्याम का साथ,
लेकिन तुमने कर दिखलाया वह भी हाथों हाथ ॥७॥
अलङ्कार-ध्वनि-रसमय निकली हृदय वेणु से तान,
वही हमारे लिये बन गई मधुर अलौकिक गान ॥८॥

जिस सद्भक्ति-तत्व को उसने फैलाया सब ठौर,
उसे भूलकर हन्त ! हुये हम आज और के और ॥९॥

(३)

परिवर्तन और भय

यह निकला कैसा उजियाला !
हिम-कर-शर-समूह ने तम का जर्जर कर शरीर डाला।
अथवा निसि साबुन से निज कृष्ण रूप को धो डाला ॥
जिसे देख हँस पड़ी वनश्री, खिली कुमुदिनी की माला।
बिगड़ गई तारों की छबि, मुँह हुआ उलूकों का काला ॥
उठे न कमल—घोर ईर्ष्या का पड़ा कमिलिनी से पाला।
खाकर सिंह-नाद भाला करि-वृन्द हो गया मतवाला ॥
छिपते फिरते हैं मृग—भय का पड़ा बुद्धियों में ताला।
इनकी देख दुर्दशा डर से 'हर ! हर !' कहता है नाला;
भय से छिप तम ने सोचा 'क्या जगी काल की है ज्वाला';
पड़ा धर्म-संकट हा ! हा ! अब कौन हमारा रखवाला;
हँसकर बोली विमल चन्द्रिका, 'कहाँ छिपोगे अब लाला' ?

(४)

प्रार्थना

अशरण-शरण ! शरण हम तेरी।
भूले हैं मग विपिन सघन है, छाई गहन अँधेरी ॥ १ ॥
स्वार्थ-समीर चली ऐसी सब सुमन-सुमन बिखराये;
हा सद्भाव-सुगन्धि चुराई, प्रेम-प्रदीप बुझाये ॥ २ ॥
कलह-कण्टकों से छिदवाया, सुख-रस सभी सुखाया;
भ्रातृ-भाव के बन्धन तोड़े, अपना किया पराया ॥ ३ ॥

लख दुर्दशा हमारी नभ ने, ओस-बूँद ढलकाई;
वह भी हम पर गिर कर फूटी इधर उधर कतराई ॥ ४ ॥
करुणा-सिन्धु ! सहारा तेरा, तूही है रखवाला,
दीन अनाथ हुये हम हा हा तू दुख हरनेवाला ॥ ५ ॥
ऐसी कृपा-प्रकाश दिखा दें, अपनी दशा सुधारें,
आत्म-त्याग का मार्ग पकड़ लें, देश-प्रेम उर धारें ॥ ६ ॥
विस्तारें जातीय एकता भेद विरोध बिसारें।
भारत माता की जय बोलें, जल थल नभ गुञ्जारें ॥ ७ ॥

(५)

सद्गुरु-प्रार्थना

जीवन-नौका बहती है,
तव कृपा-सुरसरी-धार में, जीवन-नौका बहती है।
नहीं डाँड़ पतवार यहाँ है, बेसुध खेवनहार यहाँ है।
तुझ पर दारमदार यहाँ है, यों हँसती रहती है।
जीवन-नौका बहती है ॥ १ ॥
रुष्ट प्रकृति का हास यहाँ है, यम-यातना विलास यहाँ है।
तथा मृत्यु-उपहास यहाँ है, पर सब कुछ सहती है।
जीवन-नौका बहती है ॥ २ ॥
पार लगी तो भर पावेगी, डूब गई तो तर जावेगी।
निश्चय अपने घर जावेगी, आशा यों कहती है।
जीवन-नौका बहती है ॥ ३ ॥

स्वामीजी

(६)

इसे ही कहते हैं वैराग्य ?
तो विरागता के सचमुच ही फूटे समझें भाग्य !

निर्मल बसन बिगाड़ा उस पर धरा सुनहरी रंग,
लज्जित हुआ जाल माया का देख जटा का ढङ्ग।
क्रोध-कमण्डलु, मोह माल, कर लिया द्रोह का दंड,
लोभ लँगोट बाँध फैलाते हो प्रचंड पाखंड।
तन में भस्म रमाई, कर के भस्म सभी घर-बार,
अब चिमटा ले निकल पड़े हो करने जग उद्धार।
घर घर टुकड़े माँग रहे हो तप के बल हो धन्य!
दर दर नित धक्के खाते हो अहो कष्ट तप-जन्य!
चोरी, जुवा, लफंगेपन में हो तुम गुरुघंटाल,
गाँजा, भंग, अफीम, चरस रस मदिरा के हो काल।
संसृति में खुद फँसे हुए हो हमें दिखाते मुक्ति!
धन्य धन्य अध्यात्मशक्तिको, धन्य मुक्ति की युक्ति!
बहुत हो चुकी गुरुडल-लीला अब इससे मुँह मोड़,
बाबाजी, अब बन मनुष्य तू वनमानुसपन छोड़।

(७)

जीवन-मुक्त-पञ्चक

पूछते हो क्या मेरा नाम।
जड़ चेतन सब दिखा रहे हैं, मेरा रूप ललाम।
जल, थल, अनल, अनिल गगन, सब में हूँ मैं व्याप्त॥
विश्व बीज ओङ्कार तक, मुझ में हुआ समाप्त।
आत्म-ज्ञान की नाव में, बैठा हूँ सानन्द;
भव-सागर में घूमता, फिरता हूँ स्वच्छन्द।
भव-जल में मैं कमल हूँ, भव-घन में आदित्य;
भव-घट-मठ से व्योम हूँ, अद्भुत, अक्षर, नित्य।
नर-तनु है धारण किया, करने को खिलवाड़;
कोई देख सका नहीं, तिल की ओट पहाड़।

अहङ्कार का हार, डाल कल्पना के गले;
माया-मय संसार, बन बैठा मैं आपही।

(८)

नया फूल

खिला है नया फूल उपवन में।
मुदित हो रहे हैं सब तरुवर, बेलें हँसती मन में ॥ १ ॥
प्रात समीर लगी, सुख पाया, पहली दशा भुलाई,
जिधर निहारा उधर प्रेम की थाली परसी पाई ॥ २ ॥
रूप अनूठा लेकर आया, मृदु सुगन्धि फैलाई,
सब के हृदय-देश में अपनी प्रभुता-ध्वजा उड़ाई ॥ ३ ॥
जीत लिया है तूने सब को, ऐसी लहर चलाई,
रो कर, हँस कर, सभी तरह से अपनी बात बनाई ॥ ४ ॥

(९)

नौकरी

१—प्रश्न

सुन्दर हार कहाँ से पाया।
इसकी उजली चमक दमक ने सब का हृदय लुभाया ॥
बड़े मनोहर रत्न जड़े हैं—धन के दुर्ग खड़े हैं।
जिनके प्रभा-पूर्ण विशिखों ने रिपु दारिद्रय मिटाया ॥
सुन्दर हार कहाँ से पाया।

२—उत्तर

झूठा हार गले लटकाया।
इसकी कोरी तड़क भड़क ने दुनिया को बहकाया ॥
सभी काम इसका है नकली इसने हमें फँसाया।

भीतर कुछ बाहिर कुछ कुछ का कुछ है हमें बनाया ॥
झूठा हार गले लटकाया ।

सियारामशरण गुप्त

बाबू सियारामशरण बाबू मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई हैं। इनका जन्म भाद्रपद शुक्ल १५, सं० १९५२ को हुआ। इनकी रची हुई कविता की दो पुस्तकें अभी तक प्रकाशित हुई हैं—मौर्य-विजय और अनाथ। दोनों की रचना मौलिक है। इनके बहुत से फुटकर पद्य मासिक पत्रों में निकलते रहते हैं। इनकी कविता की भाषा बहुत शुद्ध और परिमार्जित होती है। हम इन्हें हिन्दी के होनहार सुकवियों में एक समझते हैं। इनकी रचना के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं :—

(१)

मौर्य-विजय

जग में अब भी गूँज रहे हैं गीत हमारे।
शौर्य्य वीर्य गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे ॥
रोम, मिश्र, चीनादि काँपते रहते सारे।
यूनानी तो अभी अभी हम से हैं हारे ॥
सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय,
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय ॥१॥
साक्षी है इतिहास हमीं पहले जागे हैं।
जागृत सब हो रहे हमारे ही आगे हैं ॥

शत्रु हमारे कहाँ नहीं भय से भागे हैं।
कायरता से कहाँ प्राण हमने त्यागे हैं॥
हैं हमी प्रकम्पित कर चुके सुरपति तक का भी हृदय,
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय ॥२॥
कहाँ प्रकाशित नहीं रहा है तेज हमारा।
दलित कर चुके सभी शत्रु हम पैरों द्वारा॥
बतलाओ वह कौन नहीं जो हमसे हारा।
पर शरणागत हुआ कहाँ कब हमें न प्यारा॥
बस, युद्धमात्र को छोड़कर कहाँ नहीं हैं हम सदय?
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय ॥३॥
कारणवश जब हमें क्रोध कुछ हो आता है।
अवनि और आकाश प्रकम्पित हो, जाता है॥
यही हाथ वह कठिन कार्य्य कर दिखलाता है—
स्वयं शौर्य्य भी जिसे देखकर सकुचाता है॥
हम धीर वीर गम्भीर हैं, है हमको कब कौन भय।
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय ॥४॥

(२)

अनुरोध

जब इस तिमिरावृत मन्दिर में,
उषालोक कर उठे प्रवेश,
तब तुम हे मेरे हृदयेश!
कर देना झट हाथ उठा इस,
दीपक की ज्वाला निःशेष,
यही प्रार्थना है सविशेष।
जब यह कार्य प्रपूर्ण कर चुके,
देह होमने के उपरान्त,

स्वयं प्रकाशित हो यह प्रान्त,
पूर्ण-प्रभा में कर निमग्न तब,
कर देना प्रदीप यह शान्त ;
देर न करना जीवन-कान्त !

(२)

माली

माली, देखो तो, तुमने यह,
कैसा वृक्ष लगाया है !
कितना समय हो गया, इसमें,
नहीं फूल भी आया है।

निकल गये कितने वसन्त हैं,
बरसातें भी बीत गईं ;
किन्तु प्रफुल्लित इसे किसी ने,
अब तक नहीं बनाया है !

साथ छोड़ती जाती हैं सब,
शाखा आदि रुखाई से ;
शुष्क हुए पत्तों को इसने,
इधर-उधर छितराया है।

अतुल तुम्हारे इस उपवन की,
इससे भी कुछ शोभा है ?
क्या निज कौशल दिखलाने को,
इसे यहाँ उपजाया है ?

अरे, काट ही डालो इसको,
अथवा हरा-भरा कर दो ;
कहें सभी—आहा ! तुमने वह,
कैसा वृक्ष लगाया है !

(४)

गूढ़ाशय

स्वर्ण-सुमन देकर न मुझे जब ,
तुमने उसको फेंक दिया ;
होकर क्रुद्ध हृदय अपना तब ,
मैं ने तुम से हटा लिया ।
सोचा—मैं उपवन में जाकर ,
सुमन इन्हें दिखलाऊँ लाकर ।
मैं ने जल्दी चित्त लगाकर ,
कण्टक-वेष्टन पार किया ।
स्वर्ण-सुमन देकर न मुझे जब ,
तुमने उसको फेंक दिया ।
उपवन-भर के श्रेष्ठ सुमन सब ,
जाकर तोड़ लिये सहसा जब ,
समझ तुम्हारा गूढ़ाशय तब ,
हुआ विशेष कृतज्ञ हिया ।
स्वर्ण-सुमन देकर न मुझे जब ,
तुमने उसको फेंक दिया ।

(५)

पथ

हे अलक्ष्यगामी पथ,
आये हो कहाँ से तुम ?
करके मनोरथ
यहाँ से तुम
यात्री हुए कौन दूर देश के ?
कौन-से प्रदेश के

तुम अधिवासी हो,—
कब के प्रवासी हो ?
किस दिन मायाजाल तोड़ के,
गेह निज छोड़ के,
बाहर हुए थे इस अक्षय भ्रमण को,
—विश्वमहासिन्धु सन्तरण को—?
हे सर्वत्रगामी चर,
विचर विचर कर
ढूँढ़ते किसे हो तुम,—
कौन प्रेयसी है वह, चाहते जिसे हो तुम ?
कोई कहीं मेला है,
या कि नव खेला है;
करके इसी से टेक
बीच बीच में अनेक
आये मार्ग-बालकों के ये समूह;
गाँवों से, विभेद बिजनों के व्यूह;
लेके इन्हें साथ में
पकड़ा के तर्जनी को हाथ में
आगे चले जाते तुम,
कहाँ, कहाँ इनको घुमाते तुम ?
दूर किसी नगरी में जाके,
भीड़ में समा के,
नई नई बातें देखते हो वहाँ;
जहाँ तहाँ
घूमते हो नागरिक बनके
चिन्ह मिटते हैं ग्राम्यपन के

घूम-फिर यहाँ वहाँ जाते हो,
गलियों में बिलाते हो !
फिर भी क्या रहता अधूरा है
मनोकाम,—होता नहीं पूरा है ?
देते हो दिखाई तुम आगे गये।
कौन—से नये नये ,
दृश्य देखने की तुम्हें साध है ?
पाई गति तुमने अबाध है।
ऊँचे ताड़ जैसे दैत्यकाय झाड़
रक्षक बनाये है जहाँ पहाड़,—
व्याघ्र की दहाड़ बड़ी,
हाथी की चिंघाड़ कड़ी
करती जहाँ हैं किसी पागल का अट्टहास;
दिन में भी रात का जहाँ है बास;
दुर्गम वहाँ के गर्त गड्ढों से
खड्ढों मे—
'मार्गभ्रष्ट' होने नहीं पाते तुम ;
शीघ्र लिखे अक्षरों में शीघ्रतर
सर्प-चाल चलकर,
कुशल-कथा-सी लिख जाते तुम !
स्रोतस्विनी आके पैर धोती जहाँ ,
कलकल कान्तध्वनि होती जहाँ ,
करके चमर तीरवासी द्रुम
कोमल कुसुम—
जहाँ तुम पै चढ़ाते हैं ;
मानो पुष्पशय्या-सी बिछाते हैं ;

लेने को विराम वहाँ तुम रुक जाते क्या ?
या कि किसी सेतु को संवारी-सम पाते क्या ?
या कि एक गोता साध करके,
भीतर ही भीतर अगाध जल तरके,
आगे अविराम चले जाते हो,
नृत्य और गान आदि से न छले जाते हो !
किन्तु जहाँ पारावार
फैला हुआ अगम अपार—
अन्तहीन है ;
हाहाकार—
होता नहीं जिसका विलीन है ;
लहरें विलोल-लोल हारकर ,
सुध-सी बिसार कर
मुँहसे गिराती हुई फेन-पुञ्ज, श्रान्त-क्लान्त,
आके अनजानें किसी दूर देश से अशांत,
गिरती धड़ाम से हैं तट पर,
किन्तु शीघ्र उठकर,
लौट वहीं जाती हैं उसी प्रकार ;
अन्य लहरों के लिए कूल का विरामागार
खाली कर जाती हैं ,
और फिर दृष्टि नहीं आती हैं ;
पूरी तीर्थयात्रा वहीं होती है तुम्हारी क्या ,
पैदल भ्रमण-वांछा मिटती है सारी क्या ?
फिर तुम दीख पड़ते हो नहीं ,
सागर के गर्भ में समाते तुम क्या वहीं ?

या किसी जहाज पर हो सवार
जाते हो अपर पार ?
बैठ के या नीर-गर्भ-गामी किसी पोत पर,
या कि महावीर ज्यों छलाँग एक मारकर
पार जा उतरते ;
ज्ञाति-हीन देशों में विहार फिर करते ?

* * * *

ज्ञात किसे, कहाँ कहाँ घूम तुम आये हो ;
कितनी विलुप्त-कथा,
हर्ष-व्यथा,
धूल के कणों में तुम यत्न से छिपाये हो;—
वर्षा, शीत, आतप में
—रात दिन मग्न रह मौन आत्मतप में—
कितने प्रवासियों को
—मर्त्यलोक-वासियों को—
तुमने ठिकाने पहुँचाया है ;
पार-सा लगाया है !
री दिन चर्या जहाँ लिखित तुम्हारी हो ,
आश्रुत युगों की गूढ़गाथा छिपी सारी हो ,
उस तहखाने तक तुम पहुँचाओ हमें ,
अपना अनन्तकोष खोलके दिखाओ हमें !

मुकुटधर

पण्डित मुकुटधर शर्मा बालपुर (जि० बिलासपुर) निवासी पांडेय लोचनप्रसाद शर्मा के छोटे भाई हैं। इनका जन्म सं० १९५२ के आश्विन मास में हुआ। पंडित लोचनप्रसादजी के साहित्यिक जीवन का इनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। बालकपन से ही इनकी रुचि का झुकाव हिन्दी-साहित्य की ओर हो चला था। बहुत छोटी अवस्था से ही ये पद्य-रचना करने लगे थे। सब से प्रथम सं० १९६६ में इनकी कविता पत्रों में प्रकाशित हुई। सं० १९७२ में इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा पास की। इसके बाद उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये ये प्रयाग के कृश्चियन कालेज में भरती हुये। किन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहने से थोड़े ही दिन पीछे घर लौट गये। ये आजकल अपने ही गाँव में अपने पिता द्वारा स्थापित पाठशाला में शिक्षक हैं।

अपने अग्रज भाई पंडित मुरलीधरजी के साझे में इन्होंने पूजाफूल, शैल-बाला, लच्छमा, मामा, परिश्रम आदि कई पुस्तकें लिखीं और अनुवादित की हैं। ये गद्य भी अच्छा लिखते हैं। भारतधर्म-महामंडल से इन्हें एक मानपत्र और रौप्यपदक भी मिल चुका है। बंगला भाषा भी ये जानते हैं।

मुकुटधरजी प्रकृति के बड़े उपासक हैं। बचपन से ही इन्हें चित्र, कविता और संगीत से बड़ा प्रेम है। हरे हरे खेतों, मैदानों और नदी के किनारे चट्टानों पर अकेले घूमने में इन्हें बड़ा आनन्द आता है। खेतों में काम करते हुये किसानों से और मुसाफिरों से बातें करने में ये मानसिक सुख का अनुभव करते हैं।

मुकुटधरजी एक होनहार कवि हैं। पहले कौमुदी-कुञ्ज में इनके पद्यों

को स्थान देने का मेरा विचार था; किन्तु इनके पद्यों का जब मैं संग्रह करने लगा, तब मैं इनकी प्रतिभा पर मुग्ध हो गया, और उससे विवश होकर मुझे इनके लिये यह स्थान देना पड़ा।

इनकी कविता के कुछ नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं:—

(१)

विश्व-बोध

खोज में हुआ वृथा हैरान।
यहाँ ही था तू हे भगवान॥
गीता ने गुरु-ज्ञान बखाना,
वेद-पुराण जन्म भर छाना;
दर्शन पढ़े, हुआ दीवाना,
मिटा न पर अज्ञान॥ १॥
जोगी बन सिर जटा बढ़ाया,
द्वार द्वार जा अलख जगाया।
जङ्गल में बहु काल बिताया,
हुआ न तो भी ज्ञान॥ २॥
शैया से ज्यों उठकर आया,
अन्वेषण में ध्यान लगाया;
पर तेरा कुछ पता न पाया,
हुआ दिवस अवसान॥ ३॥
अस्ताचल में हँसकर थोड़ा,
सूरज ने अपना मुख मोड़ा;
विहँगों ने भी मुझ पर छोड़ा,
व्यंग्य-बचन का बाण॥ ४॥
विधु ने नभ से किया इशारा,
अधोदृष्टि करके ध्रुव-तारा;

तेरा विश्व-रूप रस सारा,
करता था नित पान ॥ ५ ॥
हुआ प्रकाश तमोमय मग में,
मिला मुझे तू तत्क्षण जग में;
तेरा हुआ बोध पग पग में,
मिटा सकल अज्ञान ॥ ६ ॥
मुक्ति धाम हरि के मन्दिर में।
श्रीगुरु के उपदेश रुचिर में।
जीवमात्र के हृदय-अजिर में,
था तव वास-स्थान ॥ ७ ॥
दीन-हीन के अश्रु-नीर में,
पतितों की परिताप-पीर में,
सन्ध्या की चञ्चल समीर में,
करता था तू गान ॥ ८ ॥
सरल स्वभाव कृषक के हल में,
पतिव्रता रमणी के बल में;
श्रम-सीकर से सिञ्चित धन में,
विषय-मुक्त हरिजन के मन में,
कवि के सत्य पवित्र वचन में,
तेरा मिला प्रमाण ॥ ९ ॥
पर-पीड़न से रहित धर्म में,
समतापूर्ण ममत्व मर्म में;
विष्णु-भक्ति के सुधापान से,
भक्ति-सहित हरि-भजन-ध्यान में
महिमामय हरिनाम-गान में,
था तव तत्त्व निदान ॥ १० ॥

देखा मैंने—यहीं मुक्ति थी,
यहीं भोग था—यहीं भुक्ति थी,
घर में ही सब योग युक्ति थी,
घर ही था निर्वाण ॥ ११ ॥

(२)

ओस की निर्वाण-प्राप्ति

आ पड़ा हाय ! संसार कूप में, भाग्य-दोष से गिरकर ओस;
पर हर्षित होकर किया सुशोभित उसने स्फुट गुलाब का कोष ॥
उस ओर व्योम पर तारादल ने किया बड़ा उसका उपहास ।
इस ओर घेरकर काँटों ने भी दिया व्यर्थ ही उसको त्रास ॥
उस पर रजनी ने डाल कृष्णपट उसके यश को मन्द किया,
पर इन कुटिलों के कुटिल कृत्य पर ज़रा न उसने ध्यान दिया ॥
जब सूर्यागम का समय देखकर प्राची ने निज भरा सुहाग,
तब उसने भी हँसकर मिल उससे प्रकट किया अपना अनुराग ।
कब लख सकता था पर-सुख-कातर प्रात-वात उसका यह मोद,
कर दी खाली झट उसे गिरा कर उसने मृदु गुलाब की गोद ।
हो स्थानच्युत भी हुआ नहीं वह चिन्तित मन में किसी प्रकार ।
निज भग्न हृदय को ले पहनाया उसने तृण को मुक्ताहार ॥
जब कर्मसूत्र से खिंचकर नभ में उदित हुए भास्कर भगवान,
उस पर प्रसन्न हो किया उन्होंने उसको निज गुणरूप प्रदान ॥
पर किसी जन्तु के उद्धत पद ने उसे भूमि पर गिरा दिया ।
तब भी उसने पसीज पृथ्वी के निष्ठुर उर को सिक्त किया ॥
होकर विमुग्ध इस कृति पर रवि ने किया और भी हर्षप्रकाश ;
निज किरण दूत के द्वारा उसको बुला लिया फिर अपने पास ॥

इस भाँति ओस ने सत्कर्मों से प्राप्त किया जग से निर्वाण।
लेकर वीणा हाथों में सुमधुर किया प्रकृति ने तद्गुण गान ॥

(३)

कृषक का गीत

जब वर्षाऋतु की ऊष्मा में,
होकर श्रम से क्लान्त महान,
हल जोतते किसान छेड़ता
है जब अपनी लम्बी तान।
सुन तब उसे वाटिका से निज
करता मैं उर-बीच विचार,
खेतों में यों आर्त्तस्वर से
यह किसको है रहा पुकार !
या कि शिशिर की शीत-निशा में
मींज रहा हो जब वह धान,
सुनता हूँ तब शैया से मैं
उसका करुणा-पूरित गान।
भर जाता है जी, नेत्रों से—
निद्रा करती शीघ्र प्रयाण,
हृदय सोचता—जलते किसके
विरहानल से इसके प्राण।

(४)

अधीर

यह स्निग्ध सुखद सुरभित-समीर,
कर रही आज मुझको अधीर !

किस नील उदधि के कूलों से
अज्ञात बन्य किन फूलों से;
इस नव-प्रभात में लाती है,
जाने यह क्या वार्त्ता गभीर ! ॥ १ ॥
प्राची में अरुणोदय-अनूप,
है दिखा रहा निज दिव्य रूप;
लाली यह किसके अधरों की,
लख जिसे मलिन नक्षत्र-हीर !
विकसित सर में किञ्जल्क-जाल,
शोभित उन पर नीहार-माल;
किस सदय-बन्धु की आँखों से,
है टपक पड़ा यह प्रेम-नीर ! ॥ ३ ॥
प्रस्फुटित मल्लिका-पुञ्ज पुञ्ज
कमनीय माधवी कुञ्ज कुञ्ज
पीकर कैसी मदिरा प्रमत्त—
फिरती है निर्भय भ्रमर-भीर ! ॥ ४ ॥
यह प्रेमोत्फुल्ल पिकी प्रवीण,
कर भाव-सिन्धु में आत्मलीन;
मञ्जरित आम्र-तरु में छिपकर,
गाती है किसकी मधुर-गीर ! ॥ ५ ॥
है धरा वसन्तोत्सव-निमग्न,
आनन्द-निरत कल गान-लग्न,
रह रह मेरे ही अन्तर में
उठती यह कैसी आज पीर ! ॥ ६ ॥
यह स्निग्ध सुखद सुरभित समीर
कर रही आज मुझको अधीर ॥

(५)

रूप का जादू

(१)

निशिकर ने आ शरद-निशा में, बरसाया मधु दशों दिशा में,
विचरण कर के नभोदेश में, गमन किया निज धाम।
पर चकोर ने कहा भ्रान्त हो,
प्रिय-वियोग-दुख से अशान्त हो,
गया, छोड़ करके जीवनधन, मुझे कहाँ? हा राम!

(२)

हुआ प्रथम जब उसका दर्शन, गया हाथ से निकल तभी मन,
सोचा मैंने—यह शोभा की सीमा है प्रख्यात।
वह चित-चोर कहाँ बसता था,
किसको देख देख हँसता था;
पूँछ सका मैं उसे मोहवश नहीं एक भी बात॥

(३)

मैंने उसको हृदय दिया था, रुचिर रूप-रस-पान किया था,
था न स्वप्न में मुझको उसकी निष्ठुरता का ध्यान।
मन तो मेरा और कहीं था,
मुझको इसका ज्ञान नहीं था;
छिपा हुआ शीतल किरणों में, है मरुभूमि महान॥

(४)

अच्छा किया मुझे जो छोड़ा, मुझसे उसने नाता तोड़ा;
दे सकता अपने प्रियतम को कभी नहीं मैं शाप।
इतना किन्तु अवश्य कहूँगा,
जब तक उसको फिर न लहूँगा;
तब तक हृदय-हीन जीवन में, है केवल सन्ताप॥

(६)

कुररी के प्रति *

(१)

बता मुझे ऐ विहग विदेशी ! अपने जी की बात ।
पिछड़ा था तू कहाँ, आ रहा जो कर इतनी रात ?
निद्रा में जा पड़े कभी के, ग्राम्य मनुज स्वच्छन्द ।
अन्य विहग भी निज खोतों में सोते हैं सानन्द ॥
इस नीरव-घटिका में उड़ता है तू चिन्तित गात ।
पिछड़ा था तू कहाँ हुई क्यों तुझको इतनी रात ?

(२)

देख किसी माया-प्रान्तर का चित्रित-चारु दुकूल,
क्या तेरा मन मोह-जाल में गया कहीं था भूल ?
क्या उसकी सौन्दर्य-सुरा से उठा हृदय तव ऊब ?
या आशा की मरीचिका से छला गया तू खूब ?
या होकर दिग्भ्रान्त लिया था तू ने पथ प्रतिकूल ?
किसी प्रलोभन में पड़ अथवा गया कहीं था भूल ?

(३)

अन्तरिक्ष में करता है तू क्यों अनवरत विलाप ?
ऐसी दारुण व्यथा तुझे क्या, है किसका परिताप ?
किसी गुप्त दुष्कृति की स्मृति क्या उठी हृदय में जाग ?
जला रही है तुझको अथवा प्रिय-वियोग की आग ?

---

*दिन भर सूदूर खेतों में चुगने के पश्चात बड़ी रात गये महानदी के गर्भ में विश्राम करने को लौटती हुई कुररियों को सम्बोधित कर यह पद्य लिखा गया है। कुररी पक्षीविशेष है, जो जाड़े के दिनों में देखा जाता है।

शून्य गगन में कौन सुनेगा तेरा विपुल विलाप ?
बता कौन सी व्यथा तुझे है, है किसका परिताप ?

(४)

यह ज्योत्स्ना रजनी हर सकती क्या तेरा न विषाद ?
या तुझको निज जन्मभूमि की सता रही है याद ?
विमल व्योम में टँगे मनोहर मणियों के ये दीप ;
इन्द्रजाल तू उन्हें समझ कर जाता है न समीप ?
यह कैसा भयमय विभ्रम है कैसा यह उन्माद ?
नहीं ठहरता तू, आई क्या तुझे गेह की याद ?

(५)

कितनी दूर ? कहाँ ? किस दिशि में तेरा नित्य-निवास ?
विहग विदेशी आने का क्यों किया यहाँ आयास ?
वहाँ कौन तारा-गण करता है आलोक-प्रदान ?
गाती है तटिनी उस भू की बता कौन सा गान ?
कैसी स्निग्ध-समीर चल रही ? कैसी वहाँ सुवास ?
किया यहाँ आने का तूने कैसे यह आयास ?

(७)

स्वागत

स्वागत, हे सुन्दर सुकुमार !
आओ हृदय-मार्ग से मेरे प्रियतम प्राणाधार !
आओ, हे घनश्याम उदार !
आओ, प्रेम-वारि बरसाओ
विटप बेलियों में लहराओ
आओ, झरनों से मिल गाओ
हे कवि कुशल अपार ॥१॥

आओ ऊषा के संग आओ
किरणों के मिस कर फैलाओ
विकसित अमल कमल बन जाओ
पहनो मुक्ताहार ॥२॥
सरस-वसन्तानिल सरसाओ
श्रावण-घन बनकर नभ छाओ
शरदाकाश-विलास दिखाओ
चारु चन्द्रिकागार ॥३॥
आओ, भाव-सरित बन धाओ
हृदयस्थित सब कलुष बहाओ
तन-मन-नयन मध्य भर जाओ
मोहन ! छवि-आधार ॥४॥
स्वागत, हे सुन्दर सुकुमार !

(८)

ध्रुव-तपस्या

(१)

वन्धु तुम रहते हो किस हेतु, व्यर्थ ही यों अति चिन्तित-प्राण ।
दुःख में भी रखता है दैव, छिपाकर कभी सुसौख्य-विधान ॥

(२)

विटप पर कहाँ कुठाराघात, कहाँ नव किशलय मृदुल महान !
अग्नि में कहाँ अगर का दाह, चतुर्दिक कहाँ सुरभि सम्मान ॥

(३)

विषम विष-बुझी अनल सम कहाँ, विमाता की वह तीखी बात ।
मोह-तम-दलन प्रभा-मय अतुल, कहाँ ध्रुव-जीवन का सुप्रभात ।

(४)

पड़े गिरि-शृङ्ग भले ही टूट, भले नभ से हो वज्र-निपात।
इन्हें सह सकता मानी हृदय, नहीं पर कभी वचन-आघात॥

(५)

हिंस्र पशु-संकुल कानन बीच, भले ही दे वह अपने प्राण।
मान-हत हो माँगेगा नहीं, पिता से भी पर आश्रय-दान॥

(६)

परीक्षा ली मुनिवर ने खूब, हुआ ध्रुव उसमें पूरा पास।
कहा—तज गर्वित उर की आस, बँनू क्यों नहीं ईश का दास॥

(७)

"पितृ-गृह का अब वैभव भोग, गड़ेगा मुझ को बनकर शूल।
दुग्ध-घृत से भी होगा मधुर, मुझे हे मुने! वन्य फल मूल॥

(८)

विपिन में मुझ को अनुचर वृन्द, झुकावेंगे न भले निज माथ।
हरिण तो होंगे मेरे सखा, विहग तो देंगे मेरा साथ?॥

(९)

कहाँ यह कठिन मान का ध्यान! सुकोमल कहाँ गोद का बाल!
हुआ शावक तो भी क्या हानि, सिंह तो है ही सिंह कराल॥

(१०)

कहा फिर उसने—मुनिवर! आज, दिया जो मुझे पिता ने त्याग।
न तो क्या परम पिता भी कहो, दिखावेगा मुझ पर अनुराग?

(११)

चलूँ अब मैं उसके ही पास, रहूँ क्यों बनकर इतना दीन?
आत्म-सम्मान और अभिमान, उसी के चरणों में हों लीन॥

(१२)

भक्ति दृढ़ उसकी लख हो मुदित, दिया मुनिने उसको उपदेश।
वत्स हो पूरा तव मनकाम, चला तू जा यमुना-तट-देश॥

(१३)

खड़े थे विटप और द्रुम पुञ्ज, खिले थे चित्रित सुमन अनेक।
किया ध्रुव ने हो स्थित आरम्भ, वहीं अपना नीरव अभिषेक॥

(१४)

अभी करता था कल जो समुद, स्नेहमय जननी का स्तन-पान।
अहो आश्चर्य लखो यह आज, उसी की आराधना महान ! ॥

(१५)

न भोजन-अशन आदि की चाह, नहीं वर्षा हिम का है ध्यान।
हुआ है उसे ज्येष्ठ का तपन, चन्द्र की शीतल किरण समान॥

(१६)

जिन्हें कर सुरभित तैलासिक्त, सजाती जननी चुन चुन फूल।
जटिल हैं हुए कुटिल वे केश, आज उड़ती है उनमें धूल॥

(१७)

भक्ति से पूरित जिसका हृदय, बह रहा जिसमें प्रेम-प्रवाह,
राग-रञ्जित है वह तो उसे, विनश्वर तन की क्या परवाह ? ॥

(१८)

देखकर उसका साधन कठिन, अन्त में प्रकट हुए भगवान।
चतुर्भुज श्यामल भूषित-माल, चक्रधर पीताम्बर-परिधान॥

(१९)

वत्स, वर माँग, देख तव भक्ति, तुष्ट मैं तुझ पर आज महान।
श्रवणकर बोला ध्रुव कर जोड़, प्रेम-विह्वल हो गद्गद्-प्राण॥

(२०)

भक्तवत्सल ! हे करुणाधाम ! आर्तिहर ! जगदाधार ! अनन्य !
तुम्हारे दर्शन पाकर आज, हुआ है जीवन मेरा धन्य ॥

(२१)

शरण अशरण के तुमही प्रभो ! अनाथों के तुमही हो नाथ।
न कोई जिसका जग में बन्धु, तुम्हीं बस धरते उसका हाथ ॥

(२२)

न योगी भी पाते तव भेद, नेति कह श्रुतियाँ होती मौन।
करूँ फिर कैसे तव गुणगान, क्षुद्र मैं गणना मेरी कौन ? ॥

(२३)

माँगना होगा तुमसे मुझे ! तुम्हीं तो हो प्राणों के प्राण।
बिना बोले ही देखें आज, हृदय की लो तुम मेरे जान ॥

(२४)

देखकर दिव्य तुम्हारा रूप, हो रही वाणी मूक महान।
कहो बरसा आँखों से नीर, करा दूँ तुमको पूरा स्नान ॥

(२५)

किया जिसने पङ्कज-रज-पान, फिरे वह अलि क्या कुरवक ओर ?
चाह है बस हो श्रीमुखचन्द्र, नयन हों मेरे मुग्ध चकोर।

(२६)

भक्ति-मय सुन उसके ये वचन, परम ही मुदित हुए घनश्याम।
दिया अति आग्रह-पूर्वक उसे, पिता का राज्य और धन धाम ॥

(२७)

करो तुम राज्य यहाँ बहु काल, मिलेगा अन्त तुम्हें ध्रुव-लोक ॥
जहाँ है विमल शान्ति सुख भोग, नहीं रुज, व्याधि और दुख शोक ॥

(२८)

सुरों ने गाकर मधुमय गीत, बड़ाई की ध्रुव की बहु वार।
व्योम में बजे मनोहर वाद्य, सुमन की वर्षा हुई अपार॥

(२९)

दयामय दीनबन्धु भगवान, सुनो होता जिसपर अनुकूल॥
कृपा करते उस पर सब लोग, उसे कण्टक भी होता फूल॥

(३०)

मिटाकर ध्रुव का जिसने खेद, कर दिया सुखी उसे भरपूर।
करे वह करुणासिन्धु दयालु, हमारे पाप ताप दुख दूर॥
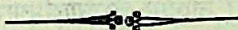
वियोगी हरि

वियोगी हरिजी का पूर्व-नाम पंडित हरिप्रसाद द्विवेदी था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। इनके पिता का नाम पंडित बलदेवप्रसादजी द्विवेदी था। इनका जन्म छत्रपुर राज्य (बुन्देलखण्ड) में चैत्र शुक्ल रामनवमी, संवत् १९५३ वि० में हुआ था। ये ६ महीने के भी न हो पाए थे कि इनके पिताजी का देहान्त हो गया। बाल्यावस्था में इनका पालन-पोषण ननिहाल में हुआ। इनके नाना पं० अच्छेलाल तिवारी का इन पर विशेष प्रेम था। विद्यारम्भ के पूर्व ही, ७ वर्ष की आयु में, इन्होंने सर्वप्रथम एक कुण्डलियां बनाई थी। ८ वर्ष की अवस्था में घर पर ही इनकी हिन्दी की शिक्षा प्रारम्भ हुई। हिन्दी के साथ ही साथ ये पं० अनन्तरामजी त्रिपाठी से संस्कृत भी पढ़ते थे। आरम्भ से ही इनको गो० तुलसीदास की विनयपत्रिका तथा श्रीमद्भागवत

अत्यन्त प्रिय हैं। हिन्दी की शिक्षा पा चुकने के पश्चात् ये छतपुर के हाईस्कूल में अँग्रेज़ी पढ़ने लगे, और सन् १९१५ ई० में मैट्रीकुलेशन-परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। छात्रावस्था से ही ये एकान्त-प्रिय हैं। स्कूल के लड़कों के साथ खेलकूद में कभी सम्मिलित नहीं होते थे। स्कूल की पढ़ाई समाप्त होने पर इनकी प्रवृत्ति दर्शनशास्त्र की ओर हुई। दर्शन के अध्ययन में इनके साथी छतपुर-नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी बा० गुलाबराय-जी एम० ए० तथा बा० भोलानाथजी बी० ए० थे। उस समय ये अद्वैतवाद की ओर विशेष रूप से झुक रहे थे। बाल-काल से ही वर्तमान छतपुरनरेश महाराजा विश्वनाथसिंहजू देव की धर्मपत्नी गोलोक-वासिनी श्रीमती कमलकुमारी देवी (उपनाम श्रीजुगलप्रियाजी) इन्हें पुत्रवत् प्यार करती थीं। श्रीमतीजी माध्व-सम्प्रदाय की अनुयायिनी थीं। उनकी सत्सङ्गति में पड़कर हरिजी अद्वैतवाद की सीमा से निकलकर द्वैतवादी हो गए।

लगभग १८ वर्ष की आयु में इन्होंने प्रेम-शतक, प्रेम-पथिक, प्रेमाञ्जलि और प्रेमपरिषह नामक पुस्तकें प्रेम-धर्म पर लिखीं, जिन्हें आरा के प्रेम-मन्दिर के प्रेमपुजारी स्व० कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन ने प्रकाशित की थीं। इसी समय इनके विवाह की चर्चा चली। घरवालों के बहुत आग्रह करने पर भी इन्होंने विवाह नहीं किया और आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

श्रीमती महारानी साहिबा की चित्तवृत्ति भगवद्भक्ति तथा तीर्थाटन की ओर अधिक थी। हरिजी ने उन्हीं के साथ भारत के सम्पूर्ण तीर्थों की कई बार यात्रा की। तीर्थ-यात्रा से इनको चित्त-शान्ति के साथ ही साथ संसार के अनुभव भी खूब हुए। इसी तीर्थ-यात्रा के सम्बन्ध में ये पहले-पहल सन् १९१९ ई० में प्रयाग आए। यहाँ श्रीपुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने इनको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिए रोक लिया। यहाँ 'सम्मेलन-पत्रिका' के सम्पादन के अतिरिक्त इन्होंने 'संक्षिप्त सूरसागर' का भी सम्पादन किया। इसी बीच में इन्होंने 'तरङ्गिणी' नामक एक सुन्दर

गद्यकाव्य की भी रचना की। बीच में फिर श्रीमतीजी के साथ तीर्थाटन के लिए चले गए। वहाँ से लौटकर इन्होंने बँगला के प्रसिद्ध 'शुकदेव' के ढङ्ग पर 'शुकदेव' नामक एक खंड-काव्य खड़ीबोली में लिखा।

इसके बाद फिर श्रीमतीजी के साथ इन्होंने दक्षिण के तीर्थों के लिए प्रस्थान किया। यात्रा से लौटते ही चैत्र शुक्ल ७, संवत् १९७८ में श्रीमतीजी का सहसा गोलोकवास हो गया। श्रीमतीजी के स्वर्गवास से इन्हें असह्य आन्तरिक वेदना पहुँची। इस दैवी बज्राघात से प्रयाग आकर त्रिवेणी तट पर इन्होंने माध्व-सम्प्रदाय के अन्तर्गत—जिसकी आज्ञा इनके गुरुदेव (रानी साहिबा) ने स्वर्ग-प्रस्थान के समय दी थी—संन्यास ले लिया। इनका संन्यासाश्रम का नाम श्रीहरितीर्थ है। परन्तु इन्होंने अपने सर्वस्व के वियोग में आजन्म के लिए अपना नाम ही वियोगी हरि रख लिया।

'सम्मेलन-पत्रिका' का सम्पादन इन्होंने चार वर्ष तक किया। इधर इनकी चार नई पुस्तकें फिर प्रकाशित हुई हैं—'श्रीछद्मयोगिनी' (नाटिका), 'साहित्य-विहार, कवि-कीर्तन और अनुराग-वाटिका। साहित्य-विहार में इनके भक्तिरस-पूर्ण सरस लेख हैं। कवि-कीर्तन में हिन्दी के १०० कवियों का पद्यात्मक परिचय दिया गया है। अनुराग-वाटिका में प्रेम-भक्ति पर ब्रजभाषा में १०० पद हैं। इन्होंने, 'ब्रज-माधुरी-सार' नामक एक सरस ग्रंथ का सम्पादन भी किया है। यह ग्रंथ ब्रजभाषा की भक्ति-विषयक कविता का एक अपूर्व संग्रह है। इसमें ब्रजभाषा के आचार्य भक्त कवियों की गवेषणापूर्ण तुलनात्मक जीवनी के अतिरिक्त उनकी बहुत सी अप्रकाशित और प्रकाशित कविताओं का सटिप्पण संग्रह भी है। कुछ संकलित छोटी मोटी पुस्तकों के अतिरिक्त इन्होंने गो० तुलसीदास-कृत विनय-पत्रिका पर हरि-तोषिणी नाम की एक बृहत् टीका भी लिखी है। इनकी बाल्-रचनाओं में 'वीर हरदौल' (नाटक) और 'मेवाड़-केशरी' (काव्य) बहुत ही उत्तम थे। इन्होंने लगभग ७०० उर्दू शेरों की एक 'प्रेम-गजरा' नामक पुस्तक भी लिखी थी। पर इनकी स्वाभाविक लापरवाही के कारण अब इन पुस्तकों का पता

नहीं। अनन्य वैष्णव होते हुए भी इनमें विचार-सांकीर्ण्य नहीं है। प्रायः पाँच वर्ष से ये फल पर ही जीवन-निर्वाह करते हैं, और आजीवन अन्न न खाने का इन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया है। कविता ये विशेष कर ब्रज-भाषा में ही किया करते हैं, खड़ी बोली में बहुत ही कम। खड़ी बोली की कविता में उर्दू-मिश्रित भाषा को ये अधिक पसन्द करते हैं। अँगरेज़ी के अतिरिक्त इन्हें संस्कृत और बँगला का भी ज्ञान है। इनकी रचना में भक्ति, प्रेम और विरह का अच्छा वर्णन पाया जाता है।

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त इन्होंने कुछ राष्ट्रीय पुस्तकें भी लिखी हैं जिनके नाम ये हैं :—

चरखा-स्तोत्र (संस्कृत पद्य), महात्मा गांधी का आदर्श, बढ़ते ही चलो (गद्य), चरखे की गूँज, वकील की रामकहानी, असहयोग-वीणा, वीर वाणी (पद्य), 'श्रीगुरुपुष्पांजलि'—इनकी गुरु-भक्ति पूर्ण कविताओं का संग्रह।

सम्पादित पुस्तकों के नाम ये हैं :—

ब्रजमाधुरी-सार, संक्षिप्त सूरसागर, विहारी-संग्रह, सूरपदावली, वृत्त-चन्द्रिका, भजन-माला, योगी अरविन्द की दिव्यवाणी, हिन्दी-गद्य-रत्नावली, हिन्दी-पद्य-रत्नावली, और मीराबाई आदि का पद्य-संग्रह। आजकल ये ब्रजभाषा में वीररस संबन्धिनी 'वीर-सतसई' नाम की एक सतसई लिख रहे हैं।

इनकी कविता के कुछ नमूने आगे दिये जाते हैं :—

(१)

दोहे

जाके पान किये सबै, जगरस नीरस होत।
जयतु सदा सो प्रेमरस, उर आनन्द उदोत ॥१॥
बैन थके तन मन थके, थके सबै जग ठाट।
पै ये नैना नहिं थके, जोहत तेरी बाट ॥२॥

प्रेम तिहारे ध्यान में, रहे न तन को भान।
अँसुअन मग बहि जाय कुल, कान मान अभिमान ॥३॥
जापै तृन लौं वारिये, राग, विराग, सुहाग।
बड़े भाग तें पाइये, सो अगाध अनुराग ॥४॥
ब्रजबानी पद माधुरी, मधुसानी रसलीन।
विधिरानी गावति अजौं, जासु गुननि लै बीन ॥५॥

(२)

स्तुति

जय गोविन्द हरे,
बोल हरे, जय बोल हरे। जय गोविन्द०।
जय नँदनन्दन, दुष्ट निकंदन
केशव बोल हरे। जय गोविन्द०।
श्रीराधाधव, जय श्यामाधव
माधव बोल हरे। जय गोविन्द०।
जयति मुरारे, गिरिवरधारे,
प्यारे बोल हरे। जय गोविन्द०।
ललित त्रिभंगी, रतिरसरंगी,
न्यारे बोल हरे। जय गोविन्द०।
जय ब्रजवल्लभ, गोपीवल्लभ,
वल्लभ बोल हरे। जय गोविन्द०।
रुक्मिनिवल्लभ, वल्लभ वल्लभ
वल्लभ बोल हरे। जय गोविन्द०।
कुञ्जविहारी, रसिकविहारी
प्रीतम बोल हरे। जय गोविन्द०।
घट-घट-वासी, आनँदरासी,
अनुपम बोल हरे। जय गोविन्द०।

भव-भय-भंजन, खल-दल-पुञ्ज—
विभञ्जन बोल हरे। जय गोविन्द०।
जन-दृग-अञ्जन, निखिल निरञ्जन,
रंजन बोल हरे। जय गोविन्द०।
श्याम हरे, घनश्याम हरे जय
हरि हरि बोल हरे। जय गोविन्द०॥
राम हरे, अभिराम हरे जय,
हरि हरि बोल हरे। जय गोविन्द०।

(३)

सवैया

(१)

जो अनवेद्य अनादि अनन्त अखंड अनन्य अनूप अकाम है।
जाहि निरूपहिं वेद सदा कहि नित्य निरीह निरंजन नाम है॥
जो जनरंजन दुष्टविभंजन गंजन-गर्व 'हरी' सुखधाम है।
सोइ त्रिलोक को नाथ अली वृषभानुलली की गली कौ गुलाम है॥

(२)

जब ब्रह्म निरंजन ध्याइ रही मनमन्दिर मोहन आइ गयो।
'हरिजू' मुख मोरि नचाइ गयो दृग ओंठनि में मुसुकाइ गयो॥
करि औचक आँखमिचौनी लला मुख चूमि सुधारस प्याइ गयो।
तुव ग्यान गमाइ कै प्रीति दृढ़ाइ कै प्रेम कौ पाठ पढ़ाइ गयो॥
(श्रीछद्मयोगिनी नाटिका)

(४)

शिखरिणी

(१)

बहैं धीरी धीरी, जहँ पवन सीरी उमँग की,
लता लूमैं झूमैं, प्रिय-सुरति घूमैं मद छकी।

मिलैगो 'उत्साही, पुर' तहँ तुम्हें आनँदकरी,
चले जैयो पंथी, यह मग धरे प्रीतम-पुरी ॥

(२)

मिलै उत्कण्ठा को, उपवन न काको मन रमै ।
घनी छाया लीजौ, नहिं बिलम कीजौ तिहि समै ॥
कटाक्षों ते लज्जा, तिय जब बुलावै मदभरी ।
चले जैयो पंथी, नहिं तहँ बितैयो इक घरी ॥

(३)

त्रिलोकी मैं व्यापी, अति तरल तृष्णाकुलवती,
'निवृत्ती-आवृत्ती', द्वय तटवती तीक्षण गती ।
बहै दोऊ ओरैं, सदसत हिलोरैं करम की,
तरंगें कर्त्तव्या, करतब सुधर्मांधरम की ॥

(४)

कँपै कैसी नैया, थरथर सुनैया कोउ नहीं ।
अहो डूबी भैया, इहि जग बचैया कोउ नहीं ।
पुकारैं यों रोवैं, सरबस जु खोवैं नहिं जगैं,
सुनो, पंथी प्यारे, मृगसरि-किनारे जिनि लगै ॥

(प्रेम-पथिक)

(५)

प्रेमाञ्जलि

(१)

तू शशि मैं चकौर, तू स्वाती मैं चातक तेरा प्यारे !
तू घन मैं मयूर, तू दीपक मैं पतङ्ग ऐ मतवारे !
तू धन मैं लोभी, तू सरबस मैं अति तुच्छ सखा तेरा !
सब प्रकार से परम सनेही ! मैं तेरा हूँ तू मेरा !

(५)

देखी प्यारे गगन तल में, लालिमा ज्यों प्रभा की
धाया त्योंही समझ कर "मैं हाथ तेरे गहूँगा—
ठंडा होगा हृदय"-पर, हा ! नाथ, धोखा दिया क्यों ?
मेरा ही है रुधिर उसमें, दुग्ध जो था बहाया !

(६)

शुकदेव

है यदि पुत्र स्वर्गप्रद तो फिर धर्म निरर्थक ही है,
जिनके बहुत पुत्र हैं उनके जीवन सार्थक ही हैं।
बहु सुत जननी खरी, कूकरी, अधम शूकरी नारी ;
नखी नागिनी आदि जीव क्या सभी स्वर्ग-अधिकारी ? ॥१॥
क्षुद्र जीव-समुदाय सभी यदि पुत्रवान होने से—
सहज ऊर्ध्वगति पा सकते हैं विषय-बीज बोने से—
तो फिर वृथा कर्म-साधन सब आश्रमधर्म वृथा है ;
स्वर्ग-लाभ करने की क्या ही सच्ची सहज प्रथा है ! ॥२॥
कौन नर्क जावेगा ? हैं यदि सभी स्वर्ग-अधिकारी,
ऐसा क्षुद्र तर्क करते क्यों ? होकर ब्रह्म-विचारी।
स्वर्गवास, यश, पौरुषादि, यदि पुत्र-लाभ से पाते—
कर लालन-पालन ही उसका, कौन यमालय जाते ? ॥३॥
ऐसे नश्वर गृह-सुख से क्या ज्ञानी मोहित होगा ?
जिसमें जरा-मरण का जिसने सदा दुःख ही भोगा।
हितकर समझ अंक में जिनके गृही सदा सोते हैं,
वे ही सुत, वनितादि मूढ़ के प्रति-बन्धक होते हैं ॥४॥
समझ चुका जो भेद जगत का 'है यह मिथ्या माया',
उसके आगे सभी धूल है कनक, कामिनी, काया।

यह यौवन गिरि-नदी-वेग सम उसको लख पड़ता है,
क्षणिक शरीर जान यम से भी बाहु ठोंक लड़ता है ॥५॥
जग-असारता, आयु-चपलता, नश्वरता भोगों की,
देख देख भी नहीं चिकित्सा की जिसने रोगों की।
उस अन्धे को जन्म-मरण की बदी भोगमानी है,
जीवन उसका पाप ताप की बनी राजधानी है ॥६॥
सूर्योदय के साथ अस्त यदि उसका नियमित होगा,
धीरे धीरे जीवन भी तब क्या न अस्तमित होगा ?
किन्तु, अहो ! आश्चर्य महा है, जीव मूढ़ है कैसा ?
इस असार संसार-मोह में पगा हुआ जो ऐसा ॥७॥
जन्म-जरा को देख नहीं कुछ मरने का भय खाता,
मोहमयी मदिरा निशिवासर है पीता ही जाता।
ऐसे ज्ञानशून्य पथ का क्या शुक अनुसरण करेगा ?
इन कामान्ध विमूढ़ जनों का क्या अनुकरण करेगा ? ॥८॥

(७)

अनुराग-वाटिका

जयति माधुर्य-रस-राज-विस्तार-हित,
प्रगट सानंद वृषभानु-नृपनंदिनी।
उदित व्रज-नील-नभ-तरुनि-तारावली—
वलित नँदनंद-मुख-चंद-धृत चंदिनी ॥
जयति नित कृष्ण-रुचि-स्वाति-हित-चातकी,
चारु घनश्याम बिच दिव्य दुति दामिनी।
कृष्ण-अँग-अंग-श्रृङ्गार-मधु-माधुरी,
ललित लावण्य-निधि, रास-रस-स्वामिनी ॥
जयति गोविन्द-दृग-कंज-रस-मधुकरी,
कृष्ण-मन-भृङ्ग-विश्राम-हित पद्मिनी।

मीन पिय-नीर मधि, विरह-बस बावरी,
सुरति-सुचि-सुभग-सौभाग्य सुख-सद्मिनी ॥
जयति रमनीय कमनीय कल कुञ्ज विच,
स्याम-गल मेलि भुज केलि-अनुरागिनी ।
छलित हरि छद्मिनी छद्मते सहज ही,
मिलित पुनि धाय भरि अङ्क वड़भागिनी ॥

(८)

पद

(१)

श्रीब्रजराज कुँवर की बानिक कैसी आजु बनी ।
बनतें बन्यौ लटकि झुकि झूमत आवत गोप-धनी ॥
उड़ति गगन गोधूरि धूँध चहुँ छाई घुमरि घनी ।
मानहुँ सुखद साँझ सुख-बरषा बरसति ब्रज-अवनी ॥
नव घन कांत कलेवर कोमल नील कमल कमनी ।
लसत पीत अंबर अति आभा दामिनि-दुति-दमनी ॥
अमल कपोलनि ललित लटुरियाँ लहरैं रेनु-सनी ।
करत पान मुख-इन्दु-सुधारस मनु मद-मत्त फनी ॥
तिलक-रेख राजति ललाट पै झलकति स्वेद-कनी ।
मद-बिभोर अँखियाँ रतनारीं रस-आसव-स्रवनी ॥
सुचि सरसाधर-मृदुल-माधुरी मोहति ब्रज-रमनी ।
दंतावलि रुचि चारु चिबुक त्यों बिरह-श्रांति-समनी ॥
तोरति हिय-बनमाल मंजु मुनि-मन-मरजाद तनी ।
गुंजा-ग्रथित हार बाजूबँद, कुसुम-कलित कँकनी ॥
आयत उर आजानु बाहु-बल-विजय अकथ कथनी ।
कलित कनक-किंकिनि कटि काछिनि सत मनोज-मथनी ॥

बाजति नूपुर पायनि सुनि रव लाजति प्रनव-धनी।
पद-नख-चंद्र-चंद्रिका भेदति कोटिक तिमिर-अनी॥
मोहत वेनु बजावत मोहन, जाय न छबि बरनी।
धौरी धूमरि धेनु दुलारत आवत रसिक-मनी॥
नखसिख की सुखमा लखि मोहित सारद धरधरनी।
हरि श्रीगोकुलेस-नंदन की कीरति कछुक भनी॥

(२)

हाँ, हम सब पंथन तें न्यारे।
लीनों गहि अब प्रेम-पंथ हम और पंथ तजि प्यारे॥
नाथँ कराय सकैं घट दरसन दरसन मोहन तेरो।
दिन दूनो नित कौन बढ़ावै या हिय माँझ अँधेरो॥
तो अभेद कौ भेद कहा ए बेद बापुरे जानैं।
वा झिलमिली झलक कौ नीरव रहस कहा पहिचानैं॥
सूल-ग्रन्थ जे नहिँ निरवारत बिरह-ग्रन्थि पिय तेरी।
पचि तिनमें सुरझत सपनेहुँ नहिँ उरझन बढ़ति घनेरी॥
सब धर्मन तें परे धर्म जो प्रीतम-प्रेम-सगाई।
ताकी धर्म-अधर्म-व्यवस्था कौन सम्रृति करि पाई॥
जो तुव ललित रूप कौ लालन बरन-भेद नहिँ पावै।
ऐसे नीरस बरन-धर्म कों पालि कौन पछितावै॥
जो पै रस-आश्रम नहिँ सेयौ अति झीनो रँगभीनो।
नाहक आश्रम-धर्म साधिकै कौन धर्म हम कीनो॥
याही तें सब वेदविहित अरु लोक-धर्म हू त्यागे।
तो छबि-छाक-छके हरि अब तौ नेह-सुधा-रस पागे॥

(३)

पियारे, धन्य तिहारो प्रेम।
साँचेहु बिना प्रेम बसुधा पै झूठे नीरस नेम॥

भर्‍यो अगम सागर कहूँ, तहँ खेलति उमगि हिलोर।
ता सँग झूलति झूलना, कोइ नैन-रँगीली-कोर॥
मानस मधि झरना झरत, इक रस रस-रसिक रसाल।
मधु-समीर आँगुरिनि पै, कोइ विहरत मत्त मराल॥
विरह-कमल फूल्यौ कहूँ, चहुँ छायौ दरस-पराग।
बँध्यौ बावरो अलि अधर, तहँ लहत सनेह-सुहाग॥
धरी कहूँ इक आरसी, अति अद्भुत अलख अनूप।
उझकि उझकि झाँकत कोई, तहँ धूप छाँह कौ रूप॥
अरी प्रेम की पीर! तू, जब मचलति सहज सुभाय।
करि चख-पूतरि तोय को, तब लाड़ लड़ावत आय॥
उठी उमगि घन-घटा कहुँ, पै रही हियें घुमराय।
परत्ति फुही अँखियान में, यह कैसी प्रेम-बलाय॥
कहा कहौं वा नगर की, कछु रीति कही नहिँ जाय।
हेरत हिय-हीरा गई, यह हेरनि हाय हिराय॥
इक मरजीवा मरमी बिना, हरि मरम न समुझै कोय।
हिलग-तीर की पीर बिनु, कोइ कैसे मरमी होय॥

(४)

मो बौरी के ढिग मति बैठै।
हौं तौ बठी ही अपने रँग, या गृह तू मति पैठै॥
कैसी लोक-लाज कुल कैसो, कहा निगम की बानी।
भ्रमरी है हरि-बदन-कमल पै, घूमत फिरति दिवानी॥
प्रान-निछावरि दै लीनी जो, प्रीतम की दृग-कोरैं।
तो काहे यह जाति जरीं सब, मोकों मिलि झकझोरैं॥
सरबस सौंपि जु चाख्यौ चखभरि, पिय-छवि-आसव न्यारो।
देहि बताय नैक काहू कौं, यामें कहा इजारो॥

मो अँखियन गड़ि गई गँसीली, पिय-चितवनि अनियारी।
किरकिरात पै नन तिहारे, या मति पै बलिहारी॥
आई कहा निकासन उर तें, काँटो अरी हठीली।
चुभ्यौ रहन दै लागति वाकी, मीठी कसक चुभीली॥
जाहि करै किन सुधा-पान तू, हौं तौ विषही घूँट्यौ।
हानि-लाभ कछु वै नहिँ जानति, सब लुटाय रस लूट्यौ॥
लागी लगन नायँ छूटैगी, भई स्याम की दासी।
नेम-सिंधु तजि प्रेम-बुंद की, हौं चातकी पियासी॥

(५)

आये नैन पाहुने तेरे।

द्वार खोलि दै प्रेम-भौन कौ, करि पहुनई सबेरे॥
सुनि-सुनि तेरे दरस-तीर्थ कौ, पुन्य महातम भारी।
छानत-छानत धूरि कहाँ तें, आये हैं ब्रतधारी॥
बिरह-बावरे इन पंथिन कों, फल-इच्छा नहिँ कोई।
जाहि देखि उमड़े रस माँगत, एक 'रूप-पट' सोई॥
क्यों नहिँ तीरथ सुफल करावत, छाँड़ि गरूर हठीले।
हरि ढूँढ़ेहू नायँ मिलैंगे, ऐसे नेह-रँगीले॥

(६)

अरे चलि वा मन्दिर की ओर।

करत शक्ति-आराधन जहँ नित, वीर भक्त उठि भोर॥
तात बिमल निज हृदय-रक्त सों, करि वाकौ अभिषेक।
क्यों न चढ़ावत ललित लाल तेंहि, मौलि-माल गहि टेक॥
लाज-अग्नि सोइ धूप-दीप पुनि, नव नैवेद्य-विधान।
अपने कर तें काटि सीस निज, करु पुनीत बलिदान॥
रौद्र प्रचण्ड अखण्ड ज्योतिमय, करु नीराजन जाय।
करि हरि विनय वीर वाणी सों, शक्तिहिँ लेहि रिझाय॥

(७)

बहैगो नैननि तें कब नीर।

देखि-देखि रण-रङ्ग रङ्गीले, अचल बाँकुरे बीर॥
छिरक्यौ देखि रकत केसरिया, बागेन पै सुचि रङ्ग।
फूलि उठैगी यह छाती कब, ह्वै हैं पुलकित अंग॥
अरि ललकार सुनत ही मुख पै, चढ़िहै ओज अखण्ड।
फरकि उठैंगे अति प्रचण्ड कब, यह दोऊ भुज-दण्ड॥
लैहैं मूँदि भानु-मण्डल कब, ह्वै पवि-पञ्जर बाण।
चढ़िहैं हरि कब बलि-बेदी पै, हँसि हँसि कै यह प्राण॥

(९)

वीर-सतसई के कुछ दोहे

एक छत्र बनकौ अधिप, पंचानन ही एक।
गज-शोणित सों आप ही, कियौ राज अभिषेक॥ १॥
दंति-कुम्भ-शोणित सनी, लसति सिंह की डाढ़।
मनु मङ्गल ससि-शृङ्ग कों, भेंटत भरि भुज गाढ़॥ २॥
छिन्नभिन्न ह्वै उड़ति क्यों, मद भौंरन की भीर।
दार्‌यौ कुम्भ करीस कौ, कहूँ केहरी बीर॥ ३॥
चाटत प्रभु-पद स्वान लों, फिरत हलावत पूँछ।
बनत कहा अब मरद तू, यों मरोरि कैं मूँछ॥ ४॥
शायर औध-नवाब की, करूँ कहा तारीफ।
राज-काज कों पीठि दै, सोचत बैठि रदीफ॥ ५॥
रँगत रहे रिपु-रुधिर में, केसनि जे निरवारि।
तिन के कुल अब हीजड़ा, काढ़त माँग सँवारि॥ ६॥
लखि जिनके मजबूत भुज, काँपत हे जमदूत।
भारत-भू तें उठि गये, वै बाँके रजपूत॥ ७॥

पावस ही में धनुष अब, नदी-तीर ही तीर।
रोदन ही में लाल दृग, नौ रस ही में बीर॥ ८॥
जोरि नाम संग 'सिंह' पद, करत सिंह बदनाम।
ह्वैहो कैसे सिंह तुम, करि सृगाल के काम॥ ९॥
या तेरी तरवार में, नहिँ कायर अब आव।
दिल हू तेरो बुझि गयो, वामें नैक न ताब॥१०॥

गोविन्ददास

बाबू गोविन्ददासजी का जन्म सं० १९५३ में विजया-दशमी को हुआ। ये जबलपुर के सुप्रसिद्ध दीवान वहादुर सेठ जीवनदासजी के पुत्र, और राजा सेठ गोकुलदासजी के पौत्र हैं। ये जाति के महेश्वरी वैश्य हैं।

बालकपन से ही ये स्वभाव के बड़े सौम्य हैं। खेलने के लिये बहुत से खिलौने आते थे, वे सब एक मकान में सजाकर रक्खे जाते थे। ये उन्हें देखकर ही सुख का अनुभव कर लेते थे। कभी उन्हें हाथ में लेकर तोड़ते-फोड़ते न थे।

पाँच वर्ष की अवस्था में इनका शिक्षारंभ हुआ। इनको घर पर ही पढ़ाने के लिये बहुत योग्य शिक्षक नियुक्त किये गये। शिक्षकों में राय-बहादुर पंडित विश्वम्भरनाथ ठुलल और बाबू द्वारकानाथ सरकार, प्रोफ़ेसर गवर्नमेंट कालिज जबलपुर, का नाम विशेपरूप से उल्लेखनीय है। अंग्रेज़ी में बी० ए० तक का कोर्स इनको घर पर ही पढ़ाया गया। निरर्थक विषय नहीं पढ़ाये गये। अंग्रेज़ी साहित्य की शिक्षा पर ही विशेष ध्यान दिया गया। अंग्रेज़ी के साथ साथ संस्कृत की भी साधारण शिक्षा इनको घर पर

ही दी गई। बँगला, मराठी, गुजराती आदि भाषायें इन्होंने स्वयं सीख-ली। अब तक भी इनका अध्ययन बराबर जारी है। कुछ न कुछ लिखते-पढ़ते रहने का इनको व्यसन सा है।

राजा गोकुलदासजी इनको बहुत प्यार करते थे। वे इनको प्रायः अपने पास ही रखते थे। वे बड़े धार्मिक पुरुष थे। उनकी संगति से इनमें भी धार्मिक भाव बालकाल से ही जागृत हो गया था। इनका कुटुम्ब वल्लभ-सम्प्रदाय का अनुयायी है। ये अपने घर के ही मंदिर में, उत्सवों पर, बड़े चाव से ठाकुरजी की झाँकी बनाया करते थे। धार्मिक भाव इनमें अब भी पहले जैसा ही है।

१३ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ। इस समय इनके एक कन्या और एक पुत्र है। ग्यारह वर्ष की अवस्था से ही इन्हें हिन्दी पढ़ने का शौक़ हुआ। पहले चन्द्रकान्ता आदि उपन्यासों के पढ़ने से उसी प्रकार की पुस्तकें लिखने का शौक़ हुआ। चम्पावती, कृष्णलता और सोमलता नामक तीन उपन्यास उसी ढङ्ग के १२ से १५ वर्ष तक की अवस्था में ही इन्होंने लिखे भी। सोमलता के तीन भाग प्रकाशित भी हुये। पर ऐसी पुस्तकों को समाज के लिये निरर्थक समझकर १६ वर्ष की अवस्था में इन्होंने शेक्सपियर के रोमियो जुलियट, पैरोक्लिस प्रिंस आफ टायर, और विन्टर्स टेल की कथाओं के आधार पर सुरेन्द्र सुन्दरी, कृष्ण कामिनी, होनहार और व्यर्थ संदेह नामक उपन्यास लिख डाले। इनमें शेक्सपियर की पुस्तकों की केवल कथामात्र ली गई है। बाक़ी ये पुस्तकें मौलिक रूप में लिखी गई हैं। ये चारों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

इसी समय में कविता की ओर इनकी रुचि हुई। कुछ कविताएँ उपन्यासों में भी हैं। इसके पश्चात् इन्होंने "वाणासुर पराभव" नामक एक महाकाव्य लिखा। यह काव्य विविध छंदों में बहुत ही मनोहर रचा गया है। इसमें कुल १८ सर्ग हैं। इसके सिवा विश्वप्रेम नामक मौलिक नाटक और तीर्थयात्रा नामक यात्रा सम्बन्धी दो ग्रंथ और भी लिखे रक्खे

हैं। अभी प्रकाशित एक भी नहीं हुये हैं। ग्रंथरचना के सिवा इनके फुटकर लेख और कविताएँ सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में निकलती ही रहती हैं।

इनके ही उद्योग से जबलपुर में शारदा-भवन पुस्तकालय की स्थापना हुई। उसके महोत्सव में प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्याख्याता सम्मिलित हुये थे। उसी समय से जबलपुर में सार्वजनिक जीवन में कुछ जान आई। इसका श्रेय बाबू गोविन्ददासजी को ही है।

पटना-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर जबलपुर में राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर की नींव पड़ी। शारदा-भवन पुस्तकालय भी उसको सौंप दिया गया। उसके द्वारा ही शारदा मासिक पत्रिका और शारदा पुस्तकमाला प्रकाशित होती थीं। इस संस्था को बाबू गोविन्ददासजी ने पचास हज़ार रुपये दिये। इनकी हिन्दी-हितैषिता के परिणाम-स्वरूप जनता ने इनको तृतीय मध्यप्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सभापति चुना।

असहयोग-आन्दोलन से इनका राजनीतिक जीवन प्रारंभ होता है। कलकत्ते की स्पेशल कांग्रेस के पश्चात् इन्होंने आनरेरी मैजिस्ट्रेटी छोड़ी। मध्यप्रान्तीय कौंसिल में ये unopposed जा रहे थे, उससे भी मुँह मोड़ा। बैजवाड़े की मीटिङ्ग के बाद पिताजी से अनुरोध करके कलकत्ते की ऐंडर अरबथ नाट नामक अंग्रेज़ी दूकान से सम्बंध छुड़वाया। इस दूकान से इनका १५ वर्ष से सम्बंध चला आता था। इस दूकान से सत्तर अस्सी हज़ार रुपये वार्षिक कमीशन की आय इनको होती थी। कम्पनी ने बहुत खुशामद की, पर इन्होंने देशसेवा को ही अर्थलोभ पर विजय दी। स्वराज्य फंड में इन्होंने दश हज़ार रुपये दिये। असहयोग आन्दोलन का प्रचार मध्यप्रान्त में जो कुछ हुआ है, उसमें बाबू गोविन्ददासजी का बहुत बड़ा भाग है। वर्धा के सेठ जमनालालजी और जबलपुर के बाबू गोविन्ददासजी के कंधों पर ही मध्यप्रान्त में असहयोग आन्दोलन खड़ा हुआ था। यंग इण्डिया में महात्मा गाँधी ने भी इनके कार्यों की प्रशंसा की थी। ये प्रथम हिन्दी मध्यप्रान्तीय राजनीतिक-कान्फ्रेंस की स्वागत-समिति के सभापति

चुने गये थे। उसी समय से ये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य हुये।

सन् १९२३ में स्वराज्य पार्टी का संगठन हुआ। विचारों की एकता से ये उसमें सम्मिलित हुये। ये अखिल भारतीय स्वराज्य पार्टी के कोषाध्यक्ष और हिन्दी मध्यप्रान्तीय स्वराज्य पार्टी के सभापति भी रह चुके हैं। आजकल ये मध्यप्रदेश की ओर से एसेम्बली के मेम्बर हैं।

ये बड़े उदार हैं। लोकोपकारी संस्थाओं को बराबर सहायता पहुँचाते रहते हैं। जबलपुर में अनाथाश्रम खोला गया, उसमें इन्होंने पाँच हज़ार रुपये दिये, और चन्दा भी इकट्ठा करने-कराने में पूरी सहायता दी। सन् १९२१ में जबलपुर में प्लेग के समय में प्लेग रिलीफ़ कमेटी के लिये इन्होंने १५०००) का चन्दा इकट्ठा किया और उसके मंत्री का कार्य किया।

यह तो इनके सार्वजनिक जीवन की संक्षिप्त बातें हैं। इनका जातीय जीवन भी बहुत ही श्लाघनीय है। महेश्वरी जाति का सुधार और उसमें सद्गुणों की वृद्धि करना भी इनके जीवन का एक लक्ष्य है। पूना में तृतीय महाराष्ट्र प्रान्तीय माहेश्वरी सभा तथा जलगांव में पंचम मुम्बई प्रान्तीय माहेश्वरी सभा के ये सभापति हुये थे।

अखिल भारतीय माहेश्वरी महासभा के चतुर्थ अधिवेशन (अकोला) के सभापति भी ये ही चुने गये थे। पर बीमारी के कारण ये जा न सके। आजकल ये अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी सभा के मन्त्री हैं।

बाबू गोविन्ददास जी बड़े सुशील, मधुरभाषी और मिलनसार हैं। स्वजाति के मुख्य मुख्य पुरुषों में तो इनका मान हई है, समस्त देश के प्रमुख व्यक्तियों में भी इनके प्रति बड़े ही अच्छे भाव हैं।

विलास की प्रचुर सामग्री से लसित भवन में रहकर, धनी माता पिता के हाथों में पलकर, अपार ऐश्वर्य के अधिकारी बनकर, रूप, गुण और शिक्षा से यशस्वी होकर युवावस्था में भी गोविन्ददासजी में अभिमान नहीं। इतनी छोटी अवस्था में ही इन्होंने देश-सेवा, समाज-सेवा,

और साहित्य-सेवा के क्षेत्र में अपनी कीर्ति-ध्वजा स्थापित कर दी है। यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं :—

(१)

जन्मभूमि-प्रेम

था एक सुहावन सुख-स्वरूप। नन्दन कानन-सा वन अनूप॥
थे उसके द्रुम दानी-समान। देते फल-सौरभ-छाँह-दान॥
कुछ शाख-भार लेकर सचाव। द्रुम दिखलाते थे बन्धु-भाव॥
कुछ मिले हुए शाखा समेट। करते शाश्वत सस्नेह भेंट॥
कुछ झूम रहे थे कुसुम-बेलि। मानों हो करते कलित केलि॥
वन के इन द्रुम-गण में विशाल। था वहाँ एक तरुवर रसाल॥
सबमें उसकी थी छवि विशेष। मानों वह वन का हो द्रुमेश॥
थे पत्र-पुष्प मंगल-प्रदान। लाते थे जिनको गृह सुजान॥
फल ऋतु में निशि-दिन टूट टूट। गिरते थे पृथिवी पर अटूट॥
तरु हवन-यज्ञ की सिद्धि अर्थ। आमंत्रित होता था समर्थ॥
था खगगण का वह गृह विशाल। रक्षक था उनका सर्व काल॥
अरि-सूर्य-अग्नि-जल-शीत-वात। इनका न इन्हें था दुःख ज्ञात॥
उससे ही निज को सुखी मान। वे भी करते तरु-कीर्ति-गान॥
कुछ काल गये उस विपिन-बीच। पहुँचा मृगया-हित व्याध नीच॥
लखकर उसने मृग-यूथ एक। तक छोड़े उस पर शर अनेक॥
पर दैवयोग से बाण चूक। आ लगे शाखियों में अचूक॥
थे परम तीक्ष्ण विष-बुझे बाण। पल में द्रुमगण ने तजे प्राण॥
हो गये नष्ट लघु तरु समस्त। तरु-पति की भी श्री हुई अस्त॥
फल-पत्र-पुष्प सूखे तुरन्त। उसकी निधि का हो गया अन्त॥
अब उसको सब खग छोड़ छोड़। भागे निज नाता तोड़ तोड़॥
पर इन विहगों में एक कीर। था अग्रगण्य अति धीर वीर॥

तरु पर नितान्त रहकर स्वतन्त्र । नित जपता था वह यही मन्त्र--
"जब तक हैं तन में प्राण शेष । तब तक न तजूँगा मैं स्वदेश ॥
तज अहंभाव का घृणित गर्व । इसपर वारूँ सब कुछ सगर्व ॥"
सब क्षुधा-कष्ट से बाल कीर । चल बसे त्यागकर निज शरीर ॥
तब दुखी शुकी ने भी स्वप्राण । तज दिये वत्स निज मरे जान ॥
पर जन्मभूमि का भक्त कीर । वह हुआ न विचलित धीर वीर ॥
कुछ दिन में सुरपति रथारूढ़ । आये लखने यह तत्व गूढ़ ॥
शिर पर शोभित था स्वेत छत्र । द्युति छिटक रही थी यत्र-तत्र॥
रथ को तज, धर कर विप्र-वेष । शुक-निकट पहुँच बोले सुरेश--
"तू क्यों देता है यहाँ प्राण । जा अन्य स्थल को शुक सुजान ॥"
यद्यपि खग था गतकण्ठप्राण । तो भी 'हैं सुरपति', गया जान ॥
बोला साहस कर झुका शीश । "पा लिया भाग्य से तुम्हें ईश ॥
सुनिये प्रभु, इसको त्याग आज । यदि मिलता भी हो स्वर्ग-राज ॥
तो समझ उसे भी तृण-समान । मैं दूँगा इस पर वार प्राण ॥"
सुनकर यह बोले श्रीसुरेश--। "है वस्तु यहाँ पर क्या विशेष ?
शुक, हंस विवेकी भी महान । सर शुष्क जान करता पयान ॥"
उत्तर में बोला शुक गँभीर--। "है हंस बड़ा स्वार्थी, अधीर ॥
कहिये, जग में क्या कभी मीन । चल देती लख सर जल-विहीन?"
सस्मित-मुख बोले शुनासीर । "तू बड़ा मूर्ख है देख, कीर ॥
वहाँ भटकता याचक न एक । उठ गयी जहाँ से दान-टेक ॥"
सुन, कहा कीर ने झुका शीश--"जो आप कहे, है ठीक ईश ॥
पर ऐसे भी हैं जन अनेक । प्रभु, जिनकी है समभाव-टेक ॥
मैं जन्मा था इस पर अबोध । पाया इस ही पर सृष्टि-बोध ॥
इसने ही देकर बल विशेष । है सिखलाया उड़ना सुरेश ॥
वे मृदुल मृदुल हैं याद डाल । जिनपर बीता था बाल-काल ॥
थे मौर-युक्त वे छदन लाल । कैसे भूलूँगा वे रसाल ॥

खाकर जिनको मैं शुकी-सङ्ग । यौवन में करता राग-रङ्ग ॥
तज वृद्ध-काल में खेद सर्व । शिशु-चरित्त देखता था सगर्व ॥
हैं याद मुझे वे दिन अतीत । होती जब वर्षा-घाम-शीत ॥
यह स्वयम् सहनकर सर्व क्लेश । था मुझे बचाता हे सुरेश ॥
यों सुख-दुख में रख एक दृष्टि । जिसने की मुझपर प्रेम-वृष्टि ॥
जब हुआ अकिञ्चन वही आज । जब मिटे नित्य के सौख्य साज ॥
तब छोड़ उसे जाना सुरेश । है मानी-हित अपयश विशेष ॥
इसको तजना अति निंद्य कर्म । इस पर मर-मिटना है स्वधर्म ॥
मैं इसे न त्यागूँ शुनासीर । चाहे तन त्यागें असु अधीर ॥"
सुनकर शुक के ये वचन आर्द्र । होगया इन्द्र का चित दयार्द्र ।
कहा उन्होंने हँसकर सप्रीति—। 'प्रिय शुक, यह सीखी कहाँ नीति?
इस भूतल पर तू तप-स्वरूप । है तुझसा तू ही खग अनूप ॥
वर माँग, हुआ मैं शुक प्रसन्न । द्रुत तुझे करूँगा सुखासन्न ॥"
बोला शुक, "यदि है कृपा, नाथ । वन तरु-गण-युत होवे सनाथ ॥"
सुरपति 'तथास्तु' कह, सुधा सींच । होगये गुप्त उस विपिन-बीच ॥
द्रुम हुए हरित सब उसी काल । होगया हरा तरुवर रसाल ॥
वन की जैसी थी छटा पूर्व । होगयी पुनः वैसी अपूर्व ॥
जी उठी शुकी, शुक-बाल सर्व । वे लगे विचरने फिर समर्थ ॥
आगये लौटकर अब विहङ्ग । सब गाते शुक-यश बैठ सङ्ग ॥
"जय जन्मभूमि-गौरव-निधान । जय रूप त्याग के मूर्तिमान ॥
जय धर्म-परायण महा धीर । प्रणवीर अलौकिक जयति कीर ॥"

(२)

प्रेमी

(१)

प्रेमी, घन सम जग-हितवारे ।
वे तज भेद नीर बरसावत , सस्य विविध विधि के उपजावत ;
त्यों सब पर ये दया दिखावत , करत कार्य हितकारी सारे ॥

सुरपति सर उन पर नित छोड़त, तऊ कर्म तें मुख नहीं मोड़त,
नहीं प्रतिज्ञा येहू तोड़त, कबहूँ दुख तें टरत न टारे ॥
तदपि वायु बल उन्हें सतावत, तोहू वह शीतलता पावत।
भलो इहें हू सब को भावत, शत्रु मित्र सम लागत प्यारे ॥

(२)

सबै मिलि दीजै प्रेमहिं मान।
जो हिय प्रेम बारि सों बञ्चित, सो मरुभूमि समान ॥
प्रेमहिं सों घन जल बरसावत, बढ़त पयोधि महान।
गूँजत भ्रमर कञ्ज विकसित हैं, पूरन प्रेम प्रमान ॥
दीपक देखि पतङ्ग प्रेमवश, वारत हैं निज प्रान।
फूलत फूल कोकिला कूकत, राख प्रेम की बान ॥
योगी यती भक्त आराधक, धरत सप्रेमहि ध्यान।
ईश-स्वरूप प्रेम ही साँचो, गावत वेद पुरान ॥
(विश्वप्रेम से)

(३)

वर्षा

मन्दाक्रांता

धीरे धीरे समय निकला ग्रीष्म का दुःखदायी।
आई वर्षा सुखद जगको व्योम में मेघ छाये ॥
योंही सारे दिवस दुख के काल पा बीतते हैं।
मर्यादा है सुख दुख मई घूमती चक्र जैसी ॥१॥
दर्शाते हैं गगनतल में मेघ भीमच्छटा यों।
मानौ सेना अमरगण की युद्ध को आरही हो ॥
नाना रंगी जलद नभ में दीखते हैं अनूठे।
योद्धा मानो विविध रँग के वस्त्र धारे हुए हों ॥२॥

देती जैसी द्युति कटक में आयुधों की दिखाई।
वैसी ही है झलक दिखती दामिनी की घनों में॥
होता है ज्यों रव समर में घोर वाद्यादिकों का।
त्योंही भारी गरज नभ में मेघ भी हैं सुनाते॥३॥
छाया ऐसा निविड़तम है वारिदों से धरा पै।
मानों पृथ्वी गगन मिलके एक ही हो गए हों॥
हो जाता है उदित नभ में इंद्र का चाप वैसे।
योद्धा जैसे विजय पर हैं राष्ट्रझण्डा उठाते॥४॥
थी जो पृथ्वी तपित अति ही सूर्य के अंशुओं से।
धीरे धीरे घन अब उसे आर्द्रता दे रहे हैं॥
जैसे कोई विकल अति ही मोह की वृद्धि से हो।
पाये ज्ञानी सुहृद जन से शांति विज्ञान द्वारा॥५॥
जैसे पाता तृषित जन है तृप्ति पानी लिए से।
वैसे उर्वी मुदित घन के वारि से हो रही है॥
शोभा पाती विविध रँग के शस्य से मेदिनी है।
मानो कांता रुचिर तन पै वेषभूषा किये हो॥६॥
शोभाशाली तरुगण हुए वृद्धि से पल्लवों की।
जैसे होते सुकृति जन हैं धर्म से ओज वाले॥
लोनी लोनी ललित लिपटीं हैं लताएँ द्रुमों से।
नेताओं को विजय पर हों हार मानो चढ़ाए॥७॥
छाया शैलों पर तृण हरा दृष्टि को मोहता है।
बाँधे होंवे हरित रँग के शैल मानो दुपट्टे॥
शोभा दीखे अवनितल पै लाल इन्द्राणियों की।
माणिक्यों से जटित महि हो चारु अत्यन्त मानो॥८॥
खद्योतों की चमक दिखती यामिनी में अनूठी।
मानों वृक्षों पर बहुत से दिव्य तारे उगे हों॥

वापी, नाले, सरसि, सर को भी भरा नीरदों ने।
जैसे पूरे वणिक भरते कोष व्यापार द्वारा ॥९॥
मंडूकों के विकट रव से पूरिता हैं दिशाएँ।
मानो नीराशय स्तुति करें हर्ष से वारिदों की ॥
फूले चंपा, प्रियक, सुमना, सप्तला, केतकी हैं।
मानो वर्षा विभव अपनी संपदा का दिखाती ॥१०॥
भौंरे होते मुदित उनसे छोड़ के एक चंपा।
जसे छोड़ें बुधजन सदा संग दोषी जनों का ॥
गुञ्जारों से मधुर स्वर से पुष्प का सार लेते।
मानों अर्थी विशद यश हों गा रहे दानियों का ॥११॥
पीहू पीहू अविरत रटें मग्न हो हो पपीहे।
ऊंची केका ध्वनि कर शिखी मोद से नाचते हैं ॥
ये वर्षा के परम सुख से मोद पा वारिदों को।
मानो मीठे निज निनद से आशिशें दे रहे हों ॥१२॥
ठंडा ठंडा पवन बहता चित्त को शांति देता।
धीरे धीरे मधुर उसमें पुष्प की गंध आती ॥
ऐसी वर्षा तृषित जगको हर्ष देती पधारी।
सारे प्राणी प्रमुदित हुए उष्णता के सताये ॥१३॥

("वाणासुर-पराभव" से)

(४)

उषा का विवाह

अति मृदु पलकों पै धूलि थी बालिका के।
नयन कमल दोनों आँसुओं से भरे थे ॥
अवयव कृशता से दीखते थे न पूरे।
रहित तन सभी था भूषणों से उषा का ॥ १ ॥

मुख छवि कुम्हलाई दीख ऐसी रही थी।
सरसिज दिखता है धूप से म्लान जैसा॥
मुख पर अलकें थीं छा रही यों उषा के।
तिमिर निचय जैसे चंद्र को है दबाता॥ २॥
वह व्यथित हुई यों पूर्ण उन्मत्त जैसी।
निज प्रिय सखियों से बाग में बोलती थी॥
सखि यह दिखता है आज उद्यान कैसा।
द्युति सब इसकी भी कान्त हैं ले गये क्या॥ ३॥
सकल रुचिर कुञ्जें श्री-विहीना हुई हैं।
ललित रव खगों का शान्त कैसा हुआ है॥
सुमन सब मुदे से क्यारियों में झुके हैं।
मम दुख लख मानो शोक है बाग को भी॥ ४॥
इधर उधर शाखी वृन्द क्यों झूमते हैं।
प्रिय विरह व्यथा से हैं पराभूत क्या वे॥
मृदुल नव लतायें काँपती दीखती हैं।
प्रिय सखि मुझको ये देख के हैं दुखी क्या॥ ५॥
लख सखि यह झूला डोलता है अकेला।
विरह अनल मेरे चित्त में है जगाता॥
मृदुल पवन पाके शांत होता हुआ भी।
जिस विधि जगता है अग्नि ज्वाला बढ़ाता॥ ६॥
प्रिय विरह व्यथा में देख के दग्ध होते।
मुझ विरहिन को यों भींगते आँसुओं से॥
यह सर लहरों के व्याज से आज मानो।
कर कर ध्वनि ऊँची दुःख में रो रहा है॥ ७॥
अहह सखि लखो तो साँझ की दुर्दशा को।
रवि-विरह व्यथा से पांडुता छा गई है॥

सरसिज कुम्हलाते भानु के अस्त से हैं।
प्रिय-रहित-प्रिया का दृश्य हैं ये दिखाते ॥ ८ ॥
निरख कुमुदिनी को दुःख होता मुझे है।
लख लख यह मेरे दुःख को फूलती है॥
जिस विधि इतराती हर्ष पावे सपत्नी।
दुख लख गृहिणी का मोद पाती महा हैं ॥ ९ ॥
न कर मद अरी तू यों नवेली चमेली।
मुझ विरह जली को देख तू फूलती है॥
पर यह मद तेरा क्या सदा ही रहेगा।
सुख दुख दिन सारे तुल्य जाते नहीं हैं ॥ १० ॥
प्रिय पति रदनों की कान्ति को प्राप्त होके।
अधिक सित हुआ है कुन्द तू मत्त हो के॥
पर यह तुझको क्या बोध होता नहीं है।
सुमन जगत में भी कान्ति वैसी नहीं है ॥ ११ ॥
सखि यह खल गेंदा तुल्यता चाहता है।
विकसित अति हो हो कान्त पीताम्बरी की॥
पर इस खल का तो रंग यों दीखता है।
जलकर दिखता है अग्नि अंगार जैसा ॥ १२ ॥
सखि अब यह देखो मालती हो सपत्नी।
अलग खिल रही है पास आती नहीं है॥
दुख हरन अशोक प्राय विख्यात है तू।
शरणगत मुझे क्यों शोक तू दे रहा है ॥ १३ ॥
फलमय तरु पीले लाल यों दीखते हैं।
अनल जल रहा है बाग में आज मानो॥
मुझ विरहवती के ताप की तीव्रता से।
प्रकृति सकल कैसी भिन्नरूपा हुई है ॥ १४ ॥

सुनकर तुलसी माँ दुःख मेरा मिटा दो।
प्रिय जननि तुम्हें मैं नित्य सींचा करूँगी॥
नवल दल तुम्हारे विष्णु को भेंट दूँगी।
तुम मुझ दुखिया को कान्त से माँ, मिलादो॥ १५॥

(वाणासुर-पराभव)

सूर्यकान्त त्रिपाठी

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी का जन्म माघ सुदी ११, सं० १९५५ में महिषादल स्टेट (मेदिनीपुर—बंगाल) में हुआ। इनके पिता का नाम पंडित रामसहाय त्रिपाठी था। इनका असली मकान युक्तप्रांत के उन्नाव ज़िले में गढ़ाकोला गाँव में है। पर पंडित रामसहायजी महिषादल स्टेट में नौकर थे, और वे वहीं बस गये थे। इसी से उनका वंश-विस्तार बंगाल में ही हुआ। पंडित सूर्यकान्त अपने माता-पिता के इकलौते हैं।

इनका पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा सब राज के ही प्रबंध से हुआ। ये जब स्कूल में पढ़ते थे, तभी से कविता रचने लग गये थे। प्रतिभा अच्छी थी। इससे स्कूल के अध्यापकों और राजा साहब के ये बड़े स्नेहपात्र थे। अंग्रेज़ी के स्वनामधन्य लेखक बाबू हरिपद घोषाल, एम० ए०, एम० आर० ए० एस० इनके अंग्रेज़ी के अध्यापक थे। वे इनकी प्रतिभा पर अब तक मुग्ध हैं। कविता की ओर इनकी रुचि बचपन से ही थी। पर मैट्रिकुलेशन में पहुँच कर इनकी मनोवृत्ति का झुकाव दर्शन की ओर हुआ। आजकल ये उसी प्रवाह में प्रवाहित हैं। पहले ये सभाओं में संस्कृत और बंगला में ही कविता पढ़ा करते थे। पर बड़े होने पर इनका स्वाभाविक प्रेम हिन्दी पर हुआ।

ब्रजभाषा और नागरी लिपि का ज्ञान तो थोड़ा-बहुत पहले ही से था, अपनी प्रखर बुद्धि से इन्होंने खड़ीबोली में भी प्रगल्भता प्राप्त कर ली।

बीस वर्ष की अवस्था में इनकी पत्नी का देहान्त हो गया, जिससे इनको बड़ी मानसिक वेदना सहनी पड़ी। साथ ही गृहस्थी का भी भार सिर पर आ पड़ा। यदि समय समय पर महिषादल के कृपालु राजा श्रीमान् गोपालप्रसाद गर्ग बहादुर इनकी आर्थिक सहायता न करते रहते तो इनको गृहस्थी में बड़े कष्टों का सामना करना पड़ता। इन्होंने दरबार में नौकरी कर ली। दरबार में इनका सम्मान बहुत था। संगीत की शिक्षा इनको दरबार में ही मिली। राजा बहादुर इन्हें बहुत चाहते हैं।

इनकी कविता का रचना-काल सं० १९७२ से प्रारंभ होता है। जूही की कली और अधिवास इनकी पहली रचनायें हैं। सं० १९७८ में ये समन्वय के सम्पादक हुये। दो वर्ष तक उसका सम्पादन बड़ी योग्यता से करके उसे छोड़ दिया और फिर एक वर्ष तक मतवाला में लिखते रहे।

इन्होंने एक बड़ी मार्मिक पुस्तक लिखी है। जिसमें कविवर रवीन्द्रनाथ की कविताओं की समालोचना की गई है। अभी यह पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। इनकी फुटकर कविताओं का एक संग्रह "अनामिका" नाम से प्रकाशित हुआ है। खड़ीबोली में अतुकांत कविता लिखने में इन्होंने सफलता पाई है। इनकी कविता में पूर्व और पश्चिम के भावों का मिलन बड़ा अनोखा होता है। ये अपनी शैली के निराले कवि हैं। इनका उपनाम भी "निराला" है। इनके द्वारा हिन्दी-साहित्य में एक नवीन युग उपस्थित होने की संभावना है।

यहाँ हम इनकी कविताओं के नमूले उद्धृत करते हैं—

(१)

जूही की कली

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी—स्नेह-स्वप्न-मग्न—

अमल-कोमल-तनु तरुणी, जूही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल,—पत्रांक में।
वासन्ती निशा थी।
विरह-विधुर प्रिया-संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन—
जिसे कहते हैं मलयानिल।
आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात—
आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात—
आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
फिर क्या?—पवन
उपवन-सर-सरित-गहन गिरि कानन—
कुञ्ज-लता पुञ्जों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि,
कली खिली साथ।

सोती थी,
जाने कहो कैसे प्रिय-आगमन वह?
नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिण्डोल।
इस पर भी जागी नहीं, चूक-क्षमा माँगी नहीं,
निद्रालस वंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही,
अथवा मतवाली थी
यौवन की मदिरा पिये, कौन कहे?
निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की।
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल,

चौंक पड़ी युवती—
चकित चितवन निज चारों ओर फेर
हेर प्यारे को सेज-पास,
नम्रमुखी हँसी,—खिली
खेल रङ्ग प्यारे संग।

(२)

जागरण-वीणा

जागो फिर एक बार !
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें,
अरुण-पंख तरुण किरण खड़ी खोल रही द्वार—
जागो फिर एक बार !
आँखें अलियों की
किस मधु की गलियों में फँसी—
बन्द कर पाँखें,
पी रही हैं मधु मौन,
अथवा सोईं कमल-कोरकों में ?—
बन्द हो रहा गुञ्जार !
जागो फिर एक बार !
अस्ताचल ढले रवि
शशि-छबि विभावरी में चित्रित हुई हैं देख
यामिनी-गन्धा जगी,
एकटक चकोर-कोर, दर्शन-प्रिय,
आशाओं भरी मौनभाषा बहु भावमयी
घेर रही चन्द्र को चाव से;
शिशिर-मार व्याकुल कुल
खुले फूल झुके हुए

आया कलियों में मधुर
मद-उर यौवन-उभार—
जागो फिर एक बार !
पिउ-रव पपीहे प्रिय बोल रहे,
सेज पर विरह-विदग्धा वधू
याद कर बीती बातें—
रातें मन-मिलन की,
मूँद रही पलकें चारु,
नयन-जल ढल गये,
लघुतर कर व्यथा-भार—
जागो फिर एक बार !
सहृदय समीर जैसे
पोंछो प्रिय नयन-नीर
शयन-शिथिल बाहें
भर स्वप्निल आवेश में,
आतुर उर वसन मुक्त कर दो,
सब सुप्ति सुखोन्माद हो,
छूट-छूट अलस
फैल जाने दो पीठ पर
कल्पना से कोमल
ऋजु-कुटिल प्रसारकामी
केश-गुच्छ,
तन-मन थक जायँ,
मृदु सुरभि सी समीर में
बुद्धि बुद्धि में हो लीन,
मन में मन, जी जी में,

एक अनुभव बहता रहे
उभय आत्माओं में
कब से मैं रही पुकार—

जागो फिर एक बार !

उगे अरुणाचल में रवि,
आई भारती रति कवि कण्ठ में,
पल-पल में परिवर्तित होते रहे प्रकृति-पट,
गया दिन, आई रात,
मुँदी रात, खुला दिन,
ऐसे ही संसार के
बीते दिन पक्ष-मास,
वर्ष कितने ही हज़ार।

जागो फिर एक बार !

(३)

भारत की विधवा

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी,
वह दीप-शिखा सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है।

षड्ऋतुओं का शृङ्गार,
कुसुमित कानन में नीरव पद-संचार,
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है
उसका एक स्वप्न अथवा है।

उसके मधु-सुहाग का दर्पण,
जिसमें देखा था उसने
बस एक बार बिम्बित अपना जीवन-धन,
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा—वह ध्रुवतारा—
दूर हुआ वह बहा रहा है
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा।

हैं करुणा-रस से पुलकित इसकी आँखें,
देखा तो भीगीं मन मधुकर की पाँखें;
मृदु रसावेश में निकला जो गुञ्जार
वह और न था कुछ, था बस हाहाकार।

उस करुणा की सरिता के मलिन-पुलिन पर,
लघु टूटी हुई कुटी का मौन बढ़ाकर,
अति छिन्न हुए भीगे अञ्चल में मन को—
मुख-रूखे, सूखे अधर—त्रस्त चितवन को
वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर
है रोती अस्फुट स्वर में;
सुनता है आकाश धीर, निश्चल समीर—
मृदु सरिता की लहरें भी ठहर-ठहर कर।

यह दुःख वह, जिसका नहीं कुछ छोर है:
दैव ! अत्याचार कैसा घोर और कठोर है !
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रुजल ?
या किया करते रहे सब को विकल !

ओस-कण सा पल्लवों से झर गया
जो अश्रु, भारत, हा उसी से मर रहा !

(४)

सन्ध्या सुन्दरी

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर—
किन्तु ज़रा गम्भीर—नहीं है उनमें हास विलास;
हँसता है तो केवल तारा एक,
गुँथा हुआ उन घुँघुराले काले काले बालों से
हृदय राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली—
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह
छाँह सी अम्बर-पथ से चली।
नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा;
नहीं होता कोई अनुराग-राग-आलाप,
नूपुरों में भी रुनु-झुनु रुनु-झुनु रुनु-झुनु नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप-चुप-चुप'
है गूँज रहा सब कहीं—
व्योम मंडल में—जगती-तल में—
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल कमिलिनी-दल में—
सौन्दर्य गर्विता के अति विस्तृत वक्षस्थल में—
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में—

उत्ताल तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन जलधि प्रबल में—
क्षिति में—जल में—नभ में—अनिल-अनल में—
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप-चुप-चुप'
है गूंज रहा सब कहीं,—
और क्या है ? कुछ नहीं
मदिरा की वह नदी बहाती आती
थके हुये जीवों को वह सस्नेह, प्याला एक पिलाती,
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखाती फिर विस्मृति के कितने मीठे सपने !
और जब अर्द्ध रात्रि की निश्चलता में हो जाती वह लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहातुर कमनीय कंठ से
आप निकल पड़ता है एक विहाग ।

(५)

नयन

मदभरे ये नलिन-नयन मलीन हैं ।
अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं ?
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी—
बीत जाने पर हुये ये दीन हैं ? ॥
या पथिक से लोल-लोचन ! कह रहे—
'हम तपस्वी हैं सभी दुख सह रहे,
गिन रहे दिन ग्रीष्म-वर्षा-शीत के, ॥
काल-ताल-तरङ्ग में हम बह रहे ।
मौन हैं, पर पतन में, उत्थान में,
वेणु-वर-वादन-निरत-विभु-गान में,

है छिपा जो मर्म उसका, समझते,
किन्तु तो भी हैं उसी के ध्यान में ! ॥
आह! कितने विकल जन-मन मिल चुके,
खिल चुके, कितने हृदय हैं हिल चुके,
तप चुके वे प्रिय व्यथा की आँच में,
दुःख उन अनुरागियों के झिल चुके ! ॥
क्यों हमारे ही लिये वे मौन हैं ?
पथिक ! वे कोमल कुसुम हैं—कौन हैं ?' ॥

(६)

यमुना के प्रति

किसकी स्वप्नों सी आँखो की
पल्लव-छाया में अम्लान,
यौवन की माया सा आया
मोहन का सम्मोहन ध्यान ?
गन्धलुब्ध किन अलि बालों के
मुग्ध हृदय का मृदु गुञ्जार
तेरे दृग-कुसमों की सुषमा
जाँच रहा है बारम्बार ?

यमुने, तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान
पथिक-प्रिया सी जगा रही है
उस अतीत के नीरव गान ?

तू किस विस्मृति की वीणा से
उठ उठ कर कातर झनकार

उत्सुकता से उकता उकता
खोल रही श्रुति के दृढ़ द्वार ?
अलस प्रेयसी सी स्वप्नों में
प्रिय की शिथिल सेज के पास
लघु लहरों के मधुर स्वरों में
किस अतीत का गूढ़ विलास ?

उर-पुर में नूपुर की ध्वनि सी
मादकता की तरल तरङ्ग
विचर रही हैं मौन पवन में
यमुने ! किस अतीत के सङ्ग ?

किस अतीत का दुर्जय जीवन
अपनी अलकों में सुकुमार
कनक-कुसुम सा गूँथा तूने
यमुने—किसका रूप अपार ?
निर्निमेष नयनों में छाया
किस विस्मृति-मदिरा का राग ?
अबतक पलकों के पुलकों में
छलक रहा है विपुल सुहाग !

मुक्त हृदय के सिंहासन पर
किस अतीत के वे सम्राट
दीप रहे जिनके मस्तक पर
रवि-शशि-तारे-विश्व विराट ?

निखिल विश्व की जिज्ञासा सी
आशा की तू झलक अमन्द,
अन्तःपुर की निज शय्या पर
रचती मृदु छन्दों के बन्द,

किस अतीत के सुहृद करों में
अर्पित करती है निज ध्यान—
ताल ताल के द्रुत कम्पन में
बहते हैं यों किसके गान ?

विहगों की निद्रा से नीरव
कानन के संगीत अपार
किस अतीत के स्वप्न लोक में
करते हैं मृदु पद-संचार ?

मुग्धा के लज्जित पलकों पर
तू यौवन की छबि अज्ञात
आँखमिचौनी खेल रही है
किस अतीत-शिशुता के साथ ?
किस अतीत-सागर-संगम को
बहते खोल हृदय के द्वार
बोहित के हित सरल अनिल में
नयन-सलिल के स्रोत अपार ?

उस सलज्ज ज्योत्स्ना-सुहाग की
फेनिल शय्या पर सुकुमार,
उत्सुक, किस अभिसार-निशा में,
गई कौन स्वप्निल पर मार ?

(७)

स्मृति

जटिल-जीवन-मद में तिर-तिर
डूब जाती हो तुम चुपचाप,

सतत द्रुतगतिमयि अयि फिर-फिर
उमड़ करती हो प्रेमालाप;
सुप्त मेरे अतीत के गान
सुना प्रिय हर लेती हो ध्यान !
सफल जीवन के सब असफल—
कहीं की जीत, कहीं की हार—
जगा देता है गीत सकल
तुम्हारा ही निर्भय झङ्कार,
वायु-व्याकुल-शतदल से हाय
विकल रह जाता हूँ निरुपाय !
मुक्त-शैशव मृदु-मधुर मलय
स्नेह-कम्पित-किसलय लघु-गात,
कुसुम-अस्फुट नव-नव संचय,
मृदुल-वह-जीवन कनक-प्रभात;
आज निद्रित अतीत में बन्द
ताल वह, गति वह, लय वह छन्द।
आँसुओं से कोमल, झर-झर
स्वच्छ निर्झर-जल-कण से प्राण
सिमट, सट-सट, अन्तर भर-भर
जिसे देते थे जीवन-दान
वही चुम्बन की प्रथम हिलोर
स्वप्न-स्मृति, दूर, अतीत, अछोर !
पली सुख-वृन्तों की कलियाँ—
विटप-उर की अवलम्बित हार—
विजन-मन-मुदित-सहेलरियाँ—
स्नेह-उपवन की सुख-शृङ्गार

आज खुल-खुल गिरतीं असहाय
विटप-वक्षस्थल से निरुपाय !
मूर्ति वह यौवन की बढ़-चढ़—
एक अश्रुत भाषा की तान—
उमड़, अड़-अड़, पैरों पड़-पड़
स्वप्न सी जड़ नयनों में मान—
मुक्त-कुन्तल-व्याकुल मुख लोल—
प्रणय-पीड़ित वे अस्फुट बोल—
तृप्ति वह तृष्णा की अविकृत—
स्वर्ग-आशाओं की अभिराम—
क्लान्ति की सरल मूर्त्ति निद्रित—
गरल की अमृत-अमृत की प्राण—
रेणु सी किस दिगन्त में लीन ?
वेणु-ध्वनि सी न शरीराधीन !

(८)

जागृति में सुप्ति थी

जड़े नयनों में स्वप्न
खोल बहुरंगी पंख विहग से,
सो गया सुरा-स्वर
प्रिया के मौन अधरों में
क्षुब्ध एक कम्पनसा
निद्रित, सरोवर में;
लाज से सुहाग का—
मान से प्रगल्भ प्रिय-प्रणय-निवेदन का
मन्द-हास-मृदु वह
सजा-जागरण-जगा—

थककर वह चेतना भी लाजमयी
अरुण-किरणों में समा गई।
जाग्रत प्रभात में क्या शान्ति थी !—
जागृति में सुप्ति थी—
जागरण-क्लान्ति थी।

(९)

शेफालिका

बन्द कंचुकी के सब तोड़ दिये
प्यार से यौवन-उभार ने
पल्लव-पर्यंक पर सोती शेफालिके।
मूक-आह्वान-भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।
जागती-प्रिया के नक्षत्र-दीप-कक्ष में
वक्षपर सन्तरण-आशी आकाश है,
पार करना चाहता
सुरभिमय समीर-लोक—
शोक-दुःख-जर्जर
इस नश्वर संसार की
क्षुद्र सीमा—
पहुँच कर प्रणय-छाये
अमर विराम के
सक्षम सोपान पर।
पाती अमर प्रेमधाम,
आशा की प्यास

एक रात में भर जाती है,
सुबह को आली ! शेफाली झर जाती है ।

(१०)

तुम और मैं

(१)

तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग और मैं चंचल गति सुरसरिता ।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कांत कामिनी कविता ॥
तुम प्रेम और मैं शान्ति ।
तुम सुरापान घन अंधकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति ।
तुम दिनकर के खर किरण जाल मैं सरसिज की मुसकान ।
तुम वर्षों के बीते वियोग मैं हूँ पिछली पहचान ॥
तुम योग और मैं सिद्धि ।
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि ।

(२)

तुम मृदु-मानस के भाव और मैं मनोरंजिनी भाषा ।
तुम नंदन-बन-घन-विटप और मैं सुख-शीतल-तल शाखा ॥
तुम प्राण और मैं काया ।
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,
मैं मनोमोहिनी माया ।
तुम प्रेममयी के कंठहार मैं वेणी काल-नागिनी ।
तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार मैं व्याकुल विरह रागिनी ॥
तुम पथ हो मैं हूँ रेणु ।
तुम हो राधा के मन-मोहन,
मैं उन अधरों की वेणु ॥

(३)

तुम पथिक दूर के श्रान्त और मैं बाट जोहती आशा।
तुम भवसागर दुस्तार पार जाने की मैं अभिलाषा॥
तुम नभ हो मैं नीलिमा।
तुम शरद-सुधाकर-कला-हास,
मैं हूँ निशीथ-मधुरिमा॥
तुम गंध कुसुम कोमल पराग मैं मृदुगति मलय समीर।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष मैं प्रकृति प्रेम जंजीर॥
तुम शिव हो मैं हूँ शक्ति।
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र,
मैं सीता अचला भक्ति॥

(४)

तुम हो प्रियतम मधुमास और मैं पिक कल-कूजन तान।
तुम मदन पंचशर-हस्त और मैं हूँ मुग्धा अनजान॥
तुम अम्बर मैं दिग्वसना।
तुम चित्रकार घन-पटल श्याम,
मैं तड़ित्तूलिका-रचना॥
तुम रण-ताण्डव-उन्माद नृत्य मैं युवति मधुर, नूपुर-ध्वनि।
तुम नाद वेद आकार सार मैं कवि-श्रृङ्गार-शिरोमणि॥
तुम यश हो मैं हूँ प्राप्ति।
तुम कुंद-इंदु-अरविंद-शुभ्र,
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

सुमित्रानन्दन पंत

पंडित सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म ता० २४ मई, सन् १९०० को कौसानी, ज़ि० अल्मोडा में हुआ। इनके पिता पंडित गङ्गादत्त पन्त बड़े धर्मानुरागी और आचारवान् पुरुष थे। वे कौसानी टी स्टेट के ख़ज़ाञ्ची और ज़मींदार थें। ज़मींदारी का कारोबार अब भी है।

पन्तजी चार भाई हैं। बड़े भाई बी० ए०, मँझले अंडर ग्रेजुएट और छोटे एम० ए० हैं, वे अब क़ानून पढ़ते हैं। सुमित्रानन्दनजी सब से छोटे हैं। ये सात वर्ष की अवस्था में गाँव के पाठशाले में भर्ती हुये। बारह वर्ष की अवस्था में गवर्नमेंट स्कूल, अल्मोड़ा में अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। सन् १९१९ में इन्होंने बनारस के जयनारायण हाईस्कूल से स्कूल लीविंग की परीक्षा पास की। फिर प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में पढ़ना प्रारंभ किया। सन् १९२० में सेकेंड इयर से उसे भी छोड़ दिया। अब स्वतंत्र हैं। कभी घर और कभी प्रयाग रहते हैं। अविवाहित हैं। कविता करते हैं और सुख से विचरण करते हैं। हिन्दी और अंग्रेज़ी के सिवा संस्कृत और बँगला का भी ज्ञान रखते हैं। बड़े सरस हृदय, मधुर भाषी, सुन्दर और सुघर हैं।

कविता की रुचि इनमें स्वाभाविक उत्पन्न हुई थी। सन् १९१५ में इन्होंने 'हार' नाम का एक उपन्यास लिखा था। छंदों का ज्ञान "हिन्दी पद्य-रचना" पढ़कर हुआ। सन् १९१५ से ये विधि-पूर्वक हिन्दी-कविता रचने लगे। १९२१ में इनके कुछ पद्यों का संग्रह "उच्छ्वास" नाम से प्रकाशित हुआ था। १९२६ में एक दूसरा संग्रह "पल्लव" नाम से प्रकाशित हुआ।

पन्तजी की कवितायें हिन्दी में बिल्कुल नये ढंग की हैं। हिन्दी-

कविता में नये युग के प्रवर्तकों में इनकी गणना की जाती है। मनोभावों और अंगों के इंगित-इशारों को साकार पदार्थ मानकर ये उस पर कल्पना करते हैं। इस प्रकार की कविता हिन्दी के पुराने ढर्रे के कवियों और कविता के प्रेमियों को कम रुचेगी। पर नवयुवकों में आजकल इसका प्रसार बड़ी तेज़ी से हो रहा है। यह रुक नहीं सकता।

पन्तजी एक होनहार सुकवि हैं। इनके द्वारा हिन्दी-साहित्य का गौरव बढ़ेगा। यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

(१)

उच्छ्वास

मन्द, विद्युत-सा हँसकर,
वज्र-सा उर में धँसकर,
गरज गगन के गान! गरज गम्भीर स्वरों में।
भर अपना सन्देश उरों में औ अधरों में;
बरस धरा में, बरस सरित, सर, गिरि, सागर में।
हर मेरा सन्ताप पाप जग का क्षणभर में;

× × ×

बालिका ही थी वह भी।
सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषन,

× × ×

उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया,
नित मधुर मधुर गीतों से
उसका उर था उकसाया।

× × ×

मैं मंदहास-से उसके
मृदु अधरों पर मँडराया;
औ उसकी सुखद सुरभि से
प्रतिदिन समीप खिँच आया।

× × ×

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश,
पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बारबार
नीचे जल में निज महाकार;
—जिसके चरणों में पला ताल,
दर्पण सा फैला है विशाल !!

× × ×

वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल घर।

× × ×

सरल-शैशव की सुखद सुधि-सी वही
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।

(२)

आँसू

कल्पना में है कसकती वेदना।
अश्रु में जीता सिसकता गान है;
शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है।

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।
हाय ! किसके उर में
उतारूँ अपने उर का भार !
किसे अब दूँ उपहार
गूँथ यह अश्रुकणों का हार !!
मेरा पावस ऋतु-सा जीवन
मानस-सा उमड़ा अपार मन;
गहरे, धुँधले, धुले, साँवले
मेघों से मेरे भरे नयन।
इन्द्रधनु-सा आशा का सेतु
अनिल में अटका कभी अछोर,
कभी कुहरे सी धूमिल, घोर,
दीखती भावी चारों ओर !
तड़ित-सा सुमुखि तुम्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार, उर चीर
गूढ़ गर्जन कर जब गंभीर
मुझे करता है अधिक अधीर
जुगनुओं में उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान !

× × ×

देखता हूँ, जब उपवन
पियालों में फूलों के

प्रिये ! भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को;

× × ×

देखता हूँ, जब पतला
इन्द्रधनुषी हलका
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है कुमुद-कला
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अंतर्धान
न जाने तुमसे मेरे प्राण
चाहते क्या आदान ।

(३)

अनङ्ग

अहे विश्व-अभिनय के नायक !
अखिल सृष्टि के सूत्राधार !
उर उर की कम्पन में व्यापक !
ऐ त्रिभुवन के मनोविकार !
ऐ असीम सौन्दर्य सिन्धु की
विपुल वीचियों के श्रृंगार !
मेरे मानस की तरंग में
पुनः अनङ्ग बनो साकार ।

(४)

विसर्जन

अनुपम इस सुन्दर छवि से
मैं आज सजा लूँ निज मन,

अपलक अपार चितवन पर
अर्पण कर दूँ निज यौवन !

इस मन्दहास में बहकर
गाऊँ मैं बेसुर—'प्रियतम',
बस इस पागलपन में ही
अवसित कर दूँ निज जीवन ।

नव कुसुमों में छिप छिपकर
जब तुम मधुपान करोगे,
फूली न समाऊँगी मैं
उस सुख से हे जीवन-धन !

यदि निज उर के काँटों को
तुम मुझे न पहनाओगे
उस विरह-वेदना से मैं
नित तड़पूँगी कोमल-तन !

तुम मुझे भुला दो मन से
मैं इसे भूल जाऊँगी ।
पर वंचित मुझे न रखना
अपनी सेवा से पावन !

(५)

छाया

कहो कौन हो दमयंती सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल सा निष्ठुर कोई ?

पीले पत्तों की शय्या पर
तुम विरक्ति सी मूर्छा-सी

विजन विपिन में कौन पड़ी हो
विरह-मलिन दुख-विधुरा-सी ?

× × ×

पछतावे की परछाईं सी
तुम भूपर छाई हो कौन ?
दुर्बलता-सी, अँगड़ाई सी,
अपराधी-सी, भय से मौन ?

× × ×

निर्जनता के मानस-पट पर
बार बार भर ठंडी साँस—
क्या तुम छिपकर क्रूर काल का
लिखती हो अकरुण इतिहास ?

× × ×

निज जीवन के मलिन पृष्ठ पर
नीरव शब्दों में निर्भर

× × ×

किस अतीत का करुण चित्र तुम
खींच रही हो कोमलतर !

× × ×

दिनकर-कुल में दिव्य जन्म पा,
बढ़कर नित तरुवर के संग,
मुरझे पत्तों की साड़ी से
ढँककर अपने कोमल अंग;

× × ×

पर-सेवा-रत रहती हो तुम
हरती नित पथ-श्रान्ति अपार।

× × ×

हाँ सखि! आओ बाँह खोल हम
लगकर गले जुड़ा लें प्राण।
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अन्तर्धान।

(६)

स्वप्न

बालक के कम्पित अधरों पर वह किस अक्षय स्मृति का हास,
जग की इस अविरत निद्रा का आज कर रहा है उपहास?
उस स्वप्नों की सुचिसरिता का सजनि! कहाँ है जन्म-स्थान?
मुसक्यानों में उछल उछल वह बहती है किस ओर अजान?
किन कर्मों की जीवित छाया उस निद्रित विस्मृति के सङ्ग,
आँखमिचौनी खेल रही है? यह किस अभिनय का है ढङ्ग?
मुँदे नयन पलकों के भीतर किस रहस्य का सुखमय चित्र,
गुप्त वञ्चता के मादक कर खींच रहे हैं सजनि! विचित्र?
निद्रा के उस अलसित बन में वह क्या भावी की छाया,
दृगसम्मुख मृदु विचर रही है? अहा! मनोहर यह माया!
मृदुल मुकुल में छिपा हुआ जो रहता है छबिमय संसार,
सजनि! कभी क्या सोचा तूने वह किसका है शयनागार?
प्रथम स्वप्न उसमें जीवन का रहता है अविकच अज्ञान,
जिसे नहीं चिन्ता पाती है, जो है केवल अस्फुट ज्ञान।
दिनकर की अन्तिम किरणों ने उस नीरव तरु के ऊपर,
स्वप्नों का जो स्वर्ण-सदन है निर्माया सुखमय, सुन्दर।

सजनि ! हमारा स्वप्न-सदन क्यों काँप उठा है यह थर थर ,
किस अतीत के स्वप्न-अनिल में गूँज उठा है वह मर-मर ।
विरस डालियों से यह कैसा फूट रहा है रुदन मलिन ,
हम भी हरी भरी थीं पहिले पर अब स्वप्न हुये वे दिन ।
पत्रों के विस्मित अधरों से यह किसका नीरस सङ्गीत ,
मौन-निमन्त्रण देता है यह अन्धकार को सजिन ! सभीत ।
सघन द्रुमों के भीतर अब वह निद्रा का नीरव निःश्वास ,
अन्धकार में मूँद रहा है, अपने अलसित नयन उदास ।
सखि सोते के स्वप्न जगत के इसी तिमिर में बहते हैं ,
पर जागृति के स्वप्न हमारे अन्तर ही में रहते हैं ।
अहा ! परम घन अन्धकार में डूब रहा है अब संसार !
कौन जानता है, कब इसके छूटेंगे ये स्वप्न असार ?
सखि ! क्या कहती है प्राची से फिर उज्वल होगा आकाश ?
उषा स्वप्न क्या भूल गई तू ? क्या उसमें है प्रकृति-प्रकाश ?

(७)

प्रथम रश्मि

प्रथम-रश्मि का आना रङ्गिणि !
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ, हे बाल-विहङ्गिनि !
पाया तूने यह गाना ?
सोई थी तू स्वप्न-नीड़ में
पङ्खों के सुख में छिपकर,
ऊँघ रहे थे, घूम द्वार पर
प्रहरी-से जुगुनू नाना !
शशि-किरणों से उतर उतर कर
भू पर काम-रूप नभचर,

चूम नवल कलियों का मृदु-मुख
सिखा रहे थे मुसकाना !
स्नेह-हीन तारों के दीपक,
श्वास-शून्य थे तरु के पात
विचर रहे थे स्वप्न अवनि में,
तम ने था मण्डप ताना।
कूक उठी सहसा तरु-वासिनि !
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझको अन्तर्यामिनि !
बतलाया उसका आना।
निकल सृष्टि के अन्ध-गर्भ से
छाया-तन बहु छाया-हीन;
चक्र रच रहे थे खल निशिचर
चला कुहुक, टोना-माना !
छिपा रही थी मुख शशि-बाला
निशि के श्रम से हो श्री-हीन,
कमल-क्रोड़ में बन्दी था अलि,
कोक शोक से दीवाना।
मूर्छित थीं इन्द्रियाँ स्तब्ध जग,
जड़-चेतन सब एकाकार,
शून्य विश्व के उर में केवल
साँसों का आना जाना।
तूने ही पहले बहुदर्शिनि !
गाया जाग्रति का गाना,
श्री, सुख, सौरभ का नभ-चारिणि !
गूँथ दिया ताना-बाना।

निराकार-तम मानो सहसा
ज्योति-पुञ्ज में हो साकार
बदल गया द्रुत जगज्जाल में
धरकर नाम-रूप नाना।

सिहर उठे पुलकित हो द्रुम-दल,
सुप्त-समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम-अधरों पर
हिल मोती का-सा दाना।

खुले पलक, फैली सुवर्ण-छवि,
खिली सुरभि, डोले मधु-बाल,
स्पन्दन, कम्पन, नव-जीवन फिर
सीखा जग ने अपनाना।

प्रथम-रश्मि का आना रङ्गिणि !
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ कहाँ हे बाल विहङ्गिनि !
पाया यह स्वर्गिक गाना ?

सुभद्राकुमारी चौहान

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का स्थान हिन्दी की वर्तमान स्त्री-कवियों में सब से ऊँचा है। इनकी कविता शुद्ध परिमार्जित भाषा में तो होती ही है, भाव भी उसमें उच्च कोटि के रहते हैं।

ये क्षत्राणी हैं। इनका जन्म श्रावण शुक्ल ५, सं० १९६१ को प्रयाग में हुआ। प्रयाग के निहालपुर महल्ले में अब भी

इनका मकान है। इनके पिता का नाम ठाकुर रामनाथ सिंह था। इनकी तीन बहनें और दो भाई मौजूद हैं। बड़े भाई ठाकुर रामप्रसाद सिंह पहले पुलीस में सब इन्स्पेक्टर थे। असहयोग-आन्दोलन के समय उन्होंने नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया। अब वे प्रयाग में रहकर व्यापार करते हैं। उनसे छोटे दूसरे भाई ठाकुर राजबहादुरसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०, आजकल मध्यभारत के अजयगढ़ स्टेट में सेशन्स जज हैं।

सुभद्राकुमारी के पिता ठाकुर रामनाथ सिंह भजन गाने के बड़े प्रेमी थे। उनके भजन सुन सुनकर बालिका सुभद्रा के हृदय में भी तरंगें उठा करती थीं और वह भी गुनगुनाने लगती थी।

सुभद्रा बचपन में बड़ी नटखट थी। इससे घर के लोग उसे "गोगा आया" "गोगा पकड़ लेगा," आदि भय-सूचक वाक्य कहकर डराया करते थे। पर बालिका को कभी गोगा दिखाई नहीं पड़ा। इसी तरह पिता के भजनों में वर्णित ईश्वर भी उसे कभी दिखाई नहीं पड़ते थे। गोगा और ईश्वर की यह समानता नटखट बालिका के लिये बड़ी कौतहल-जनक हुई। उसने यह तुकबंदी तैयार की—

तुम बिन व्याकुल हैं सब लोगा।
तुम तो हो इस देश के गोगा॥

छः सात वर्ष की कन्या की यह प्रतिभा देखकर लोग चकित हो गये। सबसे आश्चर्य-जनक बात यह है कि तुकबंदी में "इस देश" का उल्लेख है, जो बड़ी होने पर श्रीमती सुभद्राकुमारी का एक प्रधान विषय हो गया।

सुभद्राकुमारी ने प्रयाग के क्रास्थवेट गर्ल्स स्कूल में शिक्षा पाई है। सं० १९७६ में इनका विवाह खँडवा-निवासी ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान बी० ए०, एल-एल० बी०, के साथ हुआ। विवाह के उपरान्त भी इनका अध्ययन जारी रहा। पर कलकत्ते की कांग्रेस में असहयोग का प्रस्ताव पास होने पर इन्होंने स्कूल छोड़ दिया। उसी वर्ष इनके पति ने वकालत की परीक्षा पास की थी। इनके ही आग्रह से उन्होंने भी वकालत न करने का

निश्चय किया। इनको सुशिक्षिता बनाने में इनके भाई ठाकुर राजबहादुर सिंहजी ने बहुत ध्यान दिया। वे इनको सदा उत्साहित किया करते रहे।

वकालत पास करके ठाकुर लक्ष्मणसिंह जबलपुर चले गये और पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के साथ कर्मवीर पत्र के सम्पादन और कांग्रेस के काम में योग देने लगे। सुभद्राकुमारी भी पति के साथ जबलपुर गईं और मध्यप्रदेश के राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेने लगीं। ये जबलपुर और नागपुर में दो बार राष्ट्रीय झंडा-सत्याग्रह में गिरफ्तार हुईं और पहली बार एक दिन हवालात में रखकर छोड़ दी गईं, दूसरी बार जेल में रक्खी गईं। पर कुछ दिन बाद ही सरकार ने बिना मुक़दमा चलाये ही छोड़ दिया।

असहयोग-आन्दोलन के शिथिल पड़ जाने पर ये फिर अपनी साहित्य-चर्चा में लगीं। हिन्दी के वर्तमान पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कविता बराबर निकला करती है और हिन्दी-संसार में रुचि से पढ़ी जाती है। ३ नवम्बर, १९२३ को इनके एक कन्या हुई; जिसका नाम 'सुधा' है। सुधा ने, जिसे ये "आशा" कहा करती हैं, इनके जीवन में एक नई ही तरंग पैदा कर दी है। अब इनका जीवन आशा की सुधा से परिप्लुत हो रहा है।

सुभद्राकुमारी ने यद्यपि अभी तक कोई ग्रंथ नहीं लिखा, पर इनकी फुटकर रचनायें इतनी सुन्दर हैं कि हम उन्हें यहाँ स्थान देने को वाध्य हुये हैं। यहाँ सुभद्राकुमारी की कुछ कविताएँ उद्धृत की जाती हैं—

(१)

चलते समय

तुम मुझे पूछते हो, "जाऊँ"? मैं क्या जवाब दूँ तुम्हीं कहो!
"जा" कहते रुकती है ज़बान, किस मुँह से तुम से कहूँ रहो?
सेवा करना था जहाँ मुझे कुछ भक्ति भाव दरशाना था।
उन कृपा कटाक्षों का बदला, बलि हो कर जहाँ चुकाना था।

मैं सदा रूठती ही आई प्रिय तुम्हें न मैंने पहिचाना।
वह मान बाण सा चुभता है अब देख तुम्हारा यह जाना॥

(२)

समर्पण

सूखी सी अधखिली कली है,
परिमल नहीं, पराग नहीं।
किन्तु कुटिल भौंरों के चुम्बन का
है इन पर दाग़ नहीं॥
तेरी अतुल कृपा का बदला,
नहीं चुकाने आई हूँ।
केवल पूजा में ये कलियाँ,
भक्ति भाव से लाई हूँ॥
प्रणय जल्पना चिन्त्य कल्पना,
मधुर वासनाएँ प्यारी
मृदु अभिलाषा, विजयी आशा,
सजा रही थीं फुलवारी॥
किन्तु गर्व का झोंका आया,
यदपि गर्व वह था तेरा।
उजड़ गई फुलवारी सारी
बिगड़ गया सब कुछ मेरा॥
बची हुई स्मृति की ये कलियाँ,
मैं बटोर कर लाई हूँ।
तुझे सुझाने, तुझे रिझाने,
तुझे मनाने आई हूँ॥
प्रेम भाव से हो, अथवा हो
दयाभाव से ही स्वीकार।

ठुकराना मत, इसे जानकर
मेरा छोटा सा उपहार ॥

(३)

बालिका का परिचय

यह मेरी गोदी की शोभा, सुख सोहाग की है लाली।
शाही शान भिखारिन की है, मनोकामना मतवाली ॥
दीपशिखा है अंधेरे की, घनी घटा की उजियाली।
ऊषा है यह कमल भृङ्ग की, है पतझड़ की हरियाली ॥
सुधा-धार यह नीरस दिल की, मस्ती मगन तपस्वी की।
जीवित ज्योति नष्ट नयनों की, सच्ची लगन मनस्वी की ॥
बीते हुए बालपन की यह, क्रीड़ा-पूर्ण वाटिका है ॥
वही मचलना वही किलकना, हँसती हुई नाटिका है।
मेरा मन्दिर, मेरी मसजिद, करवट काशी यह मेरी।
पूजा पाठ ध्यान जप तप है, घट घट वासी यह मेरी ॥
कृष्ण-चंद की क्रीड़ाओं को, अपने आँगन में देखो।
कौशल्या के मातृ-मोद को, अपने ही मन में देखो ॥
प्रभु ईसा की क्षमाशीलता, नबी मुहम्मद का विश्वास।
जीवदया जिन वर गौतम की, आवो देखो इसके पास ॥
परिचय पूछ रहे हो मुझसे, कैसे परिचय दूँ इसका।
वही जान सकता है इसको, माता का दिल है जिसका ॥

(४)

ठुकरा दो या प्यार करो।

देव! तुम्हारे कई उपासक, कई ढङ्ग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे, कई रङ्ग के लाते हैं ॥

धूमधाम से साजबाज से, वे मंदिर में आते हैं।
मुक्ता मणि बहुमूल्य वस्तुएँ, लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं॥
मैं ही हूँ गरीबिनी ऐसी, जो कुछ साथ नहीं लाई।
फिर भी साहस कर मंदिर में, पूजा करने को आई॥
धूप दीप नैवेद्य नहीं है, झाँकी का श्रृङ्गार नहीं।
हाय गले में पहिनाने को, फूलों का भी हार नहीं॥
स्तुति कैसे करूँ कि स्वर में, मेरे है माधुरी नहीं।
मन का भाव प्रगट करने को, मुझमें है चातुरी नहीं॥
नहीं दान है नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई।
पूजा की भी विधि न जानती, फिर भी नाथ चली आई॥
पूजा और पुजापा प्रभुवर, इसी पुजारिन को समझो।
दान दक्षिणा और निछावर, इसी भिखारिन को समझो॥
मैं उन्मत्त प्रेम का लोभी, हृदय दिखाने आई हूँ।
जो कुछ है बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूँ॥
चरणों पर अर्पण है इसको, चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो॥

(५)

झाँसी की रानी

(१)

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की क़ीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरङ्गी को करने की सब ने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(२)

कानपूर के नाना के मुँह बोली बहिन 'छबीली' थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह सन्तान अकेली थी,
नाना के सँग पढ़ती थी वह नाना के सँग खेली थी,
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी,
वीर शिवाजी की गाथाएँ उसको याद ज़बानी थीं।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(३)

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसके तलवारों के वार,
नक़ली युद्ध, व्यूह की रचना और खेलना ख़ूब शिकार,
सैन्य घेरना दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार,
महाराष्ट्र कुल देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(४)

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मीबाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई ख़ुशियाँ छाईं झाँसी में,
सुभट बुन्देलों की विरुदावलि सी वह आई झाँसी में,
चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव से मिली भवानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(५)

उदित हुआ सौभाग्य ! मुदित महलों में उजियाली छाई,
किन्तु काल-गति चुपके चुपके काली घटा घेर लाई,
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाईं,
रानी विधवा हुई हाय ! विधि को भी नहीं दया आई,
निःसन्तान मरे राजाजी रानी शोक समानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(६)

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौज़ी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अवसर अच्छा पाया,
फ़ौरन फ़ौजें भेज दुर्ग पर अपना झण्डा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिशराज्य झाँसी आया,
अश्रु-पूर्ण रानी ने देखा झाँसी हुई विरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(७)

अनुनय विनय नहीं सुनता है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था यह जब भारत आया,
डलहौज़ी ने पैर पसारे अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया,
रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी, ।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(८)

छिनी राजधानी देहली की लखनऊ छीना बातों बात,
कैद पेशवा था बिठूर में हुआ नागपुर का भी घात,
उदीपूर, तंजौर, सतारा, करनाटक की कौन बिसात,
जब कि सिंध, पञ्जाब, ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र-निपात,
बङ्गाले, मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(९)

रानी रोईं रनिवासों में, बेगम ग़म से थी बेज़ार,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाज़ार,
सरे आम नीलाम छापते थे अंग्रेज़ों के अख़बार,
'नागपूर के जेवर लेलो' 'लखनऊ के लो नौलखहार,
यों परदे की इज्जत परदेशी के हाथ बिकानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(१०)

कुटियों में थी बिषम वेदना महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान,
नाना धुन्दूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रणचंडी का कर दिया प्रकट आह्वान,
हुआ यज्ञ प्रारम्भ, उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(११)

महलों ने दी आग, झोपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतन्त्रता की चिनगारी अन्तरतम से आई थी,
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थी,
मेरठ, कानपूर, पटना ने भारी धूम मचाई थी,
जबलपूर, कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
.ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(१२)

इस स्वतन्त्रता–महायज्ञ में कई वीरवर आए काम,
नाना धुन्दूपंत, तांतिया, चतुर अजीमुल्ला सरनाम,
अहमद शाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम,
लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुर्बानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
.ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(१३)

इनकी गाथा छोड़, चलें हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेन्ट वौकर आ पहुँचा. आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में,
ज़ख्मी होकर वौकर भागा उसे अजब हैरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
.ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(१४)

रानी बढ़ी कालपी आई कर सौ मील निरंतर पार,
घोड़ा थककर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार,
यमुना-तट पर अंग्रेज़ों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चलदी किया ग्वालियर पर अधिकार,
अंग्रेज़ों के मित्र सेंधिया ने छोड़ी रजधानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(१५)

विजय मिली, पर अंग्रेज़ों की फिर सेना घिर आई थी,
अबके जनरल स्मिथ सम्मुख था उसने मुँह की खाई थी,
काना और मंदिरा सखियाँ रानी के सँग आई थीं,
युद्ध-क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थीं,
पर, पीछे ह्यूरोज़ आगया, हाय घिरी अब रानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(१६)

तो भी रानी मार-काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था यह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आ गये सवार,
रानी एक शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार पर वार,
घायल होकर गिरी सिंहनी उसे वीर गति पानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(१७)

रानी गई सिधार ! चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आई बन स्वतंत्रता—नारी थी,
दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

(१८)

जाओ रानी, याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतन्त्रता अविनाशी,
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी,
तेरा स्मारक तू ही होगी, तू ख़ुद अमिट निशानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

कौमुदी-कुञ्ज

(१)

स्वदेश-प्रीति

होगा नहीं कहीं भी ऐसा अति दुरात्मा वह प्राणी ।
अपनी प्यारी मातृभूमि है जिससे नहीं गई जानी ॥
"मेरी जननी यही भूमि है" इस विचार से जिसका मन ।
नहीं उमङ्गित हुआ, वृथा है उसका पृथ्वी पर जीवन ॥१॥
क्या कोई ऐसा है जिसका मन न हर्ष से भर जाता ।
देश विदेश घूमकर जिस दिन वह अपने घर को आता ॥
यदि कोई है ऐसा, तो तुम जाँचो उसको भले प्रकार ।
नाम न लेता होगा कोई करता नहिं होगा सत्कार ॥२॥
पावै वह उपाधि यदि उत्तम अथवा लक्ष्मी का भंडार ।
लम्बा चौड़ा नाम कमाकर चाहै हो जावै मतवार ॥
उसकी सब पदवियाँ व्यर्थ हैं उसके धन को है धिक्कार ।
केवल अपने तन की सेवा करता है जो विविध प्रकार ॥३॥
विमल कीर्ति का ज़ीवन भर वह कभी न होगा अधिकारी ।
घोर मृत्यु के पञ्जे में फँस पावेगा वह दुख भारी ॥

तुच्छ धूल से उपजा था वह उसमें ही मिल जावेगा।
उस पापी के लिये न कोई आँसू एक बहावेगा ॥४॥

गौरीदत्त वाजपेयी।

(२)

जीवन-गीत

शोक-भरे छन्दों में मुझसे कहो न "जीवन सपना है"।
जो सोता है वह है मृतवत् जग का रंग न अपना है ॥१॥
जीवन सत्य, नहीं झूठा है, चिता नहीं इसका अवसान।
"तू मिट्टी, मिट्टी होवेगा" उक्ति नहीं यह जीवनिदान ॥२॥
भोग विलास नहीं, न दुःख हैं, मानव-जीवन का परिणाम।
करना ही चाहिये नित्यप्रति अधिकाधिक उन्नति का काम ॥३॥
गुण हैं अमित, समय चञ्चल है, यद्यपि हृदय बहुत बलवान।
तद्यपि ढोल समान बिलखता चिता ओर कर रहा पयान ॥४॥
जग की विस्तृत रण-स्थली में जीवन के झगड़ों के बीच।
नायक बनकर करो काम सब, पशुओं ऐसे बनो न नीच ॥५॥
नहीं भविष्यत् पर पतियाओ, मृतक भूत को जानो भूत।
काम करो सब वर्तमान में सिर प्रभु, मन दृढ़ यह करतूत ॥६॥
सज्जन चरित सिखाते हम भी कर सकते हैं निज उज्ज्वल।
जग से जाते समय रेत पर छोड़ें चरण-चिह्न निर्मल ॥७॥
चरण-चिह्न वे देख कदाचित् उत्साहित हों वे भाई।
भवसागर की चट्टानों पर नौका जिनकी टकराई ॥८॥
हो सचेत श्रम करो सदा तुम चाहे जो कुछ हो परिणाम।
सदा उद्यमी होकर सीखो धीरज धरना, करना काम ॥९॥

पुरोहित लक्ष्मीनारायण

(३)

ब्याहा भला कि क्वारा

मेरे मन यह भावना, पत्नी करना यार।
उमर अकेले काटना, होना सचमुच ख्वार॥
बड़ा हर्ष यह रात दिन, निज नारी का ध्यान।
जग में रहना नारि बिन, महा कष्टकर जान॥
भामिनि चिन्ता चित्त को, है अति ही सुखदाय।
पावैं कभी न मित्त सो, जो क्वारा रहि जाय॥
ब्रह्मचर्य्यं जो साधता, बहुत बुरा दरसाय।
मेरे मन को भावता, ब्याहा जो बन जाय॥

डाक्टर महेन्दुलाल गर्ग

(४)

शान्तिमयी शय्या

मनोहारी शय्या, परम सुथरी भूमितल की,
सुहाती क्या ही है, ललित बन के दूब-दल से।
नदी के कूलों की, विमल वर इन्दु-द्युति सम,
नई रेती से जो, अति चमकती है निशि दिन॥१॥
सुहाने वृक्षों की, अति सघन पंक्ति-प्रवर से,
लता प्यारी प्यारी, लिपटत अनोखी तरह से।
रँगीले फूलों की, नवल बन-माला पहन के,
लुभाती है जी को, पथिक जन के वे विपिन में॥२॥
सुरीली वीणा सी, सरस नदियाँ वादन करैं,
कभी मीठी मीठी, मधुर धुनि से गायन करैं।
सदा ही नाचै हैं, झरित झरने नाच नवल,
निराली शोभा है, विपिनवर की कौतुकमयी॥३॥

कभी धीरे धीरे, व्यजन करती मन्द-गति से,
चली आती दौड़ी, पवन मदमाती मलय की।
कभी चित्ताकर्षी, शिशिर-कणवर्षी विपिन में,
दिखाती है शोभा, सुखद, मन लोभा न किसका ?॥४॥
महाशोभाशाली, विपुल विमला चन्द्र किरणें,
घने कुञ्जों में हैं, सतत घुस के खेल करतीं।
कभी हो जाती हैं, सघन घन के ओट-पट में,
वियोगी योगी के, हृदय हरतीं तत्क्षण सदा ॥५॥
कभी आती निद्रा, विमल परमानन्द-पद की,
सुहानी शय्या में, अतिशय सनी शान्तिरस सी।
कभी आँखों को है, चकित करती प्राचि अबला,
दिखाती आती है, अमल अरुणाई अधर की ॥६॥
छटा कैसी प्यारी, प्रकृति तिय के चन्द्रमुख की,
नया नीला ओढ़े, वसन चटकीला गगन का।
जरी-सल्मा-रूपी, जिस पर सितारे सब जड़े,
गले में स्वर्गङ्गा, अति ललित माला सम पड़ी ॥७॥

सत्यशरण रतूड़ी

(५)

प्रकृति

छटा और ही भाँति की देखते हैं।
जहाँ दृष्टि हैं डालते फेर के मुँह ॥
कहीं छन्द सुनते कहीं रेखते हैं।
कहीं कोकिलों की सुरीली "कुहू कुह" ॥१॥
कहीं आम बौरैं, कहीं डालियों के,
तले फूल आके गिरे बीच थाले ॥

रखे हैं मनो टोकरे मालियों के।
इकट्ठे जहाँ भौंर से भीर वाले ॥२॥
कहीं व्योम में साँझ की लालिमा है।
कभी स्वच्छ है दृष्टि आकाश आता ॥
कभी रात्रि में मेघ की कालिमा है।
कभी चाँदनी देख जी है लुभाता ॥३॥
कभी इन्द्र का चाप है सप्त रङ्गी।
जहाँ ज्योति के सङ्ग बूँदें घनी हैं ॥
कुसुम्भी, हरा, लाल, नीला नरङ्गी।
कहीं पीत शोभा कहीं बैंगनी है ॥४॥
कहीं ह्वेल से जीव हैं दृष्टि आते।
कहीं सूक्ष्म कीटादि की पंक्तियाँ हैं ॥
उन्हें देखकर चित्त हैं चित्त खाते।
इन्हें देखने की नहीं शक्तियाँ हैं ॥५॥
कहीं पर्वतों से नदी बह रही हैं।
कहीं वाटिका में बनी स्वच्छ नहरें ॥
कहीं प्राकृतिक कीर्ति को कह रही हैं।
छटाधीश वारीश की बंक लहरें ॥६॥
कहीं पेड़ की पत्तियाँ हिल रही हैं।
कहीं भूमि पर घास ही छा रही है ॥
सुगन्धें कहीं वायु में मिल रही हैं।
कहीं सारिका प्रेम से गा रही हैं ॥७॥
कहीं पर्वतों की छटा है निराली।
जहाँ वृक्ष के वृन्द छाये घने हैं ॥
लगी एक से एक प्रत्येक डाली।
मनो पान्थ के हेतु तम्बू तने हैं ॥८॥

कहीं दौड़ते झाड़ियों बीच हरने ।
लिये मोद से शावकों को भगैं हैं ॥
कहीं भूधरों से झरैं रम्य झरने ।
अहा ! दृश्य कैसे अनूठे लगैं हैं ॥९॥
कहीं खेत के खेत लहरा रहे हैं ।
महा मोद में हैं कृषीकार सारे ॥
उन्हें देखकर मूँछ फहरा रहे हैं ।
सदा घूमते काँध पै लट्ठ धारे ॥१०॥
अनोखी कला सच्चिदानन्द की है ।
उसी की सभी वस्तु में एक सत्ता ॥
अहो कौमुदी यह उसी चन्द की है ।
रचा है जिन्होंने लता पेड़ पत्ता ॥११॥
जहाँ ध्यान देते हैं चारों दिशा में ।
पड़ै दीख संसार नियमानुसारै ॥
सदा चन्द आनन्ददाता दिशा में ।
सदा सूर्य अपना उजेला पसारै ॥१२॥
यथाकाल ही फूल भी फूलते हैं ।
फलों से लदे वृक्ष त्यों सोहते हैं ॥
नहीं कौन सौन्दर्य पर भूलते हैं ।
नहीं कौन के चित्त यह मोहते हैं ॥१३॥
अचम्भा सभी वस्तु संसार की है ।
वृथा दर्प विज्ञान भी ठानता है ॥
जगन्नाथ ने सृष्टि विस्तार की है ।
वही विश्व के मर्म को जानता है ॥१४॥

बागीश्वर मिश्र

(६)

युवा संन्यासी

गुण-निधान मतिमान सुखी सब भाँति एक लवपुर-वासी।
युवा अवस्था बीच विप्र-कुल-केतु हुआ है सन्यासी॥
वृद्ध पिता-माता की आशा बिन ब्याही कन्या का भार।
शिक्षाहीन सुतों की ममता पतिव्रता नारी का प्यार॥१॥
सन्मित्रों की प्रीति और कालिज वालों का निर्मल प्रेम।
त्याग, एक अनुराग किया उसने विराग में तज सब नेम॥२॥
"प्राणनाथ! बालक सुत दुहिता"—यों कहती प्यारी छोड़ी॥
हाय! वत्स! वृद्धा के धन!! यों रोती महतारी छोड़ी॥
चिर सहचरी "रियाजी" छोड़ी रम्यतटी रावी छोड़ी।
शिखा-सूत्र के साथ हाय! उन बोली पञ्जाबी छोड़ी॥३॥
धन्य पञ्चनद भूमि जहाँ इस बड़भागी ने जन्म लिया।
धन्य जनक-जननी जिनके घर इस त्यागी ने जन्म लिया॥
धन्य सती जिसका पति मरने से पहले हो जाय अमर।
धन्य धन्य सन्तान पिता जिनका जगदीश्वर पर निर्भर॥४॥

माधवप्रसाद मिश्र

(७)

मेरी मैया

किसने अपने स्तन से मुझको सुमधुर दूध पिलाया था?
लेकर गोद, प्रेम से थपकी दे दे मुझे सुलाया था?
चूम चूमकर किसने मेरे गालों को गरमाया था?
मेरी मैया! मेरी मैया!!

बिलख बिलख कर रोता था जब नींद न मुझको आती थी।
आरी निंदिया! आरी निंदिया! कहकर कौन सुलाती थी?

और प्यार से पलने में रख मुझको कौन झुलाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

बालपने में पलने ऊपर मुझे नींद जब आती थी।
मुख मेरा विलोक मन ही मन कौन महा सुख पाती थी ?
और प्यार के आँसू बैठी बैठी कौन बहाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

व्यथित और बीमार देखकर मुझे कौन अकुलाती थी ?
बैठी बैठी मेरे मुख पर आँखें कौन गड़ाती थी ?
औ मेरे मरने के डर से आँसू विपुल बहाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

मुझे गिर गया देख, दौड़कर तत्क्षण कौन उठाती थी ?
फिर मेरा जी बहलाने को बातें कौन बनाती थी ?
अथवा फूँक फूँककर अच्छी हुई चोट बतलाती थी ?
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

जिसने प्यार किया अति मेरा कैसे उसे भुलाऊँगा ?
नहीं स्वप्न में भी मैं उससे मन अपना बिलगाऊँगा।
गुण उसके गाकर मैं उससे अविरल प्रीति लगाऊँगा।
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

सोच सोचकर इन बातों को जी मेरा घबड़ाता है ;
ईश कृपा से यह शरीर यदि इस जग में बच जाता है।
एक दिवस देखना दास यह फल इसका दिखलाता है।
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

कमर जायगी जब झुक तेरी और बाल पक जावेगा ;
मेरा भुज लम्बा बलशाली तेरी टेक कहावेगा।
और बुढ़ापे का दुख, तेरा क्षण भर में विनसावेगा ॥
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

जब तेरा शिर शय्या ऊपर पड़े पड़े झुक जावेगा।
तब इस सेवक की आवेगी बारी, तुझे उठावेगा।
और, उस समय, प्रबल प्रेम से उमँगें अश्रु बहावेगा,
मेरी मैया ! मेरी मैया !!

जैनेन्द्रकिशोर

(८)

बुलबुल की फ़रियाद

आता है याद मुझको गुज़रा हुआ ज़माना।
वह झाड़ियाँ चमन की वह मेरा आशियाना॥
वह साथ सब के उड़ना वह सैर आसमाँ की।
वह बाग़ की बहारें वह सब का मिल के गाना॥
पत्तों की टहनियों पर वह झूमना खुशी में।
ठंडी हवा के पीछे वह तालियाँ बजाना॥
लगती है चोट दिल पर आता है याद जिस दम।
शबनम का सुबह आकर फूलों का मुँह धुलाना॥
वह प्यारी प्यारी सूरत वह कामनी सी मूरत।
आबाद जिसके दम से था मेरा आशियाना॥
आज़ादियाँ कहाँ वह अब अपने घोंसले की।
अपनी खुशी से आना अपनी खुशी से जाना॥
तड़पा रही है मुझको रह रह के याद घर की।
तक़दीर में लिखा था पिँजड़े का आबोदाना॥
इस क़ैद का इलाही दुखड़ा किसे सुनाऊँ।
डर है यही क़फ़स में मैं ग़म से मर न जाऊँ॥

क्या बदनसीब हूँ मैं घर को तरस रहा हूँ।
साथी तो हैं वतन में मैं क़ैद में पड़ा हूँ॥
आई बहार कलियाँ फूलों की हँस रही हैं।
मैं इस अँधेरे घर में क़िस्मत को रो रहा हूँ॥
बाग़ों में बसने वाले खुशियाँ मना रहे हैं।
मैं दिलजला अकेला दुख में कराहता हूँ॥
आती नहीं सदायें उनकी मेरे क़फ़स में।
होती मेरी रिहाई ऐ काश! मेरे वस में॥
जी चाहता है मेरा उड़कर चमन को जाऊँ।
आज़ाद हो के बैठूँ और सेर होके गाऊँ॥
बेरी की शाख़ पर हो फिर इस तरह बसेरा।
उस उजड़े घोंसले को फिर जाके मैं बसाऊँ॥
चुगता फिरूँ चमन में दाने ज़रा ज़रा से।
साथी जो हैं पुराने उनसे मिलूँ मिलाऊँ॥
फिर दिन फिरें हमारे फिर सैर हो चमन की।
उड़ते फिरें खुशी से खायें हवा वतन की॥
जब से चमन छुटा है यह हाल हो गया है।
दिल ग़म को खा रहा है ग़म दिल को खा रहा है॥
गाना इसे समझ कर खुश हो न सुनने वाले।
दुक्खे हुए दिलों की फ़रियाद यह सदा है॥
आज़ाद रह के जिसने दिन अपने हों गुज़ारे।
उसको भला ख़बर क्या यह क़ैद क्या बला है॥
आज़ाद मुझको कर दे ओ क़ैद करने वाले!
मैं बेज़बाँ हूँ क़ैदी तू छोड़कर दोआ ले॥

अज्ञात

(९)

अन्योक्ति

एरे मलिन्द मन ! तू किस रङ्ग में रँगा है ?
संसार-घोर बन में, दुख दैन्य के भवन में,
मकरन्द-मोद ढूँढ़े, हा मोह ने ठगा है ॥
सुख शान्ति को स्वजन में, ज्यों फूल को गगन में,
पाने की हर समय तू उद्योग में लगा है ॥
ये मालती, चमेली, आपत्ति की सहेली,
सर्वस्व दे उन्हें तू नवनेह में पगा है ॥
जो कल कली खिली थीं, आमोद से मिली थीं।
वे अब नहीं दिखातीं, फिर भी न तू जगा है ॥
जिस फूल पर निछावर, करता है प्राण भी वर,
हा मूढ़ वह सदा ही देता तुझे दगा है ॥
बहु वेदना सही हैं, जाती न जो कही हैं,
मिथ्या सुरस का लोभी अब भी न हा ' भगा है ॥
कुञ्जन निकुञ्ज आवे प्रभु-प्रेम-गीत गावे,
बाला हरी-चरन' बिन कोई नहीं सगा है ॥

श्रीमती सत्यबाला देवी

(१०)

सुमन

जब उदयाचल पर ऊषा ने प्रकटित अपना किया स्वरूप,
तब तुमने था मन्दहास से विकसित किया अनूपम रूप ।
मधुप माँगने मधु आया था, लता हुई थी गौरववान,
तुम से सुरभित होने को था बार बार आया पवमान ।

बने शीघ्र तुम बन के गौरव प्रातः सुषमा के आधार,
कीं मन में ऊँची आशायें बन बदान्यता के आगार ।
किन्तु कहो तब किसके मन में हो सकता था यह विश्वास,
सङ्ग हास के ह्रास लगेगा, यों विकाश के साथ विनाश ।
रजनी के तम में पड़कर तुम जब खो बैठे निज सर्वस्व,
तब आशाओं को विनष्ट कर गया तुम्हारा वह वर्चस्व ।
अलि ने तुमसे निज मुख मोड़ा लतिका लज्जित हुई विशेष,
किया पवन ने तुम्हें गिरा कर धरा-धूलि से धूसर वेष ।

बलदेवप्रसाद मिश्र

(११)

परिणाम

जीवन की ज्वाला से मेरा यह क्षुद्र हृदय-सर सूख गया,
मैं हुआ विकल, सोचा, क्या प्रभु की होगी मुझ पर नहीं दया !
जब सब पर करुणा-वृष्टि हुई तब मुझ पर भी लघु बूँद पड़ी ।
गिरते ही वह झट लुप्त हुई तब मुझे हुई वेदना बड़ी ॥
मैंने देखा, जग में बहता था मलिन प्रेम का कुत्सित जल ।
मैं करता क्या ? उससे ही अपने किया गात को कुछ शीतल ॥
कुछ दिन तक तो निर्भय होकर उसमें हीं खूब विलास किया ।
जब ग्लानि हुई, कुछ खेद हुआ, तब उसे हृदय में छिपा लिया ॥
होगया शुद्ध तनु,, हृदय पङ्क-मय बना हुआ ही है अबतक ।
मैं सोच रहा हूँ, कमलों का होगा विकाश उसमें कबतक ॥

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०

(१२)

दुलारे-दोहावली

श्रीराधा बाधाहरनि , नेहअगाधा साथ ।
निसक्रिय नयन-निकुञ्ज मैं , नचौ निरंतर नाथ ॥१॥

दिन-नायक ज्यौं-ज्यौं बढ़त, कर अनुरागि पसारि।
त्यौं-हीं-त्यौं सिमटति हटति, निसि-नवनारि निहारि ॥२॥
जोवन-बन बिहरत नयन, सर सों मन-मृग मारि।
बाँधति ब्याधिनि केसिनी, केस-सुपास सँभारि ॥३॥
बिरह-ज्वाल बिकराल बरि, बहकि बाल बेहाल।
लपटति लाल तमाल-तरु, लाल रसाल खयाल ॥४॥
नव तन-देसहिं जीति जनु, पटु जोबन-नृपराज।
खड़े किए कुच-कोट द्वै, आपुन रच्छा-काज ॥५॥
लंक लचाइ, नचाइ दग, पग उँचाइ, भरि चाइ।
सिर सँभारि गागरि डगर, नागरि नाचति जाइ ॥६॥
तिय-रतननि हीरा यहै, यह साँचो ही सोर।
जेती उज्जल देह-दुति, तेतो हियौ कठोर ॥७॥
बस न हमारौ करहु बस, बस अब राखहु लाज।
बसन देहु ब्रज में हमैं, बसन देहु ब्रजराज ॥८॥
पट, मुरली, माला मुकट, धरि तन, कर, उर, भाल।
मन्द-मन्द हँसि बसि हियै, नन्द-दुलारेलाल ॥९॥
गेहि कियौ नव नेह, नवल बाल की देह मैं।
सूखति जाति अछेह, तरु ज्यौं अंबरबेलि सौं ॥१०॥

दुलारेलाल भार्गव

(१२)

परिग्रह

तव निवास है सीप ! अतल जल में सागर के
हैं प्रवाल के विपुल जाल भूषक जिस घर के।
पर है तेरा स्नेह दूर गगनस्थित घन से
स्थिति से क्या, वह मिला हुआ है जो तव मन से।

उसके लिये निवास छोड़ देती तू अपना
ऊपर आती मग्न-भाव, सुख को कर सपना।
अतल-निवासिनि ! हृदय खोल जल पर तिरती है
मारी मारी तरल तरङ्गों में फिरती है।
प्रेम-नीर की झड़ी लगा देता नवघन है
छक जाता बस, एक बूँद से तेरा मन है।
इस सुख से हो मत्त किन्तु क्या तू गृह तजती ?
नहीं, नहीं फिर लौट उसे मोती से सजती !

राय कृष्णदास

(१४)

शव

(१)

इस धूलिमें धरा क्या, जिसमें पड़े लपेटे ?
मेरे सरल बटोही !
पथ-ताप से भरा क्या, किस हेतु मौन लेटे ?
अनजान देश-द्रोही !

(२)

ममता कहाँ चली है, यौवन कहाँ टहलता;
दृग बन्द हैं तुम्हारे।
सूखी कुसुम-कली है, भौंरा नहीं मचलता;
उत्साह लुप्त सारे।

(३)

भर कौन खेद मन में, किस सिन्धु-मध्य भोगी,
तरणी डुबा रहे हो ?
कैसे सघन विजन में, संन्यास ले वियोगी !
जीवन उबा रहे हो ?

(४)

मुरझा रही तुम्हारी, ऐश्वर्य-बेलि बोई,
प्याली शराब-हीना ।
सुरभित कनेर-क्यारी, बैठा उजाड़ कोई,
लूटा नया नगीना ।

(५)

बहती न गीत-लहरी, स्वर हैं अपूर्ण मन के;
चञ्चल कहाँ इशारे ?
कैसी अशांति गहरी, क्यों तुम बने गगन के
विक्षिप्त तुच्छ तारे ?

(६)

उस पार से बुलाती, गोधूलि पंचरंगी;
किस सोच में पड़े हो ?
बुलबुल बिहाग गाती, सोता मयूर संगी;
किस तीर तुम खड़े हो ?

(७)

चुनता न हंस मोती, कादम्बरी मलीना;
भू रक्त-रंजिता है ।
उड़ती नहीं कपोती, वह आज पंख-हीना,
दुर्भाग्य-संचिता है ।

(८)

कर टूक-टूक जीवन, तरुणी नवीन बाला,
मूर्च्छित उधर पड़ी है ।
छूलो अछूत ! दामन, भर दो सुहाग प्याला;
यम-यातना कड़ी है ।

(९)

माँका उदास क्रन्दन, सुनते नहीं बधिर ! क्यों ?
आँखें अपाढ़-सी हैं।
कोई न सूझते फ़न, घेरे पड़ा तिमिर क्यों ?
घड़ियाँ विपत्ति की हैं।

(१०)

पागल पिता विलखता, ज्वाला धधक धधकती,
है मौत का तमाशा।
बेटा उधर तड़पता, बेटी इधर सिसकती,
साथिन बनी निराशा।

(११)

तुम रम रहे जहाँ हो, उस देश से न कोई
क्या भूल लौटता है ?
कोकिल कहो कहाँ हो, भव-निधि अमूल्य खोई ?
हा ! ख़ून खौलता है।

(१२)

झूठा बना स्व-बाना, अव्यर्थ सिसकियों से,
दिल विश्व का दलेंगे।
कफ़नी उढ़ा पुरानी, कस अंग रस्सियों से
ले घाट पर चलेंगे।

(१३)

रोकर कुटिल पड़ोसी, मृदु फूल-सी तुम्हारी
यह देह फूँक देंगे।
झुक जायँगे सदोषी, क्या मार हम कटारी
अनुताप में मरेंगे।

गुलाबरत्न बाजपेयी, "गुलाब"

(१५)

वर्षाॠतु

(१)

विरहिन हृदय विदारन हारे। छये अकास जलद रँग कारे॥
जल धरनीतल धूल दबाई। सूर चन्द नहिं परत लखाई॥

(२)

गरजत घनमय हंस पलाये। साँझ न दीसत चन्द सुहाये॥
कुन्द रदनि नव मद्युत मोरा। चहुँ दिसि कुहुकि मचावहिं शोरा॥

(३)

नभ न नखत निशि घन बहु छाये। हरि सुख सोवत सेज बिछाये॥
इन्द्र चापयुत जल बरसाते। घन कर गिरि सम गज मदमाते॥

(४)

धुनि गँभीर युत जल बरसावत। घन गरजन गिरि नाग डरावत॥
गुहा अनूपम रूप सुहाई। सतड़ित घन तहँ जल बरसाई॥

(५)

दिनकर द्युति बन रही लुकाई। नभ तें जल बरसत दुखदाई॥
मदनहिं करत प्रहार निहारी। प्रोषित जन तिय बैन उचारी॥

(६)

जलद सकल अवसर बिसराये। पिय परदेश गये तुम आये॥
निर्दय पिय परदेस सिधारे। तुम न हमहिं तजिहौ बिन मारे॥

(७)

कानन महिं रहि फूल चमेली। पिय बिनु व्याकुल होहिं नवेली॥
गरजत मेघ समीर डुलाई। अति सुगंधि सब दिशि फैलाई॥

(८)

भ्रमर पुष्प रस अवसर जानी। चूमत लता यूथिका आनी॥
चहुँदिसि छाज सुभग हरियारी। चातक याचत निर्मल वारी॥

हरिमङ्गल मिश्र, एम० ए०

(१६)

पश्चात्ताप

हाय ! न जीवन जन्म सुधारा कर्म किये दुखदाई रे।
न्हाया नहीं सुमति-सुरसरि में निशिदिन कुमति कमाई रे॥
काट दिया आनन्द कल्पतरु दुख की वेल बढ़ाई रे।
माना कभी न समझाने से हठधर्मी उर छाई रे॥
हाय गिरा गुण गौरव गिरि से नीच दशा मन भाई रे।
पाला पेट श्वान शूकर सम नेक न उन्नति पाई रे॥
जग का वास सराय न जाना अंधाधुंध मचाई रे।
रे कवि कर्ण भला क्या होगा कर पाया न भलाई रे॥

कर्णसिंह

(१७)

विश्व-प्रेम

वह अपना है या नहीं, यह अति क्षुद्र विचार।
है उदार जन के लिये, निज कुटुम्ब संसार॥
किसी भग्न प्राचीर में, छिद्र एक प्राचीन।
खिला पुष्प उस बीच है, नाम गोत्र से हीन॥
दृष्टि-पात करता नहीं, उस पर लोक-समाज।
सूर्य्य सुबह उठ पूँछता, बन्धु कुशल है आज?

पारसनाथ सिंह, बी० ए०

(१८)

अछूत की आह

एक दिन हम भी किसी के लाल थे।
आँख के तारे किसी के थे कभी॥

बूँद भर गिरता पसीना देखकर,
था बहा देता घड़ों लोहू कोई ॥१॥
देवता देवी अनेकों पूजकर,
निर्जला रह कर कई एकादशी ॥
तीरथों में जा द्विजों को दान दे,
गर्भ में पाया हमें माँ ने कहीं ॥२॥
जन्म के दिन फूल की थाली बजी,
दुःख की रातें कटीं सुख दिन हुआ ॥
प्यार से मुखड़ा हमारा चूमकर,
स्वर्ग सुख पाने लगे मातापिता ॥३॥
हाय ! हमने भी कुलीनों की तरह ।
जन्म पाया प्यार से पाले गये ॥
जी बचे फूले फले तब क्या हुआ,
कीट से भी नीचतर माने गये ॥ ४ ॥
जन्म पाया पूत हिन्दुस्तान में ।
अन्न खाया औ यहीं का जल पिया ।
धर्म्म हिन्दू का हमें अभिमान है,
नित्य लेते नाम हैं भगवान का ॥ ५ ॥
पर अजब इस लोक का व्यवहार है ।
न्याय है संसार से जाता रहा ।
श्वान छूना भी जिन्हें स्वीकार है ।
है उन्हें भी हम अभागों से घृणा ॥ ६ ॥
जिस गली से उच्च कुलवाले चलें,
उस तरफ चलना हमारा दण्ड्य है ।
धर्म्मग्रन्थों की व्यवस्था है यही,
या किसी कुलवान का पाखण्ड है ॥ ७ ॥

छोड़कर प्यारे पुराने धर्म को,
आज ईसाई मुसल्माँ हम बने।
नाथ, कैसा यह निराला न्याय है?
तो हमें सानंद सब छूने लगे ॥ ८ ॥
हम अछूतों से बताते छूत हैं।
कर्म कोई खुद करें पर पूत हैं।
हैं सगों को ये पराया मानते,
क्या यही स्वामी तुम्हारे दूत हैं ॥ ९ ॥
शासकों से माँगते अधिकार हैं,
पर नहीं अन्याय अपना छोड़ते।
प्यार का नाता पुराना तोड़कर;
हैं नया नाता निराला जोड़ते ॥१०॥
नाथ! तुमने ही हमें पैदा किया।
रक्त मज्जा मांस भी तुमने दिया।
ज्ञान दे मानव बनाया फिर भला
क्यों हमें ऐसा अपावन कर दिया ॥११॥
जो दयानिधि कुछ तुम्हें आये दया,
तो अछूतों की उमड़ती आह का,
यह असर होवे कि हिन्दुस्तान में,
पाँव जम जावे परस्पर प्यार का ॥१२॥

रामचन्द्र शुक्ल

(१९)

पेट-स्तोत्र

नमामि पेटं नमामि पेटं पेटं परमाराध्य प्रभो!
पाँड़े पानी-पाँड़े बनते। चौबे जी चपरास पहनते ॥

हेतु तुम्हारे शुक्र भिखारी । अद्भुत महिमा बड़ी तुम्हारी ।
नमामि पेटं नमामि पेटं पेटं परमाराध्य प्रभो !
द्वारपाल हैं बने द्विवेदी । तेल वेंचते बैठ त्रिवेदी ॥
बने मिश्र जी जमादार हैं । गावैं कैसे गुण अपार हैं ।
बिड़ी बनाते हैं साईं जी । बड़ी बेचती हैं बाई जी ॥
पाठक बेचैं धोती-जोड़ा । जो कुछ आप करैं सो थोड़ा ॥
तज हथियार तराजू धारी । क्षत्री बन बैठे पंसारी ॥
त्याग बेचना जीरा-धनियाँ । बने कान्स्टेबिल हैं बनियाँ ॥
दुखदाई चपेट तव खा के । भस्म रमा के जटा बढ़ाके ॥
कई शूद्र दुर्व्यसनी पाजी । बन बैठे जग में बाबाजी ॥
पृथ्वी भर के सकल जीवगण । साहब, बाबू, सेठ, महाजन ॥
लगा रङ्क से महाराज तक । सभी आपके हैं आराधक ॥
सिर में टोपी तन में कुरता । भले ही न हो पग में जूता ॥
आप भरे हैं तो क्या कहना । बहता सदा शान्ति का झरना ॥
तव चिन्ता निज मन में धारे । भूख प्यास की दशा बिसारे ॥
प्रतिदिन प्रतिक्षण हेतु तुम्हारे । फिरते हैं सब मारे मारे ॥
किसी को पर धर्मी बनवाया । किसी को लन्दन तक पहुँचाया ॥
किसी को बाघम्बर पहिनाया । सब को तुमने नाच नचाया ॥
लिये तुम्हारे लोग झगड़ते । पैर पकड़ते नाक रगड़ते ॥
ऐंठ छोड़तें हाथ जोड़ते । आँखे फोड़ते पैर तोड़ते ॥
ज्ञान तभी तक ध्यान तभी तक । ईश्वर का गुण-गान तभी तक ॥
रहते भरे आप हैं जबतक । खाली में है कोरी बक बक ॥
स्थिति अनुसार भक्त-गण अर्पित । लेह्य, चोष्य, पेयादिक चर्वित ॥
नित नैवेद्य ग्रहण करते हो । तो भी खाँव खाँव करते हो ॥
घर में कोई भी मर जावे । रोना-धोना भी मच जावे ॥
तो भी होती है तव पूजा । कौन समर्थ आप सा दूजा

प्रातःकाल नींद खुलती जब। मनोवृत्ति जागृत होती तब॥
याद आपकी ही आ जाती। शीघ्र दृष्टि हण्डी पर जाती॥
जन्मकाल से जीवन भर तक। उषःकाल से अर्द्धरात्रि तक॥
लेकर मन में विविध बासना। करते सब तव नित उपासना॥
करै न जो नित तव आराधन। महा मूर्ख पापी वह दुर्जन॥
शीघ्र अवज्ञा फल पाता है। कुछ दिन ही में मर जाता है॥
जग में तव ऐसी है महिमा। ऐसे हैं प्रताप, गुण गरिमा॥
बड़ को पीपल कहना पड़ता। साले को प्रभु कहना पड़ता॥
कई आप हित ऐसे मरते। चमरों को सलाम नित करते॥
कई पीटते यश की भेरी। करते नीच द्वार में फेरी॥
तुम्हीं दुखों से भेंट कराते। तुम्हीं अनेक चपेट खिलाते॥
जड़ लेखनी कहाँ तक गावे। जग जीवों की कौन चलावे॥
यक्ष, रक्ष, सिद्धादिक किन्नर। सुर तक भी रखते हैं तव डर॥
मैं ने स्तुति की है तव ऐसी। होगी न की किसी ने जैसी॥
बस बरदान यही मैं पाऊँ। तेरा दुःख कभी न उठाऊँ॥

शुकलालप्रसाद पाण्डेय

(२०)

विनय

हे नन्दनन्दन कृपाल केशव सुनो दयामय विनय हमारी।
है मोह ममता में उन्मथित मन सुखी करो शान्ति दो मुरारी॥
अनेक भक्तों के दुख हैं मेटे अनन्त लीला विकास करके।
हमारा संशय विना निबेटे न चैन पावोगे चक्रधारी॥
उसी दया का विकाश करिए हमारा भ्रमजाल नाथ हरिए।
न दीन का पाप देख डरिये हरैगा फिर कौन भीर भारी॥

अनेक व्याघात द्वन्द्व विग्रह जगत के जंजाल सह रहा हूँ।
धरे हूँ विश्वास दृढ़ तुम्हारा कि हम को तारोगे अब की बारी ॥

रामनारायण चतुर्वेदी, बी० ए०,

(२१)

अगाध की गोद में।

चला जा रहा हूँ पर तेरा अन्त नहीं होता प्यारे।
मेरे प्रियतम ! तूही आकर अपना भेद बता जा रे।
तेरे गाढ़े आलिङ्गन में सब कुछ भूला जाता हूँ।
हूँ टटोलता इधर उधर पर कहीं न तुझको पाता हूँ।
मुझको चूम चूम कर यों तू भागा सा क्यों जाता है ?
रे अगाध ! तू तो व्यापक है दूर कहाँ हट जाता है ?
मुझको ज़रा चूम लेने दे अपनी हविस मिटाने दे।
भाग नहीं मेरी बारी यों ज़रा पास आ जाने दे ॥

रामनाथ लाल, "सुमन"

(२२)

गोपाल

कहाँ भूले मेरे गोपाल !

स्नेह की मूर्ति आप हैं नाथ, प्रेम से वञ्चित हैं हम दीन।
भला, फिर क्यों न पकड़ते हाथ, भूलते हो क्यों प्रण प्राचीन ?
यहाँ आकर सब देखो हाल, कहाँ भूले मेरे गोपाल ! ॥१॥
आज कालिन्दी का कल कूल, दिखाता है मरघट सा हाय !
जहाँ पर थे कदम्ब—है धूल, मीच-मुख में शोभित हैं गाय !!
करो कुछ चिन्ता इनकी लाल, कहाँ भूले मेरे गोपाल ! ॥२॥
खबर है उस मिट्टी की आज, जिसे तुम खाते थे घनश्याम !

"रक्त-मय !!"-कहते आती लाज, हुआ है उस पर कत्ले-आस !
नाचता है 'पशुबल' दे ताल, कहाँ भूले मेरे गोपाल ! ॥३॥
तुम्हारा प्यारा कारागार, आज गीता-भक्तों से पूर्ण !
वहाँ के सुनकर अत्याचार, हृदय मानव के होते चूर्ण !
"करें 'अनशन' खिँचती है खाल, " कहाँ भूले मेरे गोपाल ! ॥४॥
रहोगे क्या अब भी चुपचाप, छोड़कर 'दीनबन्धु' का काम ।
अगर आना हो आयें आप, नहीं तो, मिट जायेगा नाम'
सोच लो, हो भारत की ढाल, कहाँ भूले मेरे गोपाल ! ॥५॥

पाण्डेय बेचन शर्मा, "उग्र"

(२३)

शक्ति-संहार

बढ़ाने दो सैनिक सब ओर, रहें वे सजग लिये हथियार ।
बेड़ियाँ कसने दो भरपूर, मूँदने दो निष्कृति के द्वार ॥
कराने दो शिशुओं का नाश, उघड़ जाने दो अपनी लाज ।
रहा अब बन्धन कितना और, हो चुके यहाँ त्राण के साज ॥
धन्य स्वातन्त्र्य–स्वरूप कठोर, मुक्तिदायक प्रिय कारागार ।
दीन–प्रतिपाल, आठवाँ बाल, ले चुका है इसमें अवतार ॥१॥
गिराते हैं भूतल पर नाक, सुभद्राओं के कर्षित केश ।
बुभुक्षित क्षीण उदर-बल धसित, धरा पाती है गुरुतरु क्लेश ॥
भोगना पड़ा बास अज्ञात, स्वत्व का लिया कभी यदि नाम ।
शान्तियुत नीति-निपुण गोपाल, पा नहीं सके पाँच भी ग्राम ॥
छिड़ेगा फिर भारत संग्राम, धनञ्जय करें न कुछ सन्ताप ।
प्रबल लगता है रिपु-दल किन्तु, सारथी होंगे मोहन आप ॥२॥
चली है बीरों की वह अनी, रुकेगी कहीं न जिसकी बाढ़ ।
आत्म-बल में लेकर सब आश, दिशाओं को देंगे वे पाढ़ ॥

कवच से नहीं उन्हें कुछ काम, न कर में लेंगे कभी कृपान।
बहावेंगे न रुधिर की बूँद, स्वयं हो जावेंगे बलिदान॥
भरा होगा हृदयों में जोश, न होगा द्वेष, न होगा रोष।
चरण-चिन्हों को सादर विजय, चूमते पायेगी सन्तोष॥३॥
हो चुका दधीचियों का दान, हृदय-खंडों का भीषण दंड।
प्रकट हो चुकी रुधिर घटा जन्म, विनाशक सीता शक्ति प्रचण्ड॥
चढ़ चुका दुशासन का कोप, खिंच गया दुखद द्रौपदी चीर।
देखकर सहसबाहु की चाल, सजग हो चले परशुधर वीर॥
शक्तियाँ उमड़ी हैं घनघोर, लक्ष्य है इन सब का किस ओर?
विजेताओं को करने विजित, पाशविक बल का लाने छोर॥४॥

ठाकुरप्रसाद शर्मा, एम० ए०

(२४)

मन-मोर

पूँछता हूँ सब से कर जोर।
किसी ने देखा मेरा मोर॥
नवल नयनयुत नीलकण्ठ शुभ हंसगामिनी चाल।
अति विचित्र हैं पंख मनोहर, लख लोचन बेहाल॥
अरे वह मनमोहन चितचोर।
किसी ने देखा मेरा मोर॥
सन्ध्याकाल अमावस्या का घिर आये घन घोर।
श्याम श्यामघन श्यामघटा में देख साँवली कोर॥
नाचता गया घाट की ओर।
किसी ने देखा मेरा मोर॥
तब से बैठा देख रहा हूँ फिर आने की राह।
प्राण हो रहे व्याकुल मेरे क्षण क्षण बढ़ती चाह॥

भटक जावेगा दक्षिण ओर।
किसी ने देखा मेरा मोर॥
हिंसक जीव उधर रहते हैं दुष्ट वधिक बेपीर।
कभी न लक्ष्य चूकता उनका तान मारते तीर॥
खींचते पंख मरोर मरोर।
किसी ने देखा मेरा मोर॥

नयन

(२५)

एकान्त-रोदन

प्रतिध्वनि! प्रतिध्वनि! क्यों रोती है? जले हृदय को रोने दे।
आँसू की धारा से उसको सारा विश्व भिगोने दे॥
कुहूनिशा के कम्पित स्वर में नीरवता का करुण कलाप।
उमड़ रहे हैं दबे भाव फिर रुक न सकेगा कभी प्रलाप॥
ध्वनि उठती है "विचलित मत हो", किन्तु न हूँगा अब मैं शान्त।
तेरा अङ्क शून्य है, उसमें रोने आता हूँ एकान्त॥
सुख मिलता है व्यथित हृदय को अपनी व्यथा सुनाने में।
स्वयं तड़पने में, सुननेवालों को भी तड़पाने में॥
स्वार्थी विश्व, कौन करता है किसी दूसरे की परवाह।
हम हैं रोते, वे हँसते हैं उनकी हँसी, हमारी आह॥
आह! कृतघ्न विश्व का झोंका मुझे बनाता है उद्भ्रान्त।
तुझसे अपनी करुण कथा कहने को आता हूँ एकान्त॥

भगवतीचरण वर्मा

(२६)

गीता

(१)

जैसे जीर्ण वस्त्र को तजकर नर नूतन पट लेता धार।
वैसे जीर्ण देह तज देही अन्य देह करता स्वीकार॥

(२)

काट न सकते शस्त्र इसे हैं जला न सकता इसे अनल ।
वायु न इसे सुखा सकता है गला न सकता इसको जल ॥

(३)

मर जाने से स्वर्ग मिलेगा। जय होने से भूतलराज ।
इससे निश्चय ही भारत ! तू हो जा खड़ा युद्ध को आज ॥

(४)

विजय, पराजय, हानि, लाभ, सुख, दुःख सभी को जान समान ।
फिर प्रवृत्त हो जा तू रण में पाप नहीं होगा मतिमान ॥

(५)

कर्ममात्र का है अधिकारी फल का तुझे नहीं अधिकार ।
हेतु कर्मफल का मत हो, पर कर्म छोड़ मत पाण्डु-कुमार ॥

पुरोहित रामप्रताप

(२७)

प्रेम प्रवाह

(१)

इच्छा नहीं हमें है भगवन् ! हो सम्पत्ति हमारे पास ।
नहीं चाहिये प्रासादों का वह विलासमय सुखद निवास ।
सोवें सूखी तृणशय्या पर, कर फल पत्तों पर निर्वाह ।
पर समता का हृदय-भूमि पर सञ्चालित हो प्रेम-प्रवाह ।

(२)

दृष्टि हमारी धुँधली होकर धोखा कभी न दे सर्वेश !
भ्रातृ-भाव के शीशे में से देखें बन्धुवर्ग के क्लेश ।
पतिता जन्मभूमि के हित हो, बच्चा बच्चा वीर बराह ।
रुधिर रूप में उमड़े अच्युत हृन्निर्झर से प्रेम-प्रवाह ।

(३)

स्वार्थ-शून्य हो सत्यभाव से, मिलें नाथ हम सब जी खोल।
नीच भाव की कीच फाड़कर, उगे प्रीति-पङ्कज अनमोल।
तन, मन, धन अर्पण कर मेटें, दैत्य-दासता-दारुण-दाह।
हो स्वातन्त्र्य-समीरण का फिर, माधव! प्रचलित प्रेम-प्रवाह।

(४)

सहनशीलता साहस से हो, भक्तिपूर्ण सच्चा अनुराग।
सीखें सत्यव्रत हित करना, सभी संप्रदाओं का त्याग।
विपद्वज्र का प्रबल पात हो, पर निकले न कभी भी आह।
चले निरन्तर नेत्रनीर से, मातृ-भूमि का प्रेम-प्रवाह।

गोकुलचन्द्र शर्मा, बी० ए०

(२८)

आओ

आया है यह जगत जहाँ से और जा रहा है जिस ओर।
जहाँ आदि है इस सागर का और जहाँ है इसका छोर॥
जिस लीलामय की इच्छा का दीख रहा है यह विस्तार।
जो है सब का सार सार है जिसका यह सारा संसार॥
जिसके पूर्ण अनन्त प्राण से पाया सबने जीवनदान।
देने को पूर्णता स्वीय जो करता है सब का आह्वान॥
जिसका बंसी-स्वर यमुना के अन्तस्तल में होता है।
जगता जग जागृति से जिसकी ही निद्रा से सोता है॥
उसी परम अज्ञात स्वजन से स्नेह लगाने जाता हूँ।
सर्व्व ज्ञान को त्याग उसी का गीत आज मैं गाता हूँ।
आओ मेरे सङ्ग ज्ञान का संचय नित करनेवालो!
चलो सच्चिदानन्द-अङ्क में जीवन के रस को पालो॥

गिरिजादत्त शुक्ल, "गिरीश," बी० ए०

(२९)

जिज्ञासा

(१)

ऊपर सुदूर फैला नीला असीम नभ है।
नीचे अनन्त पृथ्वी छाया तले पड़ी है॥
आधार किन्तु किसका है मध्य में उभय के?
ब्रह्माण्ड और नभ किस संकेत से थमे हैं?

(२)

किस की प्रकाश-छाया-सी यह उषा सुनहली—
अस्पष्ट-सी झलकती है काँपते तिमिर में?
पाता प्रकाश इतना रवि नित्य है कहाँ से?
होती सुकान्त सुन्दर बेला प्रभात की क्यों?

(३)

आते समीर के ये झोंके मधुर कहाँ से?
बहते निकुञ्ज में हैं जो मन्द मन्द गति से।
किसका संदेश जाकर कहते प्रसून से हैं?
क्यों फूल फूल उठता, उड़ती सुगन्ध क्यों है?

(४)

प्याले मिलिन्द आते मकरन्द-पान करते।
होकर प्रमत्त फिर जब वे तान छेड़ते हैं॥
अथवा कहीं पिकी जब करती कुहु कुहू है।
तब अर्थ कौन है उस संगीत का समझता?

(५)

आलोक शेष अन्तिम जब छोड़कर जगत् में—
दिन के थके दिवाकर जाते चले प्रतीची॥

भरकर सुहाग का तव सिन्दूर कौन सिर में—
है भेजता भुवन में सन्ध्या-सुहासिनी को ?

(६)

क्यों श्याम, करुण इतनी आकृति निशीथ की है ?
उसके विशाल उर में है वेदना छिपी क्या ?
होकर गभीर-वदना निज केश-पाश खोले—
बैठी सघन द्रुमों के नीचे विचारती क्या ?

(७)

नक्षत्र-पुञ्ज में है झिलमिल प्रकाश किसका ?
चिन्ता ललाट पर यह कैसी सुधांशु के है ?
जब ग्रीष्म ताप से अति तपती बसुन्धरा है।
आते पयोद लेकर शीतल सलिल कहाँ से ?

(८)

अविराम एक गति से, ये झाग-पूर्ण झरने—
करते निनाद झर्झर कब से प्रपात होते ?
गंभीर, मौन, ऊँची वे शैल-श्रेणियाँ क्यों—
चिर-काल से खड़ी हैं ? किसकी उन्हें प्रतीक्षा ?

(९)

संसार की सभी ये लीला विचित्र क्यों है ?
किसकी अपार माया सर्वत्र व्याप्त-सी है ?
श्रृङ्गार प्रकृति रचकर प्रतिक्षण नवीन अपना—
किसको रिझा रही है ? वह कौन-सा रसिक है ?

मदनमोहन मिहिर

(३०)
अनोखी आँखें

मेरी आँखों में रमे, अंजन बन घनश्याम।
मनरंजन शुभ गुण सदन, भव-भंजन अभिराम ॥१॥

सम्मुख मुख रुख देखकर, था सुख का संचार।
आँखें फेरी फिर गया, सहसा सब संसार ॥२॥

खंजन मधुकर मीन मृग, ये सब एक समीप।
घूँघट पट में देखिये, पाले मदन महीप ॥३॥

करि केहरि अहि मीन अरि, स्नेह सहित नित साथ।
देह देश में देखिये, पाल रहा रतिनाथ ॥४॥

खंजन मृग अलि मीन हैं, एक रूप सब रूप।
धन्य असम्भव भव विभव, निपुण मनोभव भूप ॥५॥

लोचन उपयोगी महा, हैं ध्रुव-यन्त्र समान।
विचलित हो न सुपंथ से, जन-जीवन-जलयान ॥६॥

प्राप्त हुई हैं प्रकृति से, ये घड़ियाँ अनमोल।
उठ इनका उपयोग कर, झटपट आँखें खोल ॥७॥

लोचन पारस सदृश हैं, कर कुछ सार सुवर्ण।
याद दिलाते दान की, युगल कर्ण हैं कर्ण ॥८॥

मानव के व्यक्तित्व के, हैं ये ज्ञापक यन्त्र।
लोचन आनन में लिखे, मारन मोहन मन्त्र ॥९॥

आँखों की ही जाँच पर, करो सुहृद ! सन्तोष।
इन कसौटियों पर कसो, जन जन के गुण-दोष ॥१०॥

वचो देख भव-कूप, दो दो दृग अर्पण किये।
पहिचानो निज रूप, प्रभु ने ये दर्पण दिये ॥११॥

फिर मत करना खेद, ये आँखें देंगी ठगा।
खुल जायेगा भेद, चिन्ता का चश्मा लगा ॥१२॥

राजाराम शुक्ल

(३१)

शुभाशा

अखिलेश अनंत विधाता हो, मंगलमय मोद प्रदाता हो।
भय भंजन शिव जनत्राता हो, अविनाशी अद्भुत ज्ञाता हो॥
तेरा ही एक सहारा हो।
हरि! हिंद प्राण से प्यारा हो ॥ १ ॥

सब को स्वतंत्रता प्यारी हो, निज स्वत्व सम्पदा सारी हो।
स्वाधीन सभी नर नारी हों, सब चार वर्ण अधिकारी हों॥
दासत्व देश से न्यारा हो।
हरि! हिंद प्राण से प्यारा हो ॥ २ ॥

अघ दंभ ईति खल कूट न हो, षड्रिपु हिंसा दुख फूट न हो।
चोरी असत्य छल छूट न हो, हठ द्वेष हलाहल घूट न हो॥
जीवन आदर्श हमारा हो।
हरि! हिंद प्राण से प्यारा हो ॥ ३ ॥

बलवीर्य पराक्रम स्वेष रहे, सद्धर्म धरा पर शेष रहे।
श्रुति भानु एकता वेष रहे, धन ज्ञान कला-युत देश रहे॥
सर्वत्र प्रेम की धारा हो।
हरि! हिंद प्राण से प्यारा हो ॥ ४ ॥

जल में जलयान हमारा हो, थल में कल्यान हमारा हो।
आकाश विमान हमारा हो, सारा सामान हमारा हो॥
भारत सिरताज हमारा हो।
हरि! हिंद प्राण से प्यारा हो ॥ ५ ॥

भारत तन मन धन सारा हो, उसकी सेवा सब द्वारा हो।
निज मान समान दुलारा हो, सब की आँखों का तारा हो॥
जीवन सर्वस्व हमारा हो।
हरि ! हिन्द प्राण से प्यारा हो॥ ६॥

विद्याभूषण "विभु",

(३२)

न्याय की खोज।

न्याय ! कहाँ तू मुझे मिलेगा मैंने दुनिया छानी।
ज्यों ज्यों तुझे ढूँढ़ता हूँ मैं बढ़ती है हैरानी।
प्रेम किया प्रेमी-जन पाये सोचा वहाँ मिलेगा।
किन्तु अन्त में देखा वह भी थी मेरी नादानी।
दौलत और ग़रीबी देखी सुख भी देखा दुख भी।
सब को मैंने कहते पाया तेरी राम-कहानी।
खोजे धर्म सभी दुनिया के राजनीति भी देखी।
पाई किन्तु वहाँ भी दुनिया मतलब पर दीवानी।
आज प्रकृति में खोज रहा हूँ क्या तू यहाँ मिलेगा ?
पड़ी दिखाई आभा की है कुछ कुछ यहाँ निशानी॥

देवीप्रसाद गुप्त

(३३)

पहुँचत पथिक गाउँ के धोरे।

लटपट चरन परत अटपट अति भरत अनंद अथोरे।
मनु महान गज चलत मत्तगति रभस अलानहि तोरे॥
दूरिहि ते बिरहन की धुनि सुनि लखि ग्वालन के छोरे।
सुधि करि सुवन भवन परिजन की टूटत धीरज डोरे॥
उठत भाव बहु बेग भरे अति फेरि न फिरत बहोरे।
पहुँचि भवन प्रथमै फरकावत नेहिन के चखकोरे॥

बजत हिये बिच नेह नगारे देत बिरह नभ फोरे।
छिन छिन उमड़ि घुमड़ि उठि बैठत सघन प्रेम घनघोरे॥
रूख करत मन सरस चहूँ दिसि लेत बाग चितचोरे।
ललकत हृदय 'अनूप' प्रेमरस छलकत नैन कटोरे॥

अनूप शर्मा, बी० ए०

(३४)

सरसों का सौजन्य

काटा हमने और खूब पीटा मर मर कर।
पेर पेर कर तेल निकाला तुझ से जी भर॥
फिर दीपक में भरकर थोड़ा तूल मिलाया।
निर्दयता से खोद खोद कर तुम्हें जलाया॥
हमने तो अस्तित्व तक; नष्ट तुम्हारा कर दिया।
तुमने अहा! प्रकाश से, अखिल भुवन को भर दिया॥

मोहनलाल महतो "वियोगी"

(३५)

कन्हैया आजा रे!

प्रकृति-नटी के रम्य कुञ्ज में,
मुरली मधुर बाजा जा,
रस बरसा जा रे॥ क०॥

(१)

बिकल सकल ब्रज की बनिताएं, स्वागत हित दग कमल बिछाये;
बैठी हुईं प्रतीक्षा-पथ में,
दर्शन सुधा चखा जा रे॥ क०॥

(२)

कालिंदीं अति बिह्वल होकर, कलकल कल कल स्वर में सुमधुर
गाती हुईं जा रहीं मिलने
पद-रज भेंट चढ़ा जा रे॥ क०॥

(३)

मेरी दीन कुटी का माखन, आकर खाजा हे जीवन धन !
सूत्रधार इस जग नाटक के
आकर नाच नचा जा रे ॥ क० ॥

(४)

कभी किलकना कभी मचलना, कभी दौड़ना घुटनों चलना
यशुदा के आँखों के तारे,
बाल-केलि दिखला जा रे ॥ क० ॥

(५)

एक बार फिर इस पृथ्वी पर, जग-तम चीर प्रकट हो नटवर
भरी हुई है अघ की मटकी,
आकर के ढुलका जा रे ॥ क० ॥

स्व० शिवदास गुप्त "कुसुम"

(३६)

हाहाकार

उर-अन्तर का हाहाकार ।
उठकर एक दिशा से पहुँचा, वहीं अन्ततः जहाँ किसी का,
कभी न होता है निस्तार ।
उर-अन्तर का हाहाकार ॥
जीवन बीता सन्ध्या आयी, सकुचे पद्म कालिमा छायी ।
सदन हो गया कारागार !
उर-अन्तर का हाहाकार ॥
हुआ प्रभात उदित प्राची में, जीवन के भी अभ्यन्तर में ।
विहँसे पद्म-जीवनाधार ।
उर-अन्तर का हाहाकार ॥

उधर खिल पड़ीं सारी कलियाँ, इधर रच गयीं झट रँगरलियाँ।
कितना मधुर लगा संसार !
उर-अन्तर का हाहाकार ॥
दिन बीता फिर सन्ध्या आयी, फिर-फिर वही दिया दिखलायी।
किन्तु न छूटा हाहाकार।
उर-अन्तर का हाहाकार ॥
वर्ष न बीते सदियाँ बीतीं, हँसन-रुदन में रतियाँ बीतीं।
पृथक हुआ क्या हाहाकार ?
जीवनही है हाहाकार ॥

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

(३७)

शिशिर-समीर

सालती शर-सम शिशिर-समीर।
आई थी चुनने ये विकसित, सुरभित शुभ्र प्रसून।
सोचा था,—मन्दिर जाऊँगी, सुमन सहित ले नीर ॥
किन्तु, 'करेला यों ही कड़ुवा, और चढ़ा फिर नीमा।
शिशर-समीर और हिम-आवृत—पर्वत-अञ्चल-तीर !
तड़पन, टीस अँगुलियों में, उफ़ ! उठा कलेजा डोल।
क्षण क्षण अधिक हुई जाती हूँ अस्थिर और अधीर ॥
गिरि-शिखरों ने सुदृढ़ कवच-हिम से तन ढाँका, किन्तु।
किन्तु ! न समझे यह कितनी है—क्रूर और वेपीर ॥
'अरुणाभा झलझला रही है गिरिपर'—कहते लोग।
निज-सुख-मत्त जगत क्या जाने भला पराई पीर ?
मुझ पर बीत रही है मुझ से सुनो व्यथा की बात।
गिरि-शिखरों पर रक्त-छलछला रहा वर्म्म-सित चीर ॥

कितना भीम-वेग झोंकों में भरा हुआ है, आह !
बरजोरी थामे हूँ तो भी उड़ा जा रहा चीर ॥
केश सँभालू या कि खिसकता, उड़ता हुआ दुकूल ।
क्या क्या करूँ ! हाथ हैं दो ही; कैसी स्थिति गम्भीर ॥
खर खर, झर झर हहर हहर की रही प्रतिध्वनि गूँज ।
निर्जनता ! है ! है ! जाता है रहा सहा सब धीर ॥

जगमोहन, "विकसित"

(३८)

मयंक

नील व्योम के सुन्दर दीपक ! शीतलता के भव्य भवन !
उस निर्जन वन में अनन्त की नीरवता में खिले सुमन !
आकुलता के सौम्य कलेवर ! मथित—क्षीर—सागर—नवनीत !
निशा-सुन्दरी के भावुक पति ! मेरे मानस के संगीत !
सुर—सरिता—तरंगमाला में, आकुल हृत्कम्पित नाविक !
धीरे धीरे आओ ! आओ !! आओ !!! सुस्मित-वदन रसिक !
विश्व-वेदना के दर्शन-पट ! मेरे नयनों के झूले !
आओ ! आओ !! निशानाथ ! चिर दुखित कुमुदिनी भी फूले !

द्वारकाप्रसाद मौर्य, बी० ए०

(३९)

उपदेश के दोहे

सहज शत्रु हैं मनुज के, चिर निद्रा तन रोग ।
ऋण लालच सन्ताप छल, क्रोध मदादिक भोग ॥ १ ॥
जैसे करता नष्ट है, उपल विपल में सस्य ।
वैसे विद्या बुद्धि का, नाशक है आलस्य ॥ २ ॥
सुगुण नहीं सौजन्य सम, शील सदृश शृङ्गार ।
विद्या सम वैभव नहीं, देखो मित्र विचार ॥ ३ ॥

पर उन्नति की चाह है, और न कुछ परवाह।
ऐसे सज्जन की सदा, जग करता है चाह ॥ ४ ॥
अगर आप हैं चाहते, अपना परम सुधार।
नशा कुसंगति से सदा, रहियेगा हुशियार ॥ ५ ॥
निन्दा सम पातक नहीं, नहीं सत्य सम धर्म।
लज्जा सम भूषण नहीं, नहीं फर्ज सम कर्म ॥ ६ ॥
धन की शोभा धर्म है, प्रिय की शोभा प्रीति।
कुल की शोभा पुत्र है, नृप की शोभा नीति ॥ ७ ॥
वही तपस्वी जानिये, जिसके राग न रोष।
रूखा सूखा जो मिले, है पूरा सन्तोष ॥ ८ ॥

शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन'

(४०)

उपदेश-प्रद दोहे

बिना पुत्र सूना सदन, रत-गुण सूनी देह।
वित्त बिना सब शून्य है, प्रियतम बिना सनेह ॥१॥
सत्सङ्गति से सुजनता, पा जाता है नीच।
ज्यों लेती है मृत्तिका, गन्ध सुमन से खींच ॥२॥
दुख से पहिले पुरुष जो, करें न कुछ उपचार।
अग्नि लगे पश्चात वे, करते कूप तयार ॥३॥
है मनुष्य की देह में, कैसा एक रहस्य।
शत्रु मित्र हैं सङ्ग ही, श्रम एवं आलस्य ॥४॥
जानों सज्जन की यही, एकमात्र पहचान।
इनके होते तीन हैं—मन, बच, कर्म समान ॥५॥
मेधावी, वक्ता, सुधी, धर्मनिष्ठ, गुणवान।
सत्कवि की यह जानिये, सीधी सी पहचान ॥६॥

जो हों लोभी, पातकी, व्यसनी क्रूर, गँवार।
उन्हें कभी मत दीजिये, थोड़े भी अधिकार ॥ ७ ॥
एक देह के भाग हैं, उरू, भुजा, मुख, पैर।
क्या मुख करता है कभी, नीच पैर से बैर? ॥ ८ ॥
आश्रित चरणों के सदा, रहती है यह देह।
अतः बाहु, शिर ने किया, पद-वन्दन सस्नेह ॥ ९ ॥
अहंकार, अविचारिता, दुर्वच, वैर, विवाद।
अविवेकी के चिन्ह ये, रखिये सन्तत याद ॥१०॥
शीश कटे तो मत डरो, करो विजय की आश।
शीश कटाया दीप ने, दूना हुआ प्रकाश ॥११॥
दो जिह्वा रखिये नहीं, हो विद्या-वागीश।
यथा लेखनी का कटा, कुटा ब्याल का शीश ॥१२॥

रुद्रदत्त मिश्र

(४१)

विचित्र चित्रकार

भाल है विशाल नभ विशद प्रभा का पुञ्ज,
इन्द्रचाप भ्रू है छवि अकथ अपार है।
लोचन हैं सुन्दर दिवाकर निशाकर दो,
शुभ्र नभगङ्गा मोतियों का मञ्जु हार है॥
मेदिनी है कटि, मेखला है नीरनिधि,
पद पावन पाताल विश्व-भार का आधार है॥
अपने ही रङ्ग में रंगे है अपने को वह
अपने ही चित्त का विचित्र चित्रकार है॥

दिवाकर सिंह

(४२)

वञ्चक

एक दिवस वे रूप बनाये।
मेरे मुक्त द्वार पर आए॥
बोले—"निज आँगन में, हमको दो थोड़ा सा स्थान।
तुम्हें करेंगे ईश-भजन में, हम साहाय्य प्रदान"।
मैंने गृह-पट खोल दिए सब।
शान्ति-सहित वे बैठ गए तब॥
पर घुस पड़े अचानक घर में, वे होते ही रात।
छीना 'प्रभु-प्रसाद' निर्दय बन, किया बहुत उत्पात॥
सब कुछ अपने आप लुटाया!
मैंने कैसा धोखा खाया!!

श्रीगोपाल नेवटिया, "विशारद"

(४३)

तुम

(१)

मत्त-मोर के नव नर्तन में, कोकिल के कल कूजन में,
उषा-काल के अलिगुञ्जन में, लतिका के नव यौवन में,
बाल युवतियों के चितवन में, शिशु के मृदु भोलेपन में,
तुम्हीं विश्व-भय-मोचन में हो, रिपुमर्दन भीषण रण में॥

(२)

दिनकर की अन्तिम किरणों से, पुलकित निर्मल स्वर्ण-गगन,
हरियाली से लदे सघन गिरि, कुसुमित सुरभित वन उपवन,
तरल-तरंग-तरंगित सागर, परिमल-पूरित कलित कमल,
सभी एक स्वर से तव वैभव, कहते हैं नित, अनिल, अनल॥

(३)

मृदु मयंक की शुभ्र ज्योत्स्ना , जल थल नभ में फैल ललाम ,
तव तनु के मंजुल प्रकाश सी , हमें दीखती है अभिराम ,
निशा-काल में गगनमध्य , अवलोक सितारों का संसार ,
हमें जान पड़ता बिखरा सा , तव मंजुल हीरों का हार ,

(४)

लोनी लोनी ललित लतायें , पुष्प-पल्लवित रुचिर अपार ,
मृदुल नवल पल्लव से भूषित , हरी भरी सुरभित सुकुमार ,
निज यौवन की चञ्चलता में , करती है जब वायु-विहार ,
समझ तुम्हारी ही कल-क्रीड़ा , होता हूँ मैं चकित अपार ,

(५)

वर-वसन्त के सरस-स्पर्श से , प्रकृति सुन्दरी मुदित-महान ,
मंजुल नित नव साज सजाकर , शोभित होती है, छवि मान ,
उसकी वह मृदु छटा निरख कर , होता है जी में यह भान ,
निज सुषमा जगती पर फैला , तुम्हीं हुए हो अन्तर्धान ,

(६)

ऊषा में तुम कलित-कञ्ज हो , तथा निशा में कुमुद ललाम ,
आते दिन में तुम दिनकर बन , स्तब्ध निशा में शशि अभिराम ,
एक पुष्प में अतुलित उपवन , एक विन्दु में अब्धि अपार ,
एक छन्द में अखिल काव्य तुम , एक व्यक्ति में हो संसार ॥

कुमार सोमेश्वर सिंह

(४४)

भारत-माता की स्मृति

तरस तरस कर रह जाते हैं सुरगण तुझ में तन धरने को ।
परमेश्वर तक प्रकटित होते तुझ में लीलाएँ करने को ॥

सुखप्रद सलिल समीर समय पर सबको तू प्रदान करती है।
भेदभाव तू नहीं जानती सबको गोदी में धरती है॥
स्वर्ण-भूमि है, रत्न-राशि है, कण-कण में कमला का घर है।
देती तू है अन्न निरंतर जिनपर जीवन ही निर्भर है॥
गिरी दशा तक में तव गौरव-तेज जगत में है चमकाता।
कौन अधम होगा जो भूले तेरी स्मृति हे भारतमाता!॥

रसिकेन्द्र

(४५)

मैं

(१)

जाना चाहा किधर! विश्वगति मुझे कहाँ पर ले आई?
विधि ऐसा प्रतिकूल हुआ कुछ, बात न बिगड़ी बन पाई॥
पता नहीं मेरे जीवन की नाव किधर बहती जाती?
"है तुमसे बलवान विधाता"—यह मुझसे कहती जाती॥

(२)

है मुझसे बलवान विधाता कहता है मेरा जीवन।
नहीं मानता लाख मनाया पर मेरा अभिमानी मन॥
कभी न विधि को शीश झुकाया मैंने लाखों दुख सहकर।
'जो चाहे तू कर सकता है'—कभी न बैठा यों कहकर॥

(३)

क्या हूँ मैं आखिर दुनियाँ में? क्या हूँगा निजत्व खोकर?
रहना है क्या मुझे किसी के कर की कठपुतली होकर?
क्या हूँ सो तो नहीं जानता, पर कुछ हूँ इतना है ज्ञान।
'कुछ' की भी सत्ता होती है, सत्ता का होता अभिमान॥

(४)

कभी न वह पाएगी जीवन की नौका स्वतंत्र होकर ।
ले जाऊँगा उसे लक्ष्य पर मैं अपना सर्वस्व खोकर ॥
आफ़त के तूफ़ान उठें, पर होगी गति अपने कर में ।
जिस दिन कर से छूट बहेगी ले डूबूँगा सागर में ॥

(५)

हे अदृश्य की महाशक्तियो, मत करना मेरा उद्धार ?
मुझे देखना है इस 'मैं' की अन्तिम सीमा का विस्तार ॥
लाया हूँ मैं इस दुनियाँ में 'मैं' की सत्ता का उन्माद ।
पता नहीं क्या है अदृश्य में, 'मैं' के मिट जाने के बाद ॥

विक्रमादित्य सिंह, बी० ए०

(४६)

कवि

(१)

समर-भूमि है कर्म्मस्थल है जगत्, मुझे परवाह नहीं ।
सांसारिक विभवों को पाने की मुझको कुछ चाह नहीं ॥
विभव-पराभव की चिन्ता का मुझमें अन्तर्दाह नहीं ।
नहीं निरादर से कुछ भय है आदर से उत्साह नहीं ॥

(२)

लड़ो भिड़ो दौड़ो दौड़ाओ विजय-पराजय अपनाओ ।
भिन्न भिन्न इच्छित कामों में अपने अपने जम जाओ ॥
औरों की अवनति के द्वारा अपनी उन्नति दिखलाओ ।
दुखसागर में डूब डूब कर सुखरूपी अमृत लाओ ॥

(३)

मैं मनमानी अपनी बातें सबको सदा सुनाऊँगा ।
हास्य-रुदन में भय-विस्मय में दुख में सुख में गाऊँगा ॥

जल में थल में अनिल-अनल में शैल-शिखर पर जाऊँगा।
रङ्क-कुटी नृप-प्रासादों में कहीं नहीं घबराऊँगा॥

(४)

शशि से कहीं अधिक शीतल हूँ दीप्तिमान रवि से बढ़कर।
तथा सलिल से अधिक सरस हूँ और अनल से प्रबल प्रखर॥
विस्तृत गगन बहुत ही लघु है त्रिभुवन भर है मेरा घर।
जिन पर कृपादृष्टि करता हूँ पल में बनते वही अमर॥

(५)

वर्तमान मेरा किङ्कर है और भूत मेरा अनुचर।
कौन करेगा समता मेरी है भविष्य भी मेरा चर॥
नृपति यहाँ पर शीश झुकाते अमित शक्ति मेरी लखकर।
वस्तु, देश या काल हमारा है प्रभाव सब के ऊपर॥

(६)

वाल्मीकि जब कहलाता था, था मेरा आरम्भिक काल।
त्रिभुवनविजयी रावण तक का किया न मैंने क्या क्या हाल॥
निकट हमारे शत्रुजनों की कभी नहीं गल सकती दाल।
तनिक रुष्ट होता हूँ जिस पर वह विनष्ट होता तत्काल॥

(७)

मेरी कृतियों से होता है लोगों को आश्चर्य्य महान।
किन्तु नहीं आश्चर्य्य-विषय है ऐसा ही है मेरा गान॥
कवि हूँ मुझे न कोई भ्रम है सभी विषय का मुझको ज्ञान।
गान इसी कारण करता हूँ जिसमें हों प्रसन्न भगवान॥

रामानुजदास, बी० ए०

(४७)

मेरा जीवन।

(१)

स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास, देववीणा का टूटा तार।
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार, रत्न वह प्राणों का शृंगार॥
नई आशाओं का उपवन, मधुर वह था मेरा जीवन॥

(२)

क्षीरनिधि की थी सुप्त तरंग, सरलता का न्यारा निर्झर।
हमारा वह सोने का स्वप्न, प्रेम की चमकीली आकर॥
शुभ्र जो था निर्मेघ गगन, सुभग मेरा संगी जीवन॥

(३)

अलक्षित आ किसने चुपचाप, सुना करके सम्मोहन तान।
दिखाकर माया का साम्राज्य, बना डाला इसको अज्ञान॥
मोह-मदिरा का आस्वादन, किया क्यों हे भोले जीवन!॥

(४)

तुम्हें ठुकराता है नैराश्य, हँसा जाती है तुमको आश।
नाचता है तुमको संसार, लुभाता है तृष्णा का हास॥
मानते विष को संजीवन, मुग्ध, मेरे भूले जीवन!॥

(५)

न रहता भौंरों का आह्वान, नहीं रहता फूलों का राज।
कोकिला होती अन्तरध्यान, चला जाता प्यारा ऋतुराज॥
असम्भव है चिरसम्मेलन, न भूलो क्षण-भंगुर जीवन॥

(६)

विकसते, मुरझाने को फूल, उदय होता छिपने को चन्द।
शून्य होने को भरते मेघ, दीप जलता होने को मन्द॥
यहाँ किसका अनन्त यौवन? अरे अस्थिर छोटे जीवन॥

(७)

छलकती जाती है दिन रैन, लबालब तेरी प्याली मीत ।
ज्योति होती जाती है क्षीण, मौन होता जाता संगीत ॥
करो नयनों का उन्मीलन, क्षणिक हे मतवाले जीवन ॥

(८)

शून्य से हो जाओ गम्भीर, त्याग की हो जाओ झन्कार ।
इसी छोटे प्याले में आज, डुबा डालो सारा संसार ॥
लजा जायें यह मुग्ध सुमन, वनो ऐसे छोटे जीवन ॥

(९)

सखे ! यह है माया का देश, क्षणिक है मेरा तेरा सङ्ग ।
यहाँ मिलता काँटो में बन्धु, सजीला सा फूलों का रङ्ग ॥
तुम्हें करना विच्छेद सहन, न भूलो हे प्यारे जीवन ! ॥

महादेवी वर्मा

(४८)

निःश्वास

अहे ! परमदीना मुझ मलिना, उद्विग्ना की हृदयोच्छ्वास ॥
जाती हो, जाओ तुम, मलयानिल के संग प्रियतम के पास ॥
दुखी हृदय की दुर्बलते ! हे, मेरी असफलते अनजान ॥
हताभिलाषी, विरही-मन की, चिर सङ्गिनी मूक आह्वान ॥
अहे ! प्रकम्पन प्रेमी-मन की, आश्वासन दुखिया जन की ॥
भुवन मोहिनी हे ! अदृश्य तू, आकर्षण स्नेही मन की ॥
हे ! अतीत-स्मृति की रूपान्तर, हे दुखमय चिन्ते साकार ॥
जान सका है कौन जगत में, तेरे नव-विचित्र व्यापार ॥
करती हूँ अनुरोध आज मैं, इससे तुझसे बारम्बार ॥
देख सुअवसर मिलकर उनसे, कह देना तू मेरा प्यार ॥

असहाया अबला यह उनको, और कौन सा दे उपहार ॥
प्रणत रूप में अर्पित करना, मेरे अश्रु-बिन्दु दो चार ॥

सहोद्रा देवी मिश्र

(४९)

कलिका

नव कलिका तुम कब विकसी थी, इसका मुझको ज्ञान नहीं।
हुई समर्पित श्रीचरणों पर, कब इसका कुछ ध्यान नहीं ॥
हृदय-संगिनी सरल मधुरता, मैं देखा अभिमान नहीं।
सच है गुण धन यौवन मद का, दुनियाँ में सम्मान नहीं ॥
इसी हेतु सब श्रेष्ठ गुणों से, पूरित तुमको अपनाया।
नव कलिका जब तुमको देखा, तभी पूर्ण विकसित पाया ॥
नन्दन कानन में सुरभित, होने की तुमको चाह नहीं।
हृदय बेधकर हृदयस्थल तक, जाने को उर-दाह नहीं ॥
मन्त्रमुग्ध से जग-जन होवें, इसकी कुछ परवाह नहीं।
इन पवित्र मुसकानों में है, छिपी हुई वह आह ! नहीं ॥
प्रेममयी ! इस अखिल विश्व को, अचल प्रेम से अपनाना।
यदि मिल जावें युगल चरण यह, तुम उन पर बलि हो जाना ॥

तोरनदेवी शुक्ल, 'लली'

(५०)

मन की भावना

क्षुद्र का कैसा उपहार।
नहीं जानता तेरे सारे वैज्ञानिक उपचार ॥
नहीं समाधि लगाकर जिसने किया तुझे आहूत।
तत्व विचार निरत रहकर जो बना नहीं अवधूत ॥

उस प्राणी का होगा कैसा तेरे प्रति व्यवहार ।
भक्ति भाव से हीन रहा जो रहकर निपट गँवार ॥
किन्तु बिताया अपना जीवन जिसने हे भगवान !
सरल वृत्ति धारणकर जग में तज सारा अभिमान ॥
अपनी मंदचाल से चलकर की तुझ से कुछ प्रीति ।
वह भी मतलब से ही मानो मन से तज सब भीति ॥

देवीदत्त शुक्ल 'किंकर'

॥ इति ॥

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

की पुस्तकों का

सूचीपत्र

कविता-कौमुदी

पहला भाग—हिन्दी

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इस पुस्तक में चंदबरदायी, विद्यापति ठाकुर, कबीरसाहब, रैदास, धर्मदास, गुरुनानक, सूरदास, मलिकमुहम्मद जायसी, नरोत्तमदास, मीराबाई, हितहरिवंश, नरहरि, हरिदास, नन्ददास, टोडरमल, बीरबल, तुलसीदास, बलभद्र मिश्र, दादूदयाल, गंग, हरिनाथ, रहीम, केशवदास, पृथ्वीराज और चम्पादे, उसमान, मलूकदास, प्रवीणराय, मुबारक, रसखान, सेनापति, सुन्दरदास, बिहारीलाल, चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, कुलपतिमिश्र, जसवंतसिंह, बनवारी, गोपालचंद्र, बेनी, सुखदेव मिश्र, सबलसिंह चौहान, कालिदास त्रिवेदी, आलम और शेख, लाल, गुरु गोविन्दसिंह, घनआनन्द, देव, श्रीपति, वृन्द, बैताल, उदयनाथ (कवीन्द्र), नेवाज, रसलीन, घाघ, दास, रसनिधि, नागरीदास बनीठनीजी, चरनदास, तोष, रघुनाथ, गुमान मिश्र, दूलह, गिरिधर कविराय, सूदन, सीतल, ब्रजबासीदास, सहजोबाई, दयाबाई, ठाकुर, बोधा, पदमाकर, लल्लूजीलाल, जयसिंह, रामसहाय दास, ग्वाल, दीनदयाल गिरि, रणधीरसिंह, विश्वनाथसिंह, राय ईश्वरीप्रताप नारायण राय, पजनेस, शिवसिंह सेंगर, रघुराजसिंह, द्विजदेव, रामदयाल नेवटिया, लक्ष्मणसिंह, गिरिधरदास, लछिराम, गोविन्द गिल्लाभाई के जीवन

चरित्रों और उनकी चुनी हुई कविताओं का संग्रह है। प्रारम्भ में हिन्दी का एक हज़ार वर्षों का इतिहास बड़ी खोज से लिखा गया है। अन्त में प्रेम, हास्य, शृंगार और नीति के बड़े ही मनोरंजक घनाक्षरी, सवैया, कवित्त, दोहे, पहेलियाँ, खेती की कहावतें और अन्योक्तियाँ संगृहीत हैं। यह पुस्तक शिक्षित मनुष्य के हाथ, हृदय और वाणी का शृङ्गार है। बढ़िया काग़ज़, उत्तम छपाई और स्वर्णाक्षरों से अंकित, रंगीन कपड़े की मनोहर जिल्द से सुसज्जित यह पुस्तक सुन्दर हाथों में सर्वथा स्थान पाने योग्य है। दाम ३

सम्मतियाँ

(१)

शान्ति-निकेतन।

आपनार संकलित "कविता-कौमुदी" ग्रन्थखानि पाठ करिया परितृप्ति लाभ करियाछि। हिन्दी कवितार ए रूप सुन्दर एवं धारावाहिक संग्रह आमि आर कोथाओ देखा नाई। अपनी एई कवितागुलि प्रकाश करिया भारतीय साहित्यानुरागी व्यक्तिमात्र केइ चिरकृतज्ञता पाशे आबद्ध करियाछेन। इति, १९ आषाढ़, १३२६।

भवदीय,
श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर।

(२)

Ruthfarnham, Camberley (England)
Surrey, 19-9-19

Dear Sir,

I am much obliged to you for your letter of August 21, 1919, and for the copy of the "कविता-कौमुदी," which has also arrived by the same post. I have read the book with much interest, and it is

(३)

a valuable introduction to the study of Hindi literature. I wish such a book had been available when I began my studies in that language fifty years ago. I am sorry that there is no hope of the book being put upon the course of the probationers in that course in the Hindi Language.

Yours faithfully,
GEORGE A. GRIERSON.

(३)

England,
9th June, 1919.

Dear Sir.

I thank you very much for the very interesting Hindi book, named "Kavita Kaumudi," which you have kindly sent me. I am reading parts of it already with great interest, and I hope when I have more leisure to read the whole of it.

Yours faithfully,
R. P. DEWHURST,
I. C. S., M. A., F. R. G. S.

(४)

Oxford,
December 3rd, 1919.

Dear Mr. Tripathi,

It was a great surprise to receive from you a copy of your "Kavita Kaumudi". I thank you

very sincerely and warmly for the gift. I will do what I can to make your book known in European circles; so far as I can see, it is the very type of the book which a student of the literature ought to use.

I hope to sail for India in a few days, and I expect to visit Allahabad some time during the next few months. In that case, I hope to have the pleasure of making your personal acquaintance.

With renewed thanks, and very kind regards.

I remain,

Yours most truly,

J. N. FARQUHAR, (M. A., D. LITT.)

(५)

London,

3rd December, 1919.

Dear Panditji,

I am indeed most grateful to you for having sent to me a copy of your excellent little volume on Hindi literature. The scheme which you have in hand of bringing out in Hindi a series of volumes on the literature of various Indian and other languages is one which commends itself very much to me, etc.

I am expecting to sail for India in about ten days and to reach Jubbulpore before the middle of

(५)

January. I shall be so grateful if you would honour me by coming to call on me as there are several points with regard to Hindi literature which I shall be glad of talking over, etc., etc.

With best wishes and very many thanks for your kind thought,

I remain,
Yours Sincerely,
(Rev.) FRANK E. KEAY.

(६)

महामहोपाध्याय डाक्टर गङ्गानाथ झा—

......of your Kavita Kaumudi—I am an old admirer and you will be glad to learn that each of my boys have got a copy of this book. It is an excellent compilation done with good taste and wise discrimination. The introduction is instructive and highly suggestive.

(७)

Order No. 8813, dated Nagpur, the 22nd October, 1919.

"Kavita Kaumudi" written by Pandit Ram Naresh Tripathi has been sanctioned for use as Library book in Normal Schools and the higher classes of vernacular and anglo-vernacular middle schools of the Central Provinces and Berar.

(८)

Order No. 5220. G. 2. B. 1298.

Dated 30th November, 1919,

from the Director of Public Instruction, Bengal.

I am directed to acknowledge the receipt of your letter, dated the 25th September, 1919, and in the circumstances stated therein to state that book entitled "Kaviṭa Kaumudi" is approved as a text book for use in the upper classes of high schools in this presideney in which Hindi is taught.

(९)

कविता-कौमुदी को कलकत्ता-युनिवर्सिटी ने एम० ए० के कोर्स में भी नियत किया है।

(१०)

Letter No. 212 of 14th June, 1919,

from the Director of Education, Kotah State.

I thankfully acknowledge the receipt of a Copy of your "Kavita Kaumudi." The book is excellent, but as we follow the U. P. curriculum in our vernacular and Normal Schools I regret it cannot be prescribed as a text book in state schools, however recommend it as a library book and Prize book.

(११)

Letter from Director of Education, Bikanere State,

dated 22nd June, 1919.

I write this to thank you for sending me a copy

of your book "Kavita Kaumudi," which I have read with pleasure and profit. I shall certainly include it among prize books for senior students.

(१२)

संयुक्तप्रान्त की टेक्स्ट बुक कमिटी ने स्कूलों की लाइब्रेरियों के लिये "कविता-कौमुदी" को पसन्द किया।

(१३)

काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय ने "कविता-कौमुदी" को एफ० ए० कक्षा के लिये पाठ्यग्रन्थ नियत किया था।

(१४)

Order No. 1172, Dated Lahore, 2nd October 1920, from the Secretary, Punjab Text Book Committee.

With reference to the publication entitled "Kavita Kaumudi," recently under the consideration of the Punjab Text Book Committee, I have the honour to state that it has been recommended for the libraries of Anglo-Vernacular and Vernacular Schools in the Punjab and also for prizes.

(१५)

पटना युनिवर्सिटी ने "कविता-कौमुदी" को बी० ए० का कोर्स नियत किया है।

(१६)

पञ्जाब युनिवर्सिटी ने कविता-कौमुदी को उच्च कक्षा में पाठ्यग्रंथ नियत किया है।

इन सम्मतियों के सिवाय भारतवर्ष के हिन्दी के प्रायः समस्त दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्रों ने "कविता-कौमुदी" की भूरि भूरि प्रशंसा की है। स्थानाभाव से उन सब का यहाँ उल्लेख नहीं किया गया। हिन्दी-साहित्य के विद्वान् तो इस पुस्तक पर मन ही मन मुग्ध हो रहे हैं। थोड़े ही वर्षों में इस पुस्तक के पाँच संस्करण हो गये। यही इसकी लोक-प्रियता का यथेष्ट प्रमाण है।

———:०:———

कविता-कौमुदी

दूसरा भाग-हिन्दी

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इसमें नीचे लिखे कवियों की जीवनियों और उनकी चुनी हुई कविताओं का संग्रह है—

हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी, विनायकराव, प्रतापनारायण मिश्र, विजयानन्द त्रिपाठी, अम्बिकादत्त व्यास, लाला सीताराम, नाथूराम शंकर शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद "भानु", श्रीधर पाठक, सुधाकर द्विवेदी, शिव-सम्पत्ति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त, किशोरीलाल गोस्वामी, लाला भगवानदीन, जगन्नाथदास रत्नाकर, राय देवीप्रसाद "पूर्ण", कन्हैयालाल पोद्दार, रामचरित उपाध्याय, सैयद अमीर अली "मीर", जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, कामताप्रसाद गुरु, मिश्रबन्धु, गिरिधर शर्मा, रामदास गौड़, माधव शुक्ल, गयाप्रसाद शुक्ल "सनेही", रूपनारायण पांडेय, रामचन्द्र शुक्ल, सत्यनारायण, मन्नन द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, लोचनप्रसाद पांडेय, लक्ष्मीधर वाजपेयी, शिवाधार पांडेय, माखनलाल चतुर्वेदी, जयशङ्करप्रसाद, गोपालशरण सिंह, बदरीनाथ भट्ट, सियारामशरण गुप्त, मुकुटधर, वियोगी हरि, गोविन्ददास, सूर्यकान्त त्रिपाठी, सुमित्रानन्दन पन्त, सुभद्राकुमारी चौहान।

प्रारंभ में खड़ी बोली की कविता का बड़ा मनोरंजक इतिहास और अंत में "कौमुदी-कुञ्ज" नाम से फुटकर कविताओं का बड़ा अनूठा संग्रह है। इसका तीसरा संस्करण बड़ी सजधज से निकला है। बढ़िया सफेद, चिकना कागज़, अच्छी छपाई, कपड़े की सुन्दर और मज़बूत जिल्द और दाम सिर्फ तीन रुपये।

——:o:——

कविता-कौमुदी

तीसरा भाग—संस्कृत

इसमें निम्नलिखित संस्कृत-कवियों की जीवनियाँ और उनकी चमत्कार-पूर्ण कविताएँ संगृहीत हैं:—

अकालजलद, अप्पय दीक्षित, अभिनव गुप्ताचार्य, अमरुक, अमितगति, अमोघ वर्ष, अश्वघोष, आनन्द वर्धन, कल्हण, कविपुत्र, कविराज, कालिदास, कुमारदास, कृष्ण मिश्र, क्षेमेन्द्र, गोवर्धनाचार्य, चन्दक, चाणक्य, जराद्धर, जगन्नाथ पण्डितराज, जयदेव, जोनराव, त्रिविक्रम भट्ट, दामोदर गुप्त, दंडी, धनञ्जय पाजक, पद्मगुप्त, प्रकाशवर्ष, पाणिनी, बाण, विकट नितम्बा, विल्हण, भट्टभल्लट, भवभूति, भर्तृहरि, भारवि, भामट, भिक्षाटन, भोज, भास, मङ्ख, मयूर, माघ, मातङ्गदिवाकर, मातृगुप्त, मुरारि, मोरिका, रत्नाकर, राजशेखर, लीलाशुक, वररुचि, वाल्मीकि, वसुदेव, विज्जका, विद्यारण्य, व्यासदेव, शिवस्वामी, शीला भट्टारिका, श्रीहर्ष, सुबन्धु, हर्षदेव आदि।

प्रारम्भ में संस्कृत-साहित्य का इतिहास है। अन्त में कौमुदी-कुञ्ज में संस्कृत के रस, ऋतु, पहेली, नायिका-भेद, निन्दा-प्रशंसा-विषयक मनोहर श्लोकों का बड़ा ललित और आनन्दवर्धक संग्रह है। पुस्तक सुन्दर सजिल्द, छपाई सफ़ाई बढ़िया। दाम तीन रुपये।

——:o:——

कविता-कौमुदी

चौथा भाग—उर्दू

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

हिन्दी-अक्षरों में उर्दू के वली, आबरू, मज़मून, नाजी, यकरङ्ग, हातिम, आरज़ू, फ़ुग़ाँ, मज़हर, सौदा, मीर, दर्द, सोज़, जुरअत, हसन, इन्शा, मसहफ़ी, नज़ीर, नासिख, आतिश, ज़ौक़, ग़ालिब, रिन्द, मोमिन, अनीस, दबीर, नसीम, अमीर, दाग़, आसी, हाली, अकबर आदि मशहूर शायरों की, दिल को हुलसानेवाली, तबीयत को फड़कानेवाली, कलेजे में गुदगुदी पैदा करनेवाली, आशिक़-माशूक़ के चोचलों से चुहचुहाती हुई, महावरों की मौज में चुलबुलाती हुई, बारीक विचारों की मिठास से दिमाग़ को मस्त करनेवाली, निहायत शोख़, बातों ही से हँसाने और रुलानेवाली उर्दू-ग़ज़लों और तीर की तरह चुभनेवाले शेरों का अनोखा संग्रह है। इसमें उर्दू-भाषा का निहायत दिलचस्प इतिहास भी है।

कौमुदी-कुञ्ज में निहायत मज़ेदार शेरों और ग़ज़लों का संग्रह है।

छपाई-सफ़ाई मनोहर, काग़ज़ बढ़िया, कपड़े की सुवर्णाङ्कित जिल्द, दाम केवल तीन रुपये।

—:०:—

कुल-लक्ष्मी

स्त्रियों के लिये यह बड़े ही काम की पुस्तक है। ऐसी उपयोगी पुस्तक स्त्रियों के लिये अभीतक हिन्दी भाषा में दूसरी नहीं निकली। इसमें इन विषयों का वर्णन है :—

स्त्रियों के गुण—सौन्दर्य की सृष्टि, लज्जा, नम्रता, गम्भीरता, सरलता, संतोष, श्रमशीलता, स्नेहशीलता, अतिथि-सेवा; देव-सेवा, सेवा-शुश्रूषा, सुजनता, कर्तव्यज्ञान, सतीत्व।

स्त्रियों के दोष—आलस्य, विलासिता, स्वेच्छाचारिता, अव्यवस्था, कलह, दूसरे की निन्दा और ईर्ष्या-द्वेष, अभिमान और अहंकार, स्वास्थ्य से लापरवाही, हास-परिहास और व्यर्थ वार्तालाप, असहनशीलता, अपव्यय ।

पति के प्रति स्त्री का कर्तव्य । सास ससुर के प्रति बहू का कर्तव्य । अन्यान्य आत्मीयों के प्रति स्त्री का कर्तव्य । । जेठ, देवर, जेठानी, देवरानी और ननद इत्यादि, नौकर नौकरानी आदि ।

रोज़ के काम—सवेरे का काम, रसोई, पान बनाना, स्वच्छता और सुव्यवस्था, लिखना पढ़ना और दस्तकारी, रोज़ाना हिसाब, सेवा शुश्रूषा, व्रत उपवास, पढ़ने योग्य पुस्तकें, मितव्यय ।

पौराणिक नीतिकथा—लक्ष्मी और रुक्मिणी का संवाद, सुमना और शांडिली का संवाद, पार्वती का स्त्रीधर्म-वर्णन । द्रौपदी और सत्यभामा का संवाद ।

रेशमी जिल्द वाली बढ़िया छपी हुई पुस्तक का दाम केवल सवा रुपया । उपहार में देने योग्य पुस्तक है ।

पथिक

रचयिता—रामनरेश त्रिपाठी

पथिक एक खंड-काव्य है । पाँच सर्गों में समाप्त हुआ है । पथिक की कथा पढ़कर कौन ऐसा सहृदय है, जो न रो उठे । स्थान स्थान पर प्राकृतिक सौन्दर्य का बड़ा ही हृदयस्पर्शी वर्णन है । देश की दशा, कर्तव्य-पालन की दृढ़ता, आत्मबल की महिमा और आत्मत्याग की कथा बड़े ही मार्मिक शब्दों में लिखी गई है ।

पुस्तक बढ़िया कागज़ पर बड़ी सुन्दरता से छपी है । दाम आठ आना ।

सुवर्णांकित कपड़े की जिल्द तथा ५ सुन्दर चित्रों से अलंकृत राज-संस्करण का मूल्य एक रुपया ।

सम्मतियाँ

माननीय पंडित मदनमोहन मालवीयजी—

पथिक की रचना बहुत ही सुन्दर और प्रभावोत्पादक है। पथिक का चरित्र बड़ी उत्तमता से लिखा गया है। इस पुस्तक का पहला संस्करण एक लाख प्रतियों का होना चाहिये।

महात्मा गाँधी—

पथिक मैंने एकबारगी रसपूर्वक पढ़ लिया है। पुस्तक मेरे सामने ही है। वखत कब मिले और कब फिर पढ़ूँ। अब तो इतना ही कह कर संतुष्ट रहूँगा कि आपकी भाषा की सेवा से भाषा ज़्यादह भूषित बने और उसका ज़्यादह प्रचार हो। भा० कृ० ६, सोमवार (१९८३)

पंडित श्रीधर पाठक—

"पथिक" सर्वांशतः एक सत्काव्य है। और हमारी मातृभाषा को उस उच्च पद पर प्रतिष्ठापित करता है, जिस पर उसके सच्चे प्रेमी उसे देखने को बहुत दिनों से अधीर हो रहे थे।

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय—

पथिक एक मौलिक काव्य है। इसमें भाव और माधुर्य का मणिकाञ्चन योग है। कवि-सहृदयता का इसमें सरस विकास है। सरसता-स्रोत जहाँ देखिये, वहीं प्रवाहित है।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त—

इस कालीन सिद्ध कविवर ने पावन पथिक कहानी।
उज्ज्वल गीतों में रच की है कीर्तिमयी निज बानी॥

लाला भगवानदीन, अध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी—

पथिक को सिरसे पैर तक देखा। रंग चोखा और ढंग अनोखा है। भाषा नुकीली और वर्णनशैली बड़ी चुटीली है।

पण्डित लोचनप्रसाद पांडेय—

पथिक ने दर्शन दिये पवित्र, हुये हम पावन तथा कृतार्थ।
मधुर मोहक उपदेश ललाम, श्रवण कर जाग उठा परमार्थ॥
धन्य कविवर! तव प्रतिभा दिव्य, धन्य भावुकता भाषा-भक्ति।
धन्य यह देशोद्धार उपाय, धन्य रामेश्वर-दर्शन-शक्ति।

पंडित नाथूराम शंकर शर्मा—

शङ्कर पथिक प्रतापी माना, भाव रुचिर रचना का जाना।
पाय प्रकाश ज्ञान-सविता का, फूला हृदय-पद्म कविता का॥

पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी—

वर्णन सुन्दर और स्वाभाविक है। कल्पना और रचना बड़ी ही रोचक है।

बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन—

मुझे निश्चय है कि त्रिपाठीजी के इस काव्य को हिन्दी-भाषा में आदरणीय स्थान मिलेगा और हिन्दी के उच्च कोटि के काव्यों में इसकी गणना होगी।

पंडित कृष्णकान्त मालवीय—

काव्य में जितने गुण होने चाहियें, वह प्रायः सब "पथिक" में मौजूद हैं। यह हमारे हृदय में उच्च भावों को भरता है; हमारे मानस-शरीर को यह उच्च भावों की चोटी पर ले बैठाता है; साथ ही हमारी आत्मा को यह पवित्रतर कर विश्वात्मा में विलीन कर देता है।

कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन—

प्रत्येक नरनारी को ऐसी कविता का रसास्वादन करके मानव-जीवन को सार्थक बनाना चाहिये।

प्रोफ़ेसर ब्रजराज, एम० ए०, एल-एल० बी०—

जितना प्रचार इस काव्य का हो, उतना ही अच्छा

श्रीयुत गोविन्ददास जी (जबलपुर)

पथिक और मिलन मैंने पढ़ लिये। सुन्दर रचना है और बड़े अच्छे

अच्छे भाव हैं। कोई कोई स्थल तो ऐसे हैं कि जिन्हें पढ़कर ऐसा कोई सहृदय नहीं, जिसकी आँखों से आँसू न बह पड़ें।

मिलन मुझे बहुत अधिक पसंद आया।

पण्डित नेकीराम शर्मा—

काव्य में मनोहर सती नारी का अनुकरणीय पतिप्रेम बारबार पढ़ने एवं मनन करने योग्य है।

पण्डित मातादीन शुक्ल—

पुस्तक क्या है, कवि के हृदय का मर्मांङ्कित दिग्दर्शन है। प्रेम, देशभक्ति, प्राकृतिक सौन्दर्य और आत्मबल का करुणापूर्ण दृश्य इसमें खींचा गया है। पढ़ते पढ़ते आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलती है।

बाबू भगवानदास, एम० ए०,—

मैंने "पथिक" काव्य आद्योपांत अक्षरशः पढ़ा और कई अंश दो बार पढ़ा। खड़ी बोली की कविता की ओर मेरी रुचि पहले कम थी; पर इसको पढ़कर मुझे निश्चय हो गया कि खड़ी बोली में भी कविता के सब उत्तम गुण रक्खे जा सकते हैं।

सुबोध्यता और प्रसाद गुण, करुण, वीर और शांत रस, सात्विक प्रेम, देशभक्ति, वैराग्य, परार्थबुद्धि, आत्मत्याग, दुष्ट नीति पर क्षमा की जीत, यह सब बहुत अच्छे प्रकार से दिखाया है। कथा का रूपक भी बहुत सुन्दर, अपूर्व और इस देश की अवस्था के अनुरूप बाँधा है। प्रकृति की शोभा का वर्णन भी स्थान स्थान पर बहुत ललित और कोमल शब्दों में किया है।

मुझे आशा है कि यह काव्य चिरस्थायी होगा।

सेवाश्रम, काशी
सौर ८-३-७८ } भगवान् दास।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त—

मैं पथिक का एक एक अक्षर पढ़ गया। जैसे जैसे मैं इसे पढ़ता जाता था, मुग्ध होता जाता था। ईश्वर आपकी लेखनी में और भी बल दे, और भगवान करे आपकी पुस्तक भविष्यवाणी की जगह ले।

सेठ जमनालाल बजाज—

गत बीमारी में पथिक के पढ़ने से मुझे बहुत धैर्य मिला। मैंने पथिक को दो बार पढ़ा है। मेरी राय में प्रत्येक नवयुवक को, जो जीवन को आदर्श बनाना चाहता है, पथिक से बहुत लाभ होना संभव है।

PRABUDDHA BHARATA, (MAYAVATI).

November, 1921.

Pathik. This is a patriotic tale in fine cantos, written in delightful verse (Khari Boli), which strikes a deep note of pathos combined with a genuine love of nature and for one's own country. The poem has also a bearing on the present national movement within the country, and its popularity is testified to lay its running to a second edition in so short a time.

Milan. It is a nice love-story. Pandit Tripathi wields a graceful pen and this has made this tiny booklet a success.

दम्पति-सुहृद

स्वर्गीय सतीशचन्द्र चक्रवर्ती लिखित बँगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद। यह पुस्तक स्त्री-पुरुष दोनों के लिये बड़े काम की है। प्रत्येक पढ़े लिखे नर-नारी को एक बार इस पुस्तक का पाठ कर जाना चाहिये। इसमें इन विषयों का वर्णन है :—

दम्पति, दाम्पत्य प्रेम, रूपतृष्णा, सुखतृष्णा, संसार और गृहकार्य, सन्तान-पालन, चरित्र-गठन, नाना कथा, विलासिता, दाम्पत्य कलह,

क्षमागुण, अवस्था, मितव्ययिता, दान, भिक्षा, साहाय्य-प्रार्थना, कृतज्ञता, पारिवारिक सम्मान, रहस्य-रक्षा, विविध। पुस्तक सजिल्द है। दाम सवा रुपया।

सद्गुरु-रहस्य

लेखक—कुमार कोशलेन्द्रप्रताप साहि, राय बहादुर, दिअरा राज

इस पुस्तक को आप एक बार पढ़ डालिये, अपने पुत्र-पुत्रियों को पुरस्कार और मित्रों को उपहार में दीजिये, आप का परम कल्याण होगा। आप भगवान के चरणों की उस शीतल छाया में जाकर खड़े होंगे, जहाँ संसार के दुःख-दावानल की आँच नहीं पहुँचती। बीसवीं सदी के घोर नास्तिकता-पूर्ण वातावरण में तो इस पुस्तक का प्रचार घर-घर होना चाहिये। यह अवध के एक राजवंशीय नररत्न भगवद्भक्त के दश वर्षों के गंभीर मनन का फल है। इसमें काल-कर्म, माया और प्रेम तथा ज्ञान-विज्ञान की परीक्षा करके तथा वैज्ञानिक सचाइयों के द्वारा भी भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है। विद्वान् लेखक ने भक्त कवियों के मर्मस्पर्शी पदों, दोहों और विविध छंदों से भाषा में ऐसा प्राण डाल दिया है कि पढ़ते-पढ़ते मन लहालोट हो जाता है। हिन्दी में अभी तक ऐसी अच्छी पुस्तक नहीं निकली। यह पुस्तक इतनी सुन्दरता से छपाई गई है कि देखकर नेत्रों का जीवन सफल हो जाता है। पुस्तक में आठ चित्र भी हैं। कपड़े की मनोहर जिल्द लगी है। सद्गुरु-रहस्य आप के हृदय-मन्दिर का दीपक, वाणी का अलंकार, हाथों का भूषण और अलमारी का शृङ्गार है। दाम लागतमात्र २॥)।

अयोध्याकाण्ड, सटीक

टीकाकार—रामनरेश त्रिपाठी

राजापुर वाली प्रति के अनुसार मूल पाठ ठीक करके यह अयोध्याकाण्ड टीका सहित हमने प्रकाशित किया है। टीका इसकी ऐसी सरल है कि

साधारण पढ़े लिखे लोग भी चौपाइयों का अर्थ आसानी से समझ लेते हैं। हिन्दी-मन्दिर से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की छपाई-सफ़ाई तो प्रसिद्ध ही है, इस पर भी साढ़े तीन सौ पृष्ठों की पुस्तक का दाम केवल बारह आना रक्खा गया है। कपड़े की जिल्द का एक रुपया। इतनी सस्ती पुस्तक हिन्दी में कोई नहीं। हिन्दुओं के घर घर में रामायण का प्रचार होने के लिये ही हमने इतना सस्ता दाम रक्खा है। आशा है, हमारे हिन्दूधर्माभिमानी पाठक इसे हाथों हाथ लेंगे।

मिलन

रचयिता—रामनरेश त्रिपाठी

यह एक खण्ड-काव्य है। पाँच सर्गों में समाप्त हुआ है। पथिक और मिलन दोनों दो सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। साहित्य-रसिक लोग इसकी कथा को पथिक से उत्तम बताते हैं। मूल्य चार आना।

हिन्दी-पद्य-रचना

लेखक—रामनरेश त्रिपाठी

आजकल के नवयुवकों की रुचि हिन्दी-कविता रचने की ओर बहुत बढ़ रही है। किन्तु रचना की विधि न जानने से उन्हें सफलता बहुत कम मिलती है। यह पुस्तक उन्हें हिन्दी-पद्य-रचना का मार्ग बतलाती है। यह हिन्दी का पिङ्गल है। नौसिख पद्य-रचयिताओं को यह पुस्तक एक बार अवश्य पढ़ लेनी चाहिये। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षा में भी स्वीकृत है। दाम चार आना।

सुभद्रा

लेखक—रामनरेश त्रिपाठी

यह एक उपन्यास है। संसार में कैसे कैसे मनुष्य पड़े हैं, इसमें उनका चरित है। एक घण्टे का मनोरंजन और जन्मभर के लिये शिक्षा। दाम छः आना।

आकाश की बातें

लेखक—रामनरेश त्रिपाठी

इस पुस्तक में आकाश के ग्रह, उपग्रह और ताराओं का हाल है। आकाश की दुनिया का हाल पढ़कर, ईश्वर की अद्भुत कारीगरी देख कर, हृदय में एक प्रकार के सुख का अनुभव होने लगता है। दाम तीन आना।

बाल-कथा कहानी

पहला भाग

लेखक—रामनरेश त्रिपाठी

२१ चित्रों से सजी हुई तथा कई रंगों की स्याही से छपी हुई इस पुस्तक की कहानियाँ पढ़कर बच्चे लोटपोट हो जाते हैं। बच्चों को यह पुस्तक इतनी प्यारी है कि थोड़े ही दिनों में यह आठ बार छप चुकी। अबकी बार इसमें चित्र भी दिये गये हैं और छपाई भी कई रंग की स्याहियों में कराके मनोहर कर दी गई है। कहानियाँ एक से एक बढ़कर मनोहर और उपदेशजनक हैं। अपने बच्चे के लिये इसकी एक प्रति ज़रूर खरीदिये। दाम बहुत सस्ता, केवल छः आना।

बाल-कथा कहानी

दूसरा भाग

लेखक—रामनरेश त्रिपाठी

कागज़ छपाई-सफ़ाई बढ़िया, २२ चित्र। इस पुस्तक को पाकर बच्चे लहालोट हो जाते हैं। इस पुस्तक की कहानियाँ बहुत ही रोचक और चित्र बड़े ही मनोहर हैं। दाम केवल छः आने।

नीति-शिक्षावली

संग्रहकर्ता—रामनरेश त्रिपाठी

इसमें नीति के १३४ श्लोकों का संग्रह है। हिन्दी में अर्थ भी लिख दिये गये हैं। ये श्लोक सबको कंठस्थ रखने चाहियें। बच्चों को बालकपन से ही इन्हें याद कराते रहना चाहिये। दाम दो आने।

हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—रामनरेश त्रिपाठी

इस पुस्तक में हिन्दी का एक हज़ार वर्षों का इतिहास बड़ी खोज से लिखा गया है। दाम छः आना।

रहीम

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

रहीम ख़ानख़ाना बादशाह अकबर के वज़ीर थे। वे हिन्दी के अच्छे कवि भी थे। उनकी जीवनी और उनकी कुल कविताओं का, जो अब तक मिल सकी हैं, इस पुस्तक में संग्रह है। दाम ≡)

प्रेम

बँगला के सुप्रसिद्ध लेखक श्री अश्विनीकुमार दत्त ने प्रेम नाम की एक बहुत ही उत्तम पुस्तक लिखी है। यह उसी का सरस और सुन्दर अनुवाद है। प्रेम का सच्चा रूप इसमें दिखाया गया है। दाम।≡)।

तपस्वी अरविन्द के पत्र

तपस्वी अरविन्द ने तीन बड़े मर्मस्पर्शी पत्र अपनी स्त्री को लिखे थे। इस पुस्तक में उनका ही हिन्दी-अनुवाद है। पुस्तक सजिल्द है। दाम तीन आने।

रानी जयमती

यह सुप्रसिद्ध औपन्यासिक शरच्चन्द्र बाबू की बँगला पुस्तक का अनु-

वाद है। रानी जयमती की कथा बड़ी ही करुणापूर्ण और शिक्षाप्रद है। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का दाम पन्द्रह आने।

चिन्तामणि

भजनों का संग्रह। इस की एक प्रति प्रत्येक हिन्दू की जेब में रहनी चाहिये। दाम दो आने।

हिन्दी की नई रीडरें

लेखक—रामनरेश त्रिपाठी

आजकल जो रीडरें पढ़ाई जाती हैं, वे जिस उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर तैयार की या कराई गई हैं, वह मधुर दिखाई पड़ते हुये भी परिणाम में विष है। उद्देश्य के अनुसार ही परिणाम यह हुआ है कि वर्नाक्यूलर स्कूलों की ऊँची से ऊँची कक्षा की पढ़ाई समाप्त करने के बाद लड़कों का जीवन एक विचित्र साँचे में ढला हुआ सा निकलता है। उनमें आत्मगौरव, देशभक्ति और समाज-सेवा का भाव होता ही नहीं; अपने प्राचीन इतिहास की जानकारी भी उन्हें एक विकृतरूप में ही होती है, सो भी नाम-मात्र को; लोक-व्यवहार का उन्हें बहुत ही कम ज्ञान होता है; उनकी व्यवसाय-बुद्धि तो बिल्कुल कुचल ही दी जाती है। वे बड़े ही डर-पोक, बड़े ही बुज़दिल, बड़े ही कमहिम्मत और बड़ी ही अस्थिरप्रकृति के हो जाते हैं। समझदार लोग वर्नाक्युलर स्कूलों की ऊँची से ऊँची कक्षा तक तालीम पाये हुये लड़कों के उपर्युक्त लक्षण नित्य ही देखते हैं। प्रजा के धन और उसके बालकों की आयु का यह अपव्यय असह्य है। इसलिये जिस शिक्षा से हमारा जातीय पतन निश्चित है, उसे बहुत शीघ्र बदल डालना चाहिये।

स्कूल की आत्मा अध्यापक हैं, इसमें संदेह नहीं। पर योग्य से योग्य अध्यापक भी अपने विद्यार्थियों को वही रीडरें पढ़ा सकता है, जो शिक्षा-विभाग द्वारा नियत होती हैं। उनमें ही विद्यार्थियों को इम्तहान दिलाना

और अच्छे नम्बरों में पास कराना पड़ता है। इतने के लिये भी लड़कों को वर्ष भर का पूरा समय चाहिये। "बिल्ली और उसके भाई बंद" वाले पाठ में अध्यापक हरिश्चन्द्र, ध्रुव, और प्रह्लाद की कथा कैसे बता सकता है? लोमड़ी, सियार, ऊँट, मगर, मेढक, कुत्ते, बिल्ली, गधे और मकड़ी के पाठों में वह चाणक्य, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, कालिदास, अकबर तथा धर्म, सदाचार, शिष्टाचार, सौजन्य, धैर्य, वीरता आदि का ज्ञान कैसे करा सकता है? जैसा ज्ञान दिया जाता है, वैसा ही परिणाम निकलता है। गधे, सियार और कुत्ते का पाठ पढ़कर लड़के मनुष्य कैसे बन सकते हैं? रीडरों को बिना बदले यह जातीय महापतन नहीं रुकेगा।

बहुत सा ज्ञान ऐसा है, जो मनुष्य को घर में ही प्राप्त हो जाता है और बहुत सी बातें वह ऐसी जानता है, जो उसके जीवन के लिये निरर्थक होती हैं। जैसे, गधे के कान लम्बे होते हैं, घोड़े के सुम चिरे नहीं होते, उल्लू रात को देखता है। कठफोड़वा पेड़ों से कीड़े निकाल निकाल खाता है, और बन्दर पेड़ पर चढ़ सकता है; ये बातें बिना स्कूल गये ही लोग जान जाते हैं। और कोई व्यक्ति इन बातों को न भी जाने, तो लोक या परलोक के किसी काम में उसको बाधा नहीं पहुँचती। इन्हीं सब बातों की जानकारी के लिए स्कूलों में आठ आठ दस दस वर्ष माथापच्ची करना देश के दुर्भाग्य के सिवाय और कुछ नहीं। रीडरों के द्वारा बालक-बालिकाओं में ज्ञान की वृद्धि की अपेक्षा ज्ञान का ह्रास और आयु का अपव्यय अधिक होते देखकर हमने नई रीडरें तैयार कराई हैं। इनमें जो पाठ रक्खे गये हैं, उनमें बालक-बालिकाओं को देशभक्त, स्वात्माभिमानी, समाजसेवक, सभ्य, सदाचारी बनाने की पूरी शक्ति है। कन्याओं के लिये हमारी जो रीडरें हैं, उनके पढ़ाने से कन्याओं में विलासिता के बदले सादगी, उच्छृङ्खलता के बदले सत्कुलाचरण और अपव्यय के बदले मितव्ययता की आदत पड़ेगी। ये रीडरें स्कूलों का कायापलट कर देंगी। ऐसी रीडरों से शिक्षा का इतिहास ही बदल जायगा। शिक्षाप्रेमी सज्जनों से हमारा अनुरोध है कि वे

इन रीडरों को अपने स्कूल—पाठशालाओं में स्थान दें और दिलावें। दोनों प्रकार की रीडरें अपरप्राइमरी कक्षा तक के लिये तैयार हैं। मूल्य भी इनका बहुत ही कम रक्खा गया है। रीडरों के नाम और दाम ये हैं :—

बालकों के लिये

हिन्दी-अक्षरबोध	)॥
हिन्दी की पहली पुस्तक	=)
हिन्दी की दूसरी पुस्तक	≡)
हिन्दी की तीसरी पुस्तक	।-)
हिन्दी की चौथी पुस्तक	॥)

पाँचवीं, छठीं पुस्तकें छप रही हैं।

बालिकाओं के लिये

हिन्दी-अक्षरबोधिनी	)॥
कन्या-शिक्षावली, पहला भाग	-)
कन्या-शिक्षावली, दूसरा भाग	=)
कन्या-शिक्षावली, तीसरा भाग	≡)
कन्या-शिक्षावली, चौथा भाग	।)

पाँचवाँ और छठाँ भाग छप रहा है।

प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

कविता-कौमुदी—	पाँचवाँ	भाग	अँग्रेज़ी	३)
,, ,,	छठा	भाग	फ़ारसी	३)
,, ,,	सातवाँ	भाग,	बँगला	३)
,, ,,	आठवाँ	भाग,	गुजराती	३)
,, ,,	नवाँ	भाग,	मराठी	३)
,, ,,	दसवाँ	भाग,	भक्त कवि	३)
,, ,,	ग्यारहवाँ	भाग,	स्त्री कवि	३)

कविता-कौमुदी—बारहवाँ भाग	मुसलमान-कवि	३)
,, ,, तेरहवाँ भाग	ग्राम्य कविता	३)
,, ,, चौदहवाँ भाग	लोकोक्ति	३)
,, ,, पंद्रहवाँ भाग	हिन्दी-सुभाषित	३)
,, ,, सोलहवाँ भाग	डिंगल	३)
हिन्दी-मन्दिर-कोश	... ...	२)
रामचरितमानस—मूल	... ...	१)
,, ,, सटीक	... ...	३)
बाल-कथा कहानी के कई भाग । दाम प्रत्येक का		।=)

पुस्तकें मिलने का पता—

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

स्थायी ग्राहकों के लिये नियम

१—आठ आने प्रवेश फीस देकर प्रत्येक सज्जन "हिन्दी-मन्दिर-ग्रन्थ-माला" के स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। यह आठ आना न तो कभी वापस दिया जाता है, और न किसी हिसाब में मुजरा दिया जाता है।

२—स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थमाला के कुल ग्रन्थ—पूर्व प्रकाशित और आगे प्रकाशित होने वाले—पौनी कीमत में दिये जाते हैं।

३—किसी उचित कारण के बिना यदि किसी ग्रन्थ का वी० पी० वापस आता है तो ग्राहक का नाम ग्राहक श्रेणी से अलग कर दिया जाता है।

४—"प्रवेश फीस" के आठ आने म० आ० से पेशगी भेजने चाहियें। किसी ग्रन्थ के वी० पी० में भी प्रवेश फ़ीस जोड़ ली जा सकती है।

५—स्थायी ग्राहक केवल एक ही प्रति पौनी कीमत में पा सकते हैं। हाँ, अधिक प्रतियाँ लेना चाहें तो ॥) प्रति पुस्तक के हिसाब से प्रवेश फ़ीस जमा कर चाहे जितनी प्रतियाँ ले सकते हैं।

Printed by K. P. Dar, at the Allahabad Law Journal Press, Allahabad
and Published by Pandit Ram Naresh Tripathi, Hindi-Mandir, Prayag